Reg. No. MAHHIN / 2008 / 26222 ISSN-2250-2335

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की अर्द्ध वार्षिक-अव्यावसायिक पत्रिका)

पीयर रिव्यूड व यू. जी. सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित जर्नल

सिनेमा में राष्ट्रीयता और अस्मिता मूलक विमर्श पर केंद्रित अंक

● वर्ष-16 ● अंक 34 ● जनवरी - मार्च 2023 ● पूर्णांक 72 ● मूल्य 100 रुपए

34

● संपादक - डॉ. सतीश पांडेय

देवेश ठाकुर

रचना-यात्रा के सात दशक

जन्म : 23 जुलाई, 1933, नानी के गाँव पैठानी (अल्मोड़ा, उत्तरांचल) में

रचना संसार

उपन्यास : भ्रमभंग, प्रिय शबनम, काँचघर, इसीलिए, अपनाअपना अकाश, जनगाथा, गुरुकुल, शून्य से शिखर तक, अंततः, शिखर पुरुष, जंगल के जुगनू, कातर बेला, जीवा, देवता के गुनाह, संध्या छाया, स्वप्न दंश, व्यक्तिगत, मारिया, कैम्पस कथा, स्मृतियों के कोलाज,

शीघ्र प्रकाश्य : तीसरी लड़ाई, ऐसा भी होता है, अपने अपने अंतर्द्वंद्व

काव्य : मयूरिका, अंतरछया, अवकाश के क्षणों में, कविताएँ (संपूर्ण कविताएँ)

कहानी : सिर्फ संवाद, फैसला तथा अन्य कहानियाँ

समीक्षा : नयी कविता के सात अध्याय, नदी के द्वीप की रचना प्रक्रिया, मैला आँचल की रचना प्रक्रिया, हिन्दी कहनी का विकास, साहित्य की सामाजिक भूमिका, साहित्य के मूल्य, आलेख

शोध : प्रसाद के नारीचरित्र (पीएच. डी.), आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानवतावादी भूमिकाएँ, हिन्दी साहित्य तथा साहित्येतिहास : अंतरानुशासनों का अनुशीलन (विश्वविद्यालय अनुदान अयोग की विशिष्ट परियोजना के अंतर्गत)

संपादन : कथाक्रम1, कथाक्रम2 (कुल 175 कहानियाँ), कथावर्ष1976, कथावर्षङ्ग1977, कथावर्ष1978, कथावर्ष1979, कथावर्ष1980, कथावर्ष1981, कथावर्ष1982, कथावर्ष-1983, कथावर्ष1992, कथावर्ष1994, हिन्दी की पहली कहानी, रचना प्रक्रिया और रचनाकार, प्रेमचंद साहित्य के अध्येता : डॉ. कमल किशोर गोयनका किशोर साहित्यः दो सहेलियाँ (कहानी संग्रह), ममता (उपन्यास)

समाज और राजनीति : आजादी की आधी सदी और आम आदमी (तीन खंडों में)

जीवनी : बुद्धगाथा

आत्मकथा : मैं यों जिया (आरंभिक अंर्तयात्रा, चंदन वन के बीच, इस यात्रा में) (तीन खंडों में) इसके अतिक्त 6 लोकप्रिय अंग्रेजी पुस्तकों का अनुवाद। 1500 से अधिक लेखों, शोधपत्रों, कहानियों, कविताओं, पुस्तक समीक्षाओं और स्तम्भ लेखों का प्रकाशन।

ISSN-2250-2335 Reg. No. MAHHIN/2008/26222

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की त्रैमासिक-अव्यावसायिक पत्रिका)

पीयर रिव्यूड व यू. जी. सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित जर्नल

प्रबंध संपादिका :
डॉ. रोहिणी शिवबालन
प्रधान संपादक-प्रकाशक :
डॉ. देवेश ठाकुर
संपादक :
डॉ. सतीश पांडेय
संयुक्त संपादक :
डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट
डिजिटल संपादक :
डॉ. मनीष कुमार मिश्रा

संपादकीय-संपर्क :
बी-23, हिमालय सोसाइटी,
असल्फा,
घाटकोपर (प.), मुंबई-400 084.

Email: sameecheen@gmail.com
website-www.http//:
sameecheen.com

विशेष :
'समीचीन' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबद्ध रचनाकारों के हैं। संपादक-प्रकाशक की उनसे सहमति आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय-क्षेत्र मात्र मुंबई होगा। सभी पदाधिकारी पूर्णरूप से अवैतनिक।

परीक्षक विद्वत मंडल : (Peer Review Team)

1) डॉ. राम प्रसाद भट्ट
भारत-विद्या विभाग,
हैम्बर्ग विश्वविद्यालय, हैम्बर्ग, जर्मनी
2) प्रो. (डॉ.) देवेन्द्र चौबे
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
3) प्रो. (डॉ.) वशिष्ठ अनूप
हिन्दी विभाग, काशी हिंदू विवि.,
वाराणसी, (उ. प्र.)
4) डॉ. नरेन्द्र मिश्र
प्रो. हिंदी, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू मैदानगढ़ी,
दिल्ली110068
5) प्रो. (डॉ.) करुणाशंकर उपाध्याय
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय,
मुंबई
6) प्रो. (डॉ.)अनिल सिंह
अध्यक्ष, हिन्दी अध्ययन मंडल, मुंबई
विश्वविद्यालय, मुंबई
7) प्रो. (डॉ.) सदानंद भोसले
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सवित्रीबाई फुले पुणे
विद्यापीठ, पुणे
8) प्रो. (डॉ.) शरेशचंद्र चुलकीमठ
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कर्नाटक
विश्वविद्यालय, धारवाड़
9) डॉ. अरुणा दुबलिश
पूर्व प्राचार्य, कनोहरलाल महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, मेरठ (उ. प्र.)

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक : देवेश ठाकुर ने प्रिंटोग्राफी सिस्टम (इंडिया) प्रा. लि., 13/डी, कुर्ला इंडस्ट्रियल एस्टेट, नारी सेवा सदन रोड, नारायण नगर, घाटकोपर (प.) मुंबई-400 086 में छपवाकर बी-23, हिमालय सोसाइटी, असल्फा, घाटकोपर (प.), मुंबई-400084 से प्रकाशित किया।

● वर्ष-16 ● अंक 34 ● जनवरी-मार्च-2023 ● पूर्णांक 71 ● मूल्य 100 रुपए
सहयोग : एक प्रति रु. 100/-, वार्षिक रु. 400/-, पंच वार्षिक रु. 2000/-

सीधे समीचीन के खाते में भेजने के लिए : खातेधारक का नाम : **समीचीन** / sameecheen
A/C No. 60330431138, Bank of Maharashtra,
Dr. Ambedkar Road, Dadar, Mumbai. IFSC : MAHB0000045

अनुक्रमणिका

1. अपने तईं 08
2. इक्कीसवीं सदी के हिंदी फिल्मी गीतों में राष्ट्रीय भावना
प्रा. एस. के. आतार 09-12
3. 21वीं सदी के राष्ट्रीय भावना के हिंदी फिल्मी
गीत और आम आदमी - डॉ. सूरज बालासो चौगुले 13-18
4. '२१वीं सदी के हिंदी काव्य में राष्ट्रीय भावना'
डॉ. सविता लालासो नाईक-निंबाळकर 19-21
5. कितने पाकिस्तान उपन्यास में राष्ट्रीयता-डॉ. शहनाज महेमूदशा सय्यद 22-26
6. हिंदी दलित काव्य में राष्ट्रीय भावना-प्रा. मारुती दत्तात्रय नायकू 27-34
7. हिंदी सिनेमा और राष्ट्रीय भावना-प्रा. डॉ. प्रकाश आठवले 35-39
8. भूमंडलीकरण के चपेट में राष्ट्रीयता का चिराग : पॉल गोमरा
डॉ. विकास विलासराव पाटील 40-42
9. भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा:'लगान' के जातीय समीकरण
प्रा. डॉ. दीपक जाधव 43-48
10. 'पं. प्रदीप के गीतों में राष्ट्रीय चेतना : पुष्पा भारती के संस्मरण के
संदर्भ में' शोध निर्देशक - डॉ. महिपती जगन्नाथ शिवदास
शोध छात्रा - रूपाली विट्ठल माने 49-55
11. महावीर उत्तरांचली की 'प्रतिनिधि रचनाएं' संग्रह में चित्रित
राष्ट्रीय चेतना - डॉ. हेमलता काटे 56-61
12. '21 वी सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना'- प्रा. डॉ. राठोड बाळु भोपू 62-68
13. 21वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावनाः 'टॉयलेट एक प्रेम कथा'
के परिप्रेक्ष्य में' - प्रा. सागर रघुनाथ कांबळे 69-72
14. नवजागरण की परम्परा और पुनरुत्थान का द्वन्द्व
(डॉ. विकास गडकरी, डॉ. विनय तिवारी, डॉ. संतोष कोळेकर
के संदर्भ में) - प्रा. सौ. शिल्पा शिंदे 73-76
15. हिंदी फिल्मों में सामाजिक प्रश्नों द्वारा व्यक्त राष्ट्रीय भावना
डॉ. सौ. वृषाली विकास मिणचेकर 77-83
16. राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत डॉ. कुमार विश्वास का काव्य-डॉ. नितीन धवडे 84-87
17. 21वीं सदी के भीम गीतों में राष्ट्रीय भावना
कु. शितल प्रल्हाद चव्हाण, शोधछात्र 88-91
18. डॉ. परशुराम शुक्ल की बाल कविताओं में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना
डॉ. माधव राजप्पा मुंडकर 92-97
19. '21वीं सदी के हिंदी उपन्यास और राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्व'
डॉ. नितीन विठ्ठल पाटील 98-101
20. झारखण्ड की हस्तशिल्प-कलाओं में राष्ट्रीय भावना
प्रमिला टोप्पो, शोधार्थी 102-108
21. '21वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावनाः 'न्यूटन' के परिप्रेक्ष्य में'
डॉ. कृष्णात आनंदराव पाटील 109-112
22. '२१वीं सदी के हिन्दी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना'

(संदर्भ -चक दे इंडिया और गदर : एक प्रेमकथा)-प्रा. अजित दादू फाळके 113-115
23. हिंदी काव्य में राष्ट्रीय भावना- निलेश सखाराम डामसे 116-119
24. 21वीं सदी की हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना-डॉ. अशोक मरळे 120-122
25. २१ वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना-डा. संतोष रायबोले 123-127
26. जयभारत नाटक में राष्ट्रीय भावना-प्रा. जेलित कांबळे 128-131
27. 'लौटे हुए मुसाफिर' में प्रतिपादित राष्ट्रीय भावना
गीतु दास (शोध छात्र), डॉ. जी. शान्ति (शोध निर्देशिका) 132-136
28. डॉ. परशुराम शुक्ल के बाल साहित्य में राष्ट्रीय चेतना-प्रा. आनंद र. बक्षी 137-139
29. 21वीं सदी के हिंदी बाल साहित्य की कविता में राष्ट्रीय चेतना
डॉ. पंडित बन्ने, डी. लिट् 140-144
30. अज्ञेय के काव्य साहित्य में चित्रित राष्ट्रीय जीवन
प्रा. डॉ. शिवाजी उत्तम चवरे 145-151
31. इक्कीसवीं सदी के भारतीय सिनेमा में राष्ट्रीय चेतना
प्रा. बहिरम देवेंद्र मगनभाई 152-154
32. 21वीं सदी के हिन्दी साहित्य में नारी चेतना-प्रा. डॉ. भारत बा. उपाध्य 155-157
33. 'हम एक हैं' नाटक में प्रतिबिंबित राष्ट्रीय एकता
प्रा. भिमाशंकर लक्ष्मण गायकवाड 158-161
34. 21 वीं सदी के हिंदी फिल्मी गीतों में राष्ट्रीय भावना-डॉ. जे. ए. पाटील 162-165
35. '21 वीं सदी की हिंदी फिल्मों में राष्ट्रीय भावना'-प्रा. एस. ए. वनिरे 166-169
36. 21वीं सदी में हिंदी सिनेमा और राष्ट्रीय भावना-डॉ. सौदागर साळूंखे 170-172
37. 21 वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना-डॉ. प्रकाश विठ्ठल शेटे 173-175
38. हिंदी साहित्य और सिनेमा-गौरी त्यागी, शोधार्थी 176-180
39. 21वीं सदी की हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावनाः उत्तरआधुनिकता
बोध के परिप्रेक्ष्य में - डॉ. आर. पी. भोसले 181-185
40. सुरेश शुक्ल 'चंद्र' के 'वतन के तीन सिपाही' नाटक में राष्ट्रीय भावना
लेफ़्टिनेंट डॉ. रविंद्र पाटील 186-189
41. 'कृष्णा सोबती के उपन्यासों में राष्ट्रीय भावना'-प्रा. व्ही. एच. वाघमारे 190-191
42. मोहनदास नैमिशराय के उपन्यासों में राष्ट्रीय भावना
प्रा. अशोक गोविंदराव उघडे 192-198
43. 21 वीं सदी की हिंदी फिल्मों में राष्ट्रीय भावना-डॉ. मारोती यमुलवाड 199-202
44. 'घुटन भरी जिंदगी' में राष्ट्रीय भावना-डॉ. गोरख निळोबा बनसोडे 203-208
45. नरेंद्र नागदेव के कहानी साहित्य में राष्ट्रीय भावना
('उन्नीस सौ चवालीस' एवं 'छलांग' कहानी के विशेष संदर्भ में)
नीलेश वसंतराव जाधव (अनुसंधाता) 209-213
46. दलित साहित्य की अवधारणा और चिंतन
अखिलेश जैसल (शोधार्थी), डॉ. व्ही. डी. सूर्यवंशी (शोध निर्देशक) 214-215
47. गुजराती साहित्य में नारी चेतना-डॉ. हेतल पी. बारोट 216-218
48. 'दोहरा अभिशाप' में व्यक्त क्रांति चेतना-प्रो. अंजना विजन 219-222
49. मुंबई से सटी येऊर पहाड़ी पर बसी वारली और ठाकुर जनजातियाँ
(आदिवासी जीवन पर केंद्रित आलेख) - डॉ. जयश्री सिंह 223-225

50. झारखंड की जनजातीय कलाओं में सोहराई और कोहबर चित्रकारी : गुफा से शहर की दीवारों तक की यात्रा - डॉ. इंद्राणी रॉय 226-229
51. आदिवासी जीवन की प्रमाणिक अभिव्यक्ति : नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द - डॉ. मिथिलेश शर्मा 230-234
52. 21वीं सदी में आदिवासी एवं दलित उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन (2001 से 2010) - ज्योति अजय सिंह 235-240
53. इक्कीसवीं सदी के आदिवासी साहित्य में विमर्श और चुनौतियाँ डॉ. नवनाथ गाड़ेकर 241-245
54. चयन प्रतिमान के निकष पर ज्ञानेंद्रपति कृत 'एकचक्रानगरी' काव्य नाटक प्रो सदानंद भोसले (शोध निर्देशक/ रेवनसिद्ध काशिनाथ चव्हाण (शोध छात्र) 246-253
55. आसमां में सुराख की एक कोशिश करता उपन्यास : उत्कोच श्यामसुंदर पाण्डेय 254-259
56. अनुवाद के परिप्रेक्ष्य में 'मेरी रूस-यात्रा' का मूल्यांकन प्रो. डॉ. बाळासाहेब सोनवणे 260-264
57. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता में दलित विमर्श' ('बस्स! बहुत हो चुका कविता के विशेष संदर्भ में) डॉ. ईश्वर पवार 265-267
58. शिवमूर्ति के तर्पण उपन्यास में दलित चेतना-डॉ. गीता संतोष यादव 268-274
59. समकालीन हिन्दी कहानी में आदिवासी स्त्री गुप्ता अशोक कुमार कृपानाथ 275-280
60. आदिवासी जीवन की संघर्ष गाथा 'जंगल जहां से शुरू होता है' डॉ. चंपा शिवदत्त मासीवाल 281-285
61. हिंदी साहित्य : दलित नारी की स्थिति-डॉ. उर्मिला सिंह 286-290
62. 21वीं सदी में हिन्दी आदिवासी कविता : दशा, दिशा एवं सम्भावनाएँ निलेश शिवाजी देशमुख, शोधार्थी 291-296
63. पूर्वोत्तर भारत का आदिवासी : लोकजीवन और संस्कृति डॉ. पंडित बन्ने, डी.लिट् 297-300
64. समकालीन व्यंग्य साहित्य -डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट 301-305
65. हिमांशु जोशी के उपन्यासों में व्यक्त समकालीन राजनीति डॉ. ममता पंत 306-311
66. 'परशुराम शुक्ल के बाल काव्य में राष्ट्रीय भावना' डॉ. वर्षाराणी निवृतीराव सहदेव, शोध श्रीमती सुरेखा संदीप जाधव, निर्देशक 312-317
67. २१ वीं सदी के हिंदी फिल्मी गीतों में राष्ट्रीय भावना डॉ. गोरखनाथ किर्दत 318-322
68. 'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास में चित्रित राष्ट्रीय भावना प्रो. डॉ. सविता शिवलिंग मेनकुदळे 323-328
69. राजी सेठ कृत 'रुको, इंतजार हुसैन' कहानी में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना - डॉ. संदीप जोतिराम किर्दत 329-335
70. 'आना इस देश' उपन्यास में देशप्रेम की भावना डॉ. दिलीपकुमार कसबे 336-340

71. प्रदीप सौरभ रचित 'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास में राष्ट्रीय भावना के
राजनीतिकरण का चित्रण - डॉ. सचिन मदन जाधव 341-344
72. गायब होते पहाड़ की करुण गाथा 'पहाड़ चोर'
- डॉ मधुकर लक्ष्मण डोंगरे 345-348
73. 21 वीं सदी के हिंदी फिल्मी गीतों में राष्ट्रीय भावना
- डॉ. युवराज माने 349-354
74. 'बाल सतसई' में राष्ट्रीय भावना -डॉ. लिपारे अजित विठ्ठल 355-358
75. 21 वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना
प्रा. कोळी सोमनाथ तातोबा 359-361
76. 21 वीं सदीः किन्नर समुदाय के सिनेमा में राष्ट्रीय भावना
डॉ. महिपती जगन्नाथ शिवदास 362-365
77. समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श
एवं विस्थापन - ममता शत्रुघ्न माली - शोधार्थी 366-371
78. 'इक्कीसवीं सदी के उपन्यास साहित्य में राष्ट्रीय भावना
('शहर में कर्फ्यू' और 'मुन्नी मोबाईल' उपन्यास के संदर्भ में)'
डॉ. गणेश दुंदा गभाले 372-374

अपने तईं

समीचीन का यह अंक सिनेमा में राष्ट्रीयता और देशप्रेम तथा अस्मितामूलक विमर्शों पर केन्द्रित है। हिन्दी सिनेमा ने अपनी लोकप्रियता से जहाँ हिन्दी भाषा के विकास तथा प्रचार- प्रसार में अमूल्य योगदान दिया है, वहीं युवा-पीढ़ी में राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रीयता और देशप्रेम की भावना विकसित करने में भी अपनी महती भूमिका निभाई है। आज की पीढ़ी जिसने वैश्वीकरण और बाजारवाद के युग में आँखें खोली हैं, उसे सब कुछ वैश्विक ही नजर आता है। देश की आजादी के लिए किए गए संघर्ष और बलिदान से वह पूरी तरह परिचित नहीं है। कई बार सोशल मीडिया से प्राप्त जानकारी भी उसे दिग्भ्रमित करती है। ऐसे में कई सुलझे हुए सिने-निमार्ताओं और निर्देशकों ने ऐसे विषयों को आधार बनाया, जिसके माध्यम से राष्ट्रीयता और देशप्रेम की भावना युवाओं में विकसित की जा सके। इसमें स्वतन्त्रता-संग्राम से जुड़े देशभक्तों, क्रांतिकारियों और कुछ प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित फिल्में तो बनीं ही, कुछ ऐसे विषय भी फिल्मों के माध्यम से आए जो आजादी के बाद की परिस्थितियों और घटनाओं पर आधारित थे। विशेष रूप से खेल या युद्ध संबंधी विषय आधार बना कर देश के प्रति स्वाभिमान और प्रेम की भावना जगाने का प्रयास किया गया। ऐसी फिल्मों का विश्लेषण करते हुए अनेक आलेख यहाँ सम्मिलित किए गए हैं, जिनसे देशप्रेम पर आधारित हिन्दी फिल्मों का पूरा इतिहास भी प्रस्तुत हो सका है।

इसके साथ ही इस अंक में बहुत से ऐसे आलेख भी हैं जिनमें उन्नीस सौ अस्सी के बाद शुरू हुए अस्मिता विमर्शों पर आधारित साहित्य का आकलन किया गया है, जिसे सामान्यतया दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और आदिवासी विमर्श के रूप में जाना जाता है। यदि इन सभी विमर्शों में कोई समान तत्व खोजने का प्रयास किया जाए तो यह सहज ही कहा जा सकता है कि इनमें अपनी अस्मिता की तलाश, पहचान और अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष की प्रबल इच्छा दिखाई देती है। अतः मेरी समझ से यदि हम इन्हें अलग-अलग खाने में नहीं बाँटना चाहते हैं तो इनके लिए एक नाम 'अस्मितामूलक विमर्श' दिया जा सकता है। समकालीन रचनाधर्मिता के बहाने इन अस्मितामूलक विमर्शों पर गंभीर चर्चा इन आलेखों में की गयी है। उम्मीद है कि यह सामग्री आपके लिए उपयोगी होगी।

यह अंक आने में कुछ विलंब हुआ है। आशा है, हमारे सहयोगी लेखक इसे अन्यथा नहीं लेंगे और अपना सहयोग बनाए रखेंगे। आपकी पाठकीय प्रतिक्रियाओं एवं सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी। अस्तु।

- सतीश पांडेय

इक्कीसवीं सदी के हिंदी फिल्मी गीतों में राष्ट्रीय भावना

प्रा. एस. के. आतार

राष्ट्रीय भावना या देशप्रेम को लेकर बनाई गई फिल्में लोगों में देशप्रेम, देशभक्ति की वृद्धि करने में अहम भूमिका निभाती हैं। इसके साथ-साथ उन फिल्मों में निहित विभिन्न गीत भी जन मानस के मानसपटल पर अंकित होकर उनमें प्रेरणा भरते हैं। इस प्रकार के गीतों से लोगो में राष्ट्रीयता की भावना, राष्ट्रप्रेम, देशहित, देशकल्याण, देश विकास की भावना वृद्धिगत होती है। ये गीत अतीत की गौरवशाली परंपरा एवं संस्कृति आदि की महानता का बखान करते हैं और देश को एकता के सूत्र में पिरोने का काम करते हैं। भारत जैसे देश में विभिन्न धर्म, जाति, संप्रदाय, भाषा, परंपरा, रीति रिवाज होते हुए भी ये गीत 'अनेकता में एकता' को मजबूत करते हैं। 21वीं सदी के इस प्रकार के गीतों ने वर्तमान की इस मूल्यहीनता की परिस्थिति में राष्ट्रीयता, अखंडता, एकता, भाईचारा, राष्ट्रप्रेम बढ़ाने में महती भूमिका निभाने का प्रामाणिक प्रयास किया है। राष्ट्रीय भावना के विकास में इनका योगदान अत्यंत सराहनीय है। वर्तमान में इस प्रकार की राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत गीतों की खूब आवश्यकता है। आज व्यक्ति आत्म केंद्रित होकर 'मैं' और 'मेरा' में सिमट गया है। भाईचारा, एकता, अखंडता, सर्वधर्म समभाव आदि खतरे में आ रहा है। इस दृष्टि से राष्ट्रीय भावना के ये गीत अत्यंत महत्वपूर्ण हैं जो नया सबक सिखाने वाले तथा 'विविधता में एकता' वाली संस्कृति का एहसास कराने वाले, अतीत का गौरव गान करने वाले हैं। ये गीत निश्चित ही समाजहित और देशहित के लिए अपना अलग महत्व रखते हैं।

बॉलीवुड में प्रतिवर्ष रोमांस, कॉमेडी, ड्रामा, ऐक्शन, थ्रिलर आदि के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना या देशप्रेम को लेकर अनेक फिल्में बनाई जाती हैं जो लोगों में देशप्रेम और देशभक्ति बढ़ाती हैं। इसके साथ-साथ उन फिल्मों के गीत भी लोगों में राष्ट्रीयता और राष्ट्रप्रेम की भावना बढ़ाते हैं। ये गीत अतीत की गौरवशाली परंपरा एवं संस्कृति आदि की महानता का बखान करते हुए लोगों को एकता के सूत्र में पिरोने का काम करते हैं। भारत जैसे देश में विभिन्न धर्म, जाति, संप्रदाय, भाषा, परंपरा, रीति रिवाज होते हुए भी ये गीत 'अनेकता में एकता' को मजबूत करते हैं।

देशभावना पर आधारित ऐसे कई गाने हैं जो मन में देशभक्ति की भावना जगाते हैं। देशभक्ति पर फिल्म के निर्माण और उनमें गीतों का चलन चालीस के दशक से ही शुरू होता है। 1943 की सुपरहिट फिल्म 'किस्मत' में कवि प्रदीप का लिखा अपने जमाने का एक यादगार गीत था- 'आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है, दूर हटो ए दुनियां वालो हिंदुस्तान हमारा है।' इस गीत ने स्वतंत्रता सेनानियों को आजादी की राह पर बढ़ने के लिए क्या खूब प्रेरित किया था।'[1] इसके साथ-साथ समय-समय पर 'कर चले हम फिदा जान ओ तन साथियों, अब तुम्हारे हवाले वतन साथियों', 'मेरे देश की धरती सोना उगले, उगले हीरे मोती। मेरे देश की धरती', 'ऐ मेरे वतन के लोगों, जरा आँख में भर लो पानी। जो शहीद हुए हैं उनकी, जरा याद करो कुबार्नी' आदि अनेक गीत राष्ट्रीय भावना या देशप्रेम को लेकर लिखे गए, जो आज भी हमारे मन मस्तिष्क में देशप्रेम की भावना जाग्रत करते हैं। साथ ही 'जहाँ डाल-डाल पर सोने की, चिड़ियां

करती हैं बसेरा, वो भारत देश है मेरा। 'जहाँ सत्य अहिंसा और धर्म का, पग-पग लगता डेरा, वो भारत देश है मेरा।' गीतकार राजेंद्र कृष्ण का सिकंदर-ए-आजम (१९६५) फिल्म का यह गीत आज भी सुनते ही देशप्रेम की भावना मन में जाग उठती है। भारत देश की महान सांस्कृतिक विरासत, महान गौरव, समृद्धि और स्वाभिमान बतलाता हुआ यह गीत राष्ट्रप्रेम व राष्ट्र गौरव दर्शाता है। इस प्रकार के अनेक देश-गौरव के गीत हिंदी फिल्मी जगत में पिछले तकरीबन 80 साल में काफी लिखे गए हैं।

इक्कीसवीं सदी की अनेक फिल्में एवं उनके गीतों में राष्ट्रीय भावना द्दष्टव्य होती है, जिनमें लगान, वीर जारा, फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी, मंगल पांडे, मेरी कोम, चक दे इंडिया, फना, रंग दे बसंती, 'शहीद', 'मुन्नाभाई एमबीबीएस', 'उरी' केसरी आदि अनेक फिल्में शामिल है। राष्टीय एकता के लिए राष्ट्रीय भावना जरूरी है। डॉ अनीता शर्मा जी के विचारानुसार 'राष्ट्रीय एकता का मतलब ही होता है, राष्ट्र के सब घटकों में भिन्न भिन्न विचारों और विभिन्न आस्थाओं के होते हुए भी आपसी प्रेम, एकता और भाईचारे का बना रहना। राष्ट्रीय एकता में केवल शारीरिक समीपता ही महत्वपूर्ण नहीं होती बल्कि उसमें मानसिक, बौद्धिक, वैचारिक और भावात्मक निकटता की समानता आवश्यक है।'[2] हिंदी गीतों ने हमेशा आम जनता की भावना को अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। 'हिंदी फिल्मों के गीत इस देश में आरंभ से ही दर्शक आम आदमी के सुख-दुख के साथी रहे हैं जिनकी तुलना दो पीढ़ी पहले के लोकगीतों से की जा सकती है।'[3]

सन् 2002 में रिलीज हुई 'माँ तुझे सलाम' इस फिल्म में अपनी देश की रक्षा हेतु भारत के नौजवानों की अपनी जान न्यौछावर करने की, देश के लिए मर मिटने की भावना 'माँ तुझे सलाम' इस गीत के माध्यम से गीतकार विक्की नागर ने अभिव्यक्त की है -

'जान हथेली पर रख कर हम अपना सीना तान चले
हँसते हँसते भारत माँ हम तुझ पे हो कुर्बान चले'

सन् 2004 में रिलीज हुई 'मेरी कोम' फिल्म में गीतकार संदीप सिंह 'मुश्किल वक्त में भी हम ना खोये हौसला' इस गीत के माध्यम से अपने भारत देश के लिए खेलकर देश का नाम रोशन करने हेतु प्रेरणा देते हुए कहते हैं -

'मुश्किल वक्त में भी हम ना खोएँ हौसला
मिलके साथ चलने का यूं कर लें फैसला
मिट्टी हम जो चूमें तो मिलता जोश है
बस तेरी ही खातिर जान ये सरफरोश है'

सन् 2004 में रिलीज हुई 'वीर झारा' फिल्म में भारत देश का प्राकृतिक सौंदर्य, मौसम, पशु-पंछी, खेती, गौरवशाली परंपराएं, मेले, रिश्ते-नाते, पारिवारिक संस्कृति आदि का भावात्मक चित्रण करता हुआ अपने आप में अनूठा गीत गीतकार जावेद अख्तर जी ने लिखा है -

'धरती सुनहरी अंबर नीला
हर मौसम रंगीला

ऐसा देस है मेरा'

सन् 2006 में रिलीज हुई 'फना' फिल्म में प्रसून जोशी द्वारा लिखा गया 'देश मेरा रंगीला' यह गीत जिसमें यहाँ के प्रकृति के विविध मनोहारी रूप, बोली भाषाओं का सौंदर्य, कल कल करती बहती नदियाँ, खेत खलिहानों के विभिन्न रूप दृष्टव्य होते हैं -

'यहाँ हर कदम पे धरती बदले रंग
यहाँ की हर बोली में रंगोली सात रंग
धानी पगड़ी पहने मौसम है
नीली चादर ताने अंबर हैं
नदी सुनहरी हरा समुंदर है रे सजीला
देश रंगीला रंगीला देश मेरा रंगीला'

सन् 2006 में रिलीज हुई 'स्वदेस' फिल्म का जावेद अख्तर द्वारा लिखित गीत प्रवासी भारतीयों का अपने देश के प्रति प्रेम का दर्शाया है -

यह जो देस है तेरा, स्वदेस है तेरा तुझे है पुकारा
ये वो बंधन है जो कभी टूट नहीं सकता
मिट्टी की है जो खुशबू, तू कैसे भुलाएगा
तू चाहे कहीं जाए , तू लौट के आएगा
नई नई राहों में दबी दबी आहों में
खोये खोये दिल से तेरे कोई ये कहेगा
यह जो देस है तेरा ,स्वदेस है तेरा तुझे है पुकारा

'केसरी'(2019) फिल्म का बहुत सुप्रसिद्ध तेरी मिट्टी में मिल जाह्वा गीत युवा गीतकार मनोज मुंतशीर द्वारा लिखा गया है जो 413 मिलियन से भी अधिक लोगों द्वारा यूट्यूब पर देखा, सुना गया हैं जिसमें अपने प्यारे भारत देश की मिट्टी में मिलकर गुल बनाने की चाहत को दर्शाया गया है। अपनी मातृभूमि के लिए किसी भी प्रकार का दर्द सहने की तैयारी परचम हमेशा लहराने की आरजू व्यक्त की है -

'तेरी मिट्टी में मिल जाह्वा
गुल बनके खिल जाह्वा
इतनी सी है दिल की आरजू
ऐ मेरे जमीं अफसोस नहीं
जो तेरे लिए सौ दर्द सहे
महफूज रहे तेरी आन सदा
चाहे जान मेरी रहे ना रहे'

इसके साथ साथ जावेद अख्तर का 'फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी', लगान फिल्म का 'कोई हमसे जीत नहीं पावे ,चले चलो ,चले चलो, कौसर मुनिर का लहरा दो सरकशी का परचम लहरा दो' आदि ऐसे अनेक गीत राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत दिखाई देते हैं। 'सिने गीतों में देशभक्ति का यह सिलसिला आगे भी जारी रहेगा। देशभक्ति की भावना हर दौर में हर पीढ़ी में मौजूद रहती है। हर इंसान अपने देश की मिट्टी, हवा, पानी और

अतीत की गौरव गाथा से प्रेम करता है। देश भक्ति के कई गैर फिल्मी तराने भी जनता के बीच लोकप्रिय हैं मगर सिने् गीतों ने हर दौर में लोकप्रियता का इतिहास रचा है। शब्द के साथ जब अच्छा संगीत, अच्छी धुन और अच्छी गायकी शामिल हो जाती है तो गीत की ताकत कई गुना बढ़ जाती है। ऐसे गीत हमेशा के लिए हमारे एहसास और जज्बात का हिस्सा बन जाते हैं। हमें ऐसे कलमकारों का आभार व्यक्त करना चाहिए जिनके शब्द महानगरों से लेकर गांव तक गूंज रहे हैं और जनमानस में देशभक्ति का संचार कर रहे हैं।'[4]

निष्कर्ष :

हम कह सकते हैं कि पिछले सात-आठ दशकों से राष्ट्रीय भावना के हिंदी फिल्मी गीतों ने समय-समय पर जनता में देश प्रेम जागृत करने की कोशिश की है। तीन या चार मिनट के गाने यह 'गागर में सागर' के बराबर होते हैं। 21वीं सदी के इस प्रकार के गीतों ने वर्तमान की इस मूल्यहीनता की परिस्थिति में राष्ट्रीयता, अखंडता, एकता, भाईचारा, राष्ट्रप्रेम बढ़ाने में महती भूमिका निभाने का प्रामाणिक प्रयास किया है। राष्ट्रीय भावना के विकास में इनका योगदान अत्यंत सराहनीय है। वर्तमान के इस माहौल में इस प्रकार की राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत गीतों की खूब आवश्यकता है। वर्तमान में व्यक्ति आत्म केंद्रित होकर 'मैं' 'मेरा में' सिमट गया है। भाईचारा, एकता, अखंडता, सर्वधर्म समभाव आदि खतरे में आ रहा है। इस दृष्टि से यह राष्ट्रीय भावना के गीत अत्यंत महत्वपूर्ण है। जो नया सबक सिखाने वाले हैं। 'विविधता में एकता' वाली संस्कृति का एहसास करा देने वाले हैं। अतीत का गौरव गान कराने वाले हैं। यह गीत निश्चित ही समाजहिंत, देशहित के लिए अपना अलग महत्व रखते हैं।

संदर्भ :

1. httPÞs://www.youthkiawaaz.com/2022/08/6-songs-of-bolywood-comPÞosed-in-desh-PÞrem-hindi-article/
2. डॉ.अनीता शर्मा, भारत की एकता और अखंडता में संगीत का योगदान httPÞ://www.ignited.in/
3. सं. अशोक मिश्रा, बहुवचन, अक्तूबर-दिसंबर 2013, पुष्पेश पंत, हिंदी फिल्मी गीत, साहित्य, स्वर, संगीत पृष्ठ 114
4. httPÞs://devmaniPÞandey.blogsPÞot.com/2022/06/blog-PÞost.html
5. httPÞs://yuganugoonj.com/2020/05/08/hindi- lmon-mein-geet-lekhan/
6. httPÞs://www.hinditracks.in/maa-tujhe-salaam-lyrics

हिंदी विभागाध्यक्ष,
आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज नागठाणे
जिला-सातारा (महाराष्ट्र)

21वीं सदी के राष्ट्रीय भावना के हिंदी फिल्मी गीत और आम आदमी

डॉ. सूरज बालासो चौगुले

भारतीय समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और कलात्मक अभिरुचि निर्मित करने में हिंदी फिल्मी गीतों का स्थान महत्वपूर्ण है। तीन घंटों के फिल्म के संदेश को संक्षिप्त रूप में प्रभावपूर्ण ढ़ंग से बयां करने में उस फिल्म के गीत अहम भूमिका निभाते हैं। राष्ट्रीय विचारों के फिल्मी गीत तो हर भारतीय के हृदय पर राष्ट्रीयता के पदचिन्हों को गहरा करते आए हैं। 21वीं सदी के राष्ट्रीय भावनाओं के हिंदी फिल्मी गीतों ने भी अपनी भूमिका बखूबी निभाई है। नई शती के इन गीतों में राष्ट्रीयता के भाव तो वही रहे हैं, लेकिन अभिव्यक्ति के रूप बदल गए हैं। इन गीतों में राष्ट्रीयता के नए-नए प्रतीक आए हैं, जो हमारे हृदय को संवेदनशील बनाते हैं। राष्ट्रीयता के यह भाव मानवीय संवेदना से जुड़े हुए हैं। बीसवीं सदी के राष्ट्रीय गीतों में गुलामी, आजादी, देश का विभाजन, राष्ट्रीय एकता आदि विषयों को वाणी मिली जबकि 21वीं सदी के राष्ट्रीय गीतों में मिट्टी की धूल, हवा का झोंका, सागर की लहरें, इन सभी से राष्ट्रीयता का नाता जोड़कर प्रकृति का मानवीकरण हुआ है। राष्ट्र सिर्फ जनसंख्या नहीं होता है, बल्कि वह संबन्धित देश की प्रकृति, मनुष्य और मानवीय भावानाओं, संस्कृतियों, परंपराओं का एक मिला-जुला रूप होता है, ये भाव इन गीतों से प्रकट होते हैं। यही वजह है कि 21वीं सदी के राष्ट्रीय गीतों की विशेषताएं भी अलग हैं। हर भारतीय के हृदय पर इनका गहरा असर दिखाई देता है। आधुनिक संगीत, नई धुन और भावों की गहनता ने इन गीतों में उत्साह भर दिया है।

साहित्य भी समाज, संस्कृति और मानव जीवन का अभिन्न अंग है। फिल्मी गीत, साहित्य की ही एक विधा है। गीत एक छोटी पद्यमय रचना है, जिसे संगीत से जोड़कर अकेले या युगल के रूप में या कोरस में भी गाया जाता है। भारतीय हिंदी फिल्म-जगत विश्व का एक समृद्ध जगत है। यहाँ राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय भावनाओं को लेकर अनेक फिल्में बनाई गयी हैं। इन फिल्मों में राष्ट्रीय भावना के कई गीत गाये गये हैं। सेंन्सर बोर्ड द्वारा यह जानकारी प्राप्त होती है कि, 'आज भी भारत में एक साल में बीस से अधिक भाषाओं में करीबन एक हजार से ज्यादा फिल्में बनती हैं।'[1] भारत के हिंदी फिल्म जगत को 'बॉलीवुड' नाम से जाना जाता है, जो बॉम्बे और हॉलीवुड शब्द से मिलकर बना है। भारत की पहली फिल्म सन् 1913 में दादासाहेब फालके द्वारा बनाई गई, जिसका नाम 'राजा हरिश्चंद्र' था। सन् 1921 में पहली सवाक फिल्म आयी 'आलम आरा'। 1931 से 1940 तक के दौर में द्वितीय विश्व युद्ध, भारत की स्वतंत्रता आदि पृष्ठभूमि पर राष्ट्र भावना, स्वतंत्रता संग्राम, भारतीयता आदि विषय फिल्मों के कथ्य बनने लगे। सन् 1936 में ईरानी द्वारा बनाई 'किसान कन्या' फिल्म आयी, जिसमें राष्ट्रीयता की भावना अभिव्यक्त हुई। सन् 1938 में इसी विषय को लेकर 'मदर इंडिया' फिल्म आयी। आगे बीसवीं सदी के अंत तक राष्ट्रीय फिल्मों की शृंखला बढ़ती गई।

21वीं सदी में आते-आते राष्ट्रप्रेम ही नहीं बल्कि हर भावनाओं के आयामों में

परिवर्तन आता गया। वैश्वीकरण के युग का नारा, 'बेचना और खरीदना' इतना ही रहा। यही वजह है कि राष्ट्रप्रेम की फिल्मों के कथ्य और गीत भी बदल गए। 21वीं सदी के राष्ट्रप्रेम की फिल्मों के केंद्र में कश्मीर की भूमि प्रधान रही। भारत और पाकिस्तान के बीच का कड़ा संघर्ष, कश्मीर में असामाजिक तत्वों का बढ़ता प्रभाव, भारत की एकता को खोखला करने वाली अंदरूनी और बाहरी शक्तियाँ आदि इन फिल्मों के विषय रहे हैं। 21वीं सदी के राष्ट्रीय भावनाओं वाले गीतों का संगीत भी नया चोला पहन कर आया है। इस संगीत ने 21वीं सदी को खासा प्रभावित भी किया है।

'21वीं सदी के राष्ट्रीय भावना वाले हिंदी फिल्मी गीतों की विशेषताएं और आम आदमी पर उसके प्रभाव' विषय पर विचार करने से पहले राष्ट्रीय भावना क्या है, यह देखना आवश्यक है। हर राष्ट्र का अपना एक इतिहास और भूगोल होता है अर्थात उसकी भौगोलिक सीमा होती है। भौगोलिक सीमाओं में रहनेवाले लोगों के मन में उस प्रदेश के प्रति अपनापन और मालकियत की भावना जागृत होती है। सच तो यह है कि राष्ट्रप्रेम की भावनाओं को प्रज्वलित रखने का काम देश की सीमाएं ही अधिक करती हैं। राष्ट्रध्वज, राष्ट्रभाषा, राष्ट्रगीत यह राष्ट्र की अस्मिता के प्रतीक होते हैं। इन प्रतीकों के प्रति सभी नागरिकों के मन में आदर और सम्मान होता है। यही राष्ट्रीय भावना है। 'राष्ट्रीय प्रतीकों के प्रति आस्था प्रकट करने के लिए जो गीत गाए जाते हैं, वही राष्ट्रप्रेम के गीत होते हैं।'[2] राष्ट्रप्रेम के गीतों में गीत के सभी तत्व वैसे ही होते हैं जैसे अन्य विषय के गीतों में। राष्ट्रप्रेम के गीतों का अध्ययन करने के बाद इन गीतों की कई विशेषताएं उजागर होती हैं, जो इस प्रकार हैं -

अन्य देशों के राष्ट्रप्रेम और भारत देश के प्रति राष्ट्रप्रेम में कई मूलभूत अंतर है। विश्व के अनेक देश हैं, जिन देशों में एक ही धर्म और एक ही संस्कृति के लोग रहते हैं। इसके विपरीत भारत देश विविध धर्म, संस्कृतियों का देश है। यहां देश की सीमाओं की रक्षा करना भी देश प्रेम है और अलग-अलग धर्म संस्कृति के लोगों को एकता के धागे में पिरोये रखना भी देशप्रेम है। विविधता में एकता को स्थापित करने का जिक्र सिर्फ भारतीय हिंदी फिल्मों के गीतों में ही मिलता है। 'भारत प्रतीकों का देश है और प्रतीकों को मानने वालों का यह देश रहा है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक अनेक प्रतीकों को आस्था के रूप में स्थापित करने का काम हिंदी फिल्मों ने किया है।'[3] 21वीं सदी के गीतकारों ने भी अपने देश का परिचय देते समय इन प्रतीकों का प्रयोग किया है और साथ ही साथ अपने देश की सांस्कृतिक परंपरा का परिचय अपने गीतों के द्वारा दिया है -

'अंबर हेटा, धरती वसदी एथे हर रूत हसदी हो,
धरती सुनहरी अंबर नीला, धरती सुनहरी अंबर नीला
हर मौसम रंगीला, ऐसा देश है मेरा।'[4]

21वीं सदी की हिंदी फिल्मों में राष्ट्रप्रेम वाले अनेक गीतों का केंद्र विविधता में एकता है। भारतीय संस्कृति का गुणगान और मानवता का संदेश देनेवाले ये गीत मात्र राष्ट्रीयता को नहीं बल्कि मानवता को भी प्रचारित करने का काम करते हैं। यही वजह है कि हिंदी फिल्मों में चित्रित गीतों में राष्ट्रप्रेम की जो भावना झलकती है, वह अन्य देशों के राष्ट्र प्रेम के गीतों से अलग है। यह अलगपन खोजना ही मेरा उद्देश्य है।

भारतीय लोग भारत देश को माता अर्थात 'भारत माता' मानते हैं। नदियों को भी माँ के रूप में देखा जाता है। पर्वतों को आस्था के रूप में, तो सागर को भारत माता के पैर धोने वाले प्रतीक के रूप में देखा जाता है। इन सभी प्रतीकों को आदर के रूप में स्थापित करने का काम हमारे हिंदी राष्ट्रीय गीतों ने किया है। 21वीं सदी के हिंदी के राष्ट्रीय गीतों ने पूरे देश को एक समान रूप से बड़ी सहजता से राष्ट्रीयता के सुर में बाँधने का काम किया है।

21वीं सदी के पहले लिखे गए गीतों में भारतीय इतिहास की बातें बड़ी प्रभाव पूर्णता के साथ आयी हैं। अंग्रेजों के डेढ़ सौ सालों की गुलामी, स्वतंत्रता आंदोलन, देश की आजादी और फिर विभाजन की त्रासदी, यह सब बीसवीं सदी की राष्ट्रीय विचारधारा के फिल्मों का आधार रहा है। 21वीं सदी तक आते-आते ये विषय फिल्मों से लगभग अलग हो गए। अब तो न आजादी का जुनून था और न ही गुलामी की त्रासदी। ऐसे में 21वीं सदी के गीतकारों ने राष्ट्र के गुणों का वर्णन करना, राष्ट्र के युवकों में अंदरूनी ताकत बढ़ाना और अलग-अलग माध्यम से भारत की युवा पीढ़ी में राष्ट्रप्रेम की भावनाओं को बढ़ाने की कोशिश करने का काम किया। सन् 2007 में एक फिल्म आयी 'चक दे इंडिया' खेल के माध्यम से देश के युवकों में एकता, एकजुटता और कड़ी मेहनत का संदेश देनेवाले इस फिल्म के गीतों ने खिलाड़ियों में जान भर दी। इस गीत में राष्ट्रप्रेम भी था और साथ ही कड़ी मेहनत से हार को जीत में तब्दील करने का संदेश भी दिया गया।

'कुछ करिए, कुछ करिए, नस नस मेरी खौले
कुछ करिए, कुछ करिए, बस बस बड़ा बोधे
कोई तो चल जिद पड़िए, डूब तरिए या मरिए।'[5]

21 वीं सदी के इन गीतों की यह विशेषता रही है कि इनमें देश के सभी प्रदेशों के प्राकृतिक सौंदर्य को बड़ी सुंदरता से चित्रित किया गया है। राष्ट्रभक्ति के गीत मतलब गंभीरता, करुणा, और देश प्रेम जैसी पारंपरिक बातों से अलग होकर इन गीतों में मौज-मस्ती, नृत्य, संगीत और मस्त मौलापन का भी माहौल छाया है। 21वीं सदी के गीतों में एक गति और आधुनिक संगीत की प्रधानता हैक 2004 में आयी 'रंग दे बसंती' फिल्म में गीतकार प्रसून जोशी का गीत हर भारतीय व्यक्ति में उत्साह भरता है।

'थोड़ी सी धूल मेरी धरती की, मेरे वतन की /
थोड़ी सी खुशबू बौराई-सी मस्त पवन की /
थोड़ी धौंकनेवाली-सी धक-धक साँसें /
जिनमें हो जुनूँ-जुनूँ औ बूँदें लाल लहू की /
यह सब तू मिला मिलाले, फिर रंग तू खिला खिलाले /
मोहे रंग तू रंग दे बसंती / मोहे मोहे तू रंग दे बसंती।'[6]

ऐसे हिंदी गीतों ने हर भारतीय के मन में मात्र राष्ट्रप्रेम ही नहीं जगाया बल्कि नव निर्माण का संदेश देते हुए उन्हें कार्यरत रहने के लिए भी प्रोत्साहित किया है। इन गीतों में समर्पण की भावना है। भारत के अलग-अलग प्रदेशों का अपना इतिहास है। स्वतंत्रता के दौर में अलग-अलग प्रदेशों के अलग-अलग धर्म-जाति के लोगों ने अंग्रेजों के

खिलाफ संघर्ष किया है। 21वीं सदी के प्रारंभ में ऐसी अनेक फिल्में बनीं जहाँ पंजाब, महाराष्ट्र, राजस्थान आदि प्रदेशों के स्थानिक इतिहास को सामने रखकर ऐतिहासिक रचनाएँ लिखी गयीं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में पंजाब के लोगों का विशेष समर्पण रहा। इन्हीं के ऐतिहासिक संदर्भों को लेकर सन् 2019 में 'केसरी' नाम से एक फिल्म आयी, जिसमें जवानों के समर्पण की भावना को अभिव्यक्ति दी गई है।

'यह मेरी जमीं महबूब मेरी / मेरी नस नस में तेरा इश्क बहे /
फीका ना पड़े कभी रंग तेरा, जिस्म से निकल के खून बहे /
तेरी मिट्टी में मिल जावाँ, गुल बनके मैं खिल जावाँ,/
इतनी सी है दिल की आरजू।'[7]

21वीं सदी के राष्ट्रीय गीतों में हिंदी के साथ-साथ अनेक प्रादेशिक भाषाओं का भी प्रयोग हुआ है। पंजाबी, हरियाणवी आदि भाषाओं के कारण इन गीतों में अलग रंग भरा हुआ है। गीत भले ही प्रादेशिक स्वर में गाये गए हैं, लेकिन फिर भी हर हिंदुस्तानी को वह अपने लगते हैं।

राष्ट्रीय भावनाओं के इन गीतों में राष्ट्रीय प्रतीकों का प्रयोग हमेशा होता आया है। देश का तिरंगा, लाल किला, राष्ट्रीय गीत, राष्ट्र की सेना, अशोक स्तंभ ऐसे अनेक प्रतीकों का गुणगान करना, लोगों का ध्यान बार-बार इन प्रतीकों की ओर आकृष्ट करना, यह काम इन गीतों ने किया है। देश के तमाम लोगों के मन में इन प्रतीकों के प्रति समान रूप से आदर और सम्मान की भावना है। यही वजह है कि देश के किसी भी प्रदेश में रहने वाले, किसी भी प्रकार की भाषा बोलने वाले और किसी भी जाति धर्म के लोगों को इन राष्ट्रीय प्रतीकों का गुणगान हमेशा उत्तेजित करता आया है। यह काम 21वीं सदी के राष्ट्रीय गीतों ने किया है।

'ओ देश मेरे तेरी शान पर सदके, / कोई धन है क्या तेरी धूल से बढ़कर /
तेरी धूप से रोशन, तेरी हवा से जिंदा / तू बाग है मेरा, मैं तेरा परिंदा'[8]

राष्ट्रीय भावनाओं के इन गीतों में समूह की भावना मुखर हुई है। फिल्मों में भी यह गीत किसी एक नायक पर फिल्माया गया होता है और वह नायक समाज को जागरूक करने का प्रयास करता है। यह गीत जब दृश्यात्मक बनते हैं तो और अधिक सजीव बन पड़ते हैं। समाज का मुखरित होना और समूह की एकता की भावना को जागृत करने में ये गीत सफल हुए हैं। अधिकतर गीत कोरस के साथ गाये गये हैं। अधिकतर गीतकारों ने समूह की इस मानसिकता को पहचाना है, इसलिए गीतकार अपने गीतों द्वारा समाज को न सिर्फ जागृत करता है बल्कि अपनी भावनाओं के साथ उन्हें जोड़ देता है। दृश्यात्मकता के कारण ये गीत और अधिक तरल, सजीव और भावपूर्ण लगते हैं। स्कूल, कॉलेजों में ऐसे फिल्मी गीत, राष्ट्रीय गीत के रूप में भी पढ़े जा रहे हैं। समूह गान के रूप में भी इन गीतों को अलग-अलग जगहों पर सुना जा रहा है।

'ए वतन- वतन मेरे आबाद रहे तू / मैं जहाँ रहूं जहां में याद रहे तू /
तू ही मेरी मंजिल है, पहचान तुझी से / पहुंचूँ मैं जहाँ भी मेरी बुनियाद रहे तू /
ए वतन, मेरे वतन'[9]

हिंदी फिल्मों के गीतों में राष्ट्रप्रेम की भावनाओं को वाणी देते समय देश के अनेक

भौगोलिक प्रतीकों पर सजीवता का आरोप किया गया है। यहाँ की नदियाँ गाती हैं, पेड़ पौधे बातें करते हैं, पर्वत एकता का संदेश देते हैं, पानी की कल-कल, हवा का झोंका, सागर की लहरें, ये सभी प्राकृतिक बातें गीतों में मुखरने लगती हैं। इन गीतों से मात्र राष्ट्रभक्ति ही जागृत होती है ऐसी बात नहीं बल्कि लोगों को प्रकृति से भी लगाव होता है। हिंदी फिल्मों के राष्ट्रीय भावनाओं वाले गीतों में राष्ट्र की परंपरा और संस्कृति का गुणगान हमेशा होता आया है। भारतीय संस्कृति और परंपरा की दुहाई देते हुए इसी पद चिन्हों पर चलने का आवाहन ये गीत करते हैं। मानवता ही धर्म है और इसी धर्म को देश की नींव माना गया है। मानवता के इसी धर्म ने देश को बाँधे रखा है, यह संदेश अनेक गीतों में पाया जाता है।

21वीं सदी की इन राष्ट्रप्रेमी फिल्मों में हमेशा देश के किसी दुश्मन की कल्पना की गई है। स्वतंत्रता के पश्चात कुछ सालों तक अंग्रेजों को दुश्मन मानकर कई फिल्मों के कथ्य लिखे गए। आज की शती में भी भारतीय सेना हमारे गीतों में नायक बनकर छायी दिखाई देती है। देश की सीमाओं पर लड़नेवाले जवानों का राष्ट्रप्रेम, घर से बिछड़ कर सीमाओं पर देश की रक्षा के लिए किया जाने वाला समर्पण, यह सब बातें हमारे गीतों में बड़ी तरलता से कही गई हैं। 2004 में गीतकार जावेद अख्तर द्वारा लिखा गया यह गीत हमारे सैनिकों का आत्मबल बढ़ाता है-

'कंधों से मिलते हैं कंधे कदमों से कदम मिलते हैं,
हम चलते हैं ऐसे तो दुश्मन के दिल जलते हैं।
अब तो हमें आगे बढ़ते है रहना,
अब तो हमें साथी है, बस इतना ही कहना।'[10]

एक ओर इन गीतों में वीर रस है, तो कई गीतों में करुण रस की प्रधानता भी है। कोरस में गाये जाने वाले गीतों में समूह की भावना प्रधान रही है। यही वजह है कि सेना के हर सिपाही के वीर और शौर्य की बातें कहने वाले ये गीत हर आदमी के मन में राष्ट्रप्रेम जागृत करते हैं। इन गीतों का संगीत भी मन को प्रभावित करता है। संगीत में पारंपरिक वाद्यों का प्रयोग अधिक रहा है, साथ ही आधुनिक संगीत और धुन का प्रयोग अधिक हुआ है, जिससे हर गीत अपनी मिट्टी से जुड़ा हुआ लगता है। 21वीं सदी के इन राष्ट्रीय भावनाओं के गीतों को लिखने वाले गीतकार मनोज मुंतशिर, जावेद अख्तर, जयदीप साहनी, प्रसून जोशी, गुलजार, समीर और अन्य गीतकारों ने आज के समय की मांग के अनुसार इन गीतों को प्रस्तुत किया है। नए-नए संगीतकारों ने अपनी धुन से इन्हें सजाया है। यही वजह है कि ये गीत आज लोकप्रिय बने हुए हैं। लोगों के मन में आज अपना घर बनाए हुए हैं, क्योंकि वे गीत हर भारतीय की आत्मा से जुड़ जाते हैं। ये गीत जब बजते हैं तो हर भारतीय के मन में राष्ट्र के प्रति सम्मान जागृत होता है।

निष्कर्ष :

1. 21वीं सदी के हिंदी फिल्मी गीत राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत हैं।

2. इन गीतों की विशेषता यह है कि वे सिर्फ राष्ट्रप्रेम की बातें नहीं करते, बल्कि राष्ट्रीय जागरण, राष्ट्रीय एकता, प्रकृति के प्रति प्रेम, मानवता के प्रति विश्वास और आपसी भाईचारे का संदेश देते हैं।

3. विविधता में एकता स्थापित करने का प्रयास करने वाले ये गीत जाति धर्म, ऊंच-नीच से ऊपर उठकर मानवता का संदेश देते हैं।

4. इन गीतों में राष्ट्रीय प्रतीकों की चर्चा अधिक हुई है, जैसे तिरंगा, राष्ट्रगीत, अशोक स्तंभ, भारतीय सेना आदि।

5. भारतीय प्राकृतिक चीजों को भी राष्ट्रीयता के प्रतीकों के रूप में स्थापित किया गया है।

6. हिंदी फिल्मों का दर्शक इन राष्ट्रीय भावनाओं के गीतों से हमेशा प्रभावित होते रहे हैं। आज भी स्वतंत्रता दिवस या प्रजातंत्र दिवस पर ये गीत बजते हैं तो हर भारतीय इन गीतों से प्रभावित होता है।

7. फिल्मों में इन गीतों को चित्रित करते समय जिन प्राकृतिक चित्रों को दिखाया जाता है, उससे दृश्यात्मक अनुभूति और गहरी होती है, गीत और अधिक प्रभाव डालते हैं।

8. आधुनिक संगीत की वजह से आज के नौजवानों के ओठों पर ये गीत सुनाई देते हैं। नौजवानों पर इन गीतों का खासा प्रभाव रहा है।

संदर्भ :

1. विनोद भारद्वाज- सिनेमा कल आज और कल, तक्षशिला प्रकाशन, पृ. 89
2. पी. के. आर्य - मीडिया और करियर- ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली, पृ 162
3. डॉ. योगेंद्र प्रताप सिंह-मीडिया और साहित्य, साहित्य रत्नालय, कानपुर, पृ. 67
4. गीतकार- जावेद अख्तर, फिल्म- वीर जारा, 2004
5. गीतकार- जयदीप साहनी, फिल्म- चक दे इंडिया, 2007
6. गीतकार- प्रसून जोशी, फिल्म - रंग दे बसंती, 2006
7. गीतकार - मनोज मुंतशिर, फिल्म- केसरी, 2019
8. गीतकार- मनोज मुंतशिर, फिल्म- भुजः द प्राइड ऑफ इंडिया, 2018
9. गीतकार- गुलजार, फिल्म- राजी, 2018
10. गीतकार- जावेद अख्तर, फिल्म- लक्ष्य, 2004

वारणा महाविद्यालय, ऐतवडे खुर्द
सांगली, महाराष्ट्र - 415409

'२१वीं सदी के हिंदी काव्य में राष्ट्रीय भावना' (शहीद जवानों के संदर्भ में)

डॉ. सविता लालासो नाईक-निंबाळकर

राष्ट्रीय चेतना के स्फुरण में भूमि का महत्व है और इस महता का गान राष्ट्रीय कवियों ने पूर्ववर्ती युगों में कोटि-कोटि कंठों से किया है। राष्ट्रीयता की प्रमुख चेतना अपने देश के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति की होती है। भौगोलिक एकता, जातीय एकता, संस्कृति और आदर्शों की समानता, गुलामी के निवारण की भावना, धार्मिक एकता, भाषा की एकता आदि राष्ट्रीयता के तत्व होते हैं। 'राष्ट्रीयता' एक राष्ट्र की आत्मचेतना है। यह चेतना राष्ट्र को इकाई मानकर उसके परतंत्र रहने पर स्वतंत्रता प्राप्त करने तथा राष्ट्रीय राज्य रहने पर उनकी शक्ति-वृद्धि की प्रवृत्ति तथा सम्मान का द्योतक है। इस तरह राष्ट्रीयता के अंतर्गत एक राज्य के प्रति व्यक्ति की घनिष्ठ भावना निहित है। यह एक भू-भाग में बसने वाले जन-समूह का अपने राष्ट्र के प्रति भक्ति-भाव है।'[1]

अखंड राष्ट्रीयता राष्ट्रीय शक्ति के विस्तार और राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की रक्षा पर आधारित होती है। उसके लिए सैनिक शक्ति की अपेक्षा होती है क्योंकि उसके समाप्त होने पर राष्ट्र नष्ट हो जाता है। यह मानवतावादी और उदार राष्ट्रीयता स्वयं अपना साध्य है। राष्ट्रीय भावना में राष्ट्र को सर्वप्रमुख स्थान है- 'स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत देश में परतंत्रता की जड़ भावना मिट गई और वह वर्तमान समस्याओं में इस तरह उलझ गया कि अतीत की ओर मुड़ने का अवसर काव्य - धारा को नहीं मिला। स्वतंत्रता के बाद देश में एक नई चेतना, नई भावभूमि का उदय हुआ, जिसमें अतीत-दर्शन एवं अतीत से प्रेरणा ग्रहण करने की प्रवृत्ति का ह्रास हो गया।'[2]

जैसे-जैसे देश में परिस्थितियों में बदलाव आता है, साहित्यकार भी उसके अनुरूप सृजन करता है स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए भारतीय लोगों में जागरण हुआ। 20वीं शताब्दी के आरंभ में स्वाधीनता संग्राम में तीव्रता आ गई। फलस्वरूप हिंदी कविता में राष्ट्र भक्ति, देशभक्ति आदि विषयों की प्रधानता हो गई। इसी से प्रभावित होकर हिंदी कवियों ने राष्ट्रीयता के गीत लिखे और जन-जन में देश प्रेम का जागरण किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में जो स्थितियाँ उत्पन्न हुईं, उसका चित्रण भी हिंदी कवियों ने अपनी रचना में किया है। सांप्रदायिक दंगे-फसाद हुए तो लोगों में राष्ट्रीय एकात्मता का जागरण करने लिए हिंदी कवियों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होंने देश की अखंडता को बरकरार रखने का प्रयास अपनी रचनाओं से किया है।

आज 21वीं सदी में राष्ट्रीय चेतना से युक्त गान हो रहा है। राष्ट्र की सुरक्षा में सबसे महत्वपूर्ण योगदान सैनिकों का है। सैनिक की शूरता, वीरता, बलिदान को अंकित कर राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया जाता है। देश की सीमाओं की रक्षा सैनिक करते हैं। देश के कोने-कोने से फौज में भर्ती हुए जवान अपनी जान की बाजी लगाकर अपनी कर्तव्यपूर्ति करते हैं। ऐसे शूर सैनिकों की वीरगाथा हिंदी कवियों ने अपनी रचनाओं में चित्रित की है। भारत भूमि के जवानों के लिए 'सैनिक कल्याण प्रकोष्ठ' बने हुए हैं, जिससे शहीद के परिवार को सहायता प्राप्त हो सके।

करगिल का युद्ध हुआ। सर्वाधिक तिरंगे में लिपटी हुई लाशें राजस्थान के जमीन पर आईं। उसमें माँ का एकलौता कमाने वाला बेटा था। वह गया कभी लौटकर वापस नहीं आया। माँ कहती थी, 'मैं तेरी शादी करना चाहती हूँ तो उसने् कहा, जब मैं युद्ध से लौटकर आऊँगा तब मेरी शादी कर देना।' वह गया और वापस लौटकर नहीं आया। इस विषय को लेकर हिंदुस्तान के कवियों ने बहुत कुछ लिखा है। कवि सिद्धार्थ देवल ने इस विषय को लेकर गीत लिखा है, जिसमें शहीद होता हुआ सैनिक अपनी माँ को पत्र में लिखता है-

'सीमा पे एक जवान शहीद हो गया / संवेदनाओं के कितने बीज बो गया। /
तिरंगे में लिपटी लाश उसकी घर पे आ गई,/ सिहर उठी हवाएँ उदासी छा गई /
तिरंगे में रखा जो खत माँ को दिख गया! / मरता हुआ जवान उस खत में लिख गया,/
बलिदान को अब आँसुओं से धोना नहीं है, /
तुझको कसम है कि माँ मेरी रोना नहीं है।'[3]

अर्थात् यह सैनिक अपने बलिदान को आँसुओं से धोना नहीं चाहता। उसका यह बलिदान देश के युवाओं में चेतना जगाता है। आत्म शक्ति को संबल प्रदान करता है। संवेदनाओं के बीज बोता है। यह सैनिक अपनी पारिवारिक जिम्मेदारी को भली भाँति जानता है और निभाता भी है लेकिन उसके लिए सबसे उपर अपना वतन है। इसका चित्रण करते हुए सिद्धार्थ देवलजी कहते हैं कि जब वह घर आता था तो पिताजी को खबरें सुनाने के लिए अखबार लाता था-

'बाबा से कहना उनका दुलारा चला गया,/ बुढ़ापे की लाठी, घर का सहारा चला गया।/
अब कौन उन्हें देश की खबरें सुनाएगा? / कौन धोती कुरता पगड़ी दिलाएगा?
उम्मीदों का महल सारा पल में ढल गया, / बेटे का सारा फर्ज अधूरा रह गया।'[4]

इसी करगिल युद्ध के विषय को लेकर विनीत चौहान ने 'शहीद का खत' रचना के माध्यम से एक जवान का अपनी मातृभूमि के लिए मर मिटने का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। एक जवान बेटा जिसकी शादी को हुए अभी बीस दिन ही हुए थे। 21वें दिन वह कारगिल युद्ध के लिए चला गया। वहाँ से उसने अपनी महबूबा के नाम चिट्ठी लिखी, जिसके साथ 21 दिन पहले उसने् फेरे लिए थे। वह चिठ्ठी गाँव पहुँचने से पहले तिरंगे में लिपटा उसका शव गाँव में पहुँच गया। कवि ने चिठ्ठी खोला। उसमें एक शेर लिखा था -

'यूँ तो तुम्हारे इश्क पर अपनी जान भी कुर्बान है
पर मादरे वतन पर अपना इश्क भी कुर्बान है।'[5]

अपने देश के लिए मर मिटनेवाला यह सैनिक अपनी माँ को कहता है -

माँ तुम्हारा लाडला रण में अभी घायल हुआ है
पर देख उसकी वीरता, शत्रु भी कायल हुआ है!
रक्त की होली रचाएँ मैं प्रलयकर दिख रहा हूँ!
माँ उसी शोनी से तुमको मै पत्र लिख रहा हूँ।
युद्ध था भीषण पर ना इंच भी पीछे रहा हुआ हूँ।
माँ तुम्हारी थी शपथ, मैं आज इंचों में कटा हूँ।'[6]

विनित चौहान अपनी इस रचना के माध्यम से जवानों में चेतना जगाते हैं। सचमुच शहीदों के परिवार इस देश की धरोहर हैं। विनीत चौहान जी उच्च कोटि के वीर रस प्रधान राष्ट्रीय कविता के महारथी हैं। अपनी इस रचना के माध्यम से कवि ने सैनिक हृदय की गाथा सुनाई है।

वीर जवान भारत के रखवाले हैं। अपने वतन की शान संभाले हुए हैं। ऐसे वीर सैनिक के प्रति नमन हुए करते विशाल कुमार चौहान कहते हैं -

'हे भारत के वीरों तुम भारत की लाज बनाए रखना,
जो लाल हुए कुर्बान उनकी यादों के दीये जलाएँ
इस जग के नीले अंबर में, तिरंगे को लहराए रखना।
भारत माँ के श्री चरणों में अपना शीष झुकाए रखना।'[7]

अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए जो वीर शहीद हुए हैं, उन्हें याद करते हुए, उनके प्रति नमन करते हुए कवि कहते हैं -

'सलाम उन शहीदों को जो खो गए / वतन को जगाकर जो खुद सो गए। /
आजादी के बदले जवानी लुटाई / वतन के लिए जान की बाजी लगाई /
हमारे थे जो अब देश के हो गए।'[8]

निष्कर्षतः.हम कह सकते हैं कि अपनी रचनाओं के माध्यम से इन कवियों ने भारतीयों में जुनून, पराक्रम और शक्ति जगाने का प्रयास किया है। राष्ट्रीय चेतना से युक्त ऐसी रचनाओं से नई ऊर्जा का संचार होता है। देशप्रेम के जज्बे को ससमय जन-जन तक पहुँचाकर भारत की अखंडता को बरकरार रखने का प्रयास ये कवि करते हैं। आज के युवाओं में एक नया उत्साह भरकर अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम जगाने का काम ये कविताएँ कर रही हैं। जवानों की यह कुर्बानी हमेशा याद रहेगी। शहीदों पर लिखी ये रचनाएँ हमारी संवेदनाओं को जागृत करती हैं। वीररस से ओतप्रोत ये रचनाएँ पाठक या श्रोता गण में मानवीय संवेदना जागृत करती हैं। जगत के पर्दे के असली नायक हैं वे।

संदर्भ :

1. डॉ. जीतराम पाठक, आधुनिक हिंदी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास, राजीव प्रकाशन, 173, आलोपीबाग इलहाबाद-6 प्र०सं.- 1976, पृ.04
2. वहीं, पृ.312
3. विराट कवि संमेलन, नगर परिषद बाड़मेर दि. 9 अक्तूबर 2020 httPÞs//youtu.be/ vSTG.TVIK BIA
4) विराट कवि संमेलन, नगर परिषद बाडमेर, दि. 9 अक्तूबर 2020 httPÞs//youtu. be/VSTGTVKK BIA
5. विनीत चौहान -शहीद का खत httPÞs://youtu.be/ tv2Cwq054/ f2Cwq054
6. विनीत चौहान- शहीद का खत httPÞs://youtu.be/fr 2Cwg 05 httPÞs://youtu.be/ f2Cwq054
8. httPÞs//youtu be/xWxr0 LOrHks

सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग
मुधोजी महाविद्यालय, फलटण

कितने पाकिस्तान उपन्यास में राष्ट्रीयता

डॉ. शहनाज महेमूदशा सय्यद

हमारे साहित्यकारों ने सामाजिक जीवन की विषमताओं को जिस प्रकार देखा, उसी प्रकार साहित्य के माध्यम से उसके प्रति संवेदना व्यक्त की। साथ ही, विभिन्न समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने की दिशा में अग्रसर हुए तथा उसी प्रकार राष्टीय दृष्टि से संपूर्ण देश में व्याप्त शोषण, अव्यवस्था, गरीबी, हिंसा, आम आदमी की बेबसी और राजनीतिक ह्रास आदि पर भी अपनी कलम चलाई। वास्तव में देश-प्रेम की उत्कट भावनाएँ उनमें थीं। अपने देश की दुर्दशा, दयनीय अवस्था पर उन्हें अत्यंत दुःख था। 'वास्तव में भारतवासियों की राष्ट्रीय भावना कभी आक्रामक एवं संकुचित नहीं थी। भारतवासियों ने राष्ट्रीयता के सात्विक रूप को अपनाते हुए उसे संस्कृति से समन्वित करने की कोशिश की और इसीलिए हमारी राष्ट्रीय भावना मानवतावादी आदर्शों को लेकर चलती है।'[1] राष्ट्रीयता एक सामूहिक भावना है। जब कभी यह सामूहिक भावना बाधित हो रही हो तो हम कहते हैं कि राष्ट्रीय भावना में बाधा निर्माण हो रही है। जाति, धर्म, भाषा, संप्रदाय, रहन-सहन, खान-पान आदि विवादों के बावजूद राष्ट्रीयता ही वह भावना है, जो देश के नागरिकों को एकता के सूत्र में बाँधकर रख सकती है। यही वजह है कि हमारे साहित्यकारों ने राष्ट्रीयता की उदात्त भावना को अभिव्यक्ति दी है, जिसमें कमलेश्वर जी का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिन्होंने 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में राष्ट्रीयता के उच्च आदर्शों को प्रस्थापित किया है।

राष्ट्र की चर्चा वास्तव में राजनीति का विषय है परंतु साहित्य के लिए कोई विषय बाह्य नहीं होता। राष्ट्र को परिभाषित करते हुए कहा गया है- 'राजते दीप्यते प्रकाशते इति राष्ट्रम्' अर्थात वह भूखंड जो स्वयं प्रकाशित हो, जो विदेशियों से पदाक्रांत न हो, सर्वतंत्र स्वतंत्र हो, वह राष्ट्र कहलाता है।'[2] डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में - 'भूमि, भूमिवासी जन और जनसंस्कृति तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।'[3] डॉ. शेखरचंद्र जैन जी का कहना है कि- 'किसी भौगोलिक इकाई पर बसा हुआ समुदाय जिसकी अपनी सभ्यता तथा संस्कृति हो, अपनी भाषा, धर्म और परम्परा हो तथा जिसकी अपनी राजनैतिक एकता और कानून हो वही राष्ट्र है।'[4] इसी परिभाषा को आगे बढ़ाते हुए सुनीति जी कहती हैं- 'राष्ट्र उस परिवर्तनशील परिधि का नाम है, जिसका अपना धरा-खण्ड हो, जिसकी अपनी परम्परागत संस्कृति हो तथा उसी संस्कृति में आबद्ध जनता उन्मुक्त वातावरण में अपनी उन्नति में स्वतंत्र हो।'[5]

वास्तव में देखा जाए तो राष्ट्रीयता का जन्म राष्ट्र के प्रति गहन एवं तीव्र ममत्व और अपनत्व की भावना से ही हुआ है। प्रगत और अप्रगत सभी राष्ट्रों के इतिहास से देखा जा सकता है कि इस भावना ने अपूर्व कार्य किया है। राष्ट्रीयता एक मानसिक अनुभूति अथवा मन की एक स्थिति है। 'राष्ट्रीयता के कारण ही जन्मभूमि को स्वर्गादपि गरीयसी मानकर एक भावात्मक लगाव उसके प्रति रहता है। हर समाज का अपने राष्ट्र के साथ एक तादात्म्य संबंध रहता है। व्यक्ति का परिवार के लिए, परिवार का समाज के लिए तथा समाज का राष्ट्र के कल्याण के लिए बलिदान करना क्रमशः राष्ट्रीयता के ही सोपान हैं। व्यक्ति का स्व से पर की ओर उन्मुख होना ही राष्ट्रीयता की चरम सीमा

है।'[6] भाषा, जाति, धर्म, सामान्य स्वार्थ, भौगोलिक समीपता राष्ट्रीय भावना को मजबूत बनाने में सहायक होती है।

विभुराम मिश्र के अनुसार- 'राष्ट्रीयता का संबंध बाह्य शरीर अथवा जड़ भू भाग से न होकर आन्तरिक होता है। कला में राष्ट्र की आत्मा उर्ध्वमुखी होती है। अतः व्यक्ति के मानसिक, वाचिक और कायिक व्यापार द्वारा राष्ट्र की प्रगति और उत्थान के संयोजक तत्वों का समीकरण अर्थात राष्ट्रहित की भावना और उसका पोषण ही राष्ट्रीयता है।'[7] अर्थात इसमें राष्ट्र की रक्षा और भलाई की भावना होती है। यह लोगों में अपने ही देश की भाषा, संस्कृति तथा इतिहास का अभिमान जगाता है। राष्ट्रीयता में राष्ट्र के लिए त्याग, देश-गौरव, देशसेवा, राष्ट्र की कल्याण भावना, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान, निष्ठा आदि रूप नजर आता है एवं विविध धर्मों, विविध जातीयता में परस्पर एकता एवं सौहार्द्रता का भाव भी सम्मिलित रहता है। उसी के साथ उसी राष्ट्र में रहने वाले इन्सान की सुख समृद्धि, सहयोग, सम की भावना भी व्यापक रूप में रहती है। राष्ट्रीयता के इस रूप से साहित्यकार कैसे अछूता रह सकता है। साहित्यकारों ने आजादी से पूर्व कभी अंग्रेजों के विरोध में और विभाजन के बाद पाकिस्तान के विरोध में तो कभी देश की एकता, सौहार्द्रता के रूप में राष्ट्रीयता का वर्णन किया है।

राष्ट्रीयता का उद्भव एक उदात्त विचारधारा को लेकर हुआ है। राष्ट्र के अंतर्गत ऐसे संघटन की कल्पना की गई थी जहाँ सभी व्यक्ति एक दूसरे से सोहार्द एवं एकता का अनुभव करते हुए आपस में मिल जुलकर सुखपूर्वक जीवन यापन कर सकें। भारतीय समाज एक विशिष्ट परंपरा पोषित समाज है, जो अपनी परम्पराओं, रूढ़ियों, धार्मिक विश्वासों-अन्धविस्वासों और विभिन्न जीवन पद्धतियों में साँसें ले रहा है, जिसके कई सांप्रदायिक समूह जैसे हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, पारसी आदि अस्तित्व में हैं। वास्तव में एक राष्ट्र और एक जाति के रूप में दिखाई देने वाला भारत अन्दर ही अन्दर विभिन्न धर्मों, जातियों, भाषा-समूहों के बीच बँटा हुआ है। इनमें सबका सोचने-समझने का दृष्टिकोण अलग-अलग है। जिस वजह से जातियों समूहों तथा सम्प्रदायों के बीच खाई बढ़ रही है। उग्रता तथा वैमनस्य बढ़ रहा है। ऐसे राजनीतिक दलों का उदय हुआ है, जिसकी वजह से समय-समय पर साम्प्रदायिकता भड़काने में सहायता हुई है। वास्तव में राजनीति में साम्प्रदायिकता का प्रवेश बड़ा विध्वंसकारी होता है। भारत घोषित रूप से धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होते हुए भी धार्मिक सांप्रदायिकता से पीड़ित है। आजादी से पूर्व हमारी राष्ट्रीय चेतना भारत को स्वतंत्र कराने की कोशिश में संलग्न थी, परन्तु उनमें उद्देश्यों की विभिन्नता के कारण राष्ट्रीय भावना को आघात लगा। आज जाति, धर्म, भाषा, प्रान्त, समुदाय आदि को लेकर कलह होते रहते हैं। राष्ट्रीयता का निर्माण करने वाले तत्व ही राष्ट्रीय भावना का विघटन करते हुए दिखाई देते हैं परन्तु यह भी सच है कि जहाँ सम्पूर्ण राष्ट्र के हित का प्रश्न आता है, वहाँ हम अपनी विषमताओं को भूलकर एक सुदृढ़ संघटन का परिचय देते हैं। वास्तव में राष्ट्रीय भावना के अभाव में कोई भी राष्ट्र सुरक्षित नहीं रह सकता।

कमलेश्वर जी ने अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में कथा-नायक अदीब के माध्यम से राष्ट्रीयता एवं मानवीयता के रूप को स्पष्ट किया है। अदीब अपने दरबार में

अलग-अलग सदियों के राजा-प्रजा को बुलाकर उन्हीं के समकालीनों के माध्यम से इंसाफ करते हैं। सत्य और असत्य को सुनकर मानवता का आवाहन करते हैं। इस काम में मदत के लिए अपने समकालीनों को आवाज देते हैं। जैसे- 'राकेश, रेणु, दुष्यंत, राही, परसाई, रघुवीर, श्रीकांत के अलावा तमाम उन जीवंत दोस्तों को आवाज लगाते हैं, जिन्होंने अपनी रचनात्मक शक्ति को अपने लिए नहीं, दुनिया के लिए समर्पित कर दिया है और वे लगातार अपनी व्यक्तिगत रचना शक्ति और अपने कलम की सच्चाई से इस दुनिया को बेहतर बनाना चाहते हैं।'[8] इतना ही नहीं अदीब हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई ही नहीं बल्कि सबको सिर्फ इन्सान मानता है और चाहता है कि मजहब या धर्म को नहीं केवल इन्सान को महत्व दिया जाय- 'लेकिन आप मुसलमान नहीं इन्सान पैदा हुए थे और जब तक आप मासूम थे और आपके कान में कलमा नहीं फूँका गया था तब तक आप मुसलमान नहीं थे ... कोई मजहब इन्सान से ऊपर नहीं है। पहले इन्सान पैदा हुआ फिर मजहब।'[9]

धर्म, संप्रदाय, मजहब ये सभी चीजें राष्ट्रीय भावना के बाद आती हैं। देश में अगर सबसे ऊपर कुछ है तो वह है राष्ट्रीयता। संवेदनशील आदमी अपनी आस्थओं के साथ जीवन गुजारना चाहता है। उपन्यास में इमाम वाहिद मोहम्मद हफनी कहते हैं- 'हमें अपनी जिन्दगी अपनी आस्थाओं के साथ जीने दो, यह पुराने मंदिर, यह पिरामिड हमारी तहजीब के प्रतीक हैं, इन्हें मिटा दोगे तो कहाँ सुकून पाओगे। इससे इनकार कर दोगे तो पेपीरस का कागज बनाकर बौद्धिक दुनया में क्रांति करने का सवाब कैसे कमाओगे? सुनो! यहाँ सदियाँ बोलती हैं... जब तक अपने पुरातन खंडहरों को तुम प्यार नहीं करोगे तब तक भविष्य को खंडहर होने से नहीं बचा पाओगे।'[10] इन्हीं सारे खंडहरों, मंदिरों, पिरामिडों से ही भारतीयों के ज्ञान में वृद्धि हुई है। भारतीय भू भाग केवल बेजान वस्तु नहीं है बल्कि इसमें एक जीवित सभ्यता, संस्कृति साँस ले रही है। इसलिए लोकतंत्रवादियों को यह नहीं भूलना चाहिए कि चाहे जितनी भी नकारात्मक, घातक विचारधारा क्यों न हो, उसे खुली स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। अभिव्यक्ति की इस आजादी से ही इन निर्मम, विरोधी और घातक विचारधाराओं का स्खलन होगा, इनका शमन होगा क्योंकि इनके पास अंधी उत्तेजना है, शक्ति नहीं।

उपन्यास में दाराशिकोह कहते हैं- 'हुजूरे आलिया! मैं अपने मुल्क को इन्हीं खूनी अंधड़ों से बचाना चाहता था, मेरा मुल्क दुनिया की सबसे बड़ी तहजीब का केंद्र है... हमारी तहजीब ने लोहे ओर बारूद के भौतिक हथियार नहीं, आत्मा और परमात्मा के आध्यात्मिक हथियारों का अन्वेषण किया था। हमने धर्मान्ध मुजाहिद्दीन पैदा नहीं किये। हमने पीर, फकीर, सूफी, संत, दरवेश और महात्मा पैदा किये... हमारे जंगलों से युद्ध-युद्ध पुकारते दरिन्दे नहीं, शांति-शांति का सन्देश देते साधू संत निकलते हैं। इसीलिए तख्तो-ताज से पाहिले मैंने इंसानी ईमान की तलाश की थी।'[11] यह जानकर खुशी होती है कि आज भी कुछ लोग ऐसे हैं, जो अच्छाई, सौहार्द बनाए रखने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। वे राष्ट्रीयता को बचाने के लिए अपनी जान की बाजी लगाने से भी पीछे नहीं हटते। माहौल में चाहे कितना ही जहर क्यों न हो, ऐसे लोग जहर पीकर भी अमृत बरसाने में तत्पर रहते हैं। आज केवल संवेदनशील व्यक्ति को वक्त की माँग, वक्त की

आवाज पहचानने की जरूरत है। इसके लिए राष्ट्रहितवादी शक्तियों को करीब आना एवं प्रभावशाली राजनीति करना जरूरी है। हमारे देश के राजनीति का स्वरूप एकांगी है, जिसके लिए समान्तर संघटनों को बनाकर और लोगों को भागीदारी देकर परिणामकारी बनाने से ही लोगों का विश्वास जीता जा सकता है, लोगों की समस्याएँ सामने आ सकती हैं, सही मुद्दों की जानकारी मिल सकती है, जिससे लोगों के जीवन में परिवर्तन की लहर दौड़ सकती है। अगर ऐसा नहीं हो सकता है तो इसी तरह सांप्रदायिक शक्तियाँ साम्प्रदायिकता के हथियार से लोकतान्त्रिक शक्तियों को कमजोर करने का काम निरंतर करती रहेंगी तथा आये दिन अस्थिरता का, अविश्वास का, भय एवं साम्प्रदायिकता का माहौल बनाए रखेंगी। आज हमें आत्म निरीक्षण करने का, अपने आप को पहचानने का, अपनी अस्मिता को बनाए रखने का यही महत्वपूर्ण अवसर है परन्तु हमने ऐसा नहीं किया तो आनेवाला कल हमें किसी भी कीमत पर माफ नहीं करेगा।

उपन्यास में कमलेश्वर जी इस बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं- 'आने वाली सदियो, सुनो। बनती हुई इंसानी तहजीबें जुल्मों तले इसी तरह रोती और सिसकती रहेंगी और दाराशिकोह की तरह कोई न कोई भविष्यद्रष्टा इसी तरह हर सदी में सूली पर लटकाया जाएगा --- और --- और उसकी आँखों के आँसू ओस बनके धरती की घास पर छलकते रहेंगे --- जो घास पर पड़ी इस आँसू भरी ओस को नहीं पहचान पाएँगे, वह अपने मुस्तकबिल, अपने भविष्य को कभी बदल नहीं पाएँगे।' कितने पाकिस्तान में कमलेश्वर जी ने हत्यारी मानसिकता को कटघरे में खड़ा किया है। जो लोग भारत विभाजन से प्रभावित हुए उनके लिए पाकिस्तान एक देश न होकर भयानक दुःखद सच्चाई बन गई है।

आज भी कुछ लोग ऐसे हैं जो अच्छाई, सौहार्द बनाए रखने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। समीक्ष्य उपन्यास में भी एक आवाज गूंजती है- 'तुम देखना...बदलती दुनिया के दौर में कोई जालिम, कोई तास्सुबी, कोई धर्मांध शहंशाह अपनी कोशिशों में कामयाब नहीं होने पाएगा...लेकिन अत्याचारियों और इंसान परतों के बीच यह संघर्ष हमेशा चलता रहेगा- हर सदी में एक दाराशिकोह के साथ एक औरंगजेब भी पैदा होगा... इस दस्तूर को बदलना होगा, नहीं तो मेरे साथ-साथ तुम सब का भविष्य भी डूब जाएगा... अगर मैं मर गया तो तुम्हारे सारे सपने भी समाप्त हो जाएंगे।'[12] यह सच भी है, अगर हम समाज और समय को पहचान न पाए तो अमानुषता बढ़ती जाएगी परंतु हमारी एकता की, राष्ट्रीयता की, मानवीयता की, सहिष्णुता की आवाज जितनी बुलंद होंगी कोई विकृत मानसिकता वाला धर्मांध व्यक्ति, संगठन कितनी भी कोशिश क्यों न करे कभी अपने इरादों में कामयाब नहीं हो पाएगा। जरूरत है हमें सचेत रहने की। जब बिना जाने-समझे औरों पे इल्जाम लगाए जाते हैं तो सौहार्द बिगड़ना शुरू हो जाता है। जिसका सबसे बुरा असर राष्ट्रीय एकता पर पड़ना शुरू होता है। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। इससे बचने के उपाय हमें ही सोचने होंगे।

निष्कर्ष रूप में कहे सकते हैं कि राष्ट्रीय भावना को जीवित रखने के लिए देशवासियों को मिलकर प्रयास करने होगें। सभी देशवासियों को अपनी -अपनी संकीर्णताओं को छोड़कर देश के लिए सोचना होगा। अगर देश का प्रत्येक नागरिक अपने स्तर पर

देशभक्ति की भावना का संचार करे, देश की उन्नति एवं एकता के लिए प्रयास करे तो हमारी राष्ट्रीयता अधिक अखंड होती चली जाएगी। परन्तु हमें इसके लिए सतत प्रयत्नशील रहना होगा। साथ ही राष्ट्र के समग्र विकास के लिए व्यक्तिगत, परिवारिक, सामाजिक, जातिगत, धर्मगत, दुर्भावनाओं का परित्याग कर एक मन होकर राष्ट्र विकास में संलग्न होना होगा। देश के प्रत्येक नागरिक का यह दायित्व है कि वह राष्ट्र के प्रति सम्पूर्ण आस्था, निष्ठा और सम्मान से राष्ट्र-सेवा करें।

संदर्भ :

१. देवेश ठाकुर -आधुनिक हिंदी साहित्य की मानवतावादी भूमिकाएँ, संकल्प प्रकाशन मुंबई, पृष्ठ २३२
३. डॉ. विलेफ्रेड, अनुवाद डॉ. चौसलकर, इतिहासाची जमातवादी मांडणी आणि राष्ट्रीय एकात्मकता, पृष्ठ ०५
4. मंजुला राणा, दसवें दशक के हिंदी उपन्यासों में साम्प्रदायिक सौहार्द, वाणी प्रकाशन, दिल्ली १८६
५. डॉ. हेमेन्द्र कुमारी पानेरी, स्वतन्त्रोत्तर उपन्यास मूल्य संक्रमण, पृष्ठ ४४
६. देवेश ठाकुर, आधुनिक हिंदी साहित्य की मानवतावादी भूमिका, पृष्ठ २३२
७. प्रियंवद, भारत विभाजन की अन्त : कथा, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ, २०४
८. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान राजपाल एंड सन्स , दिल्ली, ९१
९. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान राजपाल एंड सन्स , दिल्ली, १७१
१०. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान राजपाल एंड सन्स , दिल्ली, १७६
११. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान राजपाल एंड सन्स , दिल्ली, १८६
१२. कमलेश्वर - कितने पाकिस्तान राजपाल एंड सन्स , दिल्ली, २५१-२५२

बलवंत कालेज, विटा,
तहसिल- खानापुर, जिल्हा सांगली

हिंदी दलित काव्य में राष्ट्रीय भावना

प्रा. मारुती दत्तात्रय नायकू

देश या राष्ट्र के प्रति प्रेम, समर्पण, आत्मीयता, लगाव, अपनापन आदि को हम राष्ट्रीय भावना या राष्ट्रीय चेतना से परिभाषित कर सकते हैं। यह राष्ट्रीय भावना कभी देश की सुरक्षा, कभी देश की संस्कृति तो कभी देश की भाषा, समाज, परम्परा, धर्म, गौरव आदि के बारें में प्रस्फुटित होती है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में राष्ट्रीय भावना प्रखर रूप से दिखाई देती है। जब इस देश पर अंग्रेजों का शासन् था, तब भारतेंदु युग के कवियों में राष्ट्रीय भावना का उत्कर्ष दिखाई देता है। आगे चलकर जयशंकर प्रसाद, रामधारी सिंह दिनकर, माखनलाल चतुवेर्दी, सुभद्राकुमारी चौहान, मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों के काव्य में भारतीय संस्कृति और धर्म के बारें में राष्ट्रीय चेतना दिखाई देती है। 21वीं सदी के हिंदी साहित्य में अनेक विमर्शों का जन्म हुआ, इसमें दलित विमर्श महत्वपूर्ण विमर्श है। इस विमर्श के कवियों ने डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर लिखित भारतीय संविधान से प्रेरणा ग्रहण करके दलित तथा पिछड़े लोगों के हक-अधिकार के लिए आंदोलन चलाया। स्वातंत्र्य, समता, बंधुता और राष्ट्रीय एकात्मता को सामने रखकर उन्होंने मानव मुक्ति का आंदोलन चलाया। किसी भी देश में राष्ट्रीय भावना का विकास तब होता है, जब उस देश की जनता को सामाजिक आजादी और समानता का एहसास हो। अतः इस दृष्टि से 21वीं सदी के दलित काव्य में स्वातंत्र्य, समता, बंधुता और मानवता आदि राष्ट्र कल्याण की भावनाएँ दिखाई देती हैं। इनका राष्ट्र कल्याण विश्व कल्याण के समकक्ष हैं।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। व्यक्ति की भावना, इच्छा-आकांक्षा, मत-अभिमत आदि साहित्य के माध्यम से प्रस्फुटित होकर पाठक तक पहुँचते हैं। वैसे देखा जाय तो एक साहित्यकार अपने मन की भावनाओं को कागज पर उतारता रहता है। देश या समाज में जो कुछ चल रहा रहा है, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप कोई भी रचनाकार उसका प्रतिबिम्ब अपने साहित्य में दर्शाता है। इसलिए साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब भी कहा जाता है। कोई भी साहित्यकार अपने साहित्य में जो भाव व्यक्त करता है, उसे उस साहित्यकार की भावना कहा जाता है। ये भावनाएँ देश, समाज, संस्कृति, धर्म, भाषा आदि के प्रति होती हैं। जिस भावना से देश का कल्याण हो उसे देश भावना या राष्ट्र भावना कहा जाता है। हिंदी साहित्य में राष्ट्र भावना का उदय तब हुआ, जब हमारे देश की सत्व और संस्कृति पर हमला हुआ। आगे चलकर यही राष्ट्र भावना राष्ट्रीय एकात्मता, समानता, भाईचारा आदि में परावर्तित हुई।

राष्ट्रीय भावना का अर्थ और स्वरूप :

'राष्ट्र' और 'भावना' ये दोनों स्वतंत्र शब्द हैं, जिसके मेल से राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय भावना अथवा राष्ट्रीय चेतना का रूप धारण करती है। यही भावना साहित्य में स्वर और सुर बनकर फूट पड़ती है और अनंतर प्रवाहित होती रहती है। इससे जनमानस में सामूहिक चेतना का निर्माण होता है। 'देश भक्ति का उद्वेलन कभी समर्पण तो कभी आंदोलन का रूप धारण कर लेता है, जिससे व्यक्ति के स्वत्व से लेकर राष्ट्र तथा देश की स्वतंत्रता और समानता की सुरक्षा के लिए सर्वस्व समर्पण तक के भाव समाविष्ट

होते हैं।'[1] यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि राष्ट्र सर्वथा आधुनिक संकल्पना नहीं है। इसका संबंध बहुत प्राचीन है। यह हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। यूँ कहें तो यह हमारी संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। इसका संस्कृति से अन्योन्याश्रित संबंध है। साहित्य भी उसी संस्कृति का एक अंग है। यह परस्पर एक दूसरे में घुलमिले होते हैं, जिससे जनमानस में राष्ट्रीय भावना को उत्तेजित तथा सुदृढ़ करने में सहायता मिलती है। इस पुनीत कार्य हेतु साहित्य सदैव अग्रणी भूमिका में रहा है।

देशप्रेम अथवा राष्ट्रीय भावना इस देश में सदैव से रही है, जैसा कि हमें विदित है- कोई भी देश बनता है भौगोलिक क्षेत्र से, उस क्षेत्र में रहने वाली जनता से, उसकी भाषा से, उसकी रहन-सहन तथा संस्कृति से और इन सबका प्रतिबिंब साहित्य में मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस बात को इस प्रकार स्वीकार किया है कि 'प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है।'[2] अतः यह निश्चित है कि हिंदी साहित्य के प्रत्येक कालखंड में अपने युगबोध के सापेक्ष कवियों ने अपनी कविता में राष्ट्रीयता के स्वर अवश्य दिए होंगे। उन्होंने दिया भी है क्योंकि राष्ट्रवाद का कोई एक रूप नहीं होता। क्रांतिकारी राष्ट्रवाद, सुधारवादी राष्ट्रवाद, जन राष्ट्रवाद, पुनरुत्थानवादी राष्ट्रवाद आदि राष्ट्रवाद के विचारधारात्मक प्रकार हैं। इन्हें हम हिंदी साहित्य के आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकालीन साहित्य में पाते हैं किंतु राष्ट्रीय भावना एक प्रवृत्ति के रूप में अपनी पूरी निष्ठा के साथ हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में ही प्रतिष्ठित होता है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय भावना :

आधुनिक काल में हिंदी साहित्य की एक प्रमुख विशेषता राष्ट्रीयता रही है। हिंदी साहित्य का आधुनिक काल पराधीनता तथा स्वतंत्रता का युग है, इसलिए इस कालखंड की कविता में राष्ट्रीयता की मात्रा कुछ ज्यादा है। इसकी शुरुआत भारतेंदु युग से होती है। भारतेन्दु तथा भारतेंदु मंडल के कवियों के बाद यह उत्तरोत्तर पुष्पित और पल्लवित होती चली गई, जिसके संवाहकों में मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी तथा रामधारी सिंह दिनकर आदि का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। ये सभी कवि संपूर्ण भारत के प्रति आस्था, अपनी संस्कृति के प्रति निष्ठा, मानवता के प्रति समर्पण, सामंती प्रवृत्ति के प्रति विद्रोह तथा स्वतंत्रता के लिए संकल्प एवं हुंकार भरते रहे हैं। हिंदी साहित्य के इन सब कवियों की अपनी -अपनी विशेषता रही है और सब में परस्पर फर्क भी। आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रथम घोषित राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को पुनरुत्थानवादी कवि कहा जाता है। वह अपने देश के अतीत गौरव की ओर देखते हैं, वहां जाते हैं तथा पाठकों को पहुंचाते हैं। यह बात सत्य है, किंतु उनका मुख्य रूप से ध्यान स्वाधीनता का ही रहा है। वह महाभारत और रामायण के साथ इतिहास के किसी दौर की कथा और चरित्र को जब उठाते हैं तो उसको आधुनिक राष्ट्रीयता की दृष्टि से ही देखते और प्रस्तुत करते हैं-

'संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया। / इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया'।।[3]

गुप्त जी के 'साकेत' की ये पंक्तियाँ जनमानस में शक्ति का संचार करती हैं। उन्हें

उद्वेलित करती हैं। इनकी कृति 'भारत भारती' ने इन्हें राष्ट्रकवि के पद पर आसीन करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है-

'सुख दुख में एक सा सब भाइयों का भाग हो। /
अंतः करण में गूंजता राष्ट्रीयता का राग हो।।'[4]

हिंदी दलित काव्य में राष्ट्रीय भावना :

व्यक्ति से समाज बनता है, समाज से राष्ट्र बनता है। जिस राष्ट्र में कोई व्यक्ति या कोई समाज राष्ट्र की मुख्य धारा से वंचित होता है, तब वह उस धारा में आने के लिए छटपटाता है। उसकी यह छटपटाहट अपने हक, अधिकार और अपनी आजादी के लिए होती है। उनकी कामना रहती है कि देश में समानता हो, शांति हो, भाईचारा हो इसे हम राष्ट्रीय भावना के अंतर्गत रख सकते हैं। 21वीं सदी का हिंदी साहित्य विविध विमर्शों का साहित्य है। इन विमर्शों में दलित विमर्श, नारी विमर्श, आदिवासी विमर्श, थर्ड जेंडर विमर्श, किसान - मजदूर विमर्श, वृद्ध विमर्श आदि प्रमुख रूप से हिंदी उपन्यास, नाटक, कहानी, कविता आदि विधाओं में विकसित हुए। इन विमर्शों में 'दलित विमर्श' मराठी तथा हिंदी साहित्य में अपनी विशेष छाप छोड़ता है। युगों-युगों से वंचित, पीड़ित, प्रताड़ित और शोषित मानव की आत्मा के क्रंदन के रूप में दलित साहित्य उभरकर आया है। डॉ. बाबासाहब आंबेडकर जी की प्रेरणा से तथा विचारों से प्रस्फुटित इस दलित साहित्य में अनेक रचनाकारों ने सामाजिक विषमता के खिलाफ अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए मानव मुक्ति का सन् देश देने का प्रयास किया। लेकिन इस सामाजिक विषमता के खिलाफ आक्रोश व्यक्त करते हुए उन्होंने कभी राष्ट्रीय भावनाओं को ठेस नहीं पहुंचायी। जयप्रकाश कर्दम के शब्दों में - 'दलित आंदोलन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विषमता, विभेद और विकृतियों के विरुद्ध एक विद्रोह के रूप में अस्तित्व में आया है। इसमें स्वावलंबन और स्वाभिमान की उत्कट आकांक्षा, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय का आग्रह तथा समता, प्रेम और बंधुत्त्व की कामना या आग्रह है।'[5]

21 वीं शती के दलित काव्य पर दृष्टिक्षेप डालने से पता चलता हैं कि इस शती के कवियों में अन्याय-अत्याचार करने वाले सवर्णों के खिलाफ बगावत का स्वर तो है, इसके साथ-साथ देशप्रेम तथा राष्ट्रीय भावना भी हमें देखने मिलती है। व्यवस्था के खिलाफ बगावत करते - करते दलित कवि देश के प्रति अपनी भावना कभी नहीं भूलते। इस शती के प्रमुख कवियों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, श्यौराजसिंह बेचैन, कँवल भारती, दयानंद बटोही, कर्मशील भारतीय, सोहनपाल सुमनाक्षर, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, मलखान सिंह, कुसुम वियोगी, एन.आर. सागर, सी.बी. भारती, रजनी तिलक, सुशीला टाकभौरे, लक्ष्मीनारायण सुधाकर, मंसाराम विद्रोही आदि कवियों का काव्य महत्त्वपूर्ण है। इन कवियों ने एक ओर सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के खिलाफ जहाँ अपना आक्रोश व्यक्त किया है, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने अपने काव्य में समता, स्वातंत्र्य, मानवता और बंधुता जैसे मूल्यों की प्रतिष्ठापना करके राष्ट्रीय भावना व्यक्त की है।

भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र का संविधान निर्माण करते हुए डॉ. बाबासाहब आंबेडकर जी ने संविधान के मूल अंगों में स्वातंत्र्य, समता, बंधुता और न्याय जैसे

तत्त्वों का समावेश किया था। सभी मानव एक हैं, मानवता ही उनका धर्म है। इस विचार को सामने रखकर उन्होंने विचार, आचार, अभिव्यक्ति, धर्म और श्रद्धा का स्वातंत्र्य, जातिभेद, वंशभेद, लिंगभेद नष्ट करने के उद्देश्य से समता तथा राष्ट्रीय एकात्मता और भाईचारे का संदेश देने के लिए बंधुता जैसे मूल्यवान तत्त्वों को सभी के सामने रखा। दलित साहित्यकारों पर डॉ. बाबासाहब आंबेडकर जी का विशेष प्रभाव होने के कारण उनके साहित्य में इन तत्त्वों का आना लाजमी है।

हिंदी के दलित साहित्य में मानव मुक्ति का स्वर प्रमुख रूप से दिखाई देता है। जब तक मानव मुक्ति नहीं होगी तब तक राष्ट्रीय भावना का निर्माण नहीं हो सकता। मनुष्य का विकास ही दलित साहित्य का केंद्रीय विषय है। स्वातंत्र्य, समता, बंधुता और न्याय की प्रतिस्थापना के पीछे देश की एकात्मता और अखंडता का निर्माण करना दलित साहित्य का मूल उद्देश्य है। दलित साहित्य मानवीय मूल्यों की स्थापना तथा जीवनादर्शों की स्थापना का साहित्य है। दलित कवियों ने सामाजिक समता के आंदोलन को गतिमय बनाया है। हिंदी दलित साहित्य की भूमिका स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध आलोचक डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर लिखते हैं - 'दलित साहित्य का केंद्रबिंदु हैं मनुष्य, अर्थात मनुष्य का उत्थान ही दलित साहित्य का प्रयोजन है। यह मानवमुक्ति के लिए लड़नेवाला सम्यक क्रांति का दावेदार साहित्य है। यह हर मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखना पसंद करता है। यह मानव के जीवन मूल्यों एवं जीवनादर्शों को प्रतिष्ठापित करता है और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं आज के 'मुक्तिपथ' तक ले जाता है। वास्तव में दलित साहित्य का आंदोलन एक ऐसा आंदोलन है जो क्रांति के माध्यम से समता, स्वतंत्रता, बंधुता और सामाजिक न्याय आदि मूल्यों की प्रस्थापना के लिए कृतसंकल्प है।'[6]

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी हिंदी दलित काव्य के लोकप्रिय कवि है। इनकी कविताओं में दलितों की पीड़ा, वेदना तथा मोहभंग दिखाई देता है लेकिन इसके साथ-साथ अपने देश की दशा को भी वे अंकित करते हैं। हमारे देश को आजादी मिलने के बाद देश में सभी को आजादी मिलेगी, सुराज्य स्थापित होगा तथा समता आएगी ऐसी अपेक्षाएं की जाती थीं लेकिन आजादी के 75 साल बीतने पर भी ऐसा नहीं हुआ। उन्होंने अपनी राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करते हुए ऐसी कल्पना की है कि सभी धर्म, जाति तथा पंथों के लोग भारत माता के बेटे हैं। अपने बेटों की आँखों में आँसू देखकर भारत माता का हृदय भी विदीर्ण हो जाता हैं। जिस भारत माता ने एकता और भाईचारे का सपना देखा था, वह आज संशय की पीड़ा भोग रही है। अतः अपनी इसी राष्ट्रीय भावना को उन्होंने 'आँसू ही आँसू' इस कविता में इस प्रकार व्यक्त किया है-

'आँसू ही आँसू हैं / मेरे भारत / नम हुई हैं आँसू से /
हर आदमी की आँख /
और स्वतंत्रता, स्वराज्य व समता का / सपना संजोती भारत माता /
संशय की पीड़ा भोग रही हैं।'[7]

महात्मा ज्योतिबा फुले जी, सावित्रीबाई फुले जी तथा डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर जी आदि का भारतीय समाज में सामाजिक न्याय की लड़ाई में योगदान महत्वपूर्ण है।

आज जो कुछ सामाजिक न्याय मिल रहा है, इसमें उनका संघर्ष पग-पग पर दिखाई देता हैं। सामाजिक न्याय, सामाजिक समता, और सामाजिक आजादी माँगने के पीछे उनकी राष्ट्रीय भावना निहित है। जब तक देश में सामाजिक समता प्रस्थापित नहीं होगी, तब तक आजादी का कोई मतलब ही नहीं रहेगा। आजादी की लड़ाई में महात्मा गाँधी और डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर जी के बीच इसी बात को लेकर विवाद था। महात्मा गाँधी जी चाहते थे कि अंग्रेजों से हमें जल्द आजादी मिले। डॉ. बाबासाहब चाहते थे कि आजादी हमें मिलनी ही चाहिए, लेकिन इसके पहले दलितों को उनके हक और अधिकार भी मिलने चाहिए। डॉ. बाबासाहब को डर था कि आजादी मिलने के बाद सवर्ण लोगों के हाथो में देश की बागडोर चली जाएगी और दलित, पीड़ित और गरीब बहुजनों की कोई नहीं सुनेगा। अतः देश के हित में उन्होंने दलित, पीड़ित और गरीब बहुजनों की शिक्षा पर जोर दिया। शिक्षा के कारण लोगों के मन में अपने ऊपर होने वाले अन्याय का एहसास होने लगा। डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर जी ने महात्मा फुले जी और सावित्रीबाई फुले जी की विरासत को आगे बढ़ाते हुए महिला शिक्षा पर भी ज्यादा बल देने की अपील की थी। भारत देश के शाश्वत विकास के लिए उन्होंने नारी सम्मान और नारी शिक्षा की वकालत की थी। एक राष्ट्रीय भावना के तहत डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर जी ने संविधान में महिलाओं को विशेष अधिकार दिए। परिणाम स्वरूप आगे चलकर भारत की महिलाओं ने विभिन्न क्षेत्रों में विश्वपटल पर अपने देश का नाम रोशन किया। वैश्विक पटल पर डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर जी के कारण भारतीय महिलाओं को अपनी पहचान मिली। अतः कवयित्री सुनीता बौद्ध अपनी 'चहुँ ओर हमारा मान बढ़ा' इस कविता में वैश्विक स्तर अपने देश की राष्ट्रीय भावना व्यक्त करते हुए बाबासाहब जी के योगदान को सराहा है। वह इस कविता में कहती हैं -

'भारत की जब-जब भी कोई बेटी / विश्व पटल पर छाएगी / साहबजी के रहमों करम की /तब-तब याद बहुत आएगी। / भीम जी आपके आने से / चहुँ ओर हमारा मान बढ़ा / जीने तक का हक नहीं था हमें /आज विश्व में भी कीर्तिमान गढ़ा।'[8]

अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम होना उस देश के नागरिकों का प्राकृतिक हक है। किसी भी व्यक्ति के लिए अपने देश के प्रति प्रेम होना स्वाभाविक है। जब भी देश की आन पर संकट आ जाता है, तो सारे देशवासी मुकाबला करने के लिए तैयार होते हैं। उस वक्त सभी के मन की राष्ट्रीय भावना महत्वपूर्ण होती है। जिस देश में वह व्यक्ति रहता है, उसके लिए यह सोचना भी स्वाभाविक है कि उस देश में उसका स्वातंत्र्य कहाँ तक है? सामाजिक समता किस हद तक है? दलित कवि भी देश के बारे में ऐसा ही सोचता है। उनके अनुसार देश का सही अर्थ है व्यक्ति-व्यक्ति, जाति-जाति में भाईचारा या बंधुता होना। जब तक जातिगत मानसिकता नष्ट नहीं होती, तब तक उस देश में वह सभी को साथ लेकर नहीं चल सकता। किसी भी देश में जातिविहीन समाज की अपेक्षा करना तथा समानता प्रस्थापित करना उस देश में रहने का सही अर्थ है। अतः समानता की राष्ट्रीय भावना दलित कवि जयप्रकाश लीलवान अपनी 'दमन की दैनिकी' इस कविता में व्यक्त करते हैं -

'हमारे लिए / देश का अर्थ / भाईचारा की कस्में निभाते हुए /

जातियों के जंगल जला दिए जाने की मंजिल पर /
चाव-भरे कदमों के साथ / चलने का सफर होता है।'[9]

जनतंत्र में जनता के मौलिक अधिकार सर्वोपरि होते हैं। आचार स्वातंत्र्य, विचार स्वातंत्र्य, अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य आदि मौलिक अधिकारों पर जनतंत्र की बुनियाद होती है। जब तक व्यक्ति को अपने अधिकार प्राप्त नहीं होते तब तक राष्ट्रीय भावना विकसित होने में बाधा उत्पन्न होती है। अन्याय, अत्याचार, पीड़ा, शोषण आदि के खिलाफ बगावत करना जनतंत्र में राष्ट्रीय भावना का ही अंग बन जाता हैं। डॉ. बाबासाहब ने भारतीय संविधान में हमें अनेक मौलिक अधिकार प्राप्त करके दिए हैं। इसमें अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य यह अधिकार महत्वपूर्ण है। किसी गलत कार्य के खिलाफ बोलना सिर्फ 'बोलना' न होकर क्रांति का आगाज करवाता है। जब हमारा देश अंगेजों का गुलाम था, तब उस समय अंग्रेजों ने 'लिखना' और 'बोलना' इस पर पाबंदी लगाई थी। अतः भारत की जनता ने इस पाबंदी के खिलाफ बगावत करके अपनी राष्ट्रीय भावना व्यक्त की थी। आज की परिस्थिति में जो कुछ गलत हो रहा हैं, उसके खिलाफ बोलकर अपनी वाणी को व्यक्त करना ही राष्ट्रीय भावना है। चुप रहना शोषण का, जुल्म का तथा अन्याय का समर्थन करने जैसा है। इस प्रकार कवि हूबनाथ अपनी कविता में बोलने की क्रिया को क्रांति से जोड़कर अपनी राष्ट्रीयता व्यक्त करते हुए कहते हैं -

'बोलना सिर्फ एक क्रिया नहीं / आगाज भी है / इन्कलाब का /
चुप रहना सिर्फ एक क्रिया नहीं / समर्थन है / जुल्म सितम का।'[10]

स्वतंत्रता मनुष्य के विकास में अहम् भूमिका अदा करती है। पंद्रह अगस्त को हमारा देश स्वतंत्र तो हो गया, परंतु राजकीय दासता से सामाजिक दासता इस देश में भयानक थी। युगों-युगों से दलित समाज को पशु से भी बदहत्तर हालात का सामना करना पड़ा। उत्पीड़न की जंजीरों से उसका जीना हराम हो गया था। जिस स्वतंत्रता और अधिकारों की उसे सदियों से तलाश थी, वह नहीं मिली थी। इसलिए जयप्रकाश कर्दम अपनी 'मेरे अधिकार कहाँ हैं' इस कविता में दलितों के अधिकारों की माँग करते हैं। अपने अधिकारों की माँग करना हर व्यक्ति का राष्ट्रीय कर्तव्य है। सिर्फ कागजों पर अधिकार देने से कुछ नहीं होगा, बल्कि सवर्णों की मानसिकता बदलनी चाहिए। अस्पृश्यों की स्वतंत्रता तथा अधिकार की बात करते हुए वे कहते हैं -

'अस्पृश्यता पशु से बदतर / निज श्वासों तक के लाले हैं /
उत्पीडन की जंजीरों में / यूँ कसा-फँसा सदियों से मैं /
ना मुर्दा हूँ न ही जी सकता / मेरे मौलिक अधिकार कहाँ हैं।'[11]

दलित साहित्य में समता, बंधुता और स्वातंत्र्य का महत्त्व विषद करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि इन तत्त्वों को दलित सौंदर्यशास्त्र का महत्त्वपूर्ण अंग बताते हैं। वे कहते हैं- 'मानव मुक्ति के सभी रूपों और अंतरंगों के दर्शन दलित साहित्य में दिखाई पड़ते हैं। स्वतंत्रता केवल राजनीतिक ही नहीं होती; धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक भी होती है। इसलिए दलित साहित्य की अंतर्निहित धारा में स्वतंत्रता का भाव प्रधान रूप में विद्यमान हैं। समता, बंधुता और स्वतंत्रता की चेतना जैसे मूल तत्त्वों पर दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र टिका हुआ है। दलित साहित्य जाति-व्यवस्था के दास्यत्त्व और दलित्त्व

से मानवीय मुक्ति का आंदोलन हैं, एक मुक्ति संघर्ष।'[12]

दलित काव्य लेखन करने वालों में सुशीला टाकभौरे का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इनके कुछ काव्य-संग्रहों में दलितों की पीड़ा, वेदना और शोषण तो दिखाई देता है, साथ-साथ दलित नारियों की संवेदना भी उन्होंने रेखांकित की है। सुशीला टाकभौरे डॉ. बाबासाहब आंबेडकरजी के विचारों की वाहक, प्रचारक, बौद्ध धर्म की अध्येता तथा मानवता की उपासक हैं। उनके काव्य में उन्होंने राष्ट्रीय भावना के तहत समता, स्वातंत्र्य और बंधुता के तत्त्वों का उल्लेख किया है, जो गौतम बुद्ध के विचारों का सार या सिद्धांत है। इस संदर्भ में कवयित्री अपनी एक कविता में मानवतावादी राष्ट्रीय भावना व्यक्त करते हुए कहती हैं -

'स्वतंत्रता, समता, भाईचारा। एकता, विश्व बंधुत्त्व,
सिद्धांत हैं गौतम बुद्ध का। सपना डॉ. आंबेडकर का।'[13]

दलित कवि सामाजिक समता, बंधुता, न्याय तथा स्वातंत्र्य के लिए काव्य लेखन करता है। भले ही उनकी कविता का स्वर विद्रोही है, लेकिन इस विद्रोह के पीछे की राष्ट्रीय भावना को देखना आवश्यक है। 'दलित कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से व्यवस्था के प्रति विद्रोह व्यक्त किया है। स्वातंत्र्य, समता तथा बंधुता का स्वीकार करते हुए दलित कवि मानव मुक्ति के लिए संघर्ष करता है। आज तक दलितों को अस्पृश्यता के नाम पर दूर रखा गया और जातिभेद के कारण विषमता का शिकार बनाया गया। महात्मा फुले, शाहू महाराज और डॉ. बाबासाहब आंबेडकर की विचारधारा से समाज में नवचैतन्य आ गया और दलित समाज हजारों वर्षों की गुलामी तथा विषमता त्यागकर समता की लड़ाई लड़ने के लिए तैयार हो गया।'[14]

किसी भी अवांछित तत्व के खिलाफ लड़ना राष्ट्र के हित में होता है। दलित कवि अपनी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए प्रस्थापितों के विरुद्ध लड़ता है। जिस प्रकार आजादी के आंदोलन में सभी भारतीय अंग्रेजों की गुलामी के खिलाफ लड़ते रहे, उस समय उनकी भावना को राष्ट्रीय भावना से अधोरेखित किया गया। अंग्रेज इस देश से चले गए, परंतु गुलामी की जंजीर ज्यों की त्यों रह गयी। अतः इस देश में सवर्ण रूपी अंग्रेजों के खिलाफ क्रांति की मशाल फिर एक बार सुलग उठी। दलित, अस्पृश्य और पिछड़े जातियों के अस्तित्व के लिए जो मशाल सुलग उठी, उसे भी हम राष्ट्रीय भावना कहेंगे तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। अतः गुलामी के विरुद्ध आंदोलन करके सवर्णों की सत्ता को हिलाकर आजादी प्राप्त करके शांतिपूर्ण जीवन की अभिलाषा कवि गणवीर अपनी 'लड़ो' कविता में इस प्रकार करते हैं -

'तोड़ दो गुलामी की जंजीर सारी / आजादी की प्राप्ति के लिए। /
सत्ता की / आँधी से अशांति फैली / अमन की स्थापना के लिए लड़ो।'[15]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता हैं कि 21वीं सदी के दलित कवियों ने अपनी कविताओं में अपने ऊपर होनेवाले अन्याय, अत्याचार, शोषण, ज्यादतियों आदि का बड़ी ईमानदारी के साथ वर्णन किया है लेकिन इन वर्णनों के पीछे उनकी राष्ट्रीय भावना है। किसी भी देश में राष्ट्रीय भावना का विकास तभी हो सकता है, जब उस देश का हर नागरिक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि दृष्टि से समानता महसूस

करता हो। जब समाज में समानता आएगी तब राष्ट्रीय भावना का विकास अपने आप होता रहेगा। दलित कवियों की कविता पर दृष्टिक्षेप डालने से पता चलता है कि भारतीय संविधान में जिन समता, स्वातंत्र्य, बंधुता और न्याय इन तत्त्वों का जिक्र किया है, उनका स्पष्ट प्रभाव उन पर लक्षित होता है। दलित कविता भले ही सवर्णों के प्रति विद्रोह, असंतोष, संघर्ष और आक्रमकता दिखाती है, लेकिन इसके पीछे उनकी मानव मुक्ति की भावना है। समाज में समानता, स्वातंत्र्य और अधिकार जब तक निचले स्तर तक नहीं मिलते, तब तक मानव मुक्ति असंभव है। दलित कवियों का विरोध किसी विशिष्ट धर्म, जाति या पंथ के खिलाफ नहीं हैं, बल्कि उनकी मानसिकता और व्यवस्था के खिलाफ विरोध है। सभी मानव एक हैं, मानवता ही उनका धर्म है, इस पर उनका विश्वास है। अतः इन कवियों की कविताओं में जगह-जगह पर समता, स्वातंत्र्य और बंधुता देखने मिलती है, जो आज की परिस्थिति में राष्ट्रीय भावना या वैश्विक भावना से कम नहीं है।

संदर्भ :

1. डॉ. सुभाष महाले, 'माखनलाल चतुर्वेदी और वि. दा. सावरकर की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना' (पृष्ठ -25), चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर (संस्करण 1997)
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (पृष्ठ-21), प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली (संस्करण 2008)
3. डॉ.देवी शरण रस्तोगी, 'आधुनिक कवि और उनका काव्य' (पृष्ठ -07) राजहंस प्रकाशन, मेरठ (संस्करण 1983)
4. वही, पृष्ठ सं.-36
5. जयप्रकाश कर्दम, दलित कविता समकालीन परिदृश्य (पृष्ठ 29) अमन प्रकाशन, कानपुर (प्रथम संस्करण 2018)
6. सोहनपाल सुमनाक्षर, दलित साहित्य (पृष्ठ 5) प्रकाशक - भारतीय दलित साहित्य अकादमी, दिल्ली (प्रथम संस्करण 2002)
7. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, सवालों के सूरज (पृष्ठ 47)
8. अम्बेडकरवादी साहित्य (कविता विशेषांक), देवचन्द्र भारती 'प्रखर', वर्ष - 01, अंक - 01, (पृष्ठ 97)
9. जयप्रकाश लीलवान, नए क्षितिजों की ओर (पृष्ठ 77)
10. हंस पत्रिका, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, अक्टूबर 2019 (पृष्ठ 24)
11. जयप्रकाश कर्दम, गूँगा नहीं था मैं (पृष्ठ 47)
12. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (पृष्ठ 61 व 62)
13. सुशीला टाकभौरे, हमारे हिस्से का सूरज (पृष्ठ 64)
14. डॉ. प्रकाश सूर्यवंशी, हिंदी मराठी दलित कविता तुलनात्मक अध्ययन (पृष्ठ 110) गरिमा प्रकाशन, कानपुर (प्रथम संस्करण 2016)
15. आंबेडकरवादी साहित्य, देवचन्द्र भारती 'प्रखर', वर्ष-01, अंक-01, (पृष्ठ 58)

हिंदी विभागाध्यक्ष, शरदचंद्र पवार महाविद्यालय, लोणंद,
जिला सातारा (महाराष्ट्र) - 415521

हिंदी सिनेमा और राष्ट्रीय भावना

प्रा. डॉ. प्रकाश आठवले

सिनेमा और समाज का गहरा संबंध है। सिनेमा करोड़ों लोगों तक आसानी से पहुँचने वाला एक सशक्त इलेक्ट्रॉनिक माध्यम है। हम अगर भारतीय सिनेमा पर एक नजर डालेगें तो स्वातंत्र्यपूर्व और स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में समाज में व्याप्त सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों तथा परंपराओं से ग्रस्त समाज का चित्रण करते हुए सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ राष्ट्रप्रेम पर भी फिल्में बनी हैं। इनका उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ समाज-प्रबोधन एवं जन-जागरण रहा है। आजादी की महागाथा में जिन महानायकों ने अपने प्राणों की आहुति दी है, उन्हें याद रखने में भारतीय सिनेमा ने बढ़-चढ़ कर अपनी भूमिका अदा की है। भारत की आजादी के 75 साल पूरे हो चुके हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में असंख्य युवा क्रांतिकारियों ने मातृभूमि के लिए बलिदान देकर स्वतंत्रता की अग्नि को प्रज्वलित रखा। जिन क्रांतिकारियों ने देश के लिए बलिदान दिया, उन पर हिंदी में कई फिल्में बनी हैं। इस सदी में बनी देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत फिल्में मुख्य रूप से अंग्रेजों के जुल्म, उनसे लड़ी गई आजादी की लड़ाई तथा संघर्ष करते हुए देश के लिए हमारे खिलाड़ियों द्वारा प्राप्त किए गए विभिन्न पदक आदि संबंधी कहानियाँ बयाँ करती हैं। इन फिल्मों द्वारा आजादी की वह संघर्ष गाथा हमारे दिमाग में तरोताजा होकर क्रांतिकारियों, नेताओं, फौजियों के साथ-साथ खिलाड़ियों के प्रति सम्मान बढ़ा देती है।

सिनेमा और समाज का गहरा संबंध है। सिनेमा करोड़ों लोगों तक आसानी से पहुँचने वाला एक सशक्त इलेक्ट्रॉनिक माध्यम है। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक, शहरवासियों से लेकर गाँव वालों तक, इतना ही नहीं सैटेलाईट चैनल के कारण घने जंगल, ऊँची पहाड़ियों में बसे लोगों तक यह पहुँच गया है। सिनेमा 'मायावी दुनिया' का निर्माता है। सिनेमा का समाज पर और समाज का सिनेमा पर गहरा असर होता है। जब समाज में कोई अच्छी या बुरी घटना घटित होती है तो उसका प्रभाव सिनेमा में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जैसे कोई संवेदनशील साहित्यकार साहित्यिक कृति के रूप में लिखता है, वैसे ही सिनेमा निर्देशक भी फिल्म बनाता है। साहित्यकार और निर्देशक दोनों समाज से प्रभावित होते हैं, दोनों समाज का हित सर्वोपरि मानते हैं।

सिनेमा-निर्देशक समाज में घटित सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति के साथ नारी जीवन, दांपत्य जीवन, किसानों का जीवन, मजदूर, खेल, पर्यावरण, राष्ट्रप्रेम और मनोरंजन आदि विविध विषयों पर फिल्मों का निर्माण करता है। समाज में जो बातें चलती हैं या लोकप्रिय होती हैं, उसे सिने निर्देशक पहचान लेता है और उन पर अपनी फिल्में बनाता है। जैसे- 'चक दे इंडिया', 'लगान', 'भाग मिल्खा भाग', 'दंगल', मेरी कोम आदि। ''भारत में हिंदी तथा अन्य भाषाओं में मिलाकर प्रतिवर्ष लगभग तीन हजार फिल्में बनती हैं, जिनका निर्यात दुनिया के लगभग सौ देशों में होता हैं।'[1]

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में असंख्य युवा क्रांतिकारियों ने मातृभूमि के लिए बलिदान देकर स्वतंत्रता की अग्नि को प्रज्वलित रखा। जिन क्रांतिकारियों ने देश

के लिए बलिदान दिया, उन पर हिंदी में कई फिल्में बनी हैं। आज भारतीय स्वतंत्रता के 75 साल बाद भी देशभक्ति पर आधारित फिल्मों द्वारा युवकों में स्वदेशप्रेम का जज्बा बढ़ाने का कार्य हो रहा है। भारत की आजादी की लड़ाई में यूँ तो अनगिनत हिंदुस्तानियों ने सहभाग लिया लेकिन कुछ ऐसे सपूत भी थे, जो इस आजादी की लड़ाई के प्रतीक बनकर उभरे राष्ट्रप्रेम की खातिर क्रांति की पहली गोली चलाने वाले को भले ही तोपों से उड़ा दिया गया लेकिन जो चिंगारी उन्होंने लगाई, उस आग में तपकर निकले स्वाधीनता सेनानियों ने अपने अहिंसक आंदोलन से अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर कर दिया। आजादी की महागाथा में उन महानायकों को हमेशा याद रखा जाएगा। उन्हें याद रखने में भारतीय सिनेमा बढ़ चढ़ कर अपनी भूमिका अदा कर रहा है। हमारे लिए अक्सर ऐसे महान सपूतों पर भारतीय सिनेमा फिल्में बनाता है और लाखों-करोड़ों लोगों तक पहुँचाता है।

सिनेमा समाज में देशप्रेम की भावना, नव उमंग और जोश भरने का एक सशक्त माध्यम है। इसमें सारा देश एकजुट करने की ताकत है। जैसे- 'बॉर्डर' फिल्म की कहानी साल 1971 की लड़ाई से प्रेरित है, जहाँ मेजर कुलदीप सिंह की मेजबानी में 120 भारतीय फौजियों ने पाकिस्तान के 3000 सैनिकों और उनके दर्जनों टैंकों की धज्जियाँ उड़ा कर रख दी थीं। सनी देओल ने इस फिल्म में मुख्य किरदार निभाया है। इस फिल्म को देखकर हर भारतवासी का सिर गर्व से उठ जाता है, सीना चौड़ा हो जाता है और हर एक नागरिक में देश के प्रति अभिमान जागृत हो जाता है।[2]

आज तक देशप्रेम पर कई हिंदी फिल्में बनी हैं, जैसे- तिरंगा, एक था टाइगर, कर्मा, हिंदुस्तान की कसम, रिफ्यूजी, रोजा, जमीन, एल.ओ.सी., गाँधी, कारगिल, लक्ष्य, हिन्दुस्तानी, क्रांति, पिंजर, चायना गेट, कोहराम, मिशन कश्मीर, दिलजले, धर्मपुत्र, सुवर्ण रेखा, गर्म हवा आदि हिंदी सिनेमा जगत की ये फिल्में जो आज भी हमें स्वाधीनता संग्राम की याद दिलाती हैं, जिन्हें देखने के बाद लोगों के दिलों में देशभक्ति की भावना पैदा होती है। हम उन फिल्मों को बार-बार सलाम करते हैं।

आज की पीढ़ी को उस दौर के समय के संघर्ष का आभास कराने के लिए भारतीय हिंदी सिनेमा हमेशा अपना योगदान देता आया है। समय-समय पर ऐसी फिल्में बनाई जाती हैं, जो न केवल देशप्रेम की भावना पैदा करती हैं बल्कि उस समय से रूबरू कराती हैं। गाँधी, शहीद जैसी अनेकों ऐसी क्लासिकल फिल्में हैं जो लोगों के अंदर राष्ट्रीयता की भावना पैदा करती हैं। वह स्वतंत्रता, जिसे पाने के लिए दुनिया के इतिहास का सबसे लंबा संग्राम लड़ा गया, लाखों लोगों ने प्राणों की आहुति दी, जेलों में यातनाएँ सहीं, अनगिनत कष्ट सहे, उसके बारे में विस्तार से जानना और बलिदानों से प्रेरणा ले, देशभक्ति का सही रूप समझना प्रत्येक भारतीय नागरिक का कर्तव्य है। निश्चित ही स्वतंत्रता संग्राम को जानने, समझने से हमें एक 'राष्ट्रीय चरित्र' का निर्माण करने की प्रेरणा मिलेगी। बिना राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण किए किसी देश की न तो भौतिक उन्नति संभव है और न ही बौद्धिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति वैसे तो बॉलीवुड में हर साल सैकड़ों अलग-अलग प्रकार की फिल्में बनाई जाती हैं, जिनमें कॉमेडी, रोमांस, ड्रामा, ऐक्शन और थ्रिलर आदि फिल्में होती हैं लेकिन इन सबके बीच भारत

में देशभक्ति पर बनी फिल्में काफी पसंद की जाती हैं। ऐसी ही 21 वीं सदी में प्रदर्शित देशभक्ति पर बनी बॉलीवुड की कुछ फिल्में इस तरह हैं -

1) लगान - (2001)

'यह फिल्म आजादी के पहले की वह संघर्ष गाथा है, जब अंग्रेजों के जालिम अफसरों द्वारा भारतवासियों से कई गुना अधिक लगान वसूल किया जाता था। इसमें देश के उस जज्बे की महक मिलती है, जब एक भारतीय गाँव के किसानों ने पहली बार क्रिकेट खेलकर फिरंगियों की पूरी टीम को हरा दिया था। फिल्म में गाँव के किसानों और अंग्रेजों के बीच दिखाए गए क्रिकेट मैच में यह शर्त लगी होती है कि अगर गाँव वाले मैच हार जाते हैं तो तिगुना लगान देंगे साथ ही उनकी जमीन पर अंग्रेज कब्जा कर लेंगे और अगर वो जीतते हैं तो लगान माफ हो जाएगा और वे अपनी जमीन बचाने में कामयाब होंगे।

2) गदर : एक प्रेम कथा (2001)

यह फिल्म सन् 1947 में हुए भारत-पाकिस्तान विभाजन के दृश्यों को संजोती है, जिसकी कहानी सिख-मुस्लिम प्रेम पर आधारित है, जो पाकिस्तान तक पहुँचती है।

3) द लिजेंड ऑफ भगत सिंहः (2002)

शहीद भगत सिंह के जीवन पर बनाई गयी यह फिल्म वाकई बेहद ही रोमांचित करने वाली है। इस फिल्म में देश की आजादी के लिए मर मिटने वाले भगत सिंह के जज्बे को दिखाया गया है। साथ ही आजादी की लड़ाई में भगत सिंह के योगदान को दिखाया गया है।

4) स्वदेशः (2004)

'स्वदेश' देशभक्ति पर बनी एक सफल फिल्म है। यह फिल्म लोगों की कहानी बयां करती है जो भारत में ही जन्मे और भारतीय मूल के ही हैं पर वे भारत में न रहकर किसी अन्य देश में रह रहे हैं। यह फिल्म ऐसे ही लोगों की देशभक्ति और देशप्रेम को बयाँ करती है।

5) लक्ष्यः (2004)

इस फिल्म की कहानी वर्ष 1999 में हुए कारगिल युद्ध को दर्शाती है। इस फिल्म के माध्यम से कारगिल युद्ध के समय पंजाब रेजिमेंट की तीसरी बटालियन में पोस्टेड अमर और सुनील की कहानी दर्शकों के सामने लायी गयी है। यह फिल्म वीरता और साहस को बहुत ही बेहतर ढ़ंग से प्रदर्शित करती है।'[3]

6) मंगल पाण्डेयः द राइजिंगः (2005)

'यह आजादी की लड़ाई के अग्रदूत कहे जाने वाले मंगल पाण्डेय के जीवन का दर्शन कराने वाली देशभक्ति पर बनी बेहतरीन फिल्म है, जिसमें दिखाया गया है कि मंगल पाण्डेय ने किस प्रकार अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का बिगुल बजाया और अंत में उन्हें फाँसी सजा दे दी गई। यह फिल्म 1857 के विद्रोह की याद दिलाती है।

7) रंग दे बसंतीः (2006)

इस फिल्म की कहानी दिल्ली के पांच नौजवानों की है, जिनकी जीवन-विषयक धारणाएँ तब बदल जाती हैं, जब वे पांच क्रांतिकारी भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों पर बने

एक नाटक में अभिनय करते हैं। वे स्वतंत्रता सेनानियों से प्रेरित होकर भ्रष्ट्राचार करने वाले भारतीय रक्षामंत्री की हत्या करते हैं, जो उनके दोस्त की मौत के लिए जिम्मेदार था। देशभक्ति केवल आजादी की लड़ाई और फौजियों के जज्बे तक ही सीमित नहीं है, यह हमारे आम जीवन में भी देखने को मिलती है। इस फिल्म की कहानी उन नौजवानों की है जो देश में बढ़ते हुए भ्रष्ट्राचार को रोकने की हिम्मत करते हैं और फिर अपने रास्ते में आई तमाम मुश्किलों, यहाँ तक कि मौत से भी नहीं डरते। यह कहानी दर्शाती है कि आज भी हिंदुस्तान के हर युवा में एक भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद जैसे कई क्रांतिकारी शख्स मौजूद हैं।

8) द गाजी अटैक : (2017)

भारत और पाकिस्तान के बीच साल 1971 में भारत के इतिहास का एक बहुत ही अहम युद्ध लड़ा गया था, जिसमें पाकिस्तान के दो टुकड़े हो गए थे। फिल्म 'द गाजी अटैक' इसी घटना पर आधारित है। यह लड़ाई न तो जमीन पर लड़ी गई न असमान पर ... भारतीय नौसेना ने समुद्र के अंदर 18 दिनों तक लड़ाई लड़ी थी।

9) उरीः द सर्जिकल स्ट्राइकः (2019)

इस फिल्म की कहानी सर्जिकल स्ट्राइक पर आधारित है। यह भारत ने 2016 में लाईन ऑफ कंट्रोल के पार पाकिस्तानी आतंकवादियों पर जो कार्रवाई की थी। उसको दर्शाती है।

10) मणिकर्णिकाः झाँसी की रानीः (2019)

यह फिल्म झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के जीवन और 1857 के भारतीय प्रथम स्वाधीनता आंदोलन के दौरान ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ उनकी लड़ाई पर आधारित है। भारत की महान वीरांगना की कहानी बताने वाली यह फिल्म देशभक्ति से भरपूर है।

11) केसरीः (2019)

केसरी एक बॉलीवुड वार-ड्रामा है, जो 12 सितम्बर 1897 को भारत के सारा गढ़ी में हुए महान युद्ध पर आधारित है। यह केसरी हवलदार ईश्वर सिंह की कहानी है जो सारगढ़ी की लड़ाई में 21 सिखों की एक सेना के साथ 10,000 अफगानों के खिलाफ जंग लड़ता है।[4]

देशभक्ति की बात हो और हम खेल की बात न करें, ऐसा कैसे हो सकता है। मैरीकॉम, पान सिंह तोमर, पाटियाला हाउस, सुलतान, एम. एस. धोनी : द अनटोल्ड स्टोरी, अजहर, काय पो चे, इकबाल, 83 जैसी कई फिल्में हैं, जो भारतीय खेलों को प्रोत्साहन देती हैं और भारतीयों में देशप्रेम बढ़ाती हैं।

1) चक दे! इंडिया : (2007)

यह कहानी उस खिलाड़ी की है, जिस पर देश की गद्दारी का इल्जाम लगता है। यह कहानी उस खिलाड़ी की है, जिसने पहली बार अलग-अलग राज्यों के लिए खेल रहे खिलाड़ियों को देश के लिए खेलना सिखाया। इस फिल्म की कहानी बयां करती है कि हम अलग-अलग राज्यों के होते हुए भी एक देश के निवासी हैं।

2) भाग मिल्खा भागः (2013)

भाग मिल्खा भाग बॉलीवुड की एक बायोग्राफिकल फिल्म है, जो भारत के फ़्लाइंग सिख के नाम से मशहूर मिल्खा सिंह के जीवन पर आधारित है, जिन्होंने बहुत ही विपरीत परिस्थितियों में भारत के लिए ओलंपिक मेडल जीता था। फिल्म में मिल्खा सिंह का किरदार फरहान अख्तर ने निभाया है।

3) मैरीकॉमः (2014)

'भारत की महिला मुक्केबाज व ओलम्पिक में कांस्य पदक जीत चुकी मैरीकॉम की जिंदगी पर बनी इस फिल्म में मैरीकॉम के करियर का सुनहरा दौर, बॉक्सिंग से दूरी और फिर वापसी की पूरी कहानी बताई गई है।'[5]

4) दंगलः (2016)

दंगल एक हरियाणवी पहलवान महावीर फोगट की कहानी के साथ-साथ एक पिता और दो बेटियाँ गीता और बबिता फोगट की पहलवानी की कहानी भी है। महावीर की इन दोनों बेटियों ने देश के लिए मेडल जीत कर इतिहास बनाया था।

अब तक ऐसी कई बेहतरीन देशभक्ति की फिल्में बनी हैं, जिन्हें देखकर हमारे दिल में देशप्रेम की भावना जगने लगती है। कभी ये फिल्में हमें अपनी मिट्टी की महक याद दिलाती हैं तो कभी आजादी की संघर्ष-गाथा दिमाग में तरोताजा हो जाती है। कभी ये फिल्में हमारे दिल में क्रांतिकारियों, नेताओं या फौजियों के प्रति सम्मान बढ़ा देती हैं।

निष्कर्षतः इक्कीसवीं सदी का हिन्दी सिनेमा समाज में देशप्रेम की भावना, नव उमंग और जोश भरने का एक सशक्त माध्यम रहा है। इसमें सारा देश एकजूट करने की ताकत है। देशभक्ति पर बनी ये फिल्में बेहद उम्दा हैं। देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत इन फिल्मों में मुख्य रूप से आजादी की लड़ाई, अंग्रेजों के जुल्म और हमारे खिलाड़ियों द्वारा देश के लिए संघर्ष करते हुए प्राप्त किए विभिन्न पदक आदि की कहानियाँ है इन फिल्मों द्वारा आजादी की वह संघर्ष गाथा हमारे दिमाग में तरोताजा हो उठती है तथा क्रांतिकारियों, नेताओं, फौजियों के साथ-साथ खिलाड़ियों के प्रति सम्मान बढ़ जाता है।

संदर्भ :

1. सं- रतनकुमार पाण्डेय, 'अनभै सिनेमा विशेषांक'- जुलाई-दिसंबर, 2013 (मुंबई)
2. httPÞs://hI.m.wIkIPÞedIa.org 24/09/2022
3. onlIne.hIndIfIlmbeat.com/toPÞ- 25/09/2022
4. google.com/amPÞ/s/hIndI.fIlm 25/09/2022
5. httPÞs://hIndI.webdunIa.com 25/09/2022

कर्मवीर भाऊराव पाटिल कॉलेज,
उरूण-इस्लामपुर

भूमंडलीकरण के चपेट में राष्ट्रीयता का चिराग : पॉल गोमरा

डॉ. विकास विलासराव पाटील

जहाँ डाल-डाल पर / सोने की चिड़िया करती है बसेरा /
वह भारत देश है मेरा /
जहाँ सत्य, अहिंसा और धर्म का / पग-पग लगता डेरा /
वो भारत देश है मेरा / जय भारती, जय भारती।

जब भी यह गाना सुनता हूँ, मेरे पैर अपने-आप ठिठक जाते हैं और मन-मस्तिष्क में एक सवाल सृजित होता है। आज 15 अगस्त या 26 जनवरी तो नहीं? यह स्थिति सिर्फ एक नागरिक की नहीं सभी भारतवासियों की है। क्या हमारा राष्ट्रवाद सिर्फ पाकिस्तान तक सीमित है? क्या हम दिनभर की भाग-दौड़, जीवन-यापन करने की जद्दोजहद में गौरवशाली देश को भूल जाते हैं। भूमंडलीकरण के युग में बढ़ती महँगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार के कारण देशप्रेम, देशभक्ति के बारे में लोगों को जागृत करना पड़ता है या उसका विज्ञापन दिखाना पड़ता है तभी हमारे दिल में देशप्रेम उमड़ता है। वह भी सिर्फ व्हाटसएप, फेसबुक, ट्विटर के माध्यम से दिखाया जाता है। देश और संविधान से हम अधिकार प्राप्त करते हैं पर हम अपनी जिम्मेदारियों को भूल जाते हैं। यह अनुभव या तजुर्बा हमें पग-पग पर मिलेगा। सन् 1990 या भारत में खुली अर्थव्यवस्था की स्वीकृति के बाद यह प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है। इसका यथार्थ चित्रण 2004 में प्रकाशित पॉल गोमरा का स्कूटर कहानी संग्रह में उदय प्रकाश ने किया है।

अंग्रेजों ने डेढ़ सौ साल साम्राज्य किया। इसका प्रमुख कारण देश में रहने वाले अमीरों की अमीर बनने की अत्यधिक लालसा यह लोग हिंदुस्तान की लूट में अंग्रेजों के साथ हिस्सेदारी प्राप्त करना चाहते थे। उन्हें सिर्फ ऐश्वर्य, मजा, सुख और दौलत चाहिए थी वे बहुत तेजी से अंग्रेज बनने की कोशिश में लगे हुए थे। 'बदलते वक्त में वे अब अंग्रेजी सीख रहे थे। ये ऐतिहासिक चापलूस थे, ऐतिहासिक अभिजन, ऐतिहासिक व्यापारी और ऐतिहासिक सत्ताकामीक' अमीर बनने की लत इतनी हद से गुजर चुकी थी कि व्यापार के ठेके पाने के लिए बहू-बेटियों को अंग्रेजी अधिकारियों की हवस का शिकार होना पड़ रहा था। अमीर लोगों में एक ही होड़ लगी हुई थी कि हम अंग्रेजों जैसे रहन-सहन, रीति-रिवाज को आत्मसात करके उनके इर्द-गिर्द रहें और खूब पैसे कमाएँ हिंदुस्तान में एक उच्च वर्गीय ठाकुर परिवार नील के व्यापार का ठेका प्राप्त करने के लिए और उसे अन्य राज्यों में फैलाने के लिए अपनी रूप-गुण संपन्न बेटी मोहिनी का इस्तेमाल करता हुआ दिखाई देता है। मोहिनी ठाकुर को कई अंग्रेजी अफसरों के बिस्तरों को गर्म करना पड़ रहा था। दुर्भाग्य यह था कि उसकी माँ मोहिनी को अंग्रेजी अफसरों के रूम में ढकेल देती थी। मोहिनी ठाकुर को शारीरिक तथा मानसिक आघातों को सहना असह्य हो रहा था। अपनी मानसिक स्थिति को अभिव्यक्त करते हुए वह कहती है कि 'माँ, मुझे लगता है जैसे मेरी नसों में सारे यूरोप की गंदी नालियों का विषाक्त उच्छिष्ट बह रहा है... पिताजी को कितनी दौलत चाहिए? इतना तो मिल गया...' इतना ही नहीं

अंग्रेजों को खुश करने के लिए या उनकी पार्टियों में सम्मिलित होने के लिए अमीर लोग बीफ (गाय का मांस) का प्रबंध करते थे।

स्वतंत्रता के बाद सत्ताधारी पार्टी के राजनेताओं में एक होड़ लगी हुई थी कि अपने हिस्से में ज्यादा-से-ज्यादा ठेके और पैसे कमाने के नए-नए रास्ते मिलें, जिससे कार्यकर्ता भी खुश और प्रति माह घर बैठे हप्ता मिले। राजनेताओं के कार्यकर्ता ज्यादातर गुंडे, अपराधी, हिस्ट्रीशीटर या गाँजे-शराब का व्यापार करनेवाले लोग होते हैं। जो चुनाव जिताने के लिए पार्टी को पैसे जुटाते हैं। आमजनों के दिल में खौफ पैदा करते हैं। इसके बारे में उदय प्रकाश लिखते हैं 'पुलिस आबकारी विभाग तथा सत्ताधारी राजनीतिक दलों को ये हफ्ता या माहवारी देते रहते हैं। भारतीय लोकतंत्र का ग्रास रूट या आधार यही अपराधी ठेकेदार होते हैं। बूथ कैप्चरिंग, फर्जी मतदान, विरोधी उम्मीदवार की हत्या या अपहरण का अनिवार्य भारतीय लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व यही लोग निभाते हैं। इस यथार्थ को कोई नकार नहीं सकता हैं किंतु दुर्भाग्य है की आमजन आवाज भी नहीं उठता क्योंकि रोजमर्रा की जिंदगी में पेट पालने के लिए जिद्दोजहद करनी पड़ती है तथा जो आवाज उठता है उसे हमेशा के लिए खत्म किया जाता है।

राजनेताओं की पैसे कमाने की लालसा इतनी तीव्र है कि जिसके सामने आमजन, देशसेवा तिनके जैसी है और वह भी कहाँ और कैसे लुप्त होता है, वह भगवान भी नहीं कह सकता। लोगों को बड़े-बड़े सपने दिखाना, मीठी-मीठी बातों से बहलाना, कुर्सी प्राप्त करना, परियोजनाओं के नाम पर विभिन्न देशों से अनुबंध करके कर्ज लेना। उसका ठेका स्वयं लेना या अपने कार्यकर्ता को देना, कार्यों में भ्रष्टाचार करना, योजनाओं का बंद होना, उसका दोष विरोधियों को देना और अपनी जेब भरना। इसके बारे में उदय प्रकाश लिखते हैं 'केंद्र सरकार का वित्तमंत्री चार-पाँच साल से बिना खाए, बिना पिए, बिना सोए, बिना जागे और बिना सोचे कर्जों और विदेशी कंपनियों के तमाम अनुबंधों पर धड़ाधड़ दस्तखत करता चला जा रहा था। देश के सभी बैंकों का रुपया निकालकर एक विशाल सूटकेस में भर दिया गया था।

आम आदमी देश के लिए जीता और मरता हुआ दिखाई देता है।' सर कटा सकते हैं मगर झुका नहीं सकते', इस उक्ति के अनुसार त्याग, बलिदान, देशसेवा और देश की रक्षा सिर्फ आमजनों द्वारा की हुई स्पष्ट दिखाई देती है। दिहाड़ी पर काम करने वाला पॉल गोमरा देश के उद्योगों तथा वहाँ काम करनेवाले मजदूरों को बचाने के लिए विद्रोह करता दिखाई देता है। उसके अनुसार 'स्कूटर एक चरखा है, जिससे सूत कातकर अमेरिका की बहुराष्ट्रीय कंपनियों को खत्म किया जा सकता है' यह बात शासकीय समारोह में कहकर वह अपना देशप्रेम व्यक्त करता है तथा विदेशी कंपनियों का खुल के विरोध करता है। अंग्रेज तथा अंग्रेजों के चापलूसों को चेतावनी देते हुए वह कहता है कि 'साला लॉर्ड क्लाइव प्लासी की लड़ाई जीत गया तो सोचता है सारा हिंदुस्तान जीत लूँगा।' पॉल गोमरा विदेशी सत्ताओं से लोहा लेते हुए खुली चेतावनी देते हुए परिलक्षित होता है।

वारेन हेस्टिंग्स की दासी चोखी, अपने मालिक की सभी इच्छाएँ पूरी करती हैं। वारेन के लिए सादगी, सरलता की मूर्ति, चोखी राधा का रूप लगती है। वह उसके साथ रासलीला करता हुआ दिखाई देता है लेकिन जब देश की सुरक्षा की बात आती है, तो

चोखी दुर्गा का रूप लेती है। क्रूर वारेन डर के मारे काँपने लगता है। उसके शरीर पर रोये खड़े हो जाते हैं दुर्गा के चण्डी रूप का खौफ उसकी आँखों में दिखाई देता है। चोखी छुपाया हुआ खंजर निकलकर कहती है 'देख, मैं ये तुझे मारने के लिए लाई थी। ... इसलिए नहीं मार सकती कि तुझे मैंने अपना मरद मान लिया है..चोखी ने चीखते हुए कहा देख इस खंजर से कौन मर रहा है? मर रहा है तेरा बीज, जो मेरे पेट में है।' वारेन ने काँपते हुए गहरे सदमे की हालत में देखा की चोखी ने खंजर अपने पेट में भोक लिया। इससे स्पष्ट होता है कि अतिथि कितना भी क्रूर हो उस पर वार नहीं करते पर देश पर आँच आती है तो 'सर कटा सकते हैं मगर झुका नहीं सकते' यह जज्बा सिर्फ आम भारतीयों में दिखाई देता है।

निष्कर्ष :-

भूमंडलीकरण के युग में सामाजिक परिवर्तन स्पष्ट रूप में दिखाई दे रहा है। आम आदमी देश के लिए समर्पण करता हुआ दिखाई देता हैं देश के राजनेता, अधिकारी और अमीर लोग व्यक्तिगत स्वार्थ में डूबकर देश तथा जनसेवा को भूल गए हैं। देश के इन राजनेताओं, अमीरों और अधिकारियों का यथार्थ चित्रण निम्नलिखित पक्तियों द्वारा किया गया है -

सफेद रंग यहाँ राज करता है / कानून को जेब में डालकर घूमता है /
जाति-धर्म के नाम पर यहाँ / लोगों का कर रहा है बँटवारा /
भूल गया है राष्ट्रभक्ति, देशसेवा / सिर्फ अपनी तरक्की अपनों की सेवा /
अशोक चक्र की गति उन्हें मिली है / खुले आम देश को बेचने की अनुमति मिली है।

संदर्भ :

1. उदय प्रकाश - पॉल गोमरा का स्कूटर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2004, पृष्ठ क्र. 122
2. उदय प्रकाश - पॉल गोमरा का स्कूटर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2004, पृष्ठ क्र. 125
3. उदय प्रकाश - पॉल गोमरा का स्कूटर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2004, पृष्ठ क्र. 96
4. उदय प्रकाश - पॉल गोमरा का स्कूटर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2004, पृष्ठ क्र. 55
5. उदय प्रकाश - पॉल गोमरा का स्कूटर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2004, पृष्ठ क्र. 70
6. उदय प्रकाश - पॉल गोमरा का स्कूटर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2004, पृष्ठ क्र. 71
7. उदय प्रकाश - पॉल गोमरा का स्कूटर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2004, पृष्ठ क्र. 142

आर्टस एंड कॉमर्स कॉलेज, आष्टा

भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणाः 'लगान' के जातीय समीकरण

प्रा. डॉ. दीपक जाधव

राष्ट्रवाद को विशिष्ट राजनीतिक विचारधारा के तहत एकांगी बनाने की कोशिश की जा रही है, जिसे 'लगान' नकारता है। 'लगान' की प्रतीकात्मक लड़ाई में भारत के सभी धर्म-समुदाय अपनी भूमिका अदा करते हैं और अंग्रेजी हुकूमत को चारों खाने चित कर देते हैं। भुवन-हिंदू है तो सोढ़ी सिख, इस्माइल मुसलमान, कचरा दलित, एलिजाबेथ ईसाई, गौरी-भारतीय नारी। यही हमने स्वतंत्रता आंदोलन में भी किया और सफलता अर्जित की। भारतीय राष्ट्रवाद की विशेषता है, 'विविधता में एकता'। यही हमारी ताकत है, जिसे लगान उजागर करता है। भारतीय राष्ट्रवाद अथवा भारतीयता को इसी संदर्भ में देखना चाहिए।

राष्ट्रवाद की संकल्पना भले ही राजनीतिक रही हो जिसका विकास आधुनिक औद्योगिक समाज की जरूरतों के हिसाब से हुआ हो, इसके बावजूद आम जनता में इसका स्वरूप अत्यधिक भावनिक, अतार्किक, कल्पनाशील दिखाई देता है। राष्ट्रवाद देशप्रेम के साथ इतना घुल मिल जाता है कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में जनसाधारण देश प्रेम का पर्याय राष्ट्रवाद को मानता है। देशप्रेम जहाँ देश के प्रति आत्मीयता है, वहीं राष्ट्रवाद प्रतिनिधि मानकों का निर्धारण है। मूर्त राष्ट्र के प्रति भावनिक संवेदन 'देशप्रेम' है जबकि मूर्त राष्ट्र के मूर्त मानकों (भाषा, धर्म, संस्कृति, भूभाग) के प्रति राजनीतिक दृष्टिकोण 'राष्ट्रवाद' है। इसीलिए किसी भी देश के नागरिकों में देशप्रेम की भावना एक-सी होगी लेकिन राष्ट्रवाद संबंधी मान्यताएँ भिन्न-भिन्न, सकारात्मक, उदासीन, नकारात्मक हो सकती हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में भारतीय राष्ट्रवाद की स्थिति को राष्ट्रवाद की संकल्पना के तत्वों, आवश्यक गुणों, मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में देखा जा रहा है, जिसका विश्लेषण-समीक्षा 2001 में प्रदर्शित आशुतोष गोवारीकर द्वारा निर्देशित तथा 2002 में ऑस्कर पुरस्कार 'सर्वश्रेष्ठ विदेशी फिल्म' के लिए नामांकित फिल्म 'लगान' की अनुप्रयुक्ति द्वारा किया गया है।

राष्ट्रवाद परिचयात्मक तत्व के रूप में उभरता है और यह निश्चित भूभाग में रहने वाले लोगों की आपसी पहचान तय करता है। उनके लिए एक धर्म, संस्कृति, भाषा, प्रांत, भौगोलिक प्रदेश की आवश्यकता को महसूस करता है। इस संदर्भ में सुनालीनी कुंभार लिखती हैं, 'राष्ट्रवाद एक ऐसा विश्वास है जो यह मानता है कि यदि एक समूह के सभी लोग समान इतिहास, परंपरा, भाषा और संस्कृति के आधार पर एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, तो उन्हें अपना एक प्रभुसत्ता संपन्न राजनीतिक समुदाय बनाना चाहिए। यह प्रभुसत्ता संपन्न राजनीतिक समुदाय ही राष्ट्र है। इसलिए, 'राष्ट्र' शब्द से तात्पर्य एक ऐसे राजनीतिक समुदाय से है, जिसके सदस्य नजदीकी रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए हों। साथ ही, इस राजनीतिक समुदाय के सदस्य सांस्कृतिक, भाषाई, जातीय और यहाँ तक कि नस्लीय आधार पर भी समरूप जनसंख्या के रूप में रहते हैं।'[1] किंतु भारत जैसे विशालकाय देश में बहुभाषा, बहुधर्म, बहुजाति, बहुसंस्कृति, बहुपरंपराएं, बहुप्रांत,

बहुभौगोलिक वातावरण विद्यमान है अर्थात् राष्ट्रवाद के लिए आवश्यक 'एक' की बजाय भारत में 'बहु' विद्यमान है।

'बहु' यह भारत की समस्या भी है और विशेषता भी। जब 'एक' की बात आएगी तो वह समस्या बनेगी। लेकिन जब विविधता की बात आएगी तो वह विशेषता बन जाएगी। इसी अर्थ में 'विविधता में एकता' भारतीय राष्ट्रवाद की विशेषता रही है, जो संप्रति अपना वजूद खोती-सी दिखाई दे रही है। सवाल यह भी है कि राष्ट्रवाद के लिए आवश्यक एक संस्कृति, भाषा, धर्म की जरूरत भारतीय परिप्रेक्ष्य में कैसे पूरी हो जाती है। इसका उत्तर है- प्रस्थापित वर्ग, संप्रदाय, वर्ण अपनी संस्कृति, धर्म, भाषा को राष्ट्र पर थोप देता है। अर्थात् राष्ट्रवाद जहाँ विशिष्टों की विशिष्टता का संरक्षण करता है, वहीं आम की विशेषता को विशिष्टों की विशिष्टता में समाहित करता है। भारत जैसे बहु सांस्कृतिक देश में देशीय संस्कृति के परिचायक के रूप में प्रस्थापित वर्ग, वर्ण की संस्कृति स्थान पाती है, जिसका यहाँ के बहुसंख्यक समुदाय से विशेष सरोकार नहीं है।

राष्ट्रवाद के लिए आवश्यक तत्व संस्कृति, धर्म, परंपरा, भाषा के रूप में प्रस्थापित वर्ग-वर्ण को स्थान मिलने के कारण राष्ट्रवादी आंदोलन का नेतृत्व भी उन्हीं के हाथों में चला जाता है। भारतीय राष्ट्रवाद की शुरूआत उपनिवेशवाद के विरोध में भले ही हुई हो लेकिन उसका धार्मिक, सांस्कृतिक वर्चस्व प्रस्थापित वर्ग का ही रहा है और उसका नेतृत्व भी बहुतायत प्रस्थापित वर्ग के हाथों में रहा। प्रकारांतर से सत्ता और सत्ता के उपकरणों का केंद्रीय शासक प्रभुत्वशाली प्रस्थापित वर्ग बन जाता है और आम जनता का भविष्य इस केंद्रीय शासित के न्याय बुद्धि पर निर्भर करने लगता है। इसी कारण मार्क्सवाद राष्ट्रवाद का विरोधी बन जाता है। इस बारे में हॉब्सबॉम का मानना है, 'राष्ट्रवाद पूंजीवाद के विकास का एक खास चरण है। राष्ट्रवाद प्रभावशाली वर्ग अर्थात् बुर्जुआ वर्ग को एकजुट करता है। यह बुर्जुआ वर्ग और आम जनता के बीच एक झूठी सामुदायिक भावना उत्पन्न करता है। सच्चाई यह है कि आम जनता को पूँजीवाद में दरिद्रता और शोषण का सामना करना पड़ता है।'[2]

भारतीय राष्ट्रवाद में भी सांस्कृतिक, धार्मिक एवं भाषिक धरातल पर प्रस्थापित वर्ग का वर्चस्व स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। भारतीय राष्ट्रवाद की 'अतीत गौरवगान' की भावना प्रस्थापित वर्ग के इच्छित का प्रतिनिधित्व करता है। 'अतीत गौरवगान' का मार्गक्रमण भविष्य की बजाय भूत की ओर होता है। जिसमें प्रस्थापित वर्ग की पूर्व प्रस्थापित व्यवस्था को कायम रखने की मंशा स्पष्ट दिखाई देती है। इसमें प्रखर रूप से जो पुराना है, वह हर हाल में बेहतर है की भावना निहित होती है, जिसके विरोध को प्रस्थापित वर्ग राष्ट्रवाद से जोड़कर देखने लगता है। अर्थात् तर्क, विचार, विरोध का स्पेस खत्म कर दिया जाता है। जो अनुकूल है, उसे ही प्रासंगिक मानने की भावना बल पकड़ती है। विरोध को खत्म कर देने की या राष्ट्र विरोधी बताने की व्यवस्था को न्याय संगत ठहराने के लिए विशेष मानसिकता के झुंड तैयार किए जाते हैं, जबकि असहमति की परंपरा भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य रहा है। डॉ. रामकुमार इस संदर्भ में 'नामवर सिंह' का हवाला देते हुए लिखते हैं, 'नामवर सिंह ने बहुत पहले लिखा था कि प्रासंगिक क्या वही होता है, जो हमारे विचारों का अनुमोदन करता है और आपके

अनुकूल है? जो आप से भिन्न है और हमें चुनौती देता है, वह प्रासंगिक क्यों नहीं है?'[3] लेकिन राष्ट्रवाद धीरे-धीरे तार्किकता, प्रासंगिकता और मतभिन्नता को संदेह की निगाह से देखने लगता है।

भारतीय राष्ट्रवाद के बाधक तत्वों में संस्कृति, धर्म, भाषा के साथ ही जाति सबसे बड़ा बाधक तत्व पाया जाता है। भारत के लंबे समय तक गुलाम रहने के कारणों में भी हम पाएँगे कि भारतीय परंपरागत जातीय मानसिकता विद्यमान रही है, जो जाति निर्धारित कामों से बाहर आने की सहूलियत नहीं देती। भारत में जातियों, उप जातियों के इतने खेमे हैं कि वे जनमानस को एक नहीं होने देते। सन् 1979 में गठित 'मंडल आयोग' ने सामाजिक एवं शैक्षिक पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) की 3743 जातियों का उल्लेख किया है।'[4] इसमें एससी, एसटी, ओपन की जातियों को जोड़ा जाए तो भारत में लगभग 6000 से अधिक जातियाँ पाई जाती हैं। राष्ट्रवाद जहाँ समता और एकता की बात करता है, वहीं भारत में चार वर्णों के भीतर हजारों जाति निहित हैं, जिनके आचार, विचार, संस्कार, व्यवहार, परंपराएँ भिन्न-भिन्न हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रवाद के मानक तत्वों को कैसे निश्चित किया जाए? इस संदर्भ में निम्न वक्तव्य उल्लेखनीय है, 'समाज का जातीय विखण्डन लोगों के हृदय को जोड़ नहीं पाया और इसने पूरे समाज को द्वेषपूर्ण बना दिया। ऊँच-नीच के भेदभाव ने हृदय को इतना कलुषित किया है कि समाज समवेत सुख व दुख में खड़ा नहीं हो पाता है तो राष्ट्र के लिये कैसे खड़ा होगा। भारत जैसे देश की यह सत्य कहानी है।'[5]

राष्ट्रवाद के यथार्थ और आदर्शवादी दोनों स्थितियों को भारतीय सिनेमा ने व्यक्त किया है। सिनेमा लोक शिक्षा का सर्वाधिक प्रभावशाली साधन है। वह जितना समाजोन्मुखी, यथार्थवादी होगा, उतना ही समाज को सजग, सावधान एवं अंतमुर्खी बनाता जाएगा। इसके विपरीत सिनेमा, सिनेमाकार जितना जातीय वर्चस्ववादी, राजनीतिक प्रोपेगंडा, धार्मिक उन्माद का प्रचारक बनेगा समाज उसी अनुकूल विघातक बनता जाएगा। भारतीय सिनेमा में समांतर सिनेमा ने समाज के दिशा निर्देशक एवं यथार्थ चित्रक के रूप में काम किया। 'सिनेमा भीतर सिनेमा' नामक अपने लेख में डॉ. अनंत पालीवाल लिखते हैं, ' समांतर सिनेमा ने नई ऊर्जा के साथ अर्थवान फिल्मों को जन्म दिया। यह एक आत्मसंतुष्टि के साथ कठिन आंदोलन के रूप में भी था। यह आंदोलन सिनेमा जगत में एक बड़े परिवर्तन की गुंजाइश तलाश रहा था। यह गुंजाइश विचारधारा के साथ-साथ सामाजिक दर्शन के उस पक्ष से भी जुड़ी थी, जो मसाला फिल्मों की चकाचौंध में धुंधले हो चुके थे।'[6] अर्थात समाज की वास्तविकता को फिल्म की कलात्मकता के बावजूद समांतर सिनेमा ने पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ चित्रित किया।

'लगान' 2001 में प्रदर्शित फिल्म है, जो समांतर सिनेमा न भी कही जाए तो भी उसकी प्रस्तुति यथार्थपरक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से संबद्ध है। यह वही दौर है, जहाँ से भारतीय राष्ट्रवाद विकसित हो रहा था। अंग्रेजों के शासन् काल की अर्थ-शोषक नीति से आहत सामान्य जनजीवन, उसका रोजमर्रा का संघर्ष, अभाव, सामाजिक-सांस्कृतिक विभेद, प्रखर जातीय अहमभाव आदि को 'लगान' बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित करता है। एक भयावह समस्या से जूझता समाज या तो अपना सब कुछ खो देता है या बगावत

पर उतर आता है। इसी बात को 'लगान' दर्शाता है लेकिन यह बात ठीक उस तरीके की है जैसे पाकिस्तान के आक्रमण या क्रिकेट मैच के समय भारतीय राष्ट्रवाद जागृत हो जाता है और एकता की बातें करने लगता है। इसके अभाव में वह देश की अस्मिता त्याग राज्य, धर्म, जाति का प्रतिनिधि बन अपने ही देशीय बंधुओं को दुत्कारता दिखाई देता है।

'लगान' फिल्म लगान चुकाने में असमर्थ लोगों की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती है। लोगों पर हो रहे अन्याय-अत्याचार तथा अंग्रेजी जुल्मों को बयां करने वाली यह फिल्म न केवल भारतीय समाज की यथास्थिति को अभिव्यक्त करती है बल्कि भारतीय समाज के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करती है। वह आदर्श है एकता का। भारत के बारे में सदियों से कहा जाता है कि यह देश विविधता में एकता का उदाहरण है। इसके बावजूद हम पाते हैं कि यहाँ एकता नाम मात्र दिखाई देती है। असल जिंदगी में एकता, बंधुता, भाईचारा दिखाई नहीं देता। वह जात, प्रांत, संप्रदाय, धर्म आदि कई खेमों में बँटकर रह गया है। लगान के माध्यम से हम एक ऐसी जीत से मुखातिब होते हैं जो किसी एक जाति, धर्म, संप्रदाय का प्रतिनिधित्व नहीं करती बल्कि भारतीय होने का प्रतिनिधित्व करती है। लगान से मुक्ति पाने के लिए क्रिकेट का जो मुकाबला हो रहा है, उसमें भारतीय खेमे की ओर से जिन्होंने बेहतर काम किया है, उनके नाम हम ध्यान से देखे तो भारतीय एकता का एक बेहतर उदाहरण पेश किया गया है। इस मुकाबले में बेहतर भूमिका अदा करने वाले खिलाड़ियों के नाम है- भुवन, देवा सिंह सोढ़ी, कचरा, इस्माइल, पूरन, भूरा, लाखा आदि।

भुवन भारतीय खेमे का कप्तान भी है और बेहतर खिलाड़ी भी है। अंग्रेज टीम जब बल्लेबाजी कर रही होती है, तब माहौल ऐसा होता है कि वह कितने ही रन बनाए, भारतीय टीम उन रनों का पीछा नहीं कर पाएगी। सारी टीम क्या करे, इस मायूसी में डूबी हुई है और तब कचरा की फिरकी रंग लाती है। वह हैट्रिक लेता है और अंग्रेज टीम उनके रनों के लक्ष्य से बहुत कम रनों पर सिमट जाती है। कचरा दलित पात्र है और दलितों का प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय बल्लेबाजी का दारोमदार भुवन के साथ ही अन्य कुछ खिलाड़ियों के कंधों पर है, जो उसे निभाने का भरसक प्रयास करते हैं। भुवन बल्लेबाजी का आगाज देवा सिंह सोढ़ी के साथ करता है। दोनों की जोड़ी भारतीय जीत की नींव रखने का काम करती है। देवा सिंह सोढ़ी सिख है। देवा सिंह सोढ़ी के आउट हो जाने के बाद कोई भी भारतीय बल्लेबाज जिम्मेदारी से नहीं खेलता। अंग्रेज उन्हें उकसाने में कामयाब हो जाते हैं और वह भी बिना सोचे-समझे तैश में आ जाते हैं और अपनी विकेट गँवा देते हैं। हालात ऐसे बन जाते हैं कि करें तो क्या करें? ऐसे में बल्लेबाजी करने के लिए इस्माइल आता है। इस्माइल अच्छा बल्लेबाज है लेकिन पहली ही गेंद उसके सर पर लग जाती है। वह चोटिल हो जाता है और उसे पवेलियन वापस लौटना पड़ता है। इससे गुस्साए भारतीय बल्लेबाज फिर एक बार अपना गुस्सा गेंद पर निकालने की कोशिश करते हैं और अंग्रेजों के जाल में फँस जाते हैं। विकेट गिरते जाते हैं और भुवन उनकी ओर ताकता रह जाता है।

दूसरे दिन के खेल में भी बल्लेबाजी में विशेष सुधार नहीं होता। ईश्वर काका जो

बूढ़े भी हैं और मरीज भी हैं, वह अच्छा खेल तो लेते हैं किंतु शरीर साथ नहीं देता। अपने अच्छे प्रदर्शन के बाद वह रन आउट हो जाते हैं। हालात ऐसे हैं कि जिस लगान से बचने के लिए मुकाबला हो रहा है, अगर उसमें जीत नहीं मिली तो लगान तिगुना देना पड़ेगा। इस स्थिति में भारत के लिए मददगार साबित होता है चोटिल हुआ इस्माइल। वह अपने बेटे टिकू को रनर बनाकर फिर एक बार मैदान में हाजिर हो जाता है। इस्माइल पूरी सावधानी और जिम्मेदारी से खेलता है। इस्माइल और भुवन भारत को जीत के काफी नजदीक लाते हैं किंतु इसी वक्त अंग्रेजों की जालसाजी का शिकार होता है टिकू। वह रन के लिए दौड़ता है। अंग्रेज बॉलर बिना गेंद डाले उसे रन आउट कर देता है और इस्माइल आउट हो जाता है। इस्माइल मुसलमान है। अब भारतीय टीम की हार तकरीबन निश्चित मानी जाती है। ऐसे में फिर एक बार कचरा काम आता हैं। कचरा गेंदबाज है बल्लेबाज नहीं। इसके बावजूद वह भुवन के साथ डटा रहता है। अपने से जो भी बने वह इमानदारी से करता है। अंतिम गेंद पर छह रनों की आवश्यकता है। अंतिम गेंद पर आवश्यक रन नहीं बन पाते किंतु सौभाग्य से वह गेंद नो बॉल होती है और भुवन अंतिम गेंद पर छक्का लगाकर मैच जीत लेता है।

इस मैच का एक खास किरदार है लाला जो अंग्रेजों से मिला हुआ है। जानबूझकर गेंद छोड़ना, मिस फील्ड करना, इस बात को जाहिर करता है किंतु अपनी गलती में सुधार करते हुए वह भारतीय खेमे के साथ ईमानदारी से जुड़ जाता है। 'लगान' के इस क्रिकेट मैच को केवल एक अदद जीत की तौर पर नहीं देखना चाहिए बल्कि इस जीत के फामूर्ले पर गौर करना चाहिए। भारतीय खेमे को जीत तक पहुँचाने में जो खिलाड़ी अपनी अहम भूमिका निभाते हैं, उनमें भुवन हिंदू है, देवा सिंह सोड़ी सिख है, इस्माइल मुसलमान है, तो कचरा दलित है। सभी भारतीयों को खेल के लिए तैयार करने वाली एलिजाबेथ इसाई है अर्थात् भारत बनता है हिंदू, मुस्लिम, सिख, इसाई और दलितों से। लाखा जो हिंदू होकर भी अपने निजी स्वार्थ के लिए अंग्रेजों की मदद करने वाला है, उसका असली चेहरा सामने लाने का काम ईसाई कोच करती है। इतिहास गवाह है कि भारतीय लोगों को गुलामी में रखने के लिए इस भारतीय गद्दारी ने ही अंग्रेजों का साथ दिया और इस गुलामी के खिलाफ आवाज उठाने की पैरवी भी अंग्रेजों ने ही की है।

लगान की जीत हमें यह सोचने के लिए मजबूर कर देती है कि भारत तभी जीत सकता है या अपने उद्देश्य को हासिल कर सकता है, जब वह एक हो। उसका इस रूप में एक होना ही राष्ट्रीयता है। भारत के इन तबकों का एक होना यहीं भारत की ताकत है। यहीं भारत का वजूद है। जब यह सारे एक हो जाते हैं तब भारत मुश्किल से मुश्किल साध्य को भी हासिल कर सकता है। भारत एक था, इसीलिए वह डेढ़ सौ साल की अंग्रेजी हुकूमत को परास्त कर सका। सांप्रदायिक एकता के महत्व को समझाने के कारण ही शिवाजी महाराज तत्कालीन दुनिया के सबसे बड़े बादशाह औरंगजेब को धूल चटा सके। भारत एक होता है तब वह कारगिल में दुश्मनों को चारों खाने चित कर देता है। एक होने से, जुड़ने से भारत बनता है। इसीलिए भारतीय राष्ट्रवाद में भी विभिन्न धर्मों-संप्रदायों की एकता की बात होनी चाहिए। बंधुता, साहचर्य और अपनापन की भी बात होनी चाहिए। इसलिए डॉ. अंबेडकर कहते हैं, 'राष्ट्रवाद तभी औचित्य ग्रहण कर

सकता है, जब लोगों के बीच जाति, नस्ल या रंग का अंतर भूलकर उनमें सामाजिक-भ्रातृत्व को सर्वोच्च स्थान दिया जाए।'[7]

इसके बावजूद वर्तमान स्थिति इतिहास के इस बिंदु को नजरअंदाज करती दिखाई देती है। भारत जुड़ने से बनता है, यह तथ्य जानते हुए भी सियासी राजनीति 'राष्ट्रवाद' के नाम पर भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक, सांप्रदायिक, जातीय मानसिकता को पैना बना रही है। बहु सांस्कृतिक, बहु धार्मिक, बहुभाषिक राष्ट्र होने के बावजूद एक धर्म विशेष को बढ़ावा देकर राष्ट्रीय भावना को आहत किया जा रहा है। लगान फिल्म की जीत हमें एक होने का संदेश देती है।

निष्कर्ष- राष्ट्रवाद बड़ी ही विस्तृत एवं विविधांगी संकल्पना है। भारतीय राष्ट्रवाद की स्थिति और भी अधिक विवादों से भरी है। भारतीय नागरिकों की प्रतिबद्धताएँ भी बहुस्तरीय दिखाई देती हैं। विविधता में एकता उसकी शक्ति है, इसे और अधिक मजबूत कर आगे बढ़ना होगा। 'अतीत गौरवगान' से आगे बढ़कर भविष्य की ओर देखना होगा। न केवल उच्च वर्गीय बल्कि समस्त भारत के बारे में सोचना होगा। केवल प्रस्थापित वर्ग के मानकों एवं अतीत गौरवगान तक सीमित होने पर अन्य वर्ग खुद को अलग-थलग महसूस करेंगे। अतः हमें डॉ. अंबेडकर के 'मैं सबसे पहले भारतीय हूँ और सबसे अंत में भी भारतीय ही हूँ' का निर्वाह कर भारतीय राष्ट्रीय चेतना को ऊर्ध्वगामी बनाना होगा।

संदर्भ :

1. राजनीति सिद्धांत एक परिचय- संपादक राजीव भार्गव, अशोक आचार्य (अनुवाद कमल नयन चौबे)- डार्लिंग किंडरस्ले प्रा. लि. नोएडा - पृ. 256
2. वहीं, पृ.262
3. हिंदी की साहित्यिक संस्कृति और भारतीय आधुनिकता- डॉ. राजकुमार- राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002- पृ.47
4. httPÞs://hi.m.wikiPÞedia.org/wiki/%E0%A4%AE%E0%A4%82%E0%A4%A1%E0%A4%B2_%E0%A4%86%E0%A4%AF%E0%A5%8B%E0%A4%97
5. httPÞs://www.scotbuzz.org/2017/04/rashtreeyata-mein-badhak-tatva.html?m=1
6. बोधिसत्व बाबासाहेब टुडे- अंक जुलाई, 2022- सं. ज्ञानप्रकाश जख्मी- राज गार्डन कॉलोनी, आलमनगर, लखनऊ-226017 पृ.33
7). डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वांग्मय-खंड 5- डॉ. अंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली-110001, पृ.5
8. तद्भव- अंक अक्टूबर, 2015- सं. अखिलेश- 18/201, इंदिरा नगर लखनऊ-226016

सहा. प्राध्यापक तथा विभाग प्रमुख
हिंदी विभाग
वेणूताई चव्हाण कॉलेज, कराड,
जिला- सातारा

'पं. प्रदीप के गीतों में राष्ट्रीय चेतना : पुष्पा भारती के संस्मरण के संदर्भ में'

शोध निर्देशक - डॉ. महिपती जगन्नाथ शिवदास
शोध छात्रा - रूपाली विट्ठल माने

साहित्य भी एक ऐतिहासिक दस्तावेज माना जाता है। भाव, बुद्धि, कल्पना, शैली आदि तत्वों से साहित्य का निर्माण होता है। विभिन्न भावों में से राष्ट्रीयता का भाव अधिक महत्वपूर्ण है। प्राचीन काल से लेकर 21वीं सदी तक साहित्य में विभिन्न विधाओं के दर्शन होते हैं। विभिन्न विधाओं में समायी राष्ट्रीयता की भावना समाज का दिशा निर्देशन करती है। गद्य की यथार्थपरक विधा संस्मरण में पुष्पा भारती जी ने पं. प्रदीप के गीत और उनकी यादों पर प्रकाश डाला है। यादें जो वर्तमान और भविष्य के पथ का मार्गदर्शन करती हैं।

समाज में घटित घटनाओं का प्रतिबिंब साहित्य में अंकित होता है। इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। आधुनिक काल ने साहित्य को विभिन्न गद्य विधाओं से परिचित कराया। यथार्थपरक गद्य विधाओं में आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, रिपोर्ताज, साक्षात्कार आदि विधाओं का अपना महत्व है। इन्हीं विधाओं में से एक महत्वपूर्ण विधा है 'संस्मरण'। संस्मरण अर्थात स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति के संबंध में लिखा जाने वाला लेख। 'साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में कार्य करने वाले विख्यात व्यक्ति, स्वभावतः जब किसी अन्य महापुरुष अथवा विशिष्टता संपन्न सामान्य पुरुष के संबंध में चर्चा करते हैं अथवा स्वयं के जीवन के किसी अंश को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करते हैं, तब संस्मरण का जन्म होता है।'[1]

भले ही संस्मरणों का प्रकाशन काल 21वीं सदी रहा हो किंतु संस्मरण में संस्मरणकार बचपन की यादें, अपने दोस्त, अपना गांव, गांव के लोग और रिश्तेदार, अपने गुरु आदि के साथ व्यतीत किए गए क्षणों को अंकित करता हैं। हिंदी साहित्य की रचनाकार पुष्पा भारती जी का 2016 में प्रकाशित संस्मरण 'यादें, यादें !.. और यादें..' में माखनलाल चतुर्वेदी, अज्ञेय, महादेवी, निराला, विष्णुकांत शास्त्री, आदि रचनाकारों के साथ कवि प्रदीप को याद करते हुए, उनके काव्य में राष्ट्रीय चेतना स्पष्ट किया है।

मनुष्य के स्थाई भाव अपना कार्य, आलंबन प्राप्त होने से करते हैं। भक्ति, वत्सलता उन्हीं भावों में से एक महत्वपूर्ण भाव है। भगवान के प्रति श्रद्धा भक्ति है, तो राष्ट्र के प्रति प्रेम राष्ट्रीय भावना है। प्राचीन युग से जब भी हमारे राष्ट्र पर किसी अन्य देश का आक्रमण हुआ तो अपनी मातृभूमि के लिए मर मिटने वालों की संख्या भी अधिक रही। अपने राष्ट्र का अभिमान सर्वथा उच्च रहा है, यही भावना यानी राष्ट्र के प्रति असीम प्रेम और अपनापन राष्ट्रीयता कहलाती है। राष्ट्र को तन-मन-धन अर्पण करने की भावना राष्ट्रीयता है। राष्ट्रीयता एक मानसिक तथा आध्यात्मिक भाव है, जो जनमानस को विकसित पथ का मार्ग प्रदान करता है।

बाबू गुलाबराय के मतानुसार - ''एक सम्मिलित राजनीतिक ध्येय में बंधे हुए किसी विशिष्ट भौगोलिक इकाई के जन समुदाय के पारस्परिक सहयोग और उन्नति की

अभिलाषा से प्रेरित उस भू-भाग के लिए प्रेम और गर्व की भावना को राष्ट्रीयता कहते हैं।'[2]

'राष्ट्रीय' शब्द का अर्थ है- 'अपने राष्ट्र की एकता, महत्ता और उन्नति आदि से संबंध रखने वाला।'[3] 'राष्ट्रीयता' का अर्थ है-'अपने देश या राष्ट्र का उत्कट प्रेम।'[4]

देश के सम्मान की बात आते ही राष्ट्र के सभी मनुष्य अपना धर्म, वंश, जाति और शत्रुता आदि भूल कर एक साथ खड़े होकर राष्ट्रीय बन जाते हैं, ताकि समस्या का समाधान हो। साहित्य के इतिहास में देखा जा सकता है कि आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल से लेकर 21वीं सदी तक हिंदी साहित्य राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। स्वतंत्रता-पूर्व काल में स्वतंत्रता प्रमुख उद्देश्य होने के कारण पत्र-पत्रिकाएं, काव्य, गद्य में राष्ट्रीय भावना युक्त साहित्य का निर्माण अधिक हुआ। स्वतंत्रता मिलने के पश्चात राष्ट्रप्रेम स्थायी बनकर रह गया। जब-जब देश पर प्राकृतिक आपदा, परकीय आक्रमण, भ्रष्टाचार, देश की अंदरूनी समस्याएं अपना सर ऊंचा उठाएंगी, यही आलंबन पाकर राष्ट्रभक्ति या राष्ट्रीय चेतना का स्थायी भाव उन्मुक्त रूप धारण कर लेगा। यही 21वीं सदी की वास्तविकता है। राष्ट्रीय भावना का वास्तविक रूप त्याग, बलिदान में प्रकट होता है, यह स्वतंत्रता पूर्व काल का तथ्य है। आज भी यह जरूरी है किंतु त्याग और बलिदान के साथ आधुनिक युग की आवश्यकता है- धार्मिक सद्भाव, सजगता, समानता, नैतिकता, संरक्षण, भ्रष्टाचार का प्रतिकार आदि। धर्म, वंश, लिंग, जाति, संप्रदाय आदि में से कोई भी राजनीतिक मसला हो, कोई भी राजनेता या कोई भी पक्ष हो, सबसे बढ़कर हमारा राष्ट्र है और उस राष्ट्र के उन्नति में हम सक्रिय योगदान दें, यह आज की अनिवार्यता है। डॉ. नरेंद्र शर्मा कहते हैं- 'व्यक्ति चाहे साहित्यकार हो, वैज्ञानिक हो, राजनेता हो, शिक्षक हो, विद्यार्थी हो, व्यापारी हो, प्रशासनिक अधिकारी हो, कर्मचारी हो या मात्र आम आदमी हो- प्रत्येक से अपेक्षित है कि वह अपने कर्म के प्रति प्रतिबद्ध हो। सामाजिक विकास में, ज्ञान-अन्वेषण में, वैज्ञानिक अनुसंधान में, सेवाओं के अभिनियन्त्रण में, मानवोत्कर्ष में, उद्यम आदि विविध क्षेत्रों में अपना योगदान दें।'[5]

हिंदी साहित्य में विभिन्न कवि एवं लेखकों ने राष्ट्रीय चेतना युक्त साहित्य लिखकर समाज को नई दिशा दी है। चारण कवि, भक्ति काल में संत-सूफी, रीतिकाल में भूषण, आधुनिक काल में भारतेंदु, दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, धूमिल, यशपाल, नागार्जुन, कृष्णा सोबती आदि रचनाकारों ने न केवल हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाया बल्कि समाज को राष्ट्रीयता का यथार्थ परिचय देकर उसमें उत्साह भी भर दिया। राष्ट्रीयता के लिए आवश्यक शस्त्र सिर्फ बंदूक, तलवार या भाला ही नहीं बल्कि 'कलम' भी है, जो रणभूमि के बजाय कर्मभूमि में नित्य कार्यरत रहता है। पुष्पा भारती अपनी स्मृतियों के गलियारों में बसे कवि 'प्रदीप', जिनका पूरा नाम रामचंद्र नारायणजी द्विवेदी है, उनकी देशभक्ति और राष्ट्रीय चेतना को उजागर करती हैं।

सातवीं कक्षा से कविता करने वाला यह छोटा सा बच्चा जब बी.ए. की पढ़ाई के लिए लखनऊ आता है तो पाता है कि उससे पहले उसका 'नाम' लखनऊ पहुंच गया है। एक कवि के रूप में निराला जी द्वारा लिखा गया लेख 'माधुरी' पत्रिका में प्रकाशित

हो चुका था, जिसमें प्रदीप जी का नाम और हिंदी कविताओं की सराहना, हिंदी के कवि निराला जी ने की थी। यह किसी सम्मानीय पुरस्कार से कम नहीं था। जो सम्मान प्रदीप जी को निराला जी से मिला, वे उससे प्रभावित हुए और उन्होंने तय किया कि वे अध्यापन कार्य करते हुए भी, गंभीरता के साथ कविता लेखन का कार्य करेंगे, देश और भाषा की सेवा करेंगे। हिंदी कविता, शेर, दोहा, आदि में प्रदीप जी पहले से लेखन करते थे। वे श्री रविशंकर रावल और हिमांशु राय से मिलने पर फिल्मों के लिए गीत लिखने लगे, जिससे अच्छी आय भी होती थी। विभिन्न गीतों को लिखने के पश्चात भी देश-सेवा की तड़प उन्हें चुप नहीं बैठने दे रही थी। माहौल अंग्रेजी हुकूमत का था किंतु कलम का शस्त्र पकड़कर तो देशसेवा की जा सकती है, यह प्रदीप जी के मन ने ठान लिया। अगर देश प्रेम पर ऐसा कोई गीत लिखा जाए कि जिससे समस्त देशवासी याद ही न रखें बल्कि गीत से प्रेरणा भी मिले और ऐसा गीत लिख भी लिया गया। परिवेश ऐसा जहां अंग्रेजों द्वारा कब, क्या हो बता नहीं सकते, किसी बात का अंदेशा बांधा नहीं जा सकता था लेकिन दिल दिमाग को राष्ट्रीयता की आस लगी रही। जिसकी तड़प में गीत के बोल कागज पर खिल उठे। गीत के बोल थे -

'आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है,
दूर हटो ए दुनिया वालो हिंदुस्तान हमारा है।'

ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा प्रदीप जी पर वारंट जारी कर दिया गया, जिस कारण उन्हें भूमिगत भी होना पड़ा। फिर ब्रिटिश प्रशासन् के सेंसर बोर्ड द्वारा प्रदीप जी को बुलाया गया। वहां पर प्रदीप जी ने 'फिर' शब्द का सहारा लेकर यह गीत कैसे सरकार के हक में है, यह स्पष्ट किया। बाकी भारतीय जनता तो समझ ही गई कि प्रदीप जी की राष्ट्रीय भावना क्या है। प्रदीप जी द्वारा फिल्म 'बंधन' के लिए लिखा गया गीत 'चल-चल रे नौजवान', सिंध और पंजाब विधानसभा द्वारा 'राष्ट्रीय गीत' घोषित कर दिया गया। उन विधानसभाओं में यह गीत गाया जाता रहा। उस समय छोटी-सी इंदिरा गांधी जी ने बालकों की एक वानर सेना बनाई थी, जिसमें यह गीत प्रतिदिन प्रभात फेरी की तरह गाया जाता था। राष्ट्रीय चेतना से भरा यह गीत पूरे भारत भर में बहुत मशहूर हुआ, हर छोटे-बड़े के जुबां पर यह गीत आने लगा। गीत के बोल-

'चल-चल रे नौजवान, कहना मेरा मान,
चल- चल रे नौजवान'

प्रदीप जी के लिखे हुए राष्ट्रभक्ति के गीत सिर्फ मशहूर ही नहीं हुए बल्कि जनमानस के मन पर अपनी गहरी एवं अमिट छाप छोड़ गए हैं। इसी संदर्भ में पुष्पा भारती को श्री पुरुषोत्तम दास टंडन द्वारा प्रदीप जी को लिखा हुआ पत्र और पत्र में लिखी बात याद आती है- 'साहित्य की क्षति तो तुमने की, लेकिन जनता को सुरुचिपूर्ण और प्रेरणादाई गीत तुमने दिए, वैसा और कोई नहीं कर सका, इसका मुझे संतोष है।'[6]

प्रदीप जी ने फिल्म-जगत को 500 से अधिक हिंदी गीत दिए हैं। राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण ये गीत हिंदी साहित्य की समृद्धि हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी पर उनके लिखे सैकड़ों गीत हैं, जिनमें एक प्रमुख गीत जो आज भी समस्त जनता की जुबां पर आता है। गीत के बोल है-

'साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल,
दे दी हमें आजादी बिना खड्ग, बिना ढाल।'

गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित कवि प्रदीप जी ने अपने वास्तविक जीवन में धन-दौलत को राष्ट्रीय भावना से बढ़कर कभी नहीं समझा। पैसे के मोह में प्रदीप जी ने हिंदी साहित्य जगत् से दूर रहकर और फिल्म जगत से जुड़ कर पैसा यानी लक्ष्मी जी का साथ पाने की कोशिश की ऐसा कहा गया है। जब बात आदर्श, उसूल और रोटी की आ जाए तब मौलिक आवश्यकता के अनुसार इंसान रोटी का चयन करेगा और जितना संभव है, उतना अपने आदर्शों और उसूलों पर चलने की कोशिश करेगा। सत्यदेव त्रिपाठी के अनुसार- 'एक तरफ मानवीय आदर्श, दूसरी तरफ रोजी-रोटी यह द्वंद भी आज के रोजी-रोटी तक सिमटे समय की ही देन है। आदर्श के समक्ष यथार्थ का बेहद सतही रूप है।'[7]

प्रदीप जी ने यह तय किया था बिना पैसे लिए कोई भी गीत नहीं लिखूंगा परंतु जब बात देशभक्ति की आयी तो, प्रदीप जी ने यह गीत बिना पारिश्रमिक लिए, देश के नाम कर दिया। यह वही गीत है, जिसमें राष्ट्रीयता की भावना से आज भी लोगों की आंखें नम हो जाती हैं। यह गीत सन् 1962 भारत-चीन युद्ध में शहीद जवानों को श्रद्धांजलि देते हुए लिखा गया था, जिसको सुनकर तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु भी अपनी आंखों से छलकता पानी नहीं रोक पाए थे तथा जिसे भारत की गान-सम्राज्ञी लता दीदी ने गाया था। गीत के बोल हैं-

'ऐ मेरे वतन के लोगों जरा आंख में भर लो पानी,
जो शहीद हुए हैं उनकी जरा याद करो कुर्बानी।'

प्रस्तुत गीत को रिकॉर्ड करने वाली कंपनी से भी प्रदीप जी द्वारा करार किया गया कि इस गीत के रिकॉर्डिंग से जो रॉयल्टी प्राप्त होगी, वह देश के 'रक्षा विभाग' के 'सैनिक कल्याण कोष' में जमा कर दी जाएगी। इस राष्ट्रीय चेतना से समस्त भारत की जनता भावविभोर होकर रह गई। असंख्य की गिनती में 'ऐ मेरे वतन के लोगों..' का रिकॉर्ड बिक गया। उससे कवि प्रदीप जी पर लक्ष्मी जी छाया बनकर बरसतीं किंतु राष्ट्रीय चेतना से अधिक उन्हें कुछ भी नहीं लगा। तो यह कहना सर्वथा गलत है कि लक्ष्मी की चाहत में सरस्वती को छोड़कर प्रदीप जी फिल्मी जगत की ओर मुड़े। प्रदीप जी चाहते तो रॉयल्टी ले सकते थे किंतु राष्ट्रीय चेतना ही है, जो खुद से ज्यादा राष्ट्र को महत्व देती है। राष्ट्रीयता के लिए लिखे प्रदीप के गीत सहज और सशक्त हैं। रचनात्मकता ऐसी लुभावनी कि संगीत के सुरों में पिरोई जाने पर सदियों तक याद रखना संभव है। स्वतंत्रता-पूर्व काल में लिखे गए गीत आज स्वतंत्रता के 75 वर्ष पश्चात भी उसी विश्वास से गाए जाते हैं।

'आओ बच्चों तुम्हें दिखाएं झांकी हिंदुस्तान की,
इस मिट्टी से तिलक करो यह धरती है बलिदान की।'

उपर्युक्त गीत 1954 में बनी फिल्म 'जागृति' के लिए प्रदीप जी द्वारा लिखा गया और उन्हीं की आवाज में गाया भी गया। इस गीत द्वारा समग्र भारत का प्राकृतिक सौंदर्य, भारतीय संस्कृति, भारतमाता की स्वतंत्रता के लिए बलिदान देने वाले वीरों का

गुणवर्णन, भारतीय राज्यों की गरिमामयी परंपरा आदि प्रस्तुत होती है। स्वतंत्रता के सात साल पश्चात लिखा यह गीत बच्चों के मन में राष्ट्रीय चेतना भर देता है। प्रदीप के गीत भारतीय सभ्यता, संस्कृति में योगदान देते हैं। साथ ही, राष्ट्रीय चेतना को जागृत बनाए रखते हैं। पुष्पा भारती 'धर्मयुग' के संपादक धर्मवीर भारती की सहचारिणी और हिंदी लेखिका 'धर्मयुग' की रचनाओं की साक्षी जिन्होंने, श्री.पुरुषोत्तम दास टंडन के पत्र को पढ़कर कहा है- 'हां भाई, सचमुच न भूतो न भविष्यति गीत लिखे हैं आपने।'[8]

राष्ट्रीयता के लिए गीत लिखने वाले गीतकार प्रदीप जी का देहांत 11 दिसंबर,1998 में हुआ। जिस युग में प्रदीप जी ने गीत लिखे उस युग से लेकर आज तक भूमंडलीकरण, बाजारवाद, तकनीकी विस्फोट, संचार माध्यमों में हुई बढ़ोतरी आदि में विभिन्न परिवर्तन हुए। परिवर्तन समाज में ही नहीं साहित्य में भी हुआ है। साहित्य जिसने आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक विभिन्न वाद देखे हैं, गद्य की नवीनतम विधाएं देखी हैं, बदलते बिंब, प्रतीक, शैली, मुद्रण-कला का विकास आदि देखे हैं। परिवर्तन के इस दौर में हिंदी साहित्य में बसी राष्ट्रीय चेतना आज भी उसी रूप में कायम है जिस रूप में थी। पुष्पा भारती के अनुसार प्रदीप जी गांधीवादी विचारों से प्रभावित थे। सत्य, अहिंसा, सर्वधर्म समभाव, नम्रता आदि विचारों से युक्त, अपने जीवन में प्रदीप जी मिलनसार बने रहे। प्रदीप जी अपने सिद्धांतों पर कायम रहे, अपने सिद्धांतों से कभी कोई समझौता नहीं किया। वे इलाहाबाद के साहित्यिक माहौल से मुंबई तो आ गए किंतु उन्होंने खुद के भीतर बसे रामचंद्र नारायण द्विवेदी को कभी बदलने नहीं दिया। श्री हिमांशु राय ने कहा था आपका नाम रेलगाड़ी की तरह बहुत लंबा है, तब प्रदीप जी ने रामचंद्र नारायण द्विवेदी इस नाम से 'प्रदीप' यह छोटा-सा नाम धारण कर लिया। उन्होंने अपना नाम भले ही बदल लिया किंतु जीवन में, मुंबई के फैशन को अपने अंदर कभी भी तब्दील नहीं होने दिया। अपनी पोशाक में वे धोती-कमीज पहनते थे। कभी कभार सूती-सफेद कोट पहन लेते थे। गांधी के विचारों का अनुकरण करते हुए प्रदीप जी अपने जीवन में स्वदेशी चीजों को ही महत्व देते रहे। पुष्पा जी कहती है- 'स्वदेशी प्रेम, स्वदेशी संस्कृति, स्वदेशी रहन-सहन और स्वदेशी विचार व स्वप्न उन्होंने कभी छोड़े ही नहीं। सचमुच कबीर की झीनी-बीनी चदरिया उन्होंने ज्यों की त्यों धर रखी थी।'[9]

हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय काव्यधारा युक्त रचनाओं ने राष्ट्रीय गौरव, राष्ट्रीय अस्मिता के साथ सामाजिक कुरीतियों का विरोध, समाज सुधार की ओर अपना लक्ष्य निर्धारित करते हुए राष्ट्रीय भावना युक्त साहित्य लेखन किया। प्रदीप जी ने भाषा के साथ कभी कोई समझौता नहीं किया। भाषा व्यक्तित्व की पहचान मानी जाती है। गीतकार का अनुभव, उसके आदर्श, सौंदर्यात्मक दृष्टि, गीतकार के गीतों में झलकते हैं। उन्ही गीतों से गीतकार को पहचान मिलती है। प्रत्येक रचनाकार की अपनी विशेषता होती है, कविता में, गीतों में सहजता, स्वाभाविकता, जनभाषा अर्थात बोलचाल की भाषा का प्रयोग करें तो वह गीत अपनेपन की भावना से परिपूर्ण हो जाते हैं। प्रदीप जी कलम का शस्त्र चलाते तो यह सावधानी भी बरतते कि अपनी कलम से राष्ट्रीयता बरकरार रहे। अर्थात फिल्मों के क्षेत्र में गीत लेखन करते हुए भद्दे और कामचलाऊ गीत प्रदीप जी ने कभी नहीं लिखे। जबकि फिल्मों में ऐसे गीतों की मांग बढ़ चढ़कर की जा रही थी। प्रदीप जी

ने भाषा और विचारों से कभी कोई समझौता नहीं किया बल्कि भद्दे और कामचलाऊ गीत लिखने से साफ इनकार कर दिया, तो अपनी फरमाइश के अनुसार गीत ना बनते देख कर, फिल्मी क्षेत्र के कुछ लोग उन्हें घमंडी कहते रहे। राष्ट्रीय चेतना से भरे गीत लिखकर उन्होंने जो अपनी छवि बनाए रखी, वह हमेशा बरकरार रही। प्रदीप जी के गीतों के शब्द, भाषा से सोच समझकर चयनित किए गए शब्द हैं, जिससे राष्ट्रभाषा का अभिमान होता है। प्रो. दिलीप सिंह कहते हैं - 'भाषा, कल्पना, संवेदना और स्मृति यह चारों वरदान ईश्वर ने मनुष्य को भरपूर दिए हैं। किसी भी व्यक्ति के पास इनकी पूंजी होती है- जाति, धर्म, वर्ग, लिंग का यह कोई भेद नहीं है। जन्म लेते ही मानव-शिशु एक निश्चित भाषा समुदाय की सदस्यता स्वतः प्राप्त कर लेता है। फिर उसी समाज में वह अनुकरण के सहारे भाषा के व्यावहारिक रूप का अर्जन करता चलता है। इसी भाषा के माध्यम से मनुष्य अपनी संवेदनाओं को धार देता है। आमफहम भाषा को वह कविता की भाषा बना देता है। अपनी संवेदना को प्रतीकों-बिंबों के जरिए अभिव्यक्त करने में उसकी कल्पना शक्ति की भूमिका प्रमुख हो जाती है।'[10]

प्रदीप जी पर हिंदी साहित्य से अलग रहने का आरोप भी लगाया गया है किंतु हिंदी सिनेमाई गीतों द्वारा दिए गए उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। प्रदीप के गीत ऊर्जा से भरे हुए हैं। आज भी प्रदीप जी के गीत प्रेरणा देने का कार्य करते हैं। पुष्पा जी के मतानुसार राष्ट्रीय चेतना भरे प्रदीप के गीत और राष्ट्रीयता से युक्त संपन्न व्यक्ति प्रदीप जी को पांचवी कक्षा से लेकर बारहवीं कक्षा तक पाठ्यक्रम में होना आवश्यक है। देश की आने वाली पीढ़ी के चरित्र निर्माण में राष्ट्रीय चेतना महत्वपूर्ण कार्य करेगी। हिंदी के पाठ्यक्रम में हिंदी के विभिन्न रचनाकारों की कृतियां समाविष्ट हैं किंतु राष्ट्रीयता युक्त गीतकारों की रचनाएं एवं उनका जीवन भी राष्ट्रीयता से भरा हो तो उसे पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना आवश्यक है। समाज का प्रत्येक वर्ग प्रदीप के गीतों से बखूबी परिचित है। प्रदीप के गीत सर्वधर्म सद्भाव सिखलाते हैं।

'मंदिर में है भगवान, वह मस्जिद में खुदा है,
किसने् कहा हिंदू से मुसलमान जुदा है।
बोलो हर-हर महादेव, अल्लाह हो अकबर।'

प्रदीप के गीत भारत की विविधता में एकता बनाए रखने के लिए सहायक हैं। राष्ट्र की संस्कृति के परिचायक के रूप में प्रदीप की राष्ट्रीय चेतना कार्यरत है और निरंतर रहेगी।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि प्रदीप जी के गीत राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण हैं। आने वाली पीढ़ी को पं. प्रदीप जी जैसा गीतकार और गीत याद रहे, इस ओर प्रयत्न होना आवश्यक है। पुष्पा भारती जी ने अपने संस्मरण में इस दिशा में निर्देश किया है। वर्तमान और भविष्य में भी राष्ट्रीय भावना से युक्त गीतों का निर्माण करने वालों के लिए यह प्रेरक सिद्ध होगा। पं.प्रदीप के राष्ट्रीय भावना युक्त फिल्मी गीतों द्वारा दिया गया योगदान महत्वपूर्ण है। पं. प्रदीप जी द्वारा गांधी विचारों का मात्र वहन ही नहीं बल्कि

आचरण भी किया गया है, जो समाज को जीवनपथ का मार्गदर्शन करता है।

संदर्भ :

1. 'हिंदी वाङमय : 20वीं सदी', संपादक- डॉ नगेंद्र, पृष्ठ क्रमांक-361
2. httPÞs://www.hindisahityamunchlab.in/2021/04/blog-PÞost.html?m=1
3. 'नालंदा विशाल शब्द सागर', आदेश बुक डिपो, करोलबाग, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 1177
4. वही
5. 'साहित्य, शिक्षा और सामाजिक सरोकार', डॉ. नरेंद्र शर्मा, प्र. सं., श्रुति पब्लिकेशन, जयपुर, पृ.16
6. 'यादें, यादें, और यादें', पुष्पा भारती, प्रभात प्रकाशन- नई दिल्ली, प्र. सं.- 2016, पृष्ठ 83
7. 'साक्षात्कार', सत्यदेव त्रिपाठी, अक्टूबर से दिसंबर -2019, संपादक- ध्रुव शुक्ल, पृष्ठ -329
8. 'यादें, यादें, और यादें', पुष्पा भारती, प्रभात प्रकाशन- नई दिल्ली, प्र.सं., 2016, पृष्ठ 83
9. वही
10. 'पाठ विश्लेषण', प्रो. दिलीप सिंह, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2007, पृष्ठ -233

सदगुरु गाडगे महाराज महाविद्यालय, कराड,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

महावीर उत्तरांचली की 'प्रतिनिधि रचनाएं' संग्रह में चित्रित राष्ट्रीय चेतना

डॉ. हेमलता काटे

'महावीर उत्तरांचली' आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध गजलकार हैं जिनका वास्तविक नाम 'महावीर सिंह रावत' है। महावीर उत्तरांचली का एक कहानी संग्रह- 'तीन पीढ़ियां: तीन कथाकार' और गजल-संग्रह - 'आग का दरिया (२००९), 'आग यह बदलाव की' (२०१३), 'अन्तरघट तक प्यास' (दोहे, २००९), 'बुलंद अशआर' (चुनिंदा शेर, २००९), 'मन में नाचे मोर' (जनक छंद, २००९,२०१३) जैसी रचनाएं प्रकाशित हुई हैं, जिसमें से कुछ प्रातिनिधिक रचनाओं को मिलकर उनका 'प्रतिनिधि रचनाएं, संग्रह सन् 2016 में प्रकाशित हुआ है। इसमें कुछ गजल, कविता, हायकू, छंद तथा गीत संकलित हैं। उत्तरांचली का 'प्रतिनिधि रचनाएँ' संग्रह पूर्णतः राष्ट्रीय चेतना से युक्त है। कारण उन्होंने अपना यह रचना संग्रह कश्मीर में सन् 1948 से आज तक शहीद हुए हर भारतीय को श्रद्धांजलि के रूप में समर्पित किया है। इसे समर्पित करते हुए स्वयं महावीर उत्तरांचली ने 'वीरवर' राष्ट्रीय प्रेरणा से प्रेरित कविता लिखकर अपनी भावना व्यक्त की है। जैसे कवि लिखते हैं-

'धन्य हमारी मातृभूमि, धन्य हमारे वीर वर
लौट आए काल मुख से, शत्रु की छाती चीर कर
बढ़ चले विजयनाद करते, काल को परास्त कर
रीढ़ शत्रु का तोड़ आए, वज्र मुष्ट प्रहार कर
पीछे न हट सके वो पग, जब काल का प्रण किया
रणबांकुरों ने ऐसे हँस के, मृत्यु का वरण किया।'[1]

अपने देश के लिए लड़ने वाले वीर जवानों का साहस इसमें चित्रित है। इसमें उन वीर जवानों का अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम दिखाई देता है। अतः यह राष्ट्रीय चेतना है, अपने राष्ट्र के प्रति एक एहसास की भावना है परंतु यह केवल देश भक्ति तक ही सीमित नहीं है। 'देशभक्ति' 'राष्ट्रीय चेतना' का एक अंग है। कारण देश भक्ति में अपने देश के लिए मर मिटने की भावना निहित होती है, परंतु 'राष्ट्रीय चेतना' में देशभक्ति की अपेक्षा अधिक कुछ है। दोनों शब्द समान लगते हैं, लेकिन दोनों में अंतर हैं। जिसमें देश के विकास के लिए देश की वर्तमान स्थिति, देश का भविष्य, देश की भूतकालीन स्थिति, संस्कृति, धार्मिक विशेषताएं, जातिगत विशेषताएं, शिक्षा संबंधी समस्याएं, सामाजिक समस्याएं, बच्चों की समस्याएं, नारी की स्थिति आदि विभिन्न समस्याओं के बारे में जानना आवश्यक है। केवल देश के प्रति भक्ति दिखाने को राष्ट्रीय चेतना नहीं कह सकते, तो राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित व्यक्ति को राष्ट्र की समस्याओं को दूर करना, शिक्षा का प्रचार करना, अंधविश्वासों से समाज को मुक्त करना, महान नेताओं से प्रेरणा ग्रहण करना, देश की सांस्कृतिक विशेषताओं को बनाए रखने का प्रयत्न करना, देश की गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई आदि को मिटाना आदि इन कार्यों के लिए प्रयत्न करना आवश्यक है। या यूं कह सकते हैं कि राष्ट्रीय एकता तथा शांतता बनाये रखने के लिए

जितना हो सके राष्ट्र के हित की बात जब हम करते हैं, तब उसे 'राष्ट्रीय चेतना' कह सकते हैं। अतः'राष्ट्रीय चेतना' देशभक्ति से ऊपर के स्तर की होती है।

इसलिए सबसे पहले 'राष्ट्रीयता' और 'चेतना' इन दो शब्दों का अर्थ समझ लेना आवश्यक है। 'नालंदा विशाल शब्दसागर' में नवल जी ने 'राष्ट्रीयता' का अर्थ इस प्रकार दिया है, 'अपने देश या राष्ट्र से उत्कट प्रेम'[2] और 'चेतना' के विभिन्न अर्थ दिए हैं- जैसे बुद्धि, मनोवृति, ज्ञानात्मक मनोवृति, चेतनता, होश, होश में आना, सावधान होना, विचारना, समझना।'[3] इन दो शब्दों का अर्थ जब हम समझने का प्रयास करते हैं, तो राष्ट्रीय चेतना को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं कि 'अपने देश या राष्ट्र का उत्कट प्रेम इसे समझना है, यह एक ज्ञानात्मक मनोवृत्ति है। अर्थात मनुष्य जिस देश में रहता है, उस देश की उन्नति के लिए, एकता के लिए, उसके मन में एक एहसास की भावना आवश्यक होती है।' इसी दृष्टि से डॉ. देवराज पथिक ने राष्ट्रीय चेतना को इस प्रकार परिभाषित किया है, 'व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक,राजनीतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, अध्यात्मिक, एवं भौतिक चिंतन के परिपेक्ष्य में अपने देश की प्रगति, विकास, एवं उत्थान, उसकी स्वतंत्रता एवं अखंडता की रक्षा, विश्व के व्यापक मंच पर उसकी अन्यतम छवि उभारने की ललक, संकीर्णता, शोषण, निर्जीव परंपरा के प्रति आक्रोश, साहस- त्याग, एवं बलिदान की आकांक्षा, सत्य- अहिंसा, उदारता के प्रति गहन आस्था, अव्यवस्था के लिए प्रहार के उत्तेजना के आक्रमक व्यवहार की व्यापक अभिव्यक्ति को राष्ट्रीय चेतना की संज्ञा दी जा सकती है।'[4] अतः उत्तरांचली की प्रतिनिधि रचनाओं में यह राष्ट्रीय चेतना की भावना परिपूर्ण रूप में दिखाई देती है।

कारण उत्तरांचली की गजलें, काव्य, हायकू और गीतों में अधिकतर गरीब लोगों के दयनीय अवस्था का चित्रण मिलता है। आज 21वीं सदी में भी ऐसे अनेक लोग हैं, जिन्हें भुखमरी जैसी समस्या का सामना करना पड़ रहा है। इसका प्रमुख कारण है-'सामाजिक-आर्थिक विषमता। जिसे १९ वीं सदी में साम्यवाद के रूप में कार्ल मार्क्स ने मिटाने का प्रयास किया था। इस सिद्धांत के अनुसार, 'इस सिद्धांत के प्रचारक समाज में साम्य स्थापित करना चाहते हैं और उसका वर्तमान वैषम्य दूर करना चाहते हैं। वे लोग चाहते हैं कि समाज से व्यक्तिगत प्रतियोगिता उठ जाय और भूमि तथा उत्पादन के समस्त साधनों पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार न रह जाय, बल्कि सारे समाज का अधिकार हो जाय। इस प्रकार सब लोगों में धन आदि का बराबर-बराबर वितरण हो; न तो कोई बहुत गरीब रह जाय और न कोई बहुत अमीर रह जाय।'[5]

परंतु आज भी समाज की यह समस्या दूर नहीं हुई। इसका एहसास दिलाते हुए उत्तरांचली ने अपने एक दोहे में गरीबों की अवस्था किस तरह और क्यों होती है, इसे उन्होंने प्रस्तुत किया है -

'पूंजीवादी दौर में, बिखर गया देहात /
बद से बदतर हो रहे निर्धन के हालात।।[6]

इन पूंजीवादियों के कारण ही गरीबों की ऐसी अवस्था हो गयी हैं। कारण वे लोग गरीबों के बारे में नहीं सोचते। उनकी क्या अवस्था है, इसका एहसास भी उन्हें नहीं होता। वो तो मजे में जी रहे होते हैं, कारण उनके ही हाथ में सत्ता होती है। इसलिये

गरीबों को केवल उपदेश ही सुनना पड़ता है। ऐसे लोगों के प्रति उत्तरांचली जी ने अपनी कविता में आक्रोश व्यक्त किया है। जैसे -

'गरीबों को फकत, उपदेश की घुट्टी पिलाते हो
बड़े आराम से तुम, चैन की बंसी बजाते हो
है मुश्किल दौर, सूखी रोटियां भी दूर है हमसे
मजे से तुम कभी काजू, कभी किशमिश खाते हो
अंधेरा कर के बैठे हो, हमारी जिंदगानी में।'[7]

मजदूर तथा गरीब के जीवन के इतना अंधियारा हैं कि लगता जैसे इनकी जिंदगी में कभी उजाला आयेगा नहीं। इनका जन्म जैसे मजदूरी करने के लिए ही हुआ है। समाज में जब तक पूंजीवाद है, तब तक मेहनतकश इन्सानों को इन्साफ नहीं मिलेगा। वह केवल पिसता ही रहेगा। इस वास्तविकता को भी उत्तरांचली 'मई का दिन' कविता में व्यक्त करते नजर आते हैं। उन्हें लगता है मजदूर का जन्म शोषण और तनाव के लिए ही हुआ हैं। जैसे-

'अब मन में एक प्रश्न कौंधता है / क्या मजदूर का जन्म /
शोषण और तनाव झेलने / मशीन की तरह निरंतर काम करने /
कब खत्म होने वाली जिम्मेदारियों को उठाने /
और सिर्फ दुख तकलीफ के लिए ही हुआ है? /
क्या यह सारे शब्द मजदूर के पर्यायवाची हैं?
मुझे भी यह एहसास होने लगा है / कोई बदलाव नहीं आएगा /
कोई इंकलाब नहीं आएगा/ पूंजीवादी कभी हम मेहनत कशों का
वक्त नहीं बदलने देंगे! / हमें चैन की करवट नहीं लेने देंगे। /
हमारे हिस्से की चांद सूरज को / एक साजिश की तहत / निगल लिया गया है।'[8]

मजदूरों की अवस्था अगर बदलनी हैं, तो सबसे पहले हमें हमारे लोकशाही की सूरत ही बदलनी चाहिए। राजसत्ता में आने तक ही लोकशाही का लाभ उठाया जाता है। परंतु एक बार राजसत्ता में आते ही आम जनता की समस्या को जैसे भुला ही दिया जाता है। जब तक सत्ता में है तब तक अपनी जेबें भरने की तरफ ही इन राजसत्ताओं का ध्यान होता है और व्यवस्था इतनी भ्रष्ट हो जाती है कि वहां ईमान का नामोनिशान भी नजर नहीं आता। अतः ऐसी भ्रष्ट व्यवस्था बदलनी चाहिए यह भावना व्यक्त करते हुए गजल दो में उत्तरांचली जी लिखते हैं-

'जो व्यवस्था भ्रष्ट हो, फौरन बदलनी चाहिए /
लोकशाही की नई, सूरत निकलनी चाहिए/
रोटियां ईमान की, खाएं सभी अब दोस्तों,/
दाल भ्रष्टाचार की, हरगिज न गलनी चाहिए।'[9]

'निर्धनता अभिशाप, बनी कडवी सच्चाई / वक्त बडा सख्त, बडे पल-पल महंगाई / पिसते रोज गरीब, हाय! क्यों मौत न आई / 'महावीर' कविराय, विकल्प न सूझे भाई / लोकतंत्र की नीतियां, प्रहरी पूंजीवाद की /
भ्रष्टतंत्र की बोलियां, दोषी कड़वे स्वाद की।'[10]

और आगे भी कहते हैं -

'रोशनी को राज महलों से निकाला चाहिए / देश में जाएं तिमिर को अब उजाला चाहिए/ सुन सके आवाम जिस की आहटें बेखौफ अब / आज सत्ता के लिए ऐसे जियाला चाहिए / गिर गई है आज क्यों इतनी सियासत दोस्तों / एक भी ऐसा नहीं जिसका हवाला चाहिए।'[11]

इस प्रकार उत्तरांचली जी की रचनाओं में परिवर्तन का स्वर नजर आता हैं। इसके लिए अगर क्रांति करनी पडी तो करनी चाहिए यह भी वे गजल नौ में व्यक्त करते नजर आते हैं। जैसे -

'पग ना पीछे हटा, वक्त से मुठभेड़ कर / हाथ में पतवार ले, तूफान से बिल्कुल ना डर / क्या हुआ जो चल न पाए, लोग तेरे साथ में / तू अकेले ही कदम, आगे बढ़ा होकर निडर।'[12]

भाषा विषयक भेदभाव भी हमारे राष्ट्रीय एकता में बाधक है। कारण किसी भी राष्ट्र के तीन मानबिंदु होते हैं - राष्ट्रगीत, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रभाषा, जो उस देश के एकता के प्रतीक होते हैं। परंतु आज २१ वीं सदी में भी अपनी भाषा को अपने अस्तित्व के लिए लड़ना पड़ रहा है। परंतु वास्तविकता है कि निज भाषा के बगैर देश की प्रगति नहीं हो सकती। इस संदर्भ में भारतेंदु जी ने कहा था - 'निज भाषा की उन्नति अहै सब उन्नति का मूल। ' यही बात अलग शब्दों में उत्तरांचली जी ने कही है -

आजादी पाई कहां, देश बना अंग्रेज / क्यों न रंग देशी चढ़े, हो रहे रंगरेज /
रो रहे रंगरेज, न पूछे बाबू कोई / निज भाषा बिन ज्ञान, व्यर्थ में दुर्गति होई/
महावीर कविराय, चार सू हैं बरबादी/ भाषा का अपमान, मिली कैसी आजादी।'[13]

राष्ट्रीयता को मिटाने वाली गंभीर समस्या का सामना डट कर ही करना चाहिए। ऐसी ही और एक गंभीर समस्या है, जिसका नाम धर्म है। 'धर्म' के नाम पर हमेशा से संघर्ष होता आया है। जो एक इन्सान को दूसरे इन्सान से तोडता है। इसलिये यह धर्म मंदिर, मस्जिद तक ही सीमित रहे, यह बात उत्तरांचली जी ने 'मवाद' कविता में व्यक्त की है ताकि शांती बनी रहे। जैसे -

'धर्म जब तक / मंदिर की घंटियों में / मस्जिद की अजानों में /
गुरुद्वारे के शब्द कीर्तनों में / गूंजता रहे तो अच्छा है / मगर जब वो /
उन्माद जुनून बन कर / सड़कों पर उतर आता है / इंसानों का रक्त पीने लगता है /
तो यह एक गंभीर समस्या है। / एक कोढ़ की भांति हर व्यवस्था और समाज को /
निगल लिया है धार्मिक कट्टरता के अजगर ने/ क्या कोई ऐसा नहीं जो एक थप्पड़ मार कर/ बंद करा दे इन रात दिन / लाउडस्पीकर पर चीख चीखते धर्म के /
ठेकेदारों के शोर को?/ जिन्हें सुनकर पक चुके हैं कान /
और मवाद आने लगा है 21वीं सदी में!'[14]

जिस तरह धार्मिक भेद मिटना राष्ट्र के हित की बात है, वैसे ही स्त्री-पुरुष समानता भी होना हित की ही बात हैं। कारण 'समाज में नारी केवल चारदीवारी के अंदर बंद रहनेवाली भोग्या नहीं, अपितु समाज के गौरव का प्रतीक और देश की रक्षिका भी है।'[15] ऐसी ही नारी का महत्व उत्तरांचली जी ने 'जीवन आधार' कविता में अलग रूप से

प्रस्तुत किया है जो नारी सशक्तिकरण को बढ़ावा देनेवाला है। जैसे-
'और उनके लिए सर्वस्व लुटाने में / नारी जीवन ही सही मायनों में जीवन आधार है /
मां, बहन, बेटी, पत्नी, प्रेयसी आदि समस्त रूपों में / सर्वत्र वह झुकती आई है /
तभी तो पुरुष ने अपनी मंजिल पाई है / उसने पाया है /
बचपन से ही आंचल, दूध और गोद / ममता ,प्यार, स्नेह, विश्वास, वत्सल आदि /
किंतु सोचो / यदि नारी भी पुरुष की तरह स्वार्थी हो जाए /
या समझौतावादी वृत्ति से निजात पा जाये / तो क्या रह पायेगा आज /
जिसे कहते हैं पुरुष प्रधान समाज?'[16]

राष्ट्रीय चेतना के अंतर्गत देशभक्ति के स्वर तो उनकी गजलों, कविताओं, गीतों में कूट-कूट कर भरा नजर आता है। जैसे -

'कट जाए सर गम नहीं, जिंदा रहे जमीन /
वतन की आबरू रहे, कहे कवि महावीर।।'

तथा

'जान से बढ़कर है और भारत की / कुल जमा दास्तान भारत की /
सोच जिंदा है और ताजादम / नौ'जवां कमान भारत की /
देश का ही नमक मिरे भीतर / बोलता हूं जबान भारत की /
कद्र करता है सबकी हिंदुस्तान / पीढ़ियां है महान भारत की /
सुर्खरू आज तक है दुनिया में / आन बान और शान भारत की।'[17]

यह राष्ट्रीय एकता कैसे बनी रह सकती, इसे उत्तरांचल जी ने 'रामराज' कविता में सहज-सरल भाषा में व्यक्त किया है। जैसे-

' गांधीजी कहते थे / जब भारत स्वतंत्र होगा / तो रामराज आ जाएगा /
अछूतोद्धार होगा / जात पात, छुआछूत, अस्पृश्यता का अंत होगा /
सर्व धर्म एक नियम होगा / x x x / स्वतंत्र भारत में / मारकाट होती है /
गौ मांस बिकता है / जात पात के नाम पर आरक्षण होता है /
हिंदू मस्जिद मुस्लिम मंदिर ढ़ाता है / कौन जानता था /
स्वतंत्रता प्राप्ति उपरांत ऐसा हो जाएगा / जब भारत स्वतंत्र होगा /
तो ऐसा रामराज आ जाएगा?'[18]

परंतु सच में ऐसा रामराज्य नहीं आया। इस बात का खेद वे अपनी इस कविता में व्यक्त करते हैं। भारतीय स्वतंत्रता ने जो सपने दिखाये थे, शायद वे सपने ही रहे हैं। अपने मन की यह व्यथा वे व्यक्त करते हैं, जो उनकी राष्ट्रीय चेतना का ही प्रतीक है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि महावीर उत्तरांचली की 'प्रतिनिधि रचनाएं' एक राष्ट्रीय चेतना की आवाज है। इसमें देश भक्ति का स्वर कूट-कूट कर भरा है। राष्ट्र हित एवं एकता बनाए रखने के लिए गरीबी, नारी-पुरुष भेदभाव आदि महत्वपूर्ण समस्याएँ मिटाने हेतु लोकशाही का रूप कैसे बदलना चाहिए, धर्म केवल अपने अंतरमन तक ही किस तरह सीमित रहना चाहिए, अगर स्त्री पुरुषों की तरह स्वार्थी हो जाएगी तो क्या पुरुषप्रधान समाज व्यवस्था ठीक रह पायेगी, ऐसे सवाल पूछकर इन्होंने इसमें परिवर्तन की अपेक्षा भी व्यक्त की है। विश्व के व्यापक मंच पर अपने देश की अन्यतम छवि उभारने की

ललक भी उनकी प्रतिनिधि रचनाओं में दिखाई देती हैं। स्वयं उन्हीं की शब्दों में -

'काल के कपाल पर / अगर मेरी रचनाएं दस्तक नहीं दे सकतीं /
बुझे हुए चेहरों पर रौनक नहीं ला सकतीं /
मजदूरों के पसीने का मूल्यांकन नहीं कर सकतीं/
शोषण करने वालों का रक्त नहीं पी सकतीं / तो व्यर्थ है मेरा कवि होना /
इन रचनाओं का कागज पर आकार लेना / और व्यर्थ है आलोचकों का /
इन्हें महान रचनाएं कहकर संबोधित करना।'[19]

संदर्भ :

1. महावीर उत्तरांचली - 'प्रतिनिधि रचनाएं', उत्तरांचली साहित्य संस्थान, दिल्ली, पृ. 2
2. श्री नवल जी -नालंदा विशाल शब्द सागर, आदेश बुक डिपो -नई दिल्ली संस्करण 2013, पृ. 1177
3. वही, पृ. 389
4. डॉ देवराज शर्मा 'पथिक'- नई कविता में राष्ट्रीय चेतना, पृ. 48
5. httPÞs://hi.wiktionary.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%AE%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%A6 (२४/9/२०२२/)
6. महावीर उत्तरांचली, 'प्रतिनिधि रचनाएं', उत्तरांचली साहित्य संस्थान, दिल्ली, दोहा - 6, पृ. 45
7. वही, खंड 1 -'ग़ज़ल 1', पृ. 9
8. वही, 'एक मई का दिन', पृ. 42
9. वही, 'ग़ज़ल 2', पृ. 9
10. वही, 'छप्पय छंद', पृ. 64
11. वही, 'ग़ज़ल 10', पृ. 13
12. वही, 'ग़ज़ल 9', पृ. 13
13. वही, 'छंद 31', पृ 73
14. वही - 'मवाद', पृ. 29
15. पुष्पा थरेजा - 'भारतेंदु युगीन साहित्य में राष्ट्रीय भावना' , पृ. 116
16. महावीर उत्तरांचली - 'प्रतिनिधि रचनाएं', उत्तरांचली साहित्य संस्थान, दिल्ली- 'जीवन आधार', पृ. 37
17. वही, 'ग़ज़ल १३' पृ. 15
18. वही, 'रामराज', पृ. 32
19. वही, 'दस्तक', पृ. 34

हिंदी विभाग,
बालासाहेब देसाई कॉलेज पाटन

'21 वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना'

प्रा. डॉ. राठोड बाळु भोपू

सिनेमा, साहित्य और समाज हमेशा एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। जनता के मन में उमंग उल्लास भरने के साथ-साथ राष्ट्र के प्रति प्रेम भाव जागृत करने का कार्य सिनेमा ने अनवरत किया है। हिन्दी सिनेमा में भी केवल मनोरंजन ही नहीं होता है बल्कि राष्ट्रीय भावना भी बड़ी मात्रा में दिखाई देती है। राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत सिनेमा ने बॉक्स ऑफिस पर भी अच्छी खासी कमाई की है। आनेवाली पीढ़ियाँ अपने दिल-दिमाग में राष्ट्रीय भावना को पल्लवित और पुष्पित रखें, यह सिनेमा का एक उद्देश्य रहा है। समाज को एक नई दिशा देने के साथ-साथ उसमें राष्ट्रवाद की भावना सिनेमा ने भरा है। ऐसा सिनेमा देखने के पश्चात् मानव मन राष्ट्रीय भावना से भर जाता है और राष्ट्र के लिए कुछ कर गुजरने की भावना बार-बार उत्साहित करती है। राष्ट्रीय भावना की जागृति का एक सुंदर और सशक्त माध्यम है यह। इसने् राष्ट्रीय भावना को अपने कथ्य और गीतों के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाकर उन्हें यह एहसास दिलाने की सफल कोशिश की है कि राष्ट्र ही प्रथम है।

वर्ष 2022 में पूरा भारत वर्ष आजादी का अमृत महोत्सव बड़ी धूम-धाम से मना रहा है। हमने पिछले 75 वर्षों में अनेक बड़ी-बड़ी उपलब्धियों को हासिल किया है और इन उपलब्धियों को हासिल करने में निःसंदेह हर भारतीय का अवदान रहा है। साहित्य, समाज, सिनेमा, गीत आदि के माध्यम से राष्ट्रीय भावना बरकरार रही है और आनेवाले कल में भी रहेगी। 21वीं सदी में भारतीय सिनेमा जगत् में अनेक ऐसे सिनेमाओं का सृजन हुआ, जिनमें राष्ट्रीय भावना ओतप्रोत है। अलग- अलग विषयों को लेकर इन सिनेमाओं ने भारतीय जनता के मन में राष्ट्रीय भावना की ज्वाला को जलती रखा है। इन विषयों में भारत-पाकिस्तान विभाजन, युद्ध, खेल आदि प्रमुख है।

सन् 2001 में अशुतोष गोवारीकर द्वारा निर्देशित 'लगान' सिनेमा प्रदर्शित हुआ जिसके मुख्य कलाकार आमिर खान और ग्रेसी सिंह हैं। प्रस्तुत सिनेमा में 19वीं सदी के ब्रिटिश राज का चित्रण हुआ है। कथा-नायक भुवन की मध्य प्रांत स्थित अंग्रेजी छावनी के कॅप्टन रसल के साथ नहीं बनती थी। एक तरफ बारिश की कमी के कारण किसान सूखे की चपेट में आ चुके थे और दूसरी तरफ अंग्रेज लगान दोगुना करने की घोषण कर चुके थे। गाँववाले भुवन के साथ राजा पूरन सिंह से लगान माफ करवाने की विनती करने ब्रिटिश छावनी गए। वे वहाँ पर ब्रिटिश अफसरों का क्रिकेट खेल देख रहे थे। उसी समय एक अंग्रेज व्यक्ति गाँव वालों को गाली देता है जिसे सुन कर भुवन अंग्रेजों से लड़ पड़ता है। वह क्रिकेट को गिल्ली-डंडा के समान खेल कहता है।

कॅप्टन रसल और भुवन के बीच शर्त लगती है कि अंग्रेज गाँववालों के साथ क्रिकेट खेलेंगे। गाँव वाले जीत जाएंगे तो लगान माफ कर दी जाएगी किन्तु यदि हार जाते हैं तो लगान तिगुना वसूल होगा। भुवन का यह फैसला गाँववालों को कतई मंजूर नही था क्योंकि उनका मानना था कि क्रिकेट खेल में अंग्रेजों को हराना मुश्किल है। तीन दिन तक यह खेल चलता है। इस खेल का प्रशिक्षण रसल की बहन एलिझाबेथ चोरी-छिपे गाँववालों को देती है। अंत में गाँववाले जीत जाते हैं और बारिश भी हो जाती है। लगान

माफ कर दी जाती है। भुवन तथा उसके साथियों के माध्यम से राष्ट्रीय भावना सिनेमा में दिखाई देती है। अपने देशवासियों को लगान जैसी बुरी पद्धति से बचाने की कोशिश इस सिनेमा में हुई है।

सन् 2002 में 'द लेजेंड ऑफ भगत सिंह' नामक सिनेमा रिलीज हुआ। इस सिनेमा के निर्देशक राजकुमार संतोषी हैं। नायक की भूमिका में अजय देवगन और सहनायक के रूप में सुशांत सिंह हैं। यह सिनेमा शहीद भगत सिंह के जीवन पर आधारित है। उनके साथ सुखदेव कैसे जुड़े यह भी दर्शाया है। भगत सिंह अपनी बाल्यावस्था से ही ब्रिटिशों के अत्याचार देखते और सहते आ रहे थे। उनके मन में राष्ट्रप्रेम की ज्वाला बचपन से ही सुलग रही थी। इसी कारण वे अपना घर-बार त्यागकर हिंदुस्तान रिपब्लिक में शामिल हुए। लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला लेने के लिए ब्रिटिश पुलिस अफसर जॉन सॅन्डर्स की उन्होंने हत्या की। उस समय उनके साथ राजगुरु , और सुखदेव भी थे। इन तीनों को ब्रिटिश पुलिस ने गिरफ्तार कर सलाखों के पीछे डाल दिया। वहाँ पर उन्हें बहुत पीड़ा दी गई। ब्रिटिश शासन् द्वारा व्यापार विवाद और सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक का प्रस्ताव पेश किया गया। तब इन तीनों ने विस्फोट की योजना बनाई और उसे सफल बनाया। लाहौर जेल में जब इन्हें कैद में रखा गया था तब भी वहाँ पर इन्होंने आंदोलन किया। उन्होंने अपने साथियों के साथ 63 दिन तक भूख हड़ताल की थी। अंत में भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरू भारत की आजादी के लिए हँसते-हँसते सूली पर चढ़ गए। प्रस्तुत सिनेमा में राष्ट्र के प्रति संवेदनशील रहते हुए उसके लिए बलिदान देने की भावना राष्ट्रीय भावना को उजागर करती है।

'माँ तुझे सलाम' सिनेमा भी सन् 2002 में रिलीज हुआ। इस सिनेमा के निर्देशक टिन्नू वर्मा हैं। नायक के रूप में सनी देओल तो नायिका के रूप में तब्बू है। यह सिनेमा पाकिस्तान से होने वाली घुसखोरी और उनके गलत इरादों का विरोध करती है। आतंकवादियों के गिरोह में शामिल सीमावर्ती युवाओं को आतंकवाद के दुष्परिणाम बताते हुए उन्हें सही रास्ते पर लाने की पहल भी प्रस्तुत सिनेमा में हुई है।

'गदर : एक प्रेमकथा' सिनेमा सन् 2003 में रिलीज हुआ। इसके निर्देशक अनिल शर्मा हैं तथा नायक सनी देओल और नायिका अमिषा पटेल हैं। सिनेमा का कथानक विभाजन को केंद्र में रखकर तैयार हुआ है। तत्कालीन भयावह परिस्थिति का वर्णन करते हुए राष्ट्रीय भावना की झलक इस सिनेमा में दिखाई देती है। अपनी पत्नी सकीना को वापस लाने तारासिंह पाकिस्तान जाता है। तब अशरफ अली उसे बार-बार अपमानित करता है। धर्म बदलकर मुस्लिम बनने को कहता है। तब तारा सिंह बड़े शांत मन से हिंदू-मुस्लिम धर्म की अच्छाई बताता है। जब उसे हिन्दुस्तान मुर्दाबाद की घोषणा करने को कहा जाता है तो वह आग बबूला होकर कहता है-'हिंदुस्तान जिंदाबाद था, जिंदाबाद है, जिंदाबाद रहेगा' वह हँडपंप उखाड़कर देश के दुश्मनों को धूल चटाता है। यह राष्ट्रीय भावना का परिणाम है।

'एल.ओ.सी. कारगिल' सन् 2003 में रिलीज हुआ सिनेमा है। इसके निर्देशक जे.पी.दत्ता हैं। यह सिनेमा सन् 1999 में हुए कारगिल युद्ध पर फिल्माया गया है। इस युद्ध को 'ऑपरेशन विजय' के नाम से भी जाना जाता है। प्रस्तुत सिनेमा में संजय दत्त,

अजय देवगण, नागार्जुन, सैफ अली खान, सुनील शेट्टी. संजय कपूर, अक्षय खन्ना, अभिषेक बच्चन जैसे प्रख्यात कलाकारों ने अपने अलग-अलग किरदार निभाए हैं। सन् 3 मई 1999 में कारगिल की ऊँची पहाडियों पर पाकिस्तान के लगभग 5000 सैनिकों ने घुसखोरी करके अपना कब्जा जमा लिया था। इसकी जानकारी मिलते ही पाकिस्तानी सैनिकों को खदेड़ने के लिए ऑपरेशन विजय चलाया गया और 26 जुलाई 1999 को भारतीय सेना ने कारगिल पर विजय प्राप्त की। इसमें भारतीय सेना के लगभग 550 जवानों को वीरगति प्राप्त हुई। 1300 से ज्यादा जवान घायल हुए। इस युद्ध में पाकिस्तान के लगभग 2700 सैनिक मारे गए। बचे-खुचे जंग छोड़कर भाग गए। अनेक दिनों तक चलनेवाले इस युद्ध में भारतीय सेना ने अपना हौसला बुलंद रखा। अपने घर-परिवार से दूर 'सीमाएँ बुलाएँ तुझे चल राही, सीमाएँ पुकारे सिपाही' यह अपने अंतर्मन की आवाज सुनकर राष्ट्र प्रेम की भावना से प्रेरित होकर हर मौसम में माँ भारती की रक्षा करते हैं। भारतीय सेना का हर जवान राष्ट्रप्रेम की भावना से भरा हुआ रहता है।

'लक्ष्य' सिनेमा सन् 2004 में रिलीज हुआ है। इस सिनेमा के निर्देशक फरहान अख्तर हैं। इसमें प्रमुख नायक के रूप में रितिक रोशन हैं तो नायिका के रूप में प्रीति जिंटा। प्रस्तुत सिनेमा में एक व्यापारी पिता का पुत्र भारतीय सैन्य अकादमी जॉइन करके देश सेवा को ही अपना लक्ष्य बना लेता है। कारगिल क्षेत्र का चित्रण करते हुए, कारगिल युद्ध के संघर्ष की ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित यह सिनेमा कल्पना की जोड़ देकर पूरा किया गया है किंतु राष्ट्रीय भावना को दर्शाना प्रस्तुत सिनेमा का उद्देश्य रहा है।

'स्वदेश' सिनेमा सन् 2004 में रीलिज हुआ है। इसके निर्देशक अशुतोष गोवारीकर, नायक शाहरुख खान और नायिका गायत्री जोशी हैं। सिनेमा में नायक का नाम मोहन भार्गव है। वह अनिवासी भारतीय है। वह अमेरिका में रहता है और नासा में प्रोजेक्ट मैनेजर के पद पर काम करता है। उसके माता-पिता की मृत्यु के बाद वह अनाथ हो जाता है। उसका लालन-पालन एक दाई ने किया था, जिसे वह अपनी माँ समान मानता था। मोहन को उस दाई की याद आती है और वह उसे अमेरिका ले जाने के लिए आता है लेकिन वह अमेरिका जाने के लिए तैय्यार नहीं होती। उन दिनों मोहन गाँव की समस्या से रूबरू होता है। वह गाँव में पनबिजली उत्पन्न करता है, जिससे चरणपुर गाँव की बिजली समस्या दूर हो जाती है। वह पुनः अमेरिका चला जाता है लेकिन वहाँ पर उसका दिल नहीं लगता। वह नासा की जिस परियोजना पर काम कर रहा था, उसे सफल बनाता है और विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र में काम करने के इरादे से वह हमेशा के लिए स्वदेश लौट आता है। उसके यह विचार राष्ट्रीय भावना की झाँकी दिखाते हैं। 'यह जो देश है तेरा, तुझे है पुकारे, ए वह बंधन है, जो कभी टूट नहीं सकता।' यह पंक्तियाँ बार-बार स्वदेश की याद दिलाती हैं।

'मंगल पांडे : द राइजिंग' यह सिनेमा सन् 2005 - में रिलीज हुआ है। इसके निर्देशक केतन मेहता हैं। नायक आमिर खान और नायिका रानी मुखर्जी हैं। यह सिनेमा प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के वीर सिपाही मंगल पांडे के जीवन पर आधारित है। तत्कालीन समय में भारत का अधिकतम हिस्सा ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के नियंत्रण में था और कंपनी की सेना में भारतीय मूल के सिपाही थे। इन सिपाहियों को जो कारतूस दी जाती

थी, वह सुअर के वसा और गोमांस से गीली करके दी जाती थी इन कारतूसों को सिपाही अपने दातों से तोड़ते थे। यह हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्म के सिपाहियों के लिए घृणास्पद था। मंगल पांडे इस समय अपने साथियों के साथ ब्रिटिशों के खिलाफ विद्रोह करते हैं। मंगल पांडे धर्म और राष्ट्र दोनों के लिए बगावत करते हैं।

'रंग दे बसंती' यह सिनेमा सन् 2006 में रिलीज हुआ है। इसके निर्देशक राकेश ओमप्रकाश मेहरा है। नायक आमिर खान और नायिका सोहा अली खान हैं। यह सिनेमा मानव मन में चेतना उत्पन्न करता है। क्रांति की आवश्यकता हर मोड़ पर होती है इस बात की ओर यह सिनेमा संकेत करता है।

'चक दे इंडिया' यह सिनेमा सन् 2007 में रिलीज हुआ है। इसके निर्देशक जयदीप साहनी और नायक शाहरुख खान हैं। हॉकी खेल को केंद्र में रखकर यह सिनेमा बनाया गया है। इसमें नायक हॉकी खेल का कोच है। हॉकी हमारा राष्ट्रीय खेल है फिर भी वह हमारे देश में पिछड़ा हुआ है। यह सिनेमा कबीर खान नामक हॉकी खिलाड़ी पर चित्रित किया गया है। कबीर की कप्तानी में भारत पाकिस्तान से मैच हारा था। तब मीडिया कबीर पर मैच फिक्सिंग का आरोप लगाती है और कबीर को हॉकी टीम से निकाल दिया जाता है। वही कबीर महिला हॉकी टीम का कोच बनकर उन्हें विश्व हॉकी कप जिताने में सहायता करता है। खेल के माध्यम से इस सिनेमा में राष्ट्रीय भावना दिखाई देती है। साथ ही साथ नारी किसी से कम नहीं है, यह भी दर्शाया है।

'भाग मिल्खा भाग' यह सिनेमा सन् 2013 मे रिलीज हुआ है। इसके निर्देशक राकेश ओमप्रकाश मेहरा है। नायक फरहान अख्तर और नायिका सोनम कपूर हैं। यह सिनेमा मिल्खा सिंह के जीवन पर केंद्रित है। विभाजन के समय मिल्खा के माता-पिता की हत्या हो जाती है। मिल्खा बड़ा होने के बाद भारतीय सेना में भर्ती होता है। उन्होंने सन् 1960 में रोम और सन् 1964 में टोक्यो ओलंपिक में भारत का प्रतिनिधित्व किया था। एक प्रसिद्ध धावक के रूप में उन्होंने अपनी छवि बनाई है। 'चक दे इंडिया' सिनेमा की तरह इस सिनेमा में भी खेल के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को दर्शाया गया है।

'गाझी अटैक' सिनेमा सन् 2014 में रिलीज हुआ। इसके निर्देशक संकल्प रेड्डी हैं। इस सिनेमा मे नायक राणा दग्गुबाती और नायिका तापसी पन्नू है। यह सिनेमा सन् 1971 के भारत पाकिस्तान युद्ध की सच्ची घटनाओं पर आधारित है। इस सिनेमा में एस-21 पनडुब्बी के नौसेना अधिकारी की कहानी है। यह अधिकारी अपनी टीम के साथ अट्ठारह दिनों तक पानी के नीचे रहता है। प्रस्तुत सिनेमा में रहस्यमय स्थितियों को बड़े कलात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। इसमें पीएनएस गाझी को 1971 में विशाखापट्टनम के तट पर डुबाया गया था। इस समय पानी के अंदर भारतीय पनडुब्बी एस-21 में सवार देशभक्त और साहसी पुरुषों की कहानी है जिन्होंने आईएनएस विक्रांत को नष्ट करने आए पाकिस्तानी पनडुब्बी पीएनएस गाझी को नष्ट कर दिया। राष्ट्रवाद की भावना एक ऐसी अमूर्त शक्ति है जिसके कारण प्रत्येक भारतवासी के रगों में देशप्रेम का लहू दौड़ता है।

'राजी' सिनेमा सन् 2018 में रिलीज हुआ। इसकी निर्देशिका मेघना गुलजार तथा नायक विक्की कौशल और नायिका आलिया भट्ट है। यह सिनेमा हरिंदर सिक्का के

उपन्यास 'कॉलिंग सहमत' पर फिल्माया गया है। सन् 1971 में हुए भारत-पाकिस्तान युद्ध की पृष्ठभूमि पर इसकी कहानी का सृजन हुआ है। नायिका को महिला जासूस के किरदार में पेश करते हुए उसे पाकिस्तान भेजा गया है। इस नायिका का नाम राजी है। वह एक कश्मीरी मुसलमान लड़की 'सेहमत' की जिंदगी बयां करती है, जो अपने पिता के कहने पर पाकिस्तान के खिलाफ जासूस बनती है। वह सत्तर के दशक में किस तरह से पाकिस्तान की बड़ी साजिश का भांडा फोड़ती है और उसके इरादे को नेस्तनाबूत करती है, यह सिनेमा में दर्शाया है। यह सिनेमा सत्य घटना पर आधारित है। सेहमत उस समय जासूस बनी है जब नारी की तरफ समाज का देखने का नजरिया अलग था। कन्या भ्रूण हत्या, नारी शिक्षा आदि समस्याएँ अपना सिर उठाएँ खड़ी थीं। उस समय नारी चार दीवारी तक सीमित न रहकर राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर पिता की मदद से सीधे पाकिस्तान पहुँचकर अपने देश की रक्षा करती है।

राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत सिनेमा की श्रृंखला में सन् 2019 में रिलीज हुआ 'मनकर्णिकाः झाँसी की रानी' एक सिनेमा भी है। इसकी निर्देशक कंगना राणावत हैं और नायिका के रूप में भी उन्होंने इस सिनेमा में काम किया है। यह सिनेमा झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के जीवन पर आधारित है। सन् 1857 मे उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी। अपना झाँसी राज्य बचाने के लिए वह ब्रिटिशों के साथ मरते दम तक लड़ती रही। पति की मृत्यु के बाद उनका जीवन बहुत संघर्षमय रहा। उन्होंने ब्रिटिशों के साथ लड़ते हुए अपना बलिदान दे दिया। आज भी बुन्देला, हरबोला समाज उनके नाम की दुहाई देता है-'खूब लड़ी मदार्नी वह तो झाँसी वाली रानी थी' कहने का तात्पर्य यह है कि, 21 वीं सदी के हिंदी सिनेमा में जो राष्ट्रीय भावना है, वह राष्ट्रीय भावना किसी लिंग भेद के आधार पर नहीं बल्कि नारी और पुरुष में समान भाव से दिखाई देती है।

सन् 2019 में राष्ट्रीय भावना को केंद्र में रखकर दो सिनेमा रिलीज हुए। पहला 'उरीः द सर्जिकल स्ट्राइक' और दूसरा 'केसरी'। 'उरीः द सर्जिकल स्ट्राइक' सिनेमा के निर्देशक आदित्य धर हैं और प्रमुख नायक के रूप में विक्की कौशल है। यह सिनेमा सत्य घटना पर आधारित है। यह सिनेमा भारत द्वारा पाकिस्तान पर किये गए सर्जिकक स्ट्राइक को केंद्र में रखकर बनाया गया है। विहान सिंह शेरगिल इस सिनेमा में नायक का नाम है। वह भारतीय सेना में एक मेजर के पद पर कार्य करता है। सन् 2016 में उरी सेना के अड्डे पर पाकिस्तानी आतंकवादी हमला करते हैं। इस हमले में मोहित रैना मारे जाते हैं जो मेजर के जीजा रहते हैं। उनके साथ-साथ इस हमले में अनेक सिपाही वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं। इस घटना से मेजर विहान सिंह शेरगिल को बड़ा दुख होता है। वह अपने बहनोई और देश दोनों के लिए बदला लेने की कोशिश करता है। वही सफल कोशिश सर्जिकल स्ट्राइक है। मेजर अन्य जवानों के साथ मिलकर पाकिस्तान में घुसकर दुश्मनों का खात्मा करते हैं। इस सिनेमा को प्रमुख रूप से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहले तीन भाग में भारतीय सेना पर अलग-अलग आतंकी हमले हुए हैं और चौथा भाग सर्जिकल स्ट्राइक पर चित्रित हुआ है। यह सिनेमा जहाँ हमें भावुक बनाता है, वहीं पर कुछ प्रसंग देशभक्ति का जज्बा दिखाकर खून खौला देते हैं।

कहानी पूरी मालूम होने के बावजूद यह सिनेमा हमें अंत तक बांधे रखता है।

'केसरी' सिनेमा के निर्देशक अनुराग सिंह और नायक अक्षय कुमार है। सिनेमा सन् 1897 में ब्रिटिश भारतीय सेना की 36 वी सिख रेजिमेंट की सारागढ़ी की लड़ाई को केंद्र में रखकर बनाया गया है। यह 21 सैनिक अफरीदी और ओरकजई पश्तून आदिवासियों से लडाई लडते है। इनकी लगभग बारह हजार संख्या थी। इस लड़ाई में 36 सिख रेजिमेंट के सभी सिपाही मारे गए। ब्रिटिश साम्राज्य में भी भारतीय सिपाही अपनी जान की बाजी लगा देते हैं। यह राष्ट्रीय भावना का ही परिणाम है। यह कभी ऐसा नहीं सोचते कि ब्रिटिश साम्राज्य में हमारा क्या वजूद है बल्कि ऐसा सोचते है कि देश हमारा है, भले ही हुकुमत ब्रिटिशों की हो। ऐतिहासिक लड़ाई पर आधारित यह सिनेमा आज भी हमें राष्ट्रप्रेम की शक्ति देता है। देशभक्ति का गहरा रंग इसमें दिखाई देता है। नायक एक डायलॉग कहता है-'एक अंग्रेज ने कहा था - हिंदुस्तान की मिट्टी से डरपोक पैदा होते हैं, आज जवाब देने का वक्त आ गया है।' यह बात राष्ट्रीय भावना की आग में घी डालने का काम करती है।

सन 2021 में 'भुजः द प्राईड ऑफ इंडिया' सिनेमा रिलीज हुआ है। इसके निर्देशक अभिषेक दुधैया तथा नायक अजय देवगन, संजय दत्त और नायिका सोनाक्षी सिन्हा हैं। यह सिनेमा उन तीन सौ गुजराती महिलाओं का है जिन्होने भारत पाकिस्तान युद्ध के दौरान भारतीय वायु सेना की मदद की थी। सिनेमा में नायक का नाम विजयकुमार कर्णिक है। वह सेना में स्क्वाड्रन लीडर है और उस वक्त वह भुज एयरबेस के इंचार्ज रहता है। सन् 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में भुज में क्या हुआ था, यह दिखाया है। स्क्वाड्रन लीडर विजय कुमार कर्णिक और उनकी टीम ने पाकिस्तानी सेना से लड़ाई लड़ी। पाकिस्तान ने चौदह दिन में भुज एयर फील्ड को पैंतीस बार तबाह कर दिया था। स्थानीय गाँव की तीन सौ महिलाओं की मदद से भारतीय वायु सेना के एयरबेस को चंद घंटों में दोबारा निर्माण किया गया। यह युद्ध भारत दो मोर्चे पर लड़ रहा था। एक पूर्वी पाकिस्तान और दूसरा पश्चिमी पाकिस्तान। इस युद्ध में भारतीय वायु सेना अपना हौसला बुलंद रखते हुए जीत हासिल करती है। स्क्वाड्रन लीडर विजयकुमार कर्णिक इस युद्ध के रियल हीरो बने। 'जब बहादुरी आपका कवच बन जाती है, तो हर कदम आपको जीत की ओर ले जाता है।'

निष्कर्ष :-

21वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना को उजागर करने में निर्देशकों ने कोई कसर नहीं छोड़ी। यही राष्ट्रीय भावना वर्तमान में भी हर भारतीय के दिल में राष्ट्र के प्रति प्रेम, त्याग और समर्पण की भावना को बनाए रखती है। राष्ट्रीय भावना राष्ट्र विकास के लिए बहुत आवश्यक होती है। हमारे लिए राष्ट्र ही प्रथम है। यह भावना खेल-कूद और देश सेवा के माध्यम से दिखाई देती है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 21वीं सदी में जो राष्ट्रीय भावना को लेकर हिंदी सिनेमा रिलीज हुए, वे यथार्थ कहानी को केंद्र में रखकर हुए हैं। इसलिए उनका प्रभाव शाश्वत है और यही शाश्वतता हमेशा प्रेरणादायी रहती हैं।

शोधपत्र लेखन हेतु देखे गए सिनेमा की लिंक

Link DateTime

1. : httPÞs://youtu.be/hPÞ5IdZcMzBM 04/09/2022 11 am to 01 PÞm
2. : httPÞs://youtu.be/KZBl8wsEzuc 04/09/2022 09 PÞm to 11PÞm
3. : httPÞs://youtu.be/ttDz8hsUU7k 06/09/2022 04 PÞm to 07PÞm
4. : httPÞs://youtu.be/-9taJsDRG0E09/09/202208 PÞm to 11 PÞm
5. : httPÞs://youtu.be/ZABRyrzPÞVTU11/09/202211 am to 01 PÞm
6. : httPÞs://youtu.be/DsszYD8OXHY 11/09/2022 06 PÞm to 08 PÞm
7. : httPÞs://youtu.be/2tPÞKKKEOFlg13/09/2022 10 PÞm to 12 PÞm
8. : httPÞs://youtu.be/0DZ65oFAc6Q15/09/202204 PÞm to 6 PÞm
9. : httPÞs://youtu.be/84sYnrZ7wRk16/09/202204 PÞm to 06 PÞm
10. : httPÞs://youtu.be/7v07PÞLIPÞgo18/09/2022 11 am to 01 PÞm
11. : httPÞs://youtu.be/eQKZX4wvTHo 18/09/202209 PÞm to 11 PÞm
12. : httPÞs://youtu.be/Ocu35D_h1EE 20/09/202209 PÞm to 11 PÞm
13. : httPÞs://youtu.be/jrTPÞJv3HPÞbo22/09/202202 PÞm to 04 PÞm
14. : httPÞs://youtu.be/KZ1h58PÞWDKA 23/09/202209 PÞm to 11 PÞm
15. : httPÞs://youtu.be/jxw85a7mIk025/02/2022 11 am to 1 PÞm
16. : httPÞs://youtu.be/UbVN8lO4l2825/02/202208 PÞm to 10 PÞm
17. : httPÞs://youtu.be/eN2DWJvA4Gg 26/02/202201 PÞm to 03 PÞm

हिंदी विभागप्रमुख,
शहाजीराजे महाविद्यालय खटाव
जि.सातारा (महाराष्ट्र)

21वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावनाः 'टॉयलेट एक प्रेम कथा' के परिप्रेक्ष्य में'

प्रा. सागर रघुनाथ कांबळे

भारतीय सिनेमा के इतिहास में भले ही मुंबइया सिनेमा का ग्लैमर और बोलबाला अधिक रहा हो पर फिल्म को अभिव्यक्ति का अर्थपूर्ण और कलात्मक माध्यम बनाने में भी इसका कम महत्वपूर्ण योगदान नहीं रहा है। 'टॉयलेट एक प्रेम कथा' (11-8-2017) एक ऐसा ही सार्थक सिनेमा है। भारत सहित अनेक देशों में लोग आज भी खुले में शौच करते हैं। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता है, लोग सुविधानुसार पुराने विचार छोड़कर नए विचार अपनाने लगते हैं। यही समाज के विकास का क्रम है। इस प्रक्रिया में कभी-कभी नए विचार या संस्कृति को अपनाने में हम शर्म या गर्व का अनुभव कर सकते हैं। भारत में अंग्रेजी शासन के आने पर यहाँ के कुछ लोग उनकी संस्कृति को अपनाकर एक तरफ गौरवान्वित हो रहे थे, वहीं कुछ के लिए यह शर्म की बात थी। पर एक समय ऐसा आया कि हम लगभग सभी लोगों ने परंपरागत धोती-कुर्ता को त्यागकर उनके पैंट-शर्ट को अपना लिया।

'टॉइलेट एक प्रेम कथा' सन् 2017 की सामाजिक मुद्दे पर बनी एक श्रेष्ठ फिल्म है। इसकी श्रेष्ठता इस बात से भी साबित हो जाती है कि यह माननीय प्रधानमंत्री द्वारा संचालित स्वच्छ भारत अभियान का एक हिस्सा हो सकती है। इस फिल्म के माध्यम से भारतीय समाज के उस रूप का दर्शन करवाया गया है, जो आज भी मध्यकाल में जीवन जीने को अपनी शान समझता है यह सच है कि जो समाज जितना शीघ्र नए मूल्यों को धारण करता है, वह उतना शीघ्र विकास के कदम चूमता है। जो समाज अपनी पुरातन खाल को छोड़ने का जितना ही मोह करता है, उसका विकास उतना ही देर से होता है। टॉइलेट एक प्रेम कथा में जहाँ केशव कुमार और उसकी पत्नी आधुनिक मूल्यों से प्रभावित हैं, वहीं केशव का पिता पुरातन सोच से प्रभावित होकर घर में शौचालय बनवाये जाने का पुरजोर विरोध करता है। उनके लिए जिस घर में हम रहते हैं वहाँ शौच करना संस्कृति को नष्ट करने के समान है। वहीं खुले में शौच करना उन्हें अपनी संस्कृति का संरक्षण प्रतीत होता है। हद तो तब हो जाती है जब अपनी ही बहू को शौच करते हुए वे देख लेते हैं और घबड़ाहट में उसके सामने ही बाइक पर से गिर जाते हैं। जब बहू इस प्रसंग को लेकर शौच के लिए बाहर जाने का विरोध करती है तो वे बड़ी ही निर्लज्जता से यह कहते हैं कि, 'बहू ने मुँह तो ढक लिया था न।' इसका यही अर्थ हुआ की शौचालय खुले में मुंह ढककर करने में कोई शर्म की बात नहीं है। शर्म की बात तो शौचालय घर में बनवाने पर है। घर में शौचालय बनवाने से उन्हें अपनी संस्कृति और सभ्यता के नष्ट होने की चिंता है। वे कहते भी हैं-'अब हमारी टॉपर बहू को घर में संडास चाहिए? न संस्कृति की समझ न रीति-रिवाजों का ज्ञान ज्यादा पढ़ाई-लिखाई न... फेल कर देती है। फेल।'[1]

टॉइलेट एक प्रेम कथा की शुरुआत ऐसे गाँव से होती है, जहाँ की महिलाएं धुंधलके ही शौच के लिए हाथ में लालटेन लेकर निकल पड़ती हैं। इसमें आगरा के मंदगाँव के

एक ऐसे परिवार का चित्रण किया गया है जो न केवल पुरानी मान्यताओं पर जीवन गुजर करता है बल्कि नई का विरोध भी करता है। केशव कुमार का विवाह इसलिए नहीं हो रहा है क्योंकि वह मांगलिक है। इसके लिए उसका विवाह भैंस से करवाया जाता है। इसके बाद भी उसके जीवन में विवाह का योग बनता नजर नहीं आ रहा है। इसका कारण उसकी कुंडली में दोष होना बताया गया है। ये सब कोई और नहीं बल्कि उसके पंडित पिता ही बता रहे हैं। इसके लिए अब उसे किसी ऐसी लड़की से विवाह करना पड़ेगा जिसके बाएँ हाथ में दो अंगूठा हो। भारत में आज भी मंदगाँव जैसे गाँव अनगिनत संख्या में हैं। ये वो गाँव हैं, जहाँ असली भारत बसता है। यदि आपको नए और पुराने सोच के संघर्ष का ताना-बाना देखना हो तो आप भारत के किसी भी गाँव में पधार सकते हैं। फिल्म में केशव के पिता जहाँ आज भी वेद-पुराण के अनुसार जीवन जीने के हिमायती हैं वहीं केशव और जया इसमें बदलाव की मांग करते हुए दिखाई देते हैं। केशव के पिता की राधे सायकिल के नाम से दुकान है। वहीं वह भी काम करता है। एक बार रेलगाड़ी में उसे जया जोशी नामक लड़की मिलती है जिसके सायकिल की होम डिलिवरी का आर्डर उसके पिता लिए होते हैं। जब वह सायकिल पहुंचाने घर जाता है तो वहाँ उसकी फिर जया से मुलाकात होती है। केशव गलती से लड़कों वाली सायकिल ले आता है, जबकि जया के पिता जया को सरप्राइज देने के लिए लड़की वाली सायकिल का आर्डर दिए रहते हैं। जब केशव अपनी भूल सुधार करने के लिए लेडीज सायकिल लाने की बात करता है तो जया कहती है- 'कोई बात नहीं जेन्ट्स वाली आ गई मुझे कोई प्राबलम नहीं मैं रख लूँगी।'[2] जब केशव जेन्ट्स सायकिल में बीच में डंडा रहने की बात करता है, जिससे उसे परेशानी हो सकती है तो वह उसको मुँह तोड़ जवाब देती है- '1860 में जब सायकिल बनी थी तब औरतें क्या पहनती थीं-ड्रेस। और उनकी सेफ्टी के लिए बीच का डंडा हटा दिया गया और अब क्या पहनती हैं जीन पैंट। तो डंडे से क्या डर?'[3] जया और केशव के बीच का यह संवाद ही भारतीय सोच के बदलाव का प्रतीक है। लंबे समय तक भारतीय स्त्रियाँ साड़ी पहनती आई हैं। वे आज भी विशेष तौर पर गाँवों में साड़ी ही पहनती हैं। अब फैशन की जरूरत और कार्य करने की सुविधा के अनुसार वे पैंट या जीन पैंट पहनने लगी हैं। हमारे समाज में अभी भी जीन पैंट पहनने वाली लड़कियों को सभ्य नहीं माना जाता है। कुछ खाप पंचायतें और मुल्ले-मौलवी द्वारा अभी भी लड़कियों के जीन पैंट और मोबाइल पर प्रतिबंध लगाने के विचार सुने जा सकते हैं। जया का सायकिल के लिए जीन पैंट पहनने की सुविधा का दिया गया तर्क अकारण है। साड़ी में लड़कियाँ दौड़ भी नहीं सकती हैं जबकि पैंट में वे आसानी से दौड़ सकती हैं। यह हमारे समाज का बदलाव है। आज शायद ही ऐसा कोई शहर होगा जहाँ लड़कियाँ जीन पैंट पहने न दिखाई देती हों। अब यहाँ पर फिल्म में दो सोच वाला परिवार दिखाई देता है। एक केशव के पिता जो उसके मांगलिक दोष को खत्म करने के लिए उसकी शादी भैंस से करवाते हैं, उसके कुंडली दोष के कारण बाएँ हाथ में दो अंगूठे वाली लड़की से ही शादी करने की बात करते हैं। दूसरी जया है जो जीन पैंट पहनकर स्कूल जाती है और घर में शौचालय होना आवश्यक समझती है।

इसी संवाद के बीच दोनों एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। इसी बीच होली का त्यौहार

आ जाता है। यहाँ पर फिल्म में ब्रज की लट्ठमार होली आज भी भारत की विशेष परंपरा को सँजोए हुए है। फिल्म का यह दृश्य देखकर बरसाने की लट्ठमार होली के गाने के साथ दर्शकों का भी मन झूमने लगता है। यहाँ पर एकबार फिर दोनों की मुलाकात होती है। जब वे दोनों एक दूसरे से शादी करने को राजी होते हैं तो बीच में पंडित जी द्वारा कुंडली के दोष निवारण हेतु सुझाया गया दो अंगूठे वाली लड़की की अनिवार्यता बाधा बनती है। इसके लिए वे दोनों एक कृत्रिम अँगूठे का सहारा लेते हैं। यहाँ पर फिल्म में भारतीय समाज के एक और रूप का दर्शन होता है। जब केशव को अपने पिता जी को दिखाने के लिए दो अंगूठे वाली लड़की के कृत्रिम अंगूठा का प्लान सफल होता दिखाई देता है तो वह इस प्लान की सफलता के लिए किसी मंदिर की लेटकर परिक्रमा करता हुआ दिखाई देता है। यही सच्चा भारतीय समाज है जहाँ लोग घर में वैज्ञानिक उत्पाद लाने पर उसकी पूजा धार्मिक विधि से करते हैं। धार्मिक आस्था भारतीय समाज की रगों में बहती है जहाँ वे अपनी प्रत्येक सफलता का श्रेय किसी देवी-देवता को देते हैं। यही कारण है कि वैज्ञानिक विधि से बने किसी पुल का उद्घाटन नारियल फोड़ कर किया जाता है।

जब दोनों का विवाह हो जाता है तो शादी के पहले दिन ही अलसुबह के समय महिलाएँ जया को 'लोटा पार्टी' (शौच के लिए लोटा लेकर बाहर जाना) में आमंत्रित करती हैं। घर में शौचालय का न होना जया पर बुरा प्रभाव छोड़ता है। वह खुले में शौच का विरोध करती है। केशव अपने पिता से घर में शौचालय बनवाने की बात करता है तो वे सिरे से नकार देते हैं। जया का गुस्सा उस दिन सातवें आसमान पर चढ़ जाता है जब एक दिन खुले में शौच करते समय उसके ससुर उसे देख लेते हैं, उस दिन से वह खेत में शौच जाना बंद कर देती है। केशव ने समस्या के निदान के रूप में रेलवे स्टेशन पर 7 मिनट रुकने वाली गाड़ी के शौचालय के उपयोग के रूप में निकाला। एक दिन जया जब रेलगाड़ी के शौचालय का उपयोग कर रही थी तो गाड़ी चल देती है। वह उतर नहीं पाती और अपने घर चली जाती है। इसके बाद शौचालय बनवाने के लिए केशव अनेक प्रयत्न करता है पर वह असफल होता है। जब वह शौचालय के लिए पंचायत में आवेदन करता है तो सभी ग्रामीण लोग उसके शौचालय की माँग का विरोध करते हैं। वह जिलाधिकारी के पास शौचालय की माँग लेकर जाता है तो उन्तीस हजार करोड़ के शौचालय का घोटाला उसके सामने आता है। साथ ही उसे यह भी पता चलता है कि जिनके घर में शौचालय बने भी हैं, उसमें वे लोग पान, सिलाई या बाल काटने की दुकान खोल लिए हैं। वह अनेक प्रयत्न करता है पर हर जगह उसे सिर्फ आश्वासन ही मिलता है। उसे शौचालय की इस लड़ाई में असली खलनायक का पता तब चलता है जब जिलाधिकारी उसे बताता है- 'विलेन कौन है याद रखना केशव। तुम्हारी लड़ाई सभ्यता से है। समझे और सभ्यता पर विजय पाना आसान नहीं है। कठिन परीक्षा है। इस देश में सभ्यता से लड़ना एक कठिन काम है।' वास्तव में आज भी कुछ लोग अपनी पुरानी सभ्यता को इतना मजबूती से पकड़े हुए हैं कि वे चाहते हुए भी इसे नहीं छोड़ पाते हैं। वे अपनी पुरानी सभ्यता के मोह में इस प्रकार चिपके हैं जैसे लिसलिसे गुड़ से चिपकी हुई मक्खी हो। जिलाधिकारी की यह बात ने उसके मस्तिष्क के द्वार खोल देती है। वह घर में शौचालय बनवा लेता है जिसका उसके पिता पंडित जी घोर विरोध करते

हैं। एक दिन जब केशव सो रहा होता है तो उसके पिता कुछ आदमी के साथ लेकर शौचालय तोड़ देते हैं। अतः जया सभी महिलाओं को साथ लेकर शौचालय के लिए एक बड़ा अभियान छेड़ती है। इसी बीच केशव की दादी फिसलकर गिर जाती है और उसके कमर की हड्डी टूट जाती है। अब वह उस टूटे शौचालय में ही शौच करने को बाध्य हो जाती है। धीरे-धीरे शौचालय के लिए महिलाओं का व्यापक प्रदर्शन और दादी की हड्डी टूटने से पंडित जी का भी हृदय परिवर्तन हो जाता है। अंतः वे घर में बहू के लिए शौचालय की अनुमति दे देते हैं।

कहने के लिए यह फिल्म गाँव में शौचालय न होने की समस्या पर आधारित है पर इसकी आड़ में यह उन सभ्यताओं और रूढ़ियों की पोल खोलती है, जिसकी वजह से आज भी हमारा समाज आगे बढ़ने से रुक जाता है। फिल्म में एक छोटी कहानी और जोड़ी गई है जिसका जिक्र करना अति आवश्यक है। वह है केशव का अपनी मुँह बोली बहन को उसके प्रेमी के साथ भाग जाने की सलाह देना। भारतीय साहित्य में ऐसा प्रसंग कृष्ण के साथ आता है जब वे अपनी बहन सुभद्रा को अपने सखा अर्जुन के साथ भाग जाने की सलाह देते हैं। वैसे हमारे समाज में अनेक लड़कियाँ अपने प्रेमी के साथ आए दिन भाग जाती हैं जो पकड़े जाने पर ऑनर किलिंग का शिकार होती हैं। 2016 में आई मराठी फिल्म सैराट के प्रेमी युगल को भी लड़की के परिवार वालों द्वारा मार दिया जाता है और दर्शक हाथ मलते हुए सिनेमा हॉल से बाहर निकलते हैं। इस रूप में यह फिल्म समाज के बदलते स्वरूप को स्वीकार करती हुई दिखाई देती है। हिन्दी फिल्मों में अधिकतर भाई को प्रेमी जोड़े के बीच खलनायक के रूप में दिखाया गया है। पर इस फिल्म में मुंह बोला भाई बहन का सहयोगी होता है। फिल्म का कथानक भले ही मथुरा जिला है पर यह सम्पूर्ण भारत की समस्या है।

शौचालय की समस्या के बहाने से फिल्म में दो समाज का चित्रण किया गया है- 'एक समाज वह जो आधुनिक जरूरत को समझकर अपने पुराने मूल्यों में परिवर्तन करते हुए नए को स्वीकार कर रहा है। इस समाज का प्रतिनिधित्व जया जोशी का परिवार करता दिखाई देता है। दूसरे समाज का प्रतिनिधित्व केशव के पिता पंडित जी करते हुए दिखाई देते हैं, जो आज भी 'मांगलिक' और 'कुंडली-दोष' को स्वीकारते हैं। फिल्म में आगरा के आस-पास की जचेगो, गयो, आएगो, होगो आदि ओकारांत वाली बोली के शब्दों का प्रयोग किया गया है। फिल्म में मुख्यतः भारतीय समाज के गाँव का दृश्यांकन बहुत ही सूक्ष्मता से किया गया है। मथुरा के बरसाने की होली, धान का पुआल, गोबर के उपले, फसल से लहलहाते खेत, लोटे में पानी लेकर शौच को जाती हुई स्त्रियाँ, बारात में गाने की धुन पर नाचती हुई भीड़, फूटते पटाखे, दुल्हन का खुशी से अगवानी करती हुई महिलाएं भारतीय समाज के गाँव का बारीकी से चित्रण करती हैं।

संदर्भ :

1. विनोद भारद्वाज - सिनेमा : कल, आज कल, प्र. सं. 2006.
2. डॉ. विजय महादेव गाडे, मीडिया साहित्यिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में, प्र.सं. 2016.
3. डॉ. एस. वाय. होनगेकर- 21वीं शती का हिंदी साहित्य, प्र. सं. 2018.

हिंदी विभाग, श्री. शिव-शाहू महाविद्यालय, सरूड।

नवजागरण की परम्परा और पुनरुत्थान का द्वन्द्व

(डॉ. विकास गडकरी, डॉ. विनय तिवारी, डॉ. संतोष कोळेकर के संदर्भ में)

प्रा. सौ. शिल्पा शिंदे

राष्ट्र के प्रति अगाध प्रेम की भावना राष्ट्रीयता कहलाती है। अपने देश के अगाध प्रेम में अपनी संस्कृति, सभ्यता, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक दशाओं में सुधारात्मक प्रयोग आदि सम्मिलित होते हैं। देश के लिए उच्चकोटि का बलिदान राष्ट्रीय अस्मिता का द्योतक होता है। राष्ट्रीय भावना ही सभी देशवासियों को एकसूत्र में बाँधने के लिए अपनी अहम् भूमिका निभाती है। देश में विभिन्न जाति-धर्मों के तथा भिन्न भाषा-भाषी लोग रहते हैं फिर भी इस राष्ट्र-प्रेम के कारण ही वे जातिगत भेद से ऊपर उठकर राष्ट्र के प्रति स्नेह, समर्पण की भावना तथा एक-दूसरे के साथ बंधुता से भरे होते हैं। राष्ट्रीयता की भावना जगाने का महत्त्वपूर्ण कार्य करने का योगदान प्रत्यक्ष रूप से जिस तरह क्रांतिकारियों को जाता है उसी तरह प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी साहित्यकारों को भी जाता है। स्वातंत्र्यपूर्व काल से आज तक विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं से देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना जगाने का कार्य किया है। वर्तमान में स्वातंत्र्योत्तर काल में भी यह कार्य निरंतर चल रहा है। वर्तमान साहित्यकार देश की वर्तमान स्थिति को सामने रखते हुए विभिन्न समस्याओं पर लेखन करते हुए जनमानस में राष्ट्रप्रेम जगाने का भरसक प्रयास करते हुए नजर आते हैं।

साहित्यकार में सदैव संवेदनशीलता जागृत रहती है। वह उसकी खास विशेषता होती है। समाज में व्याप्त समस्याएँ, आंदोलन, पतन, उत्थान आदि का वास्तविक चित्रण कर-के समाधान ढूंढ़ने का काम साहित्यकार करता है। जब-जब देश संकटों से घिर जाता है, तब-तब जनमानस के मन में उर्जा निर्माण करने का काम साहित्यकार ही करता है। भारत जब विदेशी आक्रमण के चंगुल में फँसकर परतंत्रता की बेड़ी में फँस गया था, तब मातृभूमि के लिए एवं लोगों में जागृति लाने के लिए साहित्यकारों ने ओजस्वी साहित्य लिखकर लोगों में राष्ट्रीय चेतना जगाने का काम किया है। परिणाम स्वरूप अनेक लोगों ने देश के लिए बलिदान देकर देश को आजाद कराने का काम किया है। इस संदर्भ में डॉ. चैतन्यकुमार का मंतव्य है कि, 'आजादी के आंदोलन में जिस प्रकार से अनेक व्यक्ति तथा संस्था ने योगदान दिया है, उसी प्रकार से साहित्यकारों ने भी योगदान दिया है। साहित्यकारों ने मातृभूमि की रक्षा के लिए प्रयास किया है। उन्होंने ओजस्वी साहित्य लिखकर जनता में जागृति लाने का काम किया है। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय ऐक्य निर्माण होकर देश आजाद हो गया।'[1] इसमें साहित्यकारों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। इस प्रकार साहित्यकार राष्ट्रीय चेतना निर्माण करने में योगदान देते हुए नजर आते हैं।

वर्तमान काल में भी अनेक साहित्यकार राष्ट्रीय भावना पर लिख रहे हैं। इसमें प्रधानता से कुमार अम्बुज, अरुण कमल, वीरेन डंगवाल, कात्यायनी, चंद्रकात देवताले, विनोदकुमार शुक्ल, भगवत रावत, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, डॉ. संतोष कोळेकर, राजेश जोशी आदि का नाम प्रधानता से लिया जाता है। वर्तमान हिंदी साहित्यकार अपननी कविता के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को प्रस्तुत कर रहे हैं। वे राष्ट्रीय भावना जागृत

करने के लिए अतीत का सहारा ले रहे हैं। भारत का अतीत गौरवशाली रहा है। साथ ही प्राचीन भारतीय संस्कृति आदर्शवत रही है। भारत का इतिहास शूर-वीरों के पराक्रम से भरा पड़ा है। इन वीरों ने अन्याय और अत्याचार के खिलाफ पराक्रम दिखाकर देश की जनता को न्याय देने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में अनेक लेखकों ने यथार्थ रूप से लेखनी चलाई है। प्रसिद्ध लेखक डॉ. विकास गडकरी इस संदर्भ में लिखते हैं कि,

भारत का इतिहास बलशाली, / भारत की संस्कृति बलशाली, /
भारत की परंपरा बलशाली, / भारत की वीरता है बलशाली, /
भारत सदैव रहा है गौरवशाली, / चंद्रगुप्त सम्राट अशोक जैसे वीर, /
दे रहे हैं आज भी, / राष्ट्रभक्ति के गीत'[२]

इस प्रकार कवि ने अतीत का गौरव गान करके वर्तमान पीढ़ी में राष्ट्रीय भावना जगाने का काम किया है। २१ वीं सदी के अनेक साहित्यकारों ने देश की समस्याओं का यथार्थ चित्रण करके समाधान ढूंढ़ने का प्रयास किया है। उन्होंने देश के विकास के लिए रास्ता दिखाकर लोगों में राष्ट्रीय भावना जागृत करने का प्रयास किया है। उनका यह कार्य प्रशंसनीय नजर आ रहा है। उन्होंने व्यंग्यशैली के माध्यम से देश की वास्तविकता का चित्रण किया है। वर्तमान काल के अनेक साहित्यकार इस प्रकार लेखनी चलाकर देश की वास्तविकता को सामने लाने का काम कर रहे हैं। इस संदर्भ में प्रसिद्ध आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा लिखते है कि 'हिंदी साहित्यकारों ने राष्ट्रीय चेतना जगाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने समाज की समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए समाधान ढूँढ़ने का काम किया है। देश के प्रति लोगो में जागृति लाने के लिए ओजस्वी साहित्य लिखकर क्रांतिकारी लेखन किया है।'[३] इस प्रकार से हिंदी साहित्यकारों ने देश के प्रति अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने का काम किया है।

भारत वर्ष ऐतिहासिक काल से संपन्न एवं समृध्द रहा है। भारत की प्राकृतिक सुषमा अनुपम थी लेकिन पारतंत्र्य में चले जाने के बाद देश का आर्थिक शोषण होता गया। अथक परिश्रम के बाद देश को स्वतंत्रता मिली। परंतु आम जनता गरीबी की अवस्था से उभर नहीं पायी। उसकी आशाएँ नष्ट हो रही हैं। उसका जीवन पीड़ा और अभाव में गुजर रहा है। साथ ही राजनीतिक लोग एवं प्रशासकीय वर्ग भयावह भ्रष्टाचार कर रहे हैं। इसलिए व्यवस्था पर से लोगों का विश्वास उठ गया है। भारत देश कृषि प्रधान होने के बावजूद किसानों की अवस्था दयनीय बन गई है। किसान अकाल और बाढ़ से पीड़ित है। उसे रोटी, कपडा, मकान, शिक्षा आदि मूलभूत सुविधाएँ तक नहीं मिल रही है। इस पर लेखकों ने लेखनी चलाकर लोगों में जागृति लाने का काम किया है। इस संदर्भ में डॉ. विनय तिवारी लिखते हैं कि -

भारत में किसान सोना उगाते थे, / अब वे बंजर पड़ गये हैं।
अकाल और बाढ़ से, / किसान है पीड़ित /
चारों ओर फैली समस्याएँ,/ यह है किसान की भयावह अवस्थाएँ /
न मिलती मुलभूत सुविधाएँ, / कैसे भारत महासत्ता बन जाए।'[4]

इस प्रकार कवि ने देश की भयावह वास्तविकता से रूबरू करके लोगो में जागृति एवं वर्तमान पीढ़ी में राष्ट्रीय भावना जागृत करने का काम किया है। वर्तमान काल

के कवियों ने राष्ट्रीय भावना जागृत रखने के लिए अतीत का गौरव, देशप्रेम, समाज सुधार, नारी जागरण आदि पर बल दिया है। आज भी समाज में अनेक कुरीतियाँ नजर आती है। आज वृद्धाश्रम की समस्या ने गंभीर रूप धारण कर लिया है। आज युवा वर्ग व्यसनाधीनता का शिकार हो गया है। आज भी स्त्री भ्रूण हत्या, अनमेल विवाह, बाल विवाह, पर्दा प्रथा आदि कुप्रथाएँ समाज में प्रचलित है। इन विषयों को लेकर आधुनिक कवि कविताएँ लिख रहे हैं। इन समस्याओं पर लेखनी चलाकर राष्ट्रीय चेतना निर्माण करने का काम कर रहे हैं। इस संदर्भ में डॉ. संतोष कोळेकर लिखते हैं कि,

देश की समस्या अनेक, / नारी है सदैव पीड़ित, / अनेक युवा व्यसनाधीन,/ भ्रष्टाचार से देश का हो रहा पतन, / अब कैसे होगा आदर्श का जतन, /

एक तरफ उच्च वर्ग की महलों की शान, / तो दूसरी तरफ गरीबों का हो रहा अपमान, / संतोष के सामने यही सवाल, / देश का हो रहा अतोनात हाल'[5]

इस प्रकार देश की वास्तविकता सामने लाकर वर्तमान कवि देश की हालात पर चिंता व्यक्त करता हुआ नजर आ रहा है। वर्तमान काल में अनेक साहित्यकार हैं, जो भारत की महिमा का गुणगान कर रहे हैं। इसमें भारतीय संस्कृति की गरिमा पूरी तरह से झलक रही है। इन कवियों में देश प्रेम कूट-कूटकर भरा हुआ है। उनकी कविताओं में मातृभूमि के प्रति अगाध प्रेम नजर आता है। भारत का वैभवपूर्ण एवं समृद्ध इतिहास उनकी कविताओं में दिखाई देता है। भारतीय लोगों की वीरता उनके कविताओं में झलकती है। इस संदर्भ में डॉ. दिनेश अग्रवाल लिखते हैं कि, 'वर्तमान काल के साहित्यकार अलग-अलग विषयों को लेकर साहित्य निर्माण कर रहे हैं। कुछ साहित्यकार राष्ट्रीय भावनाओं को लेकर साहित्य निर्माण कर रहे हैं। उसमें भारत का गौरवमय इतिहास, आदर्श भारतीय संस्कृति, राष्ट्रभक्ति, वीर योध्दाओं का चित्रण आदि विषयों को लेकर साहित्य का सृजन हो रहा है।'[6] इस प्रकार अनेक साहित्यकार अलग-अलग विषयों को लेकर राष्ट्रीय चेतना जगाने का काम कर रहे है।

अतः स्पष्ट है कि वर्तमान साहित्यकार राष्ट्रीय भावनाओं को लेकर साहित्य सृजन कर रहे हैं। जब-जब देश संकट से घिर जाता है, तब-तब वर्तमान साहित्यकार मातृभूमि की रक्षा के लिए एवं लोगों में जागृति लाने के लिए राष्ट्रीय चेतना को लेकर ओजस्वी साहित्य सृजन करता है। इस संदर्भ में डॉ. संतोष कोळेकर लिखते है कि, 'वर्तमान साहित्यकार राष्ट्रीय चेतना को लेकर पूरी तरह से सजग है। करोना के काल में देश के साथ साथ पूरा विश्व संकट से घिरा हुआ था। उस दौरान अनेक साहित्यकारों ने राष्ट्र के प्रति अपना दायित्त्व समझकर लोगों में चेतना निर्माण करने के लिए लेखनी चलाई। उन्होंने उस समस्या का कारण, परिणाम एवं उपाय बताने का काम किया है। इस प्रकार से साहित्यकार योगदान देते हुए नजर आते है।'[7]

निष्कर्षतः कहा जाता है कि, वर्तमान साहित्यकार एवं कवि डॉ. विकास गडकरी, डॉ. विनय तिवारी, डॉ. संतोष कोळेकर इन कवियों ने भारत की गौरवमय महिमा, वीर योध्दाओं का वर्णन, आदर्श भारतीय संस्कृति आदि के अपने काव्य में उदाहरण देकर जनता में जागृति लाने का काम किया है। देश, जनता, प्रशासन, वीर जवान, महिलाओं, राजनीति, आर्थिक स्थिति एवं सामाजिक बदलाव के लिए लेखनी चलाना वे अपना

दायित्त्व मानते हैं। इस प्रकार से २१वीं सदी के अन्य कवियों की तरह आलोच्य कवि भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए नजर आते हैं।

संदर्भ :

१. डॉ. चैतन्यकुमार, हिंदी साहित्य में राष्ट्रीयता, पृष्ठ क्र. १५९, उल्का प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. २०१८

२. डॉ. विकास गडकरी, दिशा (कविता संग्रह), पृष्ठ क्र. ९२, गंगोत्री प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. २०१७

३. डॉ. रामविलास शर्मा, प्रगति और परंपरा, पृष्ठ क्र. ७२. किताब महल प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. १९४९

४. डॉ. विनय तिवारी, ग्राम महिमा (कविता संग्रह), पृष्ठ क्र. ६७, पदम् प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. २०१९

५. डॉ. संतोष कोळेकर, राष्ट्रभक्ति (कविता संग्रह), पृष्ठ क्र. १०७, पृथ्वी प्रकाशन, कोल्हापूर, प्र.सं.२०१९

६. डॉ. दिनेश अग्रवाल, हिंदी कविता में राष्ट्रीय चेतना, पृ. क्र. १८२, जागृति प्रकाशन, मुंबई. प्र. सं. २०१४

७. डॉ. संतोष कोळेकर, करोना उपन्यास, पृष्ठ क्र. १२४, पृथ्वी प्रकाशन, कोल्हापूर, प्र. सं. २०२१

सहा. प्राध्यापक मुधोजी महाविद्यालय, फलटण

हिंदी फिल्मों में सामाजिक प्रश्नों द्वारा व्यक्त राष्ट्रीय भावना

डॉ. सौ. वृषाली विकास मिणचेकर

भारतीय समाज में हिंदी फिल्मों का एक अलग स्थान है। अतः यदि हमें समाज में कुछ बदलाव लाने हैं या किसी विषय पर उन्हें सोचने के लिए बाध्य करना है तो हिंदी फिल्मों से अच्छा प्रभावी माध्यम दूसरा कोई नहीं। भारत विविधताओं से परिपूर्ण देश है। उत्तर से दक्षिण तक और पूरब से पश्चिम तक अनेक भाषा-भाषी तथा संस्कृति को मानने वाले लोग यहाँ रहते हैं। इन सभी भाषाओं एवं संस्कृतियों का चित्रण करने वाली क्षेत्रीय फिल्में यहाँ बनती हैं, जो उस विशिष्ट क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती हैं। 'सिनेमा जनसंचार और मनोरंजन का एक लोकप्रिय माध्यम है। जिस तरह साहित्य समाज का दर्पण होता है, उसी तरह सिनेमा भी समाज को प्रतिबिंबित करता है।'[1] हिंदी फिल्मों का संसार व्यापक है। यह संपूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक के समाज का चित्रण नजर आता है। इन प्रदेशों में बहुभाषी एवं बहुसांस्कृतिक लोग रहते हैं। इन सभी के रहन-सहन, आचार-विचार में काफी भिन्नता है। इन सभी का अक्स हिंदी फिल्मों में देखने को मिलता है। हिंदी सिनेमा हमेशा से ही लोगों को गहराई से छूने और प्रभावित करने में सक्षम रहा है। हमारे कपड़े, हमारा रवैया, जीवन शैली यहाँ तक कि भाषा में बदलाव और उसका फैलाव ये सभी निर्धारित करने में हिंदी फिल्मों का बड़ा हाथ रहा है और रहेगा। आधुनिक फिल्में समाज-केंद्रित हैं, जो समाज के हर क्षेत्र के हर पहलू पर विचार करती हैं। 'भारतीय फिल्में अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति सजग रही हैं तथा पहले फिल्मकारों ने भारतीय संस्कृति तथा समाज से जुड़ी हुई फिल्मों का निर्माण करके भारतीय सिनेमा को एक नई दिशा प्रदान की।'[2]

भारतीय सिनेमा की शुरुआत में जो फिल्में बनीं, वो ज्यादातर आदर्शवाद को व्यक्त करने वाली थीं। फिर दौर बदला और मसालेदार फिल्में बनने लगीं। वर्तमान समय में एक बार फिर से फिल्म जगत ने करवट ली और पिछले कुछ वर्षों से बॉलिवुड में राष्ट्रवाद और देशप्रेम से जुड़ी फिल्में बनती नजर आ रही हैं। वैसे देशप्रेम या राष्ट्रभक्ति बॉर्डर पर लड़कर ही दिखायी जा सकती है, ऐसी बात नहीं है। भारत इतना बड़ा देश है। इस देश में समस्याओं की कोई कमी नहीं है। युवाओं के प्रश्न हैं, स्त्री की समस्याएँ हैं, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, मौलिक सुविधाएँ, शिक्षा, भाषिक विवाद आदि कई समस्याएँ आज देश के लिए चिंता का विषय बनती जा रही हैं। ये ही समस्याएँ आगे चलकर सामाजिक प्रश्नों का रूप धारण कर लेती हैं और ये सामाजिक प्रश्न देश के विकास में बाधक बन जाते हैं। वर्तमान हिंदी फिल्में इन सामाजिक प्रश्नों को अपना विषय बनाकर उसके कारणों तथा उपायों को प्रस्तुत करने की कोशिश कर रही हैं। भारतीय समाज में फिल्म एक लोकप्रिय विधा है। हर एक व्यक्ति इन फिल्मों में अपना जीवन ढूँढ़ने का प्रयास करता है। ''सिनेमा में मानवीय जीवन की विविध घटनाएँ दृश्यमान होती हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी दृष्टि से अपने- अपने जीवन का प्रतिबिंब देखता है। विशेषतः सिनेमा के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों, समुदायों के रूप अलग-अलग दृश्यबंधों में हमारे सम्मुख प्रकट होते हैं।'[3] जिसके कारण समाज को यदि वर्तमान स्थिति से रूबरू कराना है तो फिल्में सबसे प्रभावी माध्यम हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

21वीं सदी की फिल्में देश में व्याप्त सामाजिक समस्याओं को पूरी संवेदना के साथ दर्शकों तक पहुँचाने का प्रामाणिक प्रयत्न करती नजर आ रही हैं। सामाजिक प्रश्नों को समाप्त करने हेतु अपना योगदान दे रही हैं। यह भी एक दृष्टि से देखा जाए तो राष्ट्रीय भावना को बढ़ावा देने का ही प्रयास है। प्रस्तुत शोध निबंध में 'हिंदी मीडियम' (2017), टॉयलेटः एक प्रेम कथा (2017), 'न्यूटन' (2017), पैडमैन (2018) जैसी कुछ हिंदी फिल्मों की चर्चा की गई है, जो सामाजिक प्रश्नों को उठाकर राष्ट्र के विकास में अपना योगदान दे रही हैं।

साकेत चौधरी द्वारा निर्देशित यह फिल्म दो ऐसे वर्गों को चित्रित करती है जो शिक्षा के लिए संघर्षरत हैं। एक वर्ग जो सभी प्रकार से संपन्न है। वह शिक्षा को पाने के लिए निम्न वर्ग का व्यक्ति बनने का नाटक करता है और दूसरा वह वर्ग जो निम्न वर्ग का होते हुए भी शिक्षा द्वारा उच्च वर्ग में सम्मिलित होने का आकांक्षी है। साथ ही भारत में अंग्रेजी और अंग्रेजी माध्यम के प्रति अंधे रुझान को फिल्म 'हिंदी मीडियम' में दर्शाया गया है। इस देश में टूटी-फूटी हिंदी बोलना ज्ञान की बात मानी जाती है और कोई गलत अंग्रेजी बोलता है तो उसकी बौद्धिक क्षमता पर सवाल उठा दिए जाते हैं। जिसके कारण सरकारी स्कूल में हिंदी माध्यम में पढ़े-लिखे माता-पिता भी पूरी तरह कोशिश करते हैं कि उनकी संतान महँगे स्कूल और अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाई करे। प्रस्तुत फिल्म में दिल्ली में रहने वाले एक अच्छे खाते-पीते परिवार की कहानी के जरिए लेखक और निर्देशक साकेत चौधरी ने दिखाया है कि अंग्रेजी बोलने वालों को 'क्लासी' और हिंदी बोलने वालों को हीन समझा जाता है। इसमें नायिका मीता और उसका पति नायक राज बत्रा दिल्ली में चांदनी चौक में रहते हैं। राज की कपड़ों की बड़ी दूकान है। बीएमडब्ल्यू में घूमता है। सब कुछ होने के बावजूद मीता इसलिए परेशान रहती है कि उसके पति की अंग्रेजी अच्छी नहीं है। राज और मीता को अपनी बेटी का दाखिला दिल्ली के टॉप पाँच स्कूलों में से एक स्कूल में करवाना है, जो अंग्रेजी मीडियम के हैं। चार में तो पिया का ॲडमिशन नहीं हो पाता। आखिर एक स्कूल बचता है, जहाँ प्रवेश पाने के लिए राज और मीता गरीब होने का नाटक करते हैं ताकि गरीब बच्चों के लिए जो आरक्षित सीटें हैं उसमें से पिया को प्रवेश मिले। नायिका मीता की पिया को लेकर संपूर्ण चिंता का विषय यह है कि- ''सरकारी स्कूल में जाएगी तो कुछ नहीं सीख पाएगी। बेचारी बड़ी होके हर जगह बात करने में डरेगी। कोई अंग्रेजी में बात करेगा तो उसकी रूह काँप जाएगी। फिट नहीं हो पाएगी न सुसाइटी में; तो डिप्रेस हो जाएगी। और उसने 'ड्रग्ज' लेना शुरू कर दिया तो?.... इस देश में अंग्रेजी जबान नहीं है, क्लास है राज क्लास।'[4]

मीता का यह वक्तव्य अंग्रेजी के आतंकवाद को समझने के लिए काफी है। न चाहते हुए भी अंग्रेजी सीखना और अंग्रेजी माध्यम में पढ़ना लोगों की मजबूरी है क्योंकि अधिकांश अच्छी नौकरियाँ पाने के लिए अंग्रेजी के ज्ञान को ही अवास्तव महत्व दिया जा रहा है। अंग्रेजी नहीं आती तो आपका सारा ज्ञान तथा कामयाबी बेकार है। इरफान खान और सबा कमर अभिनित यह फिल्म अंग्रेजी बोलनेवाले और अंग्रेजी न बोलनेवालों के बीच के अंतर और वर्तमान शिक्षाव्यवस्था पर सवाल खड़ी करती है। इस गंभीर मुद्दे को यह फिल्म बड़े मनोरंजक अंदाज में पेश करने में सफल हुई है।

टॉयलेटः एक प्रेमकथा (2017) :

प्रस्तुत फिल्म 2017 में प्रदर्शित एक हास्य-व्यंग्य फिल्म है जो ग्रामीण इलाकों में स्वच्छता के महत्व जैसे गंभीर मुद्दे पर प्रकाश डालती है। प्रस्तुत फिल्म को श्री नारायण सिंह ने निर्देशित किया है। आज हम आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं, विकास की डींगे हाँक रहे हैं लेकिन ट्रैजेडी यह है कि अभी भी लाखों लोग आसमान के नीचे हल्के होने जाते हैं। ऐसा नहीं कि सरकार ने कोशिश नहीं की, लेकिन कुछ टॉयलेट्स को भ्रष्टाचार की दीमक चट कर गई तो कुछ लोग सभ्यता की दुहाई देते हुए टॉयलेट बनाने के खिलाफ हैं। खुले में शौच करने में सबसे ज्यादा परेशानी महिलाओं को होती है। सूर्योदय होने के पूर्व उन्हें गाँव से बाहर जाना होता है। दिन में जरूरत हो तो पेट पकड़कर बैठे रहो। मनचलों की छेड़खानी अलग सहो। शायद इसी कारण वर्तमान सरकार स्वच्छता और शौचालय के निर्माण पर इतना जोर दे रही है। इन सारी बातों को 'टॉयलेटः एक प्रेमकथा' फिल्म में मनोरंजक तरीके से बुना गया है। नायक केशव (अक्षयकुमार)और नायिका जया (भूमि पेडणेकर) का प्रेमविवाह होता है। ससुराल में आकर जया को पता चलता है कि यहाँ टॉयलेट नहीं है। जया पढ़ी-लिखी, आधुनिक विचारों की युवती है और चाहती है कि घर में टॉयलेट हो। ससुर इसके लिए तैयार नहीं हैं। घर में टॉयलेट उनके लिए शास्त्र का विरोध करना है। केशव पिता से डरता है इसलिए तरह-तरह के जुगाड़ करता है, लेकिन जुगाड़ टिकाऊ नहीं होते। जया घर छोड़कर मायके चली जाती है। केशव महिलाओं की समस्या को समझता है। आगे वह इस समस्या की जड़ तक किस तरह पहुँचता है, जिसके लिए वह पिता सहित, समाज यहाँ तक कि सरकारी अधिकारियों तक से कैसे लड़ता है, यही फिल्म का सार है। जिलाधिकारी का यह वक्तव्य- ''विलेन कौन है याद रखना केशव। तुम्हारी लड़ाई सभ्यता से है, समझे। और सभ्यता पर विजय पाना आसान नहीं है। कठिन परीक्षा है। इस देश में सभ्यता से लड़ना एक कठिन काम है।'[5] हमारे समाज की दकियानूसी सोच और तथाकथित सभ्यता पर व्यंग्य करता है।

प्रस्तुत फिल्म स्त्री के प्रति समाज के सोच पर भी चोट करती है। केशव जया के लिए गलती से जेन्ट्स सायकिल की डिलिवरी देता है और फिर अपनी भूल सुधारने के लिए लेडिज सायकिल देने की बात करता है तो जया कहती है- ''कोई बात नहीं, जेन्टस वाली आ गई मुझे कोई प्राब्लम नहीं, मैं रख लूँगी।'[6] किंतु केशव जेन्टस सायकिल में बीच में डंडा रहने की बात करता है, जिससे उसे परेशानी हो सकती है। तो जया का यह जवाब स्त्री के प्रति रूढ़िग्रस्त मानसिकता पर व्यंग्य करता है - ''1860 में जब सायकिल बनी थी तब औरतें क्या पहनती थीं ड्रेस या साड़ी। और उनकी सेफ्टी के लिए बीच का डंडा हटा दिया गया। और अब क्या पहनती हैं -जीन पैंट। तो डंडे का क्या डर ?'[7] प्रस्तुत फिल्म केशव के पिता एवं दादी के माध्यम से एक ऐसे समाज की ओर निर्देश करती है, जो आज भी घिसी-पीटी, अवैज्ञानिक रूढ़ियों का वहन कर रहा है। केशव के पिता आज भी केशव के मांगलिक दोष से मुक्ति के लिए उसकी शादी भैंस से करवाते हैं, उसके कुंडली दोष के कारण बाएँ हाथ में दो अंगूठे वाली लड़की से ही शादी करने की बात करते हैं।

न्यूटन (2017) :

मतदान देश का शुरूआती दौर से ही ज्वलंत मुद्दा रहा है। हर पाँच साल में भारत के नागरिक अपने मौलिक अधिकारों का प्रयोग करते हुए एक पार्टी को वोट देते हैं लेकिन इसकी प्रक्रिया कभी आसान और ईमानदार नहीं होती। फिल्म दर्शकों को उस एक दिन की कहानी दिखाने की कोशिश करती है, जिसमें दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत में मतदान होता है। इसे दूसरे शब्दों में ग्रेट इंडियन इलेक्ट्रॉनिक सर्कस कहा जा सकता है। समाज में आज भी ऐसे बहुत से लोग हैं, जिन्हें यह पता नहीं कि वोटिंग मशीन का इस्तेमाल कैसे किया जाता है, जिसका फायदा भ्रष्ट राजनीतिक लोग तथा अधिकारी उठाते हैं। अमित मसुरकर द्वारा निर्देशित यह फिल्म भारत के ऐसे समाज के मताधिकार की वकालत करती है, जो सभ्य लोगों द्वारा सदियों से ओझल है। साथ ही यह फिल्म ऐसे आदिवासियों को दर्शकों के सामने लाती है जो आज भी दो वक्त की रोटी प्राप्त नहीं कर सकते। आज भी वे शिक्षा एवं स्वास्थ्य की सुख-सुविधाओं से काफी दूर हैं। प्राकृतिक प्रकोपों के कारण वैसे भी आए दिन ढेर सारी समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। ऊपर से इनके क्षेत्रों में पाए जाने वाले खनिजों पर पूँजीपतियों की टेढ़ी नजर है। इसी कारण इनके घरों को जलाकर तथा अन्य तरीकों से डरा-धमकाकर इन्हें उस क्षेत्र से खदेड़ा जा रहा है। निर्देशक ने इनके फटे कपड़ों से दिखती खुली पीठ, पोपला मुँह, सूखे चेहरे पर स्पष्ट निर्दोषता दिखलाकर दर्शकों को सोचने के लिए विवश कर दिया है। उनके क्षेत्र में वोटिंग कराने गया अधिकारी न्यूटन सैनिक अधिकारियों द्वारा उनके साथ किए गए व्यवहार को देखकर दंग रह जाता है। इस पर वहीं की आदिवासी मलको उसे बताती है, ''आपने जो आज देखा है, वो देखते-देखते हम बड़े हुए हैं।'[8] इस संवाद से हम उनके शोषण का अंदाजा लगा सकते हैं। बड़े-बड़े अधिकारी खनिज लूटने के लिए ऐसे आदिवासी क्षेत्रों को नक्सली घोषित कर देते हैं।

'न्यूटन' फिल्म एक और वर्तमान समस्या की ओर दर्शकों का ध्यान आकर्षित करती है, वह है स्त्री-शिक्षा। हमारे देश में स्त्रियों की संख्या आधी आबादी के बराबर है किंतु हमारा दुर्भाग्य यह कि यह आधी आबादी आज भी शिक्षा, स्वास्थ्य तथा रोजगार जैसी बुनियादी जरूरतों से वंचित है। आज भी समाज लड़की को चूल्हे-चौके तक ही कैद रखना चाहता है। उसे शिक्षा देना आज भी जरूरी नहीं माना जाता। हम बड़े जोर-शोर से 21वीं सदी में विकास की चर्चा करते हैं किंतु आज भी सिर्फ गिनती की लड़कियाँ ही उच्च शिक्षा में प्रवेश कर पायी हैं। यदि उच्च शिक्षा तक पहुँचने के उनके संघर्ष का जिक्र किया जाए तो कई किताबें बन सकती हैं। न्यूटन जब लड़की की उम्र साढ़े सोलह साल सुनकर सगाई से मना करता है तो लड़की के पिता का उत्तर है, ''बच्ची ससुराल में बड़ी हो ज्यादा बेहतर है।'[9] इसी सोच के कारण समाज में आज भी लड़की का बालविवाह किया जाता है, जिससे भविष्य में उसे शारीरिक तथा मानसिक बीमारियों से जूझना पड़ता है। आज भी स्त्री को ससुराल में नौकर या सेविका का दर्जा मिलता है और दुर्भाग्य यह कि यह दर्जा मुफ्त नहीं मिलता बल्कि अच्छा-खासा दहेज भी देना पड़ता है।

पैडमैन (2018):

आर. बाल्की द्वारा निर्देशित 'पैडमैन' फिल्म मुरुगानंतम की कहानी है, जो स्त्रियों

के स्वास्थ्य के लिए सस्ते एवं आरोग्यदायी सैनेटरी नैपकिन बनाने की कोशिश करता है। भारतीय समाज परंपरा एवं संस्कृति के नाम पर आज भी दुष्चक्र में फँसा हुआ नजर आता है। प्रस्तुत फिल्म में ऐसे ही एक दुष्चक्र का चित्रण किया है और वह है, स्त्री की माहवारी। भारतीय समाज में पीरियड्स आना या मेंस्टूअल साइकिल आज भी महिलाओं के लिए शर्म की बात है। खास कर तब जब बात मध्यमवर्गीय और गरीब परिवार की स्त्री की हो, वहाँ शर्म ही धर्म है। लड़की के बड़े होने पर धूम-धाम से जश्न तो मनाया जाता है, लेकिन जैसे ही वो पाँच दिन आते हैं, लड़की अछूत हो जाती है और घर के किसी कोने में धकेल दी जाती है। जिस समय लड़कियों को सबसे ज्यादा साफ-सुथरा रहने की आवश्यकता होती है तब उन्हें गंदगी में रहने के लिए बाध्य किया जाता है। गंदे कपड़े का उपयोग करने के लिए मजबूर किया जाता है।

प्रस्तुत फिल्म अरुणाचलम मुरुगानंतम नामक एक शख्स की वास्तविक कहानी से प्रेरित हैं जिसने अपनी पत्नी की माहवारी से जुड़ी समस्याओं को देखते हुए देश की प्रत्येक महिला की जिंदगी का आसान बनाने का लक्ष्य किया। जिसका किरदार अभिनेता अक्षयकुमार ने निभाया है। नायक को जब पता चलता है कि माहवारी में गंदे कपड़ों का इस्तेमाल करना जानलेवा हो सकता है, तो वह अपनी पत्नी तथा सभी महिलाओं की जिंदगी की इस मुश्किल को आसान बनाने के मिशन में जुट जाता है। इस बीच उसे अपनी पत्नी, बहन और माँ द्वारा धिक्कारा जाता है और गाँववाले उससे कटना शुरू कर देते हैं। वह लगातार जलील होता है। रुपयों की व्यवस्था न होने के कारण निराश भी होता है, लेकिन महिलाओं की जिंदगी को आसान बनाने और सस्ते सैनिटरी नैपकिन बनाने की उसकी धुन जारी रहती है, लोगों की सोच बदलने का उसका मिशन जारी रहता है। इस मिशन के दौरान उसे किन मुश्किलों का सामना करना पड़ता है, यही फिल्म की कहानी है। फिल्म में समाज की कुरीतियों, शर्म एवं संवेदना को भर-भर कर दिखाया गया है। पीरियड्स को गंदी चीज कहने वालों की सोच शायद फिल्म को देखकर बदले। यह फिल्म सामाजिक बदलाव और सामाजिक सरोकार का बेहतरीन उदाहरण है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वर्तमान समय में हिंदी फिल्मों ने अपना चोला बदल लिया है। फिल्में समकालीन सामाजिक समस्याओं को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम बनती हुई नजर आ रही हैं। भारतीय समाज में हिंदी फिल्मों का एक अलग स्थान है। अतः यदि हमें समाज में कुछ बदलाव लाने हैं या किसी विषय पर उन्हें सोचने के लिए बाध्य करना है तो हिंदी फिल्मों से अच्छा प्रभावी माध्यम दूसरा कोई नहीं। भारत एक विकसनशील देश है और ऐसे राष्ट्र में समस्याओं की कोई कमी नहीं होती। ये समस्याएँ राष्ट्र के विकास में बाधक होती हैं। इन समस्याओं को जब लोकप्रिय अभिनेताओं के माध्यम से परदे पर प्रस्तुत किया जाता है तो समाज उस पर नए सिरे से सोचने पर बाध्य हो जाता है।

इस तरह यहाँ कुछ प्रातिनिधिक आधुनिक फिल्मों का जिक्र किया गया है जिनमें आज की वर्तमान समस्याओं पर चर्चा की गई है। आज अंग्रेजी का भूत नई पीढ़ी पर किस तरह हावी होता जा रहा है, जिसके चलते हम अपने ही राष्ट्र की भाषा की तौहीन कर रहे हैं। देश के निवासियों को अपनी ही भाषा पर गर्व न हो यह निश्चित ही शर्मनाक

बात है। दिखावेपन, भुलावे में भारतीय लोग अपनी संस्कृति एवं भाषा को खोते जा रहे हैं। 'हिंदी मीडियम' फिल्म शिक्षा व्यवस्था की असमानता और उसमें उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के अधिकार हड़पने के षड्यंत्र का पर्दाफास करने में सफल नजर आती है। 'टॉयलेटः एक प्रेमकथा' गाँव में शौचालय न होने की समस्या पर आधारित है, जो उन सभ्यताओं और रूढ़ियों की पोल खोलती है, जिसकी वजह से आज भी हमारा समाज आगे बढ़ने से रुक जाता है। इस फिल्म के माध्यम से भारतीय समाज के उस रूप का दर्शन करवाया है जो आज भी मध्यकाल में जीवन जीने को अपनी शान समझता है। प्रस्तुत फिल्म शौचालय जैसी समस्या को उठाकर स्त्री की परेशानियाँ, रूढ़िग्रस्त समाज का उसके साथ व्यवहार करने का तरीका, आधुनिक स्त्री में आए सकारात्मक बदलाव आदि पर गंभीरता से भाष्य करती है। 'न्यूटन' फिल्म स्त्री का बालविवाह, दहेज की समस्या तथा आदिवासियों पर होने वाले अत्याचार तथा मतदान की हेराफेरी जैसी समस्याओं की ओर दर्शकों का ध्यान आकर्षित करती है। यह फिल्म दुर्गम प्रदेशों में रहनेवाले आदिवासियों की नरक-यातनाओं का जीवंत दस्तावेज है। सरकार इनकी स्थिति सुधारने के लिए योजनाएँ तो आदर्श बनाती है किंतु यह आदर्शवाद केवल सरकारी फाइलों में ही बंद रह जाता है और इन लोगों को भ्रष्ट व्यवस्था में पीसना पड़ता है। 'पैडमैन' फिल्म स्त्री जाति के जीवन से जुड़ी हुई माहवारी की समस्या को सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करती है। 21 वीं सदी में जी रहे हमारे समाज का यह दुर्भाग्य है कि वह आज भी परंपरागत सोच में जकड़ा हुआ है। स्वास्थ्य से संबंधित जो चीज सबसे जरूरी है, उसी विषय पर यहाँ भाष्य करना मना है, जिसके कारण स्त्री को कई संकटों का सामना करना पड़ता है, यहाँ तक कि गंदगी के कारण जान गँवाने का खतरा भी बढ़ जाता है। यह समस्या है तो स्त्री से संबंधित किंतु स्वयं स्त्री ही इस विषय पर खुलकर बोलने से शरमाती है। फिल्म का यह संवाद इस बात को स्पष्ट करता है - ''हम औरतों के लिए बीमारी से मरना शर्म के साथ जीने से बेहतर है।'[10] स्वयं स्त्री ही अपने शरीर की प्राकृतिक चीजों को छुपाने की कोशिश करती है। तो दूसरी तरफ समस्या यह है कि जो भी कोई स्त्री के इन प्रश्नों की ओर रुख करने की कोशिश करता है, उसे समाज द्वारा प्रताड़ना मिलती है। यह फिल्म समाज में माहवारी और इसके दौरान साफ-सफाई का महत्व तथा माहवारी की ओर देखने का समाज का गंदा दृष्टिकोण बदलने का संदेश देती है। वैसे देखा जाए तो विवेच्य फिल्मों में सीधे तरीके से कहीं भी राष्ट्रीय भावना नजर नहीं आती। किंतु मुझे लगता है कि केवल रणभूमि में जाकर दुश्मन से लड़ाई करना या इसी विषय पर फिल्में बनाना या साहित्य का लेखन करना ही राष्ट्रीय भावना नहीं है अपितु राष्ट्रीय भावना का विस्तृत अर्थ राष्ट्र के हित से है। राष्ट्र के हित के लिए जो भी गतिविधियाँ होती हैं, वे सारी राष्ट्रीय भावना को ही व्यक्त करती हैं। राष्ट्र का हित तभी हो सकता है, जब राष्ट्र समस्यामुक्त हो और इसे समस्यामुक्त करने के लिए हम जो भी करें वह राष्ट्रीय भावना से प्रेरित ही है। जब हमारे समाज की हर एक इकाई समस्या से मुक्त होगी, तब निश्चित ही राष्ट्र विकास की ओर बढ़ेगा और इस काम में वर्तमान हिंदी फिल्में सौ फीसदी अपना योगदान देती हुई नजर आ रही हैं।

संदर्भ :

1. httPPs://www.hindilibraryindia.com
2. सूचना तंत्र और प्रसारण माध्यम, डॉ. कृष्णकुमार रत्तू, पृ. 117 मंगलदीप पब्लिकेशन, जयपुर, 2001
3. प्रयोजनमूलक हिंदी, सं. बलजिंदर कौर रन्धावा और कौशल पांडेय, पृ. 108, अतुल प्रकाशन, कानपुर, 2008
4. फिल्म- 'हिंदी मीडियम'- निर्देशक- साकेत चौधरी, 2017
5. फिल्म- 'टॉयलेट : एक प्रेमकथा'- निर्देशक- नारायण सिंह, 2017
6. वही
7. वही
8. फिल्म- 'न्यूटन'- निर्देशक अमित मसूरकर, 2017
9. वही
10. फिल्म- 'पैडमैन' - निर्देशक आर. बाल्कि, 2018

अध्यक्षा, हिंदी विभाग,
सहकार भूषण एस. के. पाटील महाविद्यालय, कुरूंदवाड।

राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत डॉ. कुमार विश्वास का काव्य

डॉ. नितीन धवडे

राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति हमेशा से ही साहित्य का मूल विषय रहा है। राष्ट्र के प्रति आत्मीयता तथा अत्यधिक प्रेम की भावना ही राष्ट्रीयता कहलाती है। हिंदी के अनेक साहित्यकारों ने देशभक्ति एवं राष्ट्राभिमान की भावना को दृढ़ करने के लिए राष्ट्रीय चेतना को व्यक्त कर अपनी साहित्यिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है। जनता के दिल में अपने देश के प्रति देशप्रेम, राष्ट्रीय अस्मिता एवं राष्ट्राभिमान जगाने की दृष्टि से इन रचनाकारों में से किसी ने अतीत का गौरव गान करते हुए तो किसी ने प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण कर देशभक्ति की भावना को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। राष्ट्र के प्रति आत्मीयता तथा अत्यधिक प्रेम की भावना ही राष्ट्रीयता कहलाती है। 'काव्य कला पर राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव सदा ही रहा है। काव्य मूल्यता राष्ट्रीयता की ही अभिव्यंजना है। प्रत्येक काव्य में राष्ट्रीय अथवा जाति के जीवन का ही चित्रण होता है। राष्ट्रीय परिस्थितियों में जो जो परिवर्तन होते जाते हैं, काव्य के रूप में भी उसी प्रकार परिवर्तन होते जाते हैं। राष्ट्रीय जीवन में जो उतार-चढ़ाव होते हैं, उनका सही और यथार्थ अंकन काव्य के माध्यम से होता है।'[1]

साहित्य हमेशा से ही अपनी समकालीन परिस्थितियों से प्रभावित रहता है। बीसवीं शती के साहित्य में हमें राष्ट्रीय चेतना के स्वर की तीव्रता अधिक दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि वह समय की माँग थी। देश में आजादी का आंदोलन जोरों पर था। ऐसे में अनेक हिंदी साहित्यकारों ने अपनी साहित्यिक प्रतिबद्धता का प्रमाण देते हुए अपनी रचनाओं में राष्ट्रीय भावना एवं चेतना को अभिव्यक्त करते हुए लोगों के दिलों में देशभक्ति की भावना जगाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। 'राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने में आधुनिक साहित्य का बहुत बड़ा योगदान रहा है। राष्ट्रवाद से सामुदायिक भावना का विकास होता है और लोकतांत्रिक भावना भी राष्ट्रवाद से समृद्ध होती है। देश की रक्षा, हित, संगठन, एक समाज के जातीय स्वरूप के विकास की आकांक्षा, कोशिश राष्ट्रीय चेतना का अविभाज्य अंग है।'[2] राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर', माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कवि इकबाल, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभाद्रा कुमारी चौहान, रामनरेश त्रिपाठी, सोहनलाल द्विवेदी आदि अनेक साहित्यकारों के नाम लिए जा सकते हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को उत्तरोत्तर पुष्पित और पल्लवित करने में उल्लेखनीय योगदान दिया।

21वीं सदी के साहित्य में भी यह राष्ट्रीय चेतना हमें अनेक रचनाकारों में दिखाई देती है। भारत देश को आजाद हुए 75 वर्ष हुए। हाल ही में हमने आजादी का अमृत महोत्सव मनाया। एक ओर देश ने कृषि, उद्योग-व्यवसाय, विज्ञान एवं तकनीक, रक्षा, शिक्षा आदि इन सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भर भारत के रूप में विश्व में अपनी पहचान बनाई है, तो दूसरी ओर लोगों के आत्मकेंद्रित आचरण को देखकर राष्ट्र अभिमान की भावना कहीं कम तो नहीं हो रही है, इस बात की भी आशंका जताई जा रही है। 'यदि वर्तमान में हमने कुछ खोया है तो वह है- रिश्तों की बुनियाद। दरकते रिश्ते, कम होती स्निग्धता,

प्रेम और आत्मीयता इतिहास की वस्तु बनते जा रहे हैं। राष्ट्रीयता का एक पक्ष है, अपने अतीत की स्मृति। अतीत की स्मृति आत्मस्मृति है। विगत के प्रति सम्मोहन उसी समय होता है जब हम परंपरा से विगलित हो जाते हैं....परंपरा का रिश्ता स्मृति से है, सम्मोहन से नहीं।'[3] ऐसे में लोगों के दिल में आपसी सद्भाव, प्रेम, हमारी परंपरा, संस्कृति के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए अनेक कवियों ने राष्ट्रीय चेतना को अपनी कविता का मुख्य विषय बनाया है।

आज हम देख रहे हैं कि लोग अपने अधिकारों के प्रति तो जागृत हैं लेकिन देश के प्रति अपने कर्तव्यों को लोग गंभीरता से नहीं ले रहे हैं। इन लोगों को राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति एवं आजादी का महत्व बताने के लिए 21वीं सदी के अनेक हिंदी कवियों ने अपनी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त करने का सार्थक प्रयास किया है। उन्हीं कवियों में एक उल्लेखनीय नाम है डॉ. कुमार विश्वास का। उनके तीन काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं -'इक पगली लड़की के बिन', 'कोई दीवाना कहता है' और 'फिर मेरी याद'। कवि सम्मेलनों के कवि के रूप में वे युवाओं में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। उनके काव्य प्रस्तुति के अनेक वीडियो यूट्यूब पर भी हम देख सकते हैं। साथ ही कविता कोश, वेबदुनिया हिंदी, मोटिवेशनल शायरी जैसे इंटरनेट मंच पर भी उनकी कविताएँ पढ़ने को मिलती है। उनकी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना पाठक के मन में देशभक्ति का संचार करने के साथ-साथ देश के प्रति हमारे नैतिक कर्तव्यों का भी हमें एहसास दिलाती है। तिरंगे के प्रति प्रेम, स्वतंत्रता सेनानियों का बलिदान, देश की रक्षा करने वाले सैनिकों का त्याग आदि उनके काव्य में पढ़कर राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रप्रेम जैसी उदात्त भावनाएँ अनायास ही हमारे मन में उत्पन्न होती हैं।

आजादी का महत्व वही अच्छी तरह से समझ सकता है, जिसने गुलामी भोगा हो। वर्तमान समय की जनता का आचरण देखकर ऐसा लगता है कि ये लोग देश की आजादी के आंदोलन के इतिहास को भूल गए हैं। आज हम सब एक आजाद देश के नागरिक के रूप में अपना जीवन यापन कर रहे हैं लेकिन यह आजादी हमें इतनी आसानी से नहीं मिली। इसके लिए अनेक स्वतंत्रता सेनानियों को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। किसी भी देश के लिए उस देश का राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगीत और राष्ट्रभाषा उस देश की राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान होते हैं। अतः इन तीनों के प्रति नागरिकों के मन में प्रेम तथा अभिमान होना आवश्यक है। हमारा राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा के प्रति होने वाली भावना को व्यक्त करते हुए कवि ने लिखा है -

'तिरंगा है आन मेरी / तिरंगा ही है शान मेरी
तिरंगा रहे सदा ऊँचा हमारा / तिरंगे से है धरती महान मेरी।'[4]

इसी तरह 'होठों पर गंगा हो, हाथों में तिरंगा हो' कविता में तिरंगे के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त कर हमें भी तिरंगे की शान बढ़ाने की प्रेरणा दी है। जैसे -

'जीते जी इसका मान रखें, मरकर मर्यादा याद रहे,
हम रहें कभी ना रहें, मगर इसकी सज-धज आबाद रहे।'[5]

देश में उच्च शिक्षा लेकर और विदेशों में जाकर नौकरी करने वाले तथा अन्य कारणों से विदेशों में जा बसे भारतीयों का आवाहन करते हुए कवि कहते हैं -

'राष्ट्र की खातिर सर्वस्व देना ही होगा / कर्ज इस माटी का चुकाना ही होगा /
रहो तुम चाहे सात समुंदर पार मगर / देश अगर पुकारे तो आना ही होगा।'[6]

आज की हमारी युवा पीढ़ी विदेशों में जाकर बड़े-बड़े पदों पर नौकरी कर रही हैं लेकिन इन पदों पर पहुँचाने में देश का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इसे हमें कभी भूलना नहीं चाहिए। अतः देश को जब जरूरत हो, हमें उसमें योगदान देना चाहिए। देश के खातिर अगर प्राणों की आहुति भी देनी पड़े, तो उसके लिए हमें तैयार रहना चाहिए। अपनी इसी भावना को व्यक्त करते हुए कुमार विश्वास जी लिखते हैं -

हो जाऊँ शहीद मगर मुझे जिंदा वतन चाहिए,/
हिंदुस्तान से हर दरिंदा मुझे खत्म चाहिए।
मंजूर नहीं कोई दूसरा रंग ना कोई वस्त्र मुझे/
मर जाऊँ तो केवल तिरंगा मुझे कफन चाहिए।[7]

कवि ने युवा पीढ़ी को सजग किया है कि देश से बढ़कर कोई बात नहीं। अतः समय आने पर देश के लिए मर मिटना भी एक गौरव की बात है। हम सब अपने-अपने घरों में जब सुख चैन से सोए होते हैं, तभी सीमा पर हमारे सैनिक पहरा दे रहे होते हैं। वे हर समय इस देश के खातिर शहीद होने के लिए तैयार रहते हैं। उनके इस बलिदान को हमें कभी भी भूलना नहीं चाहिए। इसी बात का एहसास दिलाते हुए वे कहते हैं-

उनके हौसले का भुगतान क्या करेगा कोई /
उनके शहादत का कर्ज देश पर उधार है, /
आप और हम इसलिए खुशहाल हैं /
क्योंकि सीमा पर सैनिक शहादत को तैयार हैं।'[8]

कवि कुमार विश्वास हमें स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदान की भी याद दिलाते हुए कहते हैं-

चलो फिर से आज वह नजारा याद कर लें /
शहीदों के दिल में थी वो ज्वाला याद कर लें/
जिसमें बहकर आजादी पहुँची थी किनारे /
देशभक्तों के खून की वह धारा याद कर लें।'[9]

जो इतिहास को भूलते हैं, वे भविष्य का निर्माण नहीं कर सकते हैं। भारत देश को आजाद करने में अनेक देशभक्तों ने अपना खून बहाया। अपना पूरा जीवन इस देश के लिए समर्पित किया लेकिन उनके इस बलिदान को हम भूलते जा रहें हैं। अतः कवि हमें उसकी याद दिलाते हुए हमारे और नई पीढ़ी के मन में देशभक्ति की भावना को बनाये रखने का प्रयास किया है। देश से बढ़कर कोई बात नहीं होती। जो सच्चा देशभक्त होता है, वह हमेशा देश के लिए सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार रहता है। जब भारत माता ही सब कुछ होती है, तब क्या पत्नी, क्या बेटी और क्या माँ, उसके लिए सभी को तथा परिवार को छोड़ने की बात करते हुए कवि ने लिखा है -

किसी गजरे की खुशबू को महकता छोड़ आया हूँ /
मेरी नन्ही सी चिड़िया को चहकता छोड़ आया हूँ।
मुझे छाती से अपनी तू लगा लेना यह भारत माँ

मैं अपनी माँ की बाहों को तरसता छोड़ आया हूँ।'[10]

इनकी 'है नमन उनको' कविता में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति बहुत ही सशक्त रूप में दिखाई देती है। कवि उन सभी का नमन करते हैं, जिन्होंने इस देश की खातिर त्याग किया है। कवि का कहना है कि चाहे वे स्वतंत्रता सेनानी हों या देश की रक्षा करने वाले सैनिक, उनके शौर्य और महानता के सामने हिमालय भी बौना लगता है। कवि के शब्दों में -

है नमन उनको कि जो यशकाय को अमरत्व देकर/
इस जगत के शौर्य की जीवित कहानी हो गये हैं,
है नमन उनको कि जिनके सामने बौना हिमालय
जो धरा पर गिर पड़े पर आसमानी हो गये हैं।'[11]

निष्कर्षतः राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति की दृष्टि से कवि कुमार विश्वास जी का काव्य निश्चित ही उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से देश के प्रति आत्मीयता एवं देशप्रेम को बहुत ही मार्मिक एवं प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। उनका राष्ट्र के प्रति अनुराग ही उनकी राष्ट्रीय चेतना का मूल है। आज जब लोगों के आचरण में लगातार मूल्यों का पतन हो रहा है, कवि ने नई पीढ़ी के मन में राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रप्रेम, त्याग, बलिदान आदि उदात्त भावों की प्रतिष्ठा की एक सार्थक पहल की है। राष्ट्रीय चेतना से युक्त उनकी कविताएँ देशभक्ति, राष्ट्रीय अस्मिता और राष्ट्राभिमान का भाव दृढ़ करने में निश्चित ही सार्थक सिद्ध होती हैं।

संदर्भ :

1. आधुनिक हिंदी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास - डॉ. जीतराम पाठक, पृ. 28, राजीव प्रकाशन, 173, अलोपीबाग, इलाहाबाद - 6, प्रथम संस्करण-1976।
2. वर्तमान साहित्य में राष्ट्रीयता के संदर्भ - सुशील कुमार शर्मा, httPÞs://m--hindi-webdunia- com.cdn.amPÞPÞroject.org/v/s/m-hindi.webdunia.com/hindi-literature-articles/hindi literature से साभार।
3. वहीं से साभार।
4. डॉ. कुमार विश्वास की देशभक्ति शायरी, httPÞs://blogsoch.in/bestshayar/kumar-vishwas-desh-bhakti-shayari-in-hindi/5-2/ से साभार।
5. होठों पर गंगा हो, हाथों में तिरंगा हो, डॉ. कुमार विश्वास, कविता कोश, httPÞ://kavitakosh.org- से साभार।
6. डॉ. कुमार विश्वास - देशभक्ति शायरी httPÞs://motivationalshayari.in/kumar-vishwas-desh-bhakti-shayari-in-hindi से साभार।
7. वही, httPÞs://blogsoch.in/bestshayar/kumar-vishwas-desh-bhakti-shayari-in-hindi/5-2/
8. वही, httPÞs://blogsoch.in/bestshayar/kumar-Vishwas-desh-bhakti-shayari-in-hindi
9. वही, httPÞs://motivationalshayari.in/kumar-vishwas-desh-bhakti-shayari-in-hindi
10. वहीं से साभार
11. है नमन उनको- डॉ. कुमार विश्वास, कविता कोश, httPÞ://kavitakosh.org- से साभार।

सहयोगी प्राध्यापक एवं हिंदी विभागाध्यक्ष,
मुधोजी महाविद्यालय, फलटण.

21वीं सदी के भीम गीतों में राष्ट्रीय भावना

कु. शितल प्रल्हाद चव्हाण, शोधछात्र

अपने देश के प्रति लगाव, प्रेम, कर्तव्य और अपनेपन की भावना राष्ट्रीय भावना कहलाती है। राष्ट्रीय भावना के बिना किसी देश की उन्नति नहीं हो सकती। देश के विकास के लिए हर नागरिक के मन में राष्ट्रीय भावना का होना आवश्यक है। राष्ट्रीय भावना के संस्कार जन्म से ही हर बच्चों को मिलने चाहिए ताकि बच्चा बड़ा होकर अपने मन में अपने देश के प्रति तन, मन, धन अर्पण करने का भाव रख सके। देश के प्रति कर्तव्य-भावना तथा देश का सम्मान करना हमारे देश में बचपन से ही जन्म घुट्टी की तरह बच्चों को पिलाया जाता है। आगे चलकर इन भावनाओं की वृद्धि साहित्य का अध्ययन करने से, वक्ताओं के व्याख्यान सुनने से, महापुरुषों के चरित्र का अध्ययन करने से वृद्धिगत होती है। अतः यह कहना गलत नहीं है कि अपने देश की सही पहचान करने के लिए साहित्य अपनी भूमिका बखूबी निभाता है। अपना देश क्या है, देश की परंपरा क्या है, देश का इतिहास क्या है, देश की महत्वपूर्ण बातें क्या है, इन बातों की जानकारी हमें साहित्य के माध्यम से प्राप्त होती है।

कविता, खंडकाव्य, महाकाव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी आदि तमाम साहित्य की विधाएं राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत होती हैं। इसके साथ ही लोकगीत, फिल्मगीत तथा किसी आदर्श नेता के सम्मान में रचे गए गीत राष्ट्रीय भावना को परिलक्षित करते हैं।

राष्ट्र ऐसे लोगों का समूह हैं जो एक दूसरे के साथ भावनाओं से जुड़ा हुआ होता है। राष्ट्रीय भावना का रूप अत्यंत व्यापक है। अपने राष्ट्र के प्रति आदर रखना, राष्ट्र के मानचिन्हों के प्रति आदर रखना सिर्फ यही चीजें राष्ट्र भावना के अंतर्गत नहीं आतीं बल्कि समाज में स्थित अनिष्ट प्रथाओं को समूल नष्ट करना यह भी राष्ट्रीय भावना है। इस दृष्टि से देखा जाए तो दलितों के जीवन उद्धार का कार्य करने वाले डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी कार्यों का उल्लेख भी हम राष्ट्रीय भावना के रूप में कर सकते हैं। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी की राष्ट्र के लिए जो देन है, वह बहुत गौरवशाली और अभिमानास्पद है। एकता का प्रचार, संविधान का निर्माण, नारी समानता आदि को समाज में स्थापित करना भी एक राष्ट्रीय भावना है। उन्होंने समाज की पाखंडी व्यवस्था का विरोध किया और दलितों को नया जीवन दिया। दलितों के मन में जीवन यापन करने की नई सोच निर्मित की।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी द्वारा किए गए राष्ट्रीय महत्व के इन्हीं कार्यों का गौरव तमाम मंचीय तथा प्रकाशित भीम गीतों में बड़ी मात्रा में पाया जाता है। इन्हीं राष्ट्रीय भावनाओं से परिचित कराना यहाँ अभीष्ट रहा है।

संविधान का सम्मान :

संविधान का सम्मान करना यह हर भारतीय का परम कर्तव्य है। भारत का इतिहास विविधतापूर्ण रहा है। धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा इन सभी चीजों में विषमता पाई जाती है। संविधान के जरिए इन सभी को एक सूत्र में बाँधा गया है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी संविधान के मसौदा समिति के अध्यक्ष थे। अतः संविधान निर्माण में उनका महत्वपूर्ण

योगदान था। यही कारण है कि उन्हें संविधान के शिल्पकार के रूप में स्वीकारा जाता है। इनके संविधान निर्माण के पश्चात् ही पिछड़े दलित वर्ग के जीवन को नया दृष्टिकोण और नया नजरिया मिला।

संविधान अपना प्यारा इसकी निराली जग में शान है /
भारत का बच्चा-बच्चा करता दिलो जाँ कुर्बान है
शहर मोहल्ला डोले जब तोला नारे भीम के लगाए
करम मेरे भीम का है करम मेरे भीम का है'[1]

अर्थात् भारत के सभी लोग संविधान से प्रेम करते हैं। विश्व में हमारे संविधान को अव्वल मानते हैं। भारत का बच्चा-बच्चा संविधान का आदर करता है। अपने आपको संविधान पर कुर्बान करता है। यही वजह है कि गली-गली शहर मोहल्ले में संविधान आंबेडकर जी द्वारा किया गया कर्म है, ऐसे नारे दिए जाते हैं। इस प्रकार का वर्णन भीम गीतों में पाया जाता है। संविधान सिर्फ एक किताब नहीं बल्कि भारत का आत्मा है। संविधान देश का सर्वोच्च कानून है। सविधान को समझ लेना भी राष्ट्रीय भावना ही है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी का मत यह था कि 'प्रत्यक्ष संविधान से, संविधान के अनुसार व्यवहार करने की नीति जनता में होनी अनिवार्य है, यही बात अधिक महत्वपूर्ण है। यदि पार्लियामेंट्री लोकतंत्र पद्धतियों को सफल होना होगा, तब सरकार और जनता इन दोनों ने संवैधानिक कुछ संकेत और नीति का पालन करना आवश्यक है।'[2]

एकता की भावना :

देश की राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए एकता का भाव होना जरूरी है। एकता मनोवैज्ञानिक संकल्पना है। इसी एकता की राह पर चलना हमें डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने सिखाया है। भारतीय समाज पद्धति वर्ण-व्यवस्था के कारण दलितों पर होते हुए अन्याय- अत्याचार हम सदियों से देखते आए हैं। 'वर्ण व्यवस्था परंपरागत सिद्धांत, वेद, पुराण, उपनिषद्, स्मृति ग्रंथ आदि पर आधारित है। सबसे प्राचीन प्रमाण ऋग्वेद का पुरुष सूक्त है, जहाँ ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु से वैश्य और पदों से शुद्र का उत्पन्न होने का उल्लेख मिलता है।'[3] इसी कारणवश दलितों पर सदियों से अन्याय अत्याचार किए गए। इस वर्णव्यवस्था पर सोचा जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह वैज्ञानिक नहीं है। फिर भी समाज में उसका आचरण किया जाता था। इस व्यवस्था को नष्ट करने का काम डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने कानून के माध्यम से किया। एकता को समाज में स्थापित करना इस राष्ट्रीय भावना को उजागर करने का काम डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने किया-

'आकर खजाना भीम ने प्यारा लुटाया / न्याय एकता का दीपक जलाया /
खुशियाँ बाँटी दलितों में तमाम / बने बिगड़े काम भीम जी के नाम'[4]

अर्थात् डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने न्याय और एकता का जो दीप जलाया है, उसने दलितों के जीवन में खुशियाँ भर दी हैं। अगर देश में एकता की भावना हो तो देश उन्नति कर सकता है। अतः कहने की आवश्यकता नहीं है कि एकता की भावना राष्ट्रीय भावनाओं के साथ जोड़ी जा सकती है। समाज में एकता का भाव होना यह राष्ट्रीय भावना का एक पहलू है।

नारी समता का अधिकार :

नारी के प्रति सम्मान और आदर रखना यह भी राष्ट्रीय भावना है। नारी समाज का महत्वपूर्ण अंग है। नारी को चार दीवारों से बाहर निकालकर शिक्षा के प्रति प्रेरित करने का कार्य सर्वप्रथम महात्मा फुले जी ने किया। महात्मा फुले जी ने शिक्षा को महत्व देते हुए कहा है कि-

'विद्या विना मती गेली, मती विना नीति गेली / नीति विना गती गेली, गती विना वित्त गेले / वित्त विना शुद्र खचले इतके अनर्थ, एका अविद्येने केले।'[5]

शिक्षा न होने के कारण हम जीवन-मूल्य खो देते हैं। शिक्षा ही मनुष्य जीवन सुधारने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। 19 वीं सदी के अंतिम दशकों में महात्मा फुले जी ने शूद्र और अस्पृश्य जातियों में स्त्री शिक्षा का और सामाजिक सुधारों का श्रीगणेश करके सामाजिक विषय में जो कार्य पुणे से प्रारंभ किया था, वह 20 वीं सदी में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर और अन्य नेताओं के लिए आधार-स्तंभ और प्रेरणा-स्रोत बना।'[6] महात्मा फुले ने स्त्री शिक्षा आरंभ की और भीमराव आंबेडकर जी ने स्त्री-शिक्षा को कानूनी अधिकार प्रदान किया। उनके पश्चात यह काम डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने पूरा किया। नारी शिक्षित होने के कारण समाज सुशिक्षित हो सकता है। वह अपने परिवार को शिक्षित बना सकती है, अपने बच्चों को शिक्षित बना सकती है। इस कारण समाज की प्रगति हो सकती है और यह राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण बात है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने नारी शिक्षा के संदर्भ में कहा था, 'आपको अपनी बेटियों को भी शिक्षित करना चाहिए। ज्ञान और शिक्षा केवल पुरुषों के लिए नहीं हैं बल्कि वह औरत के लिए भी जरूरी है। यदि आप अपनी अगली पीढ़ी को सुधारना चाहते हो तो आपको अपनी बेटियों को भी शिक्षित करना होगा।'[7] नारी को समाज में समान दर्जा देना, नारी शिक्षा का समर्थन करना, इन चीजों में भी राष्ट्रीय भावना पाई जाती है।

नर और नारी सबको दिया मेरे भीम जी ने मान है
उपदेश प्यारा उज्ज्वल दर्शाता अपना संविधान है [8]

इस प्रकार नारी को संविधान के जरिए कानूनी अधिकार प्राप्त होते हुए हम देखते हैं और इसके जरिए नारियां हर क्षेत्र में अपनी अनोखी पहचान निर्माण करने का प्रयास कर रही हैं। यह राष्ट्रीय भावना की विशेषता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय भावना के अंतर्गत राष्ट्र के प्रति प्रेम, आदर, अपनेपन की भावना आदि बातों को दोहराना तो उचित ही है परंतु राष्ट्रीय भावना को उजागर करने के लिए जो समाजोपयोगी महत्वपूर्ण बातों को अपने आचरण में लाना, समाज में स्थित गैरजरूरी बातों में बदलाव लाना और सामाजिक उन्नति के लिए अपनी भूमिका निभाना और इस तरह अपने देश का नाम ऊँचाई तक पहुंचाने के लिए प्रयास करना, यह जिम्मेदारी हर एक भारतीय नागरिक की है।

संदर्भः

1. शायर देवीदास गुलदे, बौद्ध जागृति गीतमाला, सं. 2014, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 36
2. विनय कुमार वासनिक, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के प्रेरक भाषण, सं. 2019,

सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ क्र.67
3. मधुकर पिपलायन, भारतीय समाज में वर्ण भेद, 2015, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 3
4. शायर देवीदास गुलदे, बहुजन की पुकार, सं. 2014, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 77
5. महात्मा ज्योतिबा फुले, शेतकऱ्याचा असूड, अप्रैल 2017, सप्तर्षी प्रकाशन मंगलवेढ़ा, पृष्ठ क्र.7
6. के. एल. चंचरिक, भारत में दलित आंदोलन, 2017 सृष्टी बुक डिस्टिब्युट्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 1
7. डॉ. नरेंद्र जाधव, डॉ. आंबेडकर आत्मकथा एवं जनसंवाद, 2017, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 77
8. शायर देवीदास गुलदे, बौद्ध जागृति गीतमाला, सं. 2014, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 36

डॉ. परशुराम शुक्ल की बाल कविताओं में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना

डॉ. माधव राजण्णा मुंडकर

हिंदी के बाल साहित्यकारों में डॉ. परशुराम शुक्ल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। हिंदी बाल साहित्य के महारथी डॉ. परशुराम शुक्ल का जन्म 6 जून, 1947 को कानपुर जिले के अपनी ननिहाल सैबसू नामक ग्राम में हुआ था। डॉ. परशुराम शुक्ल जी ने विशेषकर सूचनात्मक बाल साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। डॉ. शुक्ल ने 150 से अधिक पुस्तकें और लगभग 6000 स्फुट रचनाएँ लिखी हैं। डॉ. शुक्ल का सूचनात्मक बाल साहित्य उपयोगिता की दृष्टि से बहुमोल है। सूचनात्मक साहित्य में उनकी सैंकड़ों किताबें प्रकाशित हुई हैं। फिर उन्होंने बाल कहानी, एकांकी, नाटक और कविता इन विधाओं में भी अपनी लेखनी का करिश्मा दिखाया है। डॉ. परशुराम शुक्ल के सूचनात्मक बाल साहित्य का प्रधान लक्ष्य बालकों के मनोरंजन के साथ-साथ उनमें राष्ट्रनिष्ठा निर्माण करना, सामाजिक दायित्व-बोध से परिचित कराना, नैतिक शिक्षा प्रदान करना रहा है। डॉ. परशुराम शुक्ल की बाल कविताएं बालकों को शिक्षा के माध्यम से चरित्र, नैतिक जीवन मूल्य, राष्ट्रनिष्ठा, परोपकार, समाजसेवा आदि उदात्त मूल्यों की शिक्षा देती हैं। डॉ. परशुराम शुक्ल के बाल कविता-संग्रह के नाम इस प्रकार हैं- 1. तितली (2002), 2. उठो सवेरे (2002), 3. आओ गुनगुनाओ (2002), 4. छुक-छुक रेल (2002), 5. पुरस्कृत बालगीत (2003), 6. हमारे राजकीय पशु और पक्षी (2003), 7. मोटूराम(2004), 8. मंगल ग्रह जाएँगे (2008), 9. हमारे प्राकृतिक प्रतीक (2009), 10. चारो खाने चित्त (2009), 11. तिरंगा (2009), सूरज पाना (2009), 12. खिलौना वाला (2011), 13. हँसीघर (2011), 14. बच्चों की सरकार (2011), 15. ऐसी कहो कहानी (2011), 16. खेलो, कूदो मौज उड़ाओ (2012), 17. सर्कस का हाथी (2012), 18. बच्चों की रेल (2012), 19. बच्चे हँसते गाते हैं (2012), 20. देश का मान (2012), 22. जंगल की होली (2012), 23. टीचर जी का डंडा (2012), 24. कलरव (संक्षिप्त) (2012), 25. नंदनवन (संक्षिप्त) (2012), 26. आओ बच्चों, गाओ बच्चों (2012), 27. मेरी गुड़ियाँ (2013), 28. भारत के रखवाले (2013), 29. हिंदी अपनाए (2013), 30. वृक्षों के गुण गाते (2013), 31. जल से सारी खुशी हमारी (2013), 32. हमारे राजकीय वृक्ष और पुष्प (2014), 33. बेटी और समाज (2014), 34. पुस्तक महिमा (2014)।

डॉ. परशुराम शुक्ल की बाल कविताओं में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना :

डॉ. परशुराम शुक्ल की बाल कविताओं में अनेक जगहों पर राष्ट्रीय भावना का वर्णन आया है। इसमें उन्होंने राष्ट्र के प्रति भक्ति, राष्ट्र पुरुषों के विचार एवं उनके कार्य का महत्त्व, राष्ट्रीय पर्वों का महत्त्व, भारत की संस्कृति, भारत का स्वाधीनता आंदोलन आदि विषयों पर कविताएं लिखकर बाल मन को संस्कारित करने का कार्य किया है। अतः उनकी बाल कविताओं में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना को निम्नांकित मुद्दों के आधार

पर समझते हैं-

राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्रपुरुषों का मूल्यांकन :

डॉ. परशुराम शुक्ल जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से बच्चों में राष्ट्र भक्ति एवं राष्ट्र पुरुषों के प्रति आदर निर्माण करने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। वे अपने देश के प्रति निष्ठा रखना अपना धर्म मानते हैं। भारत देश की सभ्यता एवं संस्कृति, वीर राष्ट्र पुरुषों का इतिहास आदि के प्रति वे बालकों को आदर रखने का संदेश देते हैं। उनकी 'वंदे मातरम्' कविता में राष्ट्रनिष्ठा एवं राष्ट्र संस्कृति की झलक मिलती है-

आकर हमको आँख दिखाए, / किसमें इतना दम, वन्दे मातरम् /
वंशज हैं, हम राम कृष्ण के, / सारी दुनिया जाने। /
सत्य, अहिंसा धर्म हमारा। / जग इसको भी माने। /
विश्व शांति उद्देश्य हमारा, / जब तक दम में दम। / वंदे मातरम्....
भारतवासी कहें शान से। / वंदे मारतम्, वंदे मातरम्'[1]

प्रस्तुत कविता में डॉ. शुक्ल भारत के गरिमामय इतिहास और इतिहास पुरुषों के त्याग, बलिदान एवं पराक्रम की गाथा को याद रखने की सीख देते हैं। बालकों के मन में इतिहास चेतना एवं राष्ट्रभक्ति निर्माण करने का प्रयास करते हैं।

किसी भी देश के निर्माण में इतिहास का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। यह इतिहास वहाँ के राष्ट्रपुरुषों के जीवन-कार्य, विचार और बलिदान से निर्मित होता है। राष्ट्रपुरुषों के विचार पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं और इसी कारण वह पूरे मानव समाज के मन में अपना अहम स्थान बनाते हैं। इन राष्ट्रपुरुषों द्वारा अपने जीवन-कार्य से स्थापित आदर्शों से आनेवाली पीढ़ियों को अवगत कराना समय की माँग है। कहा जाता है, जो इतिहास को नहीं जानते वे इतिहास भी नहीं बना सकते। इसलिए बच्चों को किताबों के माध्यम से राष्ट्रपुरुषों के जीवनवृत्त एवं उनके विचारों से परिचित करना जरूरी है। इसी दृष्टि से डॉ. परशुराम शुक्ल का साहित्य मूल्यवान है। उन्होंने अपनी कविता और कहानियों में जहाँ संभव हो वहाँ हमारे राष्ट्रपुरुषों और राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत उनके विचारों को प्राथमिकता दी है। वे लिखते हैं-

'वीर शिवा, राणाप्रताप का,/ रक्त हमारे तन में। / रण चंडी भी बसी हुई है,/
जनम-जनम से मन में। / वंशज हैं, हम राम कृष्ण के, / सारी दुनिया जाने।'[2]

स्पष्ट है प्रस्तुत कविता में डॉ. शुक्ल ने छत्रपति शिवाजी महाराज, महाराणा प्रताप, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, राम, कृष्ण आदि राष्ट्रपुरुषों को हमारे आदर्श होने की बात कही है। साथ ही उनके सत्य, अहिंसा, धर्म आदि के विचारों को जानकर उन्होंने विश्व शांति के उनके महान उद्देश्य से परिचित होने का संदेश दिया है। आजादी की पहली जंग का नेतृत्व करनेवाली वीर महिला रानी लक्ष्मीबाई भी भारतवासियों के मन-मन में बसी हुई हैं। इतिहास की यह नारी इतिहास के पन्नों पर हमेशा के लिए अमर हुई है। शुक्ल ने 'रानी लक्ष्मीबाई' इस कविता में रानी का पूरा जीवन वृत्तांत एवं उनकी राष्ट्रनिष्ठा का वर्णन किया है। इस कविता में कवि की राष्ट्रीय भावना पँक्ति-पँक्ति में मुखर उठी है-

आओ बच्चों! तुम्हें सुनाएँ,/ गाथा एक पुरानी।/ जिसने गोरों को ललकारा,/
वह झाँसी की रानी।/ वह तलवार चलाती ऐसे, / वार न जाता खाली। /

तेरह वर्षों में बन बैठी / गंगाधर की रानी। /
झाँसी नगरी में आ पहुँची, / गढ़ने एक कहानी।'[3]

इस कविता में झाँसी की रानी की पूरी सूचनात्मक जानकारी देते हुए राष्ट्रीय भावना का भी वर्णन किया गया है। साथ ही कवि ने देश की आजादी के लिए अपने प्राणों का सर्वोच्च बलिदान देने की ऐतिहासिक घटना से बालकों परिचित कराया है। इस पूरी कविता में झाँसी की रानी के युद्ध कौशल, परवरिश, उनकी शादी और झाँसी की रानी बनने और अंग्रेजों से युद्ध करने तक राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत घटनाओं की रोमांचक कहानी प्रस्तुत की गयी है।

खेल के माध्यम से राष्ट्रीय भावना निर्माण करने के लिए डॉ. शुक्ल ने देश के महान खिलाड़ियों पर भी कविताएं लिखी है। उन्होंने हॉकी के जादूगर मेजर ध्यानचंद पर भी कविता लिखी है। आज वर्तमान समय में बच्चे केवल क्रिकेट के पीछे पागल हुए हैं। कई बालकों को यह भी पता नहीं होता कि भारत का राष्ट्रीय खेल हॉकी है। अतः डॉ. शुक्ल 'हॉकी के जादूगर' इस कविता से बच्चों को मेजर ध्यानचंद और उनके हॉकी के कौशल्य की जानकारी मिलती है। साथ ही हमारे राष्ट्रीय खेल हॉकी के प्रति भी बच्चों में राष्ट्रीयता की भावना निर्माण हो जाती है।

'आओ बच्चों आज हम सभी,/ ध्यान चंद को जानें।/ हॉकी के इस जादूगर को /
कविता से पहचानें।/ सन उन्निस सौ पाँच देश ने / एक रतन धन पाया।/
जिसने हॉकी में भारत का,/ जग में ध्वज फहराया।'[4]

प्रस्तुत कविता में मेजर ध्यानचंद की सूचनात्मक जानकारी मिलती है। प्रतिकूल हालात में सैनिक की जिम्मेदारी को निभाते हुए मेजर ध्यानचंद ने हॉकी में जो करिश्मा दिखाया था, उससे पूरी दुनिया दंग रह गई थी। मेजर ध्यानचंद में अपने देश के प्रति अगाध राष्ट्रनिष्ठा थी, जिससे उन्होंने प्रतिकूल हालात में भी भारत का नाम दुनिया में रोशन किया। अपने राष्ट्रीय खेल और मेजर ध्यानचंद जैसे खिलाड़ियों के प्रति बच्चों के मन इस कविता से सम्मान बढ़ता है।

राष्ट्रीय पर्व का मूल्यांकन :

बालकों के शैक्षिक जीवन में उन्हें कई राष्ट्रीय पर्व और दिनों की जानकारी होती है लेकिन बालक इन राष्ट्रीय दिनों को केवल औपचारिक रूप में समझते हैं। 26 जनवरी 'गणतंत्र दिन' और 15 अगस्त 'स्वाधीनता दिन' को केवल सफेद युनिफॉर्म पहनकर, सूट-बूट में स्कूल जाना और ध्वज फहराने के बाद मिठाई खाकर वापस घर आना, यहीं तक ही बालकों की समझ होती है लेकिन डॉ. परशुराम शुक्ल ने अपनी सूचनात्मक बाल कविताओं के माध्यम से ये दिन क्यों मनाए जाते हैं? इनका राष्ट्र के स्तर पर क्या महत्त्व है? इनकी तिथियाँ यहीं क्यों निश्चित की गई हैं, आदि की विस्तार से जानकारी दी है।

डॉ. शुक्ल ने गणतंत्र दिन, विश्व जल दिवस, विश्व पुस्तक दिवस, खेल दिवस, बाल दिवस, दशहरा आदि राष्ट्रीय दिन और पर्व पर सूचनात्मक बाल कविताएँ लिखी हैं। 26 जनवरी पर विशेष रूप से लिखी 'अधिकार कर्तव्य' कविता में डॉ. परशुराम शुक्ल बच्चों को संदेश देते हैं-

संविधान आजादी वाला,/ बच्चों इस दिन आया / इसने दुनिया में भारत को,/

नव गणतंत्र बनाया।/ क्या करना है और नहीं क्या?/ संविधान बतलाता।/
लेकिन संविधान को पढ़ कर,/ मानवता को जानो।/ अधिकारों के साथ जुड़े,/
कर्त्तव्यों को पहचानो।'[5]

गणतंत्र दिन क्यों मनाया जाता है और भारतीय नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य क्या हैं इसके बारे में बालकों को जानकारी मिलती है। भारत के सुजान नागरिक बनने और राष्ट्रीय हित के लिए 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' की सीख का संदेश प्रस्तुत कविता देती है।

वर्तमान समय में दुनिया के अधिकांश देश जल संकट की समस्या से जूझ रहे हैं। आज जल संकट का सामना करने के लिए हमें जल साक्षर बनने की जरूरत है। इसलिए 22 मार्च को विश्व जल दिवस के रूप में मानाया जाता है। अपने प्राकृतिक स्त्रोतों का संवर्धन करना भी अपने आप में एक राष्ट्रहित का कार्य है। इसलिए डॉ. शुक्ल ने अपनी 'जल महिमा' कविता में जल ही जीवन, रोजाना व्यवहार में पानी का इस्तेमाल, स्वास्थ्य के लिए पानी का उपयोग, मनुष्य की नादानी से जलस्त्रोतों का प्रदूषण आदि का सुबोध विवेचन किया है-

'मानव नादानी में,/ जल को खूब बहाता।/ और प्रदूषित करके इसको,/
अपनी मौत बुलाता।/ जल बिन जीवन नहीं रहेगा,/ जल की महिमा जानो।/
आज अभी से जल संरक्षण, / करने की तुम ठानो।'[6]

स्पष्ट है प्रस्तुत कविता में बालकों को पानी के महत्त्व के साथ पानी के प्रदूषण की गंभीरता और जल संरक्षण के महत्त्व को दर्शाया है। आज स्कूली बच्चों में विभिन्न नशों को लेकर कौतूहल होता है। कक्षा के कुछ बिगड़े हुए बच्चों की संगत में आकर बच्चे बुरे नशों में फँस सकते हैं। इससे उसका जीवन बरबाद हो सकता है। साथ ही घर में भी कोई नशा करता है तो बच्चों की परवरिश पर इसका बुरा असर पड़ता है। अतः 26 जून को 'विश्व नशा निवारण दिन' मनाया जाता है। इस दिवस के उपलक्ष्य में डॉ. शुक्ल ने 'अद्भुत नाटक' यह चित्रात्मक कविता लिखी है। इसमें छोटे बच्चों द्वारा विभिन्न नशों जैसे, सिगरेट पीना, भांग पीना, गांजा पीना, शराब पीना, अफीम पीना आदि के द्वारा नशे में चूर लोग किस प्रकार गलतियाँ करते हैं, यह कविता में बताया है-

'लोगों ने नाटक देखा तो,/ बात समझ में आई।/
नशा छोड़ने में ही सबको,/ अपनी लगी भलाई।'[7]

स्पष्ट है कि प्रस्तुत कविता में डॉ. शुक्ल ने बच्चों के विभिन्न नशों के बारे में जानकारी देकर उनके बुरे प्रभावों को भी नाटकीय कविता के माध्यम से स्पष्ट किया है। कविता के अंत में उन्होंने नशा छोड़ने में जीवन की भलाई होने का संदेश दिया है। किसी भी राष्ट्र के लिए उसकी सहेतमंद और निरोगी युवा पीढ़ी एक बहुत बड़ी संपत्ति होती है और इसके संस्कार बचपन से ही होने जरूरी होते हैं।

वर्तमान समय में भारत में 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' का नारा दिया जा रहा है। आज भारत में बेटी को भी बेटों के समान दर्जा दिया जा रहा है। आज हर क्षेत्र में महिलाएँ पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है। विश्वभर में महिला सक्षमीकरण के मुद्दे को प्राथमिकता दी जा रही है। 24 सितंबर को पूरी दुनिया में अंतर्राष्ट्रीय बालिका

दिवस मनाया जाता है। इस दिन के उपलक्ष्य में डॉ. शुक्ल ने 'बेटी' इस कविता के माध्यम से बेटी की शिक्षा का महत्त्व और महिला सक्षमीकरण को स्पष्ट किया है-

'पढ़ लिखकर में बनूँ डॉक्टर / सबकी जान बचाऊँ। / बनूँ इंदिरा मैं भारत की/
सत्ता पर छा जाऊँ।/ अगर कहो तो बन व्यापारी,/ लाखों लाख कमाऊँ।/
बेटा कभी नहीं कर सकता,/ वह कर के दिखलाऊँ।'[8]

स्पष्ट है कि यह कविता बालिका दिन एवं बेटी की परिवार एवं राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट करती है। भारतीय समाज में विभिन्न सांस्कृतिक पर्वों की बड़ी अहमियत होती है। इसमें दिवाली और दशहरा बच्चों के बहुत ही पसंदीदा त्यौहार है। डॉ. शुक्ल ने दशहर पर्व पर 'विजय पर्व' नामक कविता लिखी है। इस कविता में राम अवतार, राम-जानकी विवाह, जानकी का अपहरण, राम-रावण युद्ध और राम की विजय आदि बातों को सुबोध कविता में स्पष्ट किया है। भारत के इन सांस्कृतिक पर्वों के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक विरासत और राष्ट्रीय भावना से कवि बच्चों को परिचित कराते हैं-

'मानवता की रक्षा करने,/ राम धरा पर आये।/ मर्यादा पुरुषोत्तम बन कर,/
सारे जग में छाये।/ दैत्यराज लंकापति रावण,/ इसी काल में आया।/
कर विध्वंस धरा पर उसने,/ हाहाकार मचाया।'[9]

स्पष्ट है कि डॉ. शुक्ल द्वारा राष्ट्रीय पर्व एवं दिन पर लिखी बाल कविताएँ बालकों के सामान्य ज्ञान के साथ उनमें राष्ट्रीय भावना विकसित करती हैं। राष्ट्रीय पर्वों को लेकर बच्चों के मन में एक सांस्कृतिक बोध जागृत होता है और वे इनके महत्त्व को समझते हैं।

डॉ. परशुराम शुक्ल की बाल कविताओं में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना शीर्षक इस शोधालेख के उपरोक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि डॉ. शुक्ल जी की बाल कविताओं में भारत की महिमा का गुणगान हुआ है। उनकी कविताओं में बौद्धिकता, ज्ञान-विज्ञान, प्राकृतिक परिवेश, शिक्षा, राष्ट्र पुरुषों के विचार एवं राष्ट्रीय पर्वों के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण संस्कार दिए गए हैं। राष्ट्रपुरुषों के विचार पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं और इसीकारण वह पूरे मानव समाज के मन में अपना अहम स्थान बनाते हैं। इन राष्ट्रपुरुषों ने अपने जीवन कार्य से स्थापित किए आदर्शों को हमारी आनेवाली पीढ़ियों को अवगत कराना समय की मांग है। डॉ. शुक्ल ने भी अपनी अनेक सूचनात्मक बाल कविताओं में छ. शिवाजी महाराज, महाराणा प्रताप, झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, महात्मा गांधी, पं. नेहरू, मेजर ध्यानचंद आदि राष्ट्रपुरुषों पर कविताएँ लिखी है। इन कविताओं के द्वारा उन्होंने राष्ट्र पुरुष का संघर्षमय जीवन, उनका त्याग, राष्ट्र के लिए बलिदान आदि के द्वारा बच्चों के मन में हमारे इतिहास और राष्ट्रपुरुषों के प्रति सम्मान जागृत किया है। डॉ. शुक्ल के सूचनात्मक बाल कविताओं में राष्ट्रीय पर्व और दिनों पर लिखी कविताएँ बेहद मूल्यवान बनी है। विश्व जल दिन, विश्व बालिका दिन, विश्व नशा विरोधी दिन, बाल दिवस, दशहरा विजय पर्व आदि कविताओं के द्वारा बाल-मनों का प्रबोधन किया है।

संदर्भ :

1. डॉ. परशुराम शुक्ल, प्रतिनिधि बाल कविताएँ, रामश्री प्रकाशन, 23- प्लेटिनम पार्क, भोपाल, प्र.सं. 2015, पृ. 51
2. वही, पृ. 84
3. वही, पृ. 81
4. वही, पृ. 77
5. वही, पृ. 78
6. वही, पृ. 80
7. वही, पृ. 49
8. वही, पृ. 83
9. वही, पृ. 78

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
नाईट कॉलेज ऑफ आर्टस अण्ड कॉमर्स, इचलकरंजी.

'21वीं सदी के हिंदी उपन्यास और राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्व'

डॉ. नितीन विठ्ठल पाटील

हिंदी साहित्य के प्रत्येक कालखंड में राष्ट्रीय भावना और चेतना को स्वर देने का काम बड़े ही जोर शोर से हुआ है। आधुनिक काल में तो इसका विस्तृत स्वरूप हमें देखने को मिलता है। इस संदर्भ में डॉ रामचंद्र शुक्ल जी लिखते हैं - 'प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है।'[1] आज हिंदी साहित्य अलग-अलग विधाओं में देखने को मिलता है किंतु उपन्यास विधा पाठकों की सबसे लोकप्रिय विधा रही है। 21वीं सदी के अंतर्गत विविध विषयों को लेकर उपन्यास लिखे जाने लगे हैं। जिसमें भूमंडलीकरण, बाजारवाद, सांप्रदायिकता और रिश्तों में टकराव जैसे विषयों पर उपन्यास लिखे जाने लगे हैं। आज हर कोई अपनी जिंदगी के प्रश्नों को सुलझाने में व्यस्त है। समाज और देश के लिए मर मिटने की भावना किसी में भी दिखाई नहीं देती है। वैश्विक बाजार के चलते हर कोई बेचने और खरीदने की होड़ में लगा हुआ है। भौतिक सुविधाओं को पूरा करने के लिए भारतीय लोग भी दिन रात दौड़ते हुए नजर आ रहे हैं। प्रभा खेतान जी इस संदर्भ में लिखती हैं- 'स्वतंत्र बाजार ने विज्ञापन द्वारा प्रत्येक देश की संस्कृति को प्रभावित किया है। विज्ञापनों की हवा पर सवार होकर उपभोक्तावाद दूर-दूर तक यात्रा करता है।'[2] इसी बात पर इस सदी के उपन्यासकार व्यथित और चिंतित हो अपनी लेखनी के माध्यम से सदियों से सोई हुई जनता को जगाने का काम करते हुए दिखाई देते हैं। साथ ही राष्ट्रीय एकता के लिए घातक घटनाओं का पदार्फाश करते हुए भी दिखाई देते हैं। 21वीं सदी के उपन्यासकारों में संजीव, प्रदीप सौरभ, मनोहर श्याम जोशी, मिथिलेश्वर, गोविंद मिश्र, रामधारी सिंह दिवाकर, दूधनाथ सिंह, मधु कांकरिया, शरद सिंह, मृदुला सिन्हा, असगर वजाहत, नासिरा शर्मा, काशीनाथ सिंह, कुणाल सिंह, अलका सरावगी, अनामिका, गीतांजलि श्री आदि के नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं। इन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से प्रत्यक्ष- अप्रत्यक्ष रूप में राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने के अनेकों प्रयास किए हैं।

आज के दौर में राष्ट्रीय एकता में अनेक बाधक तत्व नजर आते हैं, जिसमें प्रांतवाद, भाषावाद, सांप्रदायिकता, जातिवाद, रंगभेद, धर्म भेद आदि प्रमुखता से देखे जा सकते हैं लेकिन हम ध्यान दे तो इन सभी बाधक तत्वों के पीछे गंदी राजनीति ही दिखाई देती है। हमारे लोक-प्रतिनिधि अपने स्वार्थों के लिए देश हित की भावना को तिलांजलि देते हुए नजर आने लगे हैं। उस दुखती रग पर उंगली रखने का काम हमारे 21वीं सदी के उपन्यासकार करते हुए नजर आते हैं। आज सभी राजनीतिक पार्टियाँ राष्ट्रहित का केवल ढोंग करती हुई नजर आने लगी हैं। वे सत्ता प्राप्ति के लिए किसी एक विशेष धर्म की तरफदारी करते हुए नजर आते हैं। दरअसल आधुनिक भारत की राजनीति में धार्मिक हस्तक्षेप बहुत ही उफान मारने लगा है। जिसकी वजह से भारत में आए दिन धार्मिक हिंसाएँ बढ़ने लगी है। इस संदर्भ में प्रदीप सौरभ जी 'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास में लिखते हैं-'गोधरा ने देश की राजनीति में तीव्र ध्रुवीकरण किया। वैसे ध्रुवीकरण की नींव तो 6

दिसंबर 1992 को ही पड़ गई थी। उस दिन बाबरी मस्जिद को भगवा ब्रिगेड ने ध्वस्त कर दिया था।'[3] इस तरह इस उपन्यास में राष्ट्रीय भावना को ध्वस्त करने वाली गंदी राजनीति का पर्दाफाश किया है।

राष्ट्रवाद की अवधारणा को तोड़ मरोड़कर पेश किया जा रहा है। आज हमारे देश में अराजकता का माहौल बना हुआ है। राष्ट्रीय भावना को विकसित होने के लिए सभी राज्यों को एकजुट रहना अत्यंत आवश्यक होता है। भले ही हमारे देश में अलग-अलग प्रांत हों, उनकी अपनी अपनी संस्कृति हो लेकिन हमें देश हित के लिए वैचारिक और भावनात्मक रूप से एकजुट रहना ही होगा। नहीं तो देश के टुकड़े होने में देर नहीं लगेगी। कुछ चंद राजनेताओं के झांसे में आकर हम अपने देश की अस्मिता को दांवपर लगा रहे हैं। इस संदर्भ में 'क्याप' उपन्यास में मनोहर श्याम जोशी लिखते हैं- भूमंडलीकरण के दौर में उग्रराष्ट्रवाद खासा फैशन में आ चुका था। भारतीय राजनीति में भी इस तरह के क्षेत्रीय-जातीय विभाजन को मानवीय और प्रगतिशील ठहराया जाने लगा था।'[4] भूमंडलीकरण के इस दौर में घृणा और द्वेष की यह राजनीति और भी फलने फूलने लगी है। आदिकाल की तरह आज एक विशिष्ट क्षेत्र को ही राष्ट्र माना जाने लगा है। महाराष्ट्र में चल रही आज की राजनीति को उसी दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। पूरे भारतवर्ष को एकसूत्र में बांधनेवाले सभी सूत्र टूटने लगे हैं। कोई भी पार्टी सत्ता में आते ही पहले की सभी योजनाओं को बंद कर देती है। चाहे वह योजनाएँ देशहित में ही क्यों न हों। बाद में ढेरों योजनाओं को घोषित किया जाता है। अरबों-खरबों रुपयों को उड़ाया जाता है। कमीशन का धंधा बड़े ही जोर शोर से चलता रहता है। उस समय राष्ट्रहित की भावना कहीं कोने में पड़ी हुई दिखाई देती है। हर जगह केवल स्वार्थ उफान मारने लगता है। नेता लोग अपनी झोली भरने में इतने व्यस्त हैं कि उन्हें बाकी का कुछ भी दिखाई नहीं देता। इस संबंध में राजू शर्मा 'हलफनामे' उपन्यास में कहते हैं- 'सत्ता और पद की भूख को पूरा करना, निभाना ही इतनी विकट और व्यापक योजना थी कि उन्हें न समय बचता था न शक्ति।'[5] सब कुछ खुलेआम हो रहा है। देश को दोनों हाथों से लूटा जा रहा है। कई योजनाएँ तो हमें केवल कागजों में ही नजर आती हैं। आज इसी कारण देश का गरीब और गरीब होता जा रहा है। यदि ऐसा ही चलता रहा तो गरीब लोग राष्ट्र हित के बारे में ना सोचेंगे ना विश्वास रखेंगे।

धर्म के ठेकेदार लोगों की अज्ञानता का फायदा उठाकर उन्हें गुमराह करने का काम कर रहे हैं। आजकल इन लोगों का राजनीति में भी हस्तक्षेप बढ़ने लगा है। देश को लूटने के सपने वह भी देखने लगे हैं। साधु-महात्मा, मौलवी, पादरी या कोई भी धर्मगुरु आज राजनीतिक समारोहों में नजर आने लगे हैं। लगभग सभी राजनीतिक पार्टियाँ भी धार्मिक संरक्षण पाने की जुगत में लगी हुई है। इसमें देशहित की भावना न के बराबर है। ग्लोबल गाँव के देवता' इस उपन्यास में रणेन्द्र जी लिखते हैं - 'बाबा जी ने जन्मभूमि आंदोलन में बढ़-चढ़कर भूमिका निभाई, हजारों की संख्या में अपने भक्तों को जन्मभूमि रवाना किया, तो उनका कद और भी ऊंचा हो गया। वे उस सदाचारी- संस्कारवान पार्टी के नेशनल थिंक टैंक में गिने जाने लगे।'[6] इन बाबा लोगों का चरित्र कितना ही घिनौना क्यों ना हो उससे आज की राजनीतिक पार्टियों को कोई फर्क नहीं पड़ता है। उन्हें केवल

और केवल कुर्सी प्राप्त करनी है। इसीलिए वह कुछ भी करने को तैयार होते हैं। नेता लोग केवल अपनी वोट बैंक को सलामत रखना चाहते हैं। इसके कारण देश पर क्या परिणाम होगा इसके बारे में थोड़ा सा भी सोचते नहीं है। झूठे वादों और ढकोसलों के बलबूते ये आम आदमी को मूर्ख बनाने में लगे हुए हैं। देश हित एवं राष्ट्रीय भावना की किसी भी नेता को कोई भी जरूरत नहीं दिखाई देती है।

आज देश में पूंजीवादी लोग गरीबों की भावनाओं से खेलते नजर आने लगे हैं। कानूनी और आर्थिक षडयंत्र रचाकर आम जनता को दबोचा जा रहा है। वास्तव में राष्ट्रीय भावना को बढ़ावा देने के लिए अमीर लोगों को आगे आकर गरीबों की मदद करनी चाहिए। उनके साहस को बढ़ावा देने का काम करना चाहिए लेकिन ऐसा होता हुआ हमें नजर नहीं आता है। पैसों के घमंड में यह लोग देश की इज्जत को भी दांवपर लगाने के लिए तैयार हैं। इनके नापाक इरादों को अंजाम देने के लिए इन्होंने राजनीतिक व्यक्तियों से हाथ मिलाया है। आए दिन गुंडों -माफियों और पूंजीवादियों के साथ राजनीतिक व्यक्तियों की मिलीभगत सामने आने लगी है।' इस संदर्भ में 'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास में प्रदीप सौरभ जी खुलकर लिखते हैं-'उत्तर प्रदेश के एक मंत्री सोमपाल त्यागी के बेटे सिरीश की नजर इस जमीन पर है। टीटी और इलाकों के रंगदारों से मिलकर सिरीश पहलवान को उसकी जमीन से खदेड़ देता है। मंत्री का बेटा है, इसलिए पुलिस भी जमीन खाली कराने में सिरीश की खुलकर मदद करती है।'[7] यदि ऐसा ही चलता रहा तो आम आदमी का कानून और संविधान से विश्वास ही उठ जाएगा, जो हमारी राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिए खतरा साबित हो सकता है। भूमंडलीकरण के इस युग में भारतीय समाज में अनेकों बदलाव देखे जाने लगे हैं। आज हर कोई पैसों के पीछे भागता हुआ नजर आने लगा है। भारतीय लोग विदेशी वस्तुओं को खरीदने की होड़ में लगे हुए हैं। आज का युवा वर्ग विदेश की तरफ आकर्षित होता हुआ नजर आने लगा है। उसे अपना देश कबाड़ लगने लगा है। युवाओं की देश के प्रति आत्मीयता दिनों- दिन कम होती हुई नजर आने लगी है। 'अकाल संध्या' इस उपन्यास में माई का बेटा अमेरिका में जाकर बस जाता है। उसे वहाँ की संस्कृति अच्छी लगने लगती है। लेकिन माई अपने गाँव को छोडती नही है। वह कहती है, 'जब बेटा-बहू अपना सुख और भविष्य दूसरे देश में खोज सकते हैं, तो वह अपनी बाकी बची जिंदगी का सुख क्यों नहीं खोज सकती। अपना गांव है, अपने लोग हैं, मन ही मन विकल्प ढूंढ लिया माई ने।'[8] इस तरह आज भी हमारे लोग अपने देश और अपनी मिट्टी से जुड़े हुए हैं। किंतु माई जैसे लोग आज कम ही बचे हुए हैं। पुरानी पीढ़ी के बाद नई पीढ़ी में राष्ट्रीय भावना कम होती हुई नजर आने लगी है।

नक्सलवाद भी भारत को अंदर से खोखला बना रहा है। आज भारत के कई इलाके नक्सली प्रभावित क्षेत्र हैं। इन इलाकों के लोग सरकार का छुप-छुप कर विरोध करते हुए नजर आते हैं। 21वीं सदी में कुणाल सिंह, विजय शर्मा और महुआ माजी आदि उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नक्सलवादी समस्या को देश के सामने रखने का प्रयास किया है। कुणाल सिंह का उपन्यास 'आदिग्राम उपाख्यान' में देश के आंतरिक भागों में फैली नक्सलवादी समस्या को बड़ी ही बारीकी से चित्रित किया है। इस

उपन्यास में रघुनाथ नामक एक पात्र है जो नक्सलवादी संगठनों का सदस्य है। 'रघुनाथ की संगत में आने से इस बीच उसने दुनिया के बारे में बहुत कुछ सीखा है। माओत्से तुंग के बारे में, सद्दाम हुसैन के बारे में, जार्ज बुश के बारे में, अमरीका और वियतनाम के बारे में। रघुनाथ कहता है, कि हम फिर से गुलाम हो गए हैं और इस गुलामी से छुटकारा पाने के लिए हमें गुरिल्ला वार लड़ना पड़ेगा, गुरिल्ला वार का मतलब पूछने पर उसने् बताया घात लगाकर छिपकर पटकनी देना।'[9] इस तरह इस उपन्यास में नक्सलवादी समस्या को चित्रित किया गया है। यह समस्या हमारे देश के लिए अत्यंत ही विघातक साबित हो रही है। देश में नफरत का जहर घोल रही है, जिसका इलाज जल्द से जल्द करना होगा।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासकारों ने राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्व को समाज के सामने रखने की कोशिश की है। यदि हमें पूरे भारतवर्ष की एकता और अखंडता को बनाए रखना है तो हमें भाषावाद, क्षेत्रीयता, सांप्रदायिकता, जातीयता, धार्मिकता आदि चीजों से दूर रहना होगा। एक दूसरे के साथ भाईचारे का व्यवहार करना होगा। देश में चल रही गंदी राजनीति को साफ करना होगा। इसके लिए जनता को जागृत होकर अपने प्रतिनिधियों का चयन करना होगा। चुनाव के समय पैसों के लालच में न आकर सही व्यक्ति का चयन करना होगा। धार्मिक और सांप्रदायिक दांभिकता को दूर रखते हुए मिल - जुलकर रहना होगा। केवल और केवल मानव धर्म की स्थापना करनी होगी। नेताओं को अपने स्वार्थ को दूर रखते हुए देशहित के बारे में विचार करना होगा। भूमंडलीकरण के इस युग में युवाओं को विदेश के आकर्षण से बचना होगा। अपने देश के लिए हर समय त्याग और बलिदान के लिए तैयार रहना होगा। हम सभी यदि इन बातों का ध्यान रखते हुए राष्ट्र भावना को बढ़ावा देने का काम करेंगे तो हमारी राष्ट्रीय एकात्मता सदैव अखंडित रहेगी, जिसको कोई तोड़ भी नहीं सकेगा।

संदर्भ :

1. डॉ. रामचंद्र शुक्ल -हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ. 21
2. प्रभा खेतान - बाजार के बीचः बाजार के खिलाफ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2010, पृष्ठ.12
3. प्रदीप सौरभ -मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,2009, पृष्ठ.21
4. मनोहर श्याम जोशी -क्याप, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,2001, पृष्ठ.116-117
5. राजू शर्मा -हलफनामे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,2006, पृष्ठ .23
6. रणेन्द्र - ग्लोबल गाँव के देवता, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ.61
7. प्रदीप सौरभ -मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ.13
8. रामधारी सिंह दिवाकर-अकाल संध्या, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ. 17
9. कुणाल सिंह -आदिग्राम उपाख्यान, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ.46

- विठ्ठलराव पाटील महाविद्यालय, कळे

21वीं सदी के झारखण्ड की हस्तशिल्प-कलाओं में राष्ट्रीय भावना

प्रमिला टोप्पो, शोधार्थी

हस्तशिल्प झारखण्ड की संस्कृति और समाज का एक रंग-विरंगा पक्ष है। इसमें राष्ट्रीय भावना निहित है। हस्तशिल्प झारखण्ड के लोगों की संस्कृति में मानवीय इतिहास के आरंभ से जुड़ी हुई है। गाँवों, कस्बों, आँगनों तथा धार्मिक प्रतिष्ठानों में शिल्प दैनिक जीवन का एक अविभाज्य हिस्सा रहा है। झारखण्ड में हस्तशिल्प के अनेक प्रकार और उनके कौशल उपलब्ध हैं जो सदियों से निरंतर विकसित होते हुए देश के किसी अन्य राज्य से अलग, झारखण्ड को एक अनोखा राज्य बनाते हैं। झारखण्ड देश के उन कुछ राज्यों में से एक है, जहाँ हस्तशिल्प कलाओं का उपयोग सभी लोगों द्वारा किया जाता है। हस्तशिल्प हाथ से बनाई हुई मानवकृति है। यह ऐसे कलात्मक कार्य हैं, जो उपयोगी होने के साथ-साथ सजाने के काम आते हैं। हस्तशिल्प को मुख्यतः हाथ से या सरल औजारों की सहायता से ही बनाया जाता है। झारखण्ड में हस्तशिल्प प्राचीन काल से और अनेक सदियों से स्थापित हैं और इनकी सुदृढ़ परंपरा रही है। ये देखने में सुंदर होती हैं, इस्तेमाल में अनुकूल होती हैं और जनजीवन के लिए अर्थपूर्ण भी। ऐसी कलाओं का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व होता है तथा इसमें राष्ट्रीय भावना निहित होती है।

हस्तशिल्प मानव की सर्वोच्च सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है। इसमें उसकी संपूर्ण संवेदना, सौंदर्य-बोध, मूल्य-दृष्टि समग्र भौतिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों का सार-सौरभ संचित रहता है।[1] अतः हस्तशिल्प के माध्यम से किसी देश, जाति या समुदाय की समस्त उपलब्धियों, आकांक्षाओं एवं राष्ट्रीय भावनाओं का आकलन संभव है। झारखण्ड का लोक जीवन हस्तशिल्प कला से परिपूर्ण है। हस्तशिल्प कला झारखण्ड के लोक जीवन की सामूहिक यात्रा का अभिन्न अंग है। उनसे ही लोक जीवन की अभिव्यक्ति मिलती है। हस्तशिल्प कला का मुख्य पटल मानसिक, बौद्धिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक होता है,[2] जो प्रत्येक कार्य में अभिव्यक्त होता है। यह किसी राष्ट्र, जाति या समुदाय की संस्कृति का मापदंड होती है।

झारखण्ड प्रारंभ से ही झाड़-जंगलों व पहाड़ों से भरा पूरा क्षेत्र रहा है। झारखण्ड की धरती के अंदर जितना खनिज का भंडार है उतना झारखण्ड की धरती पर घास, पौधे और काष्ठ का अंबार है।[3] प्रकृति की गोद में बसा झारखण्ड प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से अद्वितीय एवं अनूठा राज्य रहा है, इसलिए यह शिल्पकारों की प्रियस्थली बन सकी। मानव प्रकृति से सौंदर्य प्रेमी होता है, सुंदर स्थान में रहना अधिक पसंद करता है और अपने जीवन को सजाता सँवारता है। मनुष्य अपने जीवन में उपयोग में आने वाली हर वस्तु को कलात्मक रूप से बनाता है। अपनी सौंदर्य चेतना को मनुष्य हर चीज में उतार देता है। झारखण्ड के आदिवासी-सदानों के हाथों बने पारम्परिक वस्तुओं में इनकी सौंदर्य चेतना के रूपों का विस्तार है।[4] मानव जीवन में हस्तशिल्प कला की भूमिका व्यापक होती है। मानव जीवन की प्रत्येक गतिविधियों में उपयोग होने वाले दैनिक कार्यों को संचालित करने, विभिन्न संस्कारों, पर्व-त्यौहारों, कृषि एवं श्रम कार्य तथा रोजगार

एवं आय प्रदान करने में हस्तशिल्प कला महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करती है। हस्तशिल्प कला की आकृतियाँ और उपयोग मानवीय आवश्यकताओं के अनुसार कई कालों और दौरों से गुजरकर अपनी वर्तमान उपयोगिता और स्वरूप में विद्यमान हैं।

हस्तशिल्प कला का उद्भव परम आवश्यक वस्तुओं के रूप में हुआ है। जैसे-जैसे मानवीय आवश्यकताएँ बढ़ती गईं वैसे-वैसे हस्तशिल्प कला का विकास भी होता गया। शुरुआती समय में काष्ठ, पत्थर और मिट्टी के हस्तशिल्प वस्तुएँ बनाई जाती थीं, जो मोटी और बेढंगी हुआ करती थीं।[5] मनुष्य अपने हाथों से जो कुछ भी रचित करता था, उनमें उनका अपना उद्देश्य होता था। उनके द्वारा रचित आकृतियों के पीछे उनका भावनात्मक लगाव होता था। क्रमिक विकास के स्वरूप में मानव सभ्य होते गए। मानव सभ्यता ने अनेक आवश्यकताओं को जन्म दिया। उनकी आवश्यकताएँ बढ़ती गईं और काष्ठ, पत्थर, मिट्टी, बांस तथा धातु के उपयोगी कलाओं जैसे- बर्तन, औजार, गहने, खिलौने इत्यादि का निर्माण भी प्रारंभ हो गया।[6] उस दौर से अब तक हस्तशिल्प कला की परम्परा कौशल के विभिन्न स्वरूपों, तकनीक, कला स्वरूपों और सौंदर्यबोध की कई अभिव्यक्तियों की यात्रा करते हुए वर्तमान दौर में पहुंची है। झारखण्ड हस्तशिल्प तथा शिल्पकारिता का राज्य माना जाता है। यहाँ प्राचीन काल से ही हस्तशिल्प कलाओं की अपनी विलक्षणता एवं विशिष्टता है। डोकरा कला, काष्ठ कला, बाँस कला, मिट्टी कला, पत्थर कला, जूट कला, पत्ता कला तथा घास कला इत्यादि के निर्माण में निपुण शिल्पकारों का कला कौशल दृष्टिगोचर होता है। शिल्पकारिता सदैव से ही मानव समाज की एक मूल गतिविधि रही है। हस्तशिल्प का विकास समाज में दृढ़ एवं प्रभावशाली मानवतावाद तथा भावुकता के संवर्धन का द्योतक है। आदिमानव ने सर्वप्रथम अपने दैनिक उपयोग की वस्तुओं, तत्पश्चात् अस्त्रों तथा बाद में वस्त्रों, आभूषणों एवं आस-पास के वातावरण को सुसज्जित करना प्रारंभ किया। सामरिक महत्व के द्योतक धनुषबाणों को भी अलंकृत कर दिया गया। मृदभाण्डों पर मोहक आकृतियां बनायी गईं।[7] झारखण्ड में प्राचीन काल से विविध क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के हस्तशिल्प विकसित हुए।

आजादी के बाद 2000 ई. से अब तक स्वदेशी सरकार द्वारा भारतीय कला के पुनरुत्थान के लिए कई योजनाएं चलाई गई हैं। झारखण्ड में भी झारक्राफ्ट के तत्वावधान में हस्तशिल्प कला को प्रोत्साहन मिल रहा है और अब लघु और कुटीर उद्योग रोजगार मुहैया कराकर शिल्पकारों की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को हल करने में मददगार है। हस्तशिल्प क्षेत्र बड़ी तादाद में महिलाओं और समाज के कमजोर तबके के लोगों को रोजगार उपलब्ध कराता है। हस्तशिल्प के निर्माण से झारखण्ड के जनजातियों एवं गैर-जनजातियों को रोजगार प्राप्त होता है और वे इसके माध्यम से अपना जीवनयापन करने में सक्षम हैं। हस्तशिल्प आम लोगों की कला है और झारखण्ड में यह महज एक उद्योग नहीं है, बल्कि सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति के साथ राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत भी है। यह सिर्फ लोगों की रोजाना जरूरतों को ही पूरा नहीं करता, बल्कि उनकी कलात्मक इच्छाओं को भी पूरा करता है।

झारखण्ड में हस्तशिल्प आय का वैकल्पिक स्रोत है और कई समुदायों की अर्थव्यवस्था का आधार भी है। यह ग्रामीण और अर्द्ध-शहरी इलाकों में एक बड़े तबके

को रोजगार उपलब्ध कराती है और राज्य एवं देश के लिए बड़े पैमाने पर विदेशी मुद्रा अर्जित भी करती है। घरेलू उपकरण, कृषि उपकरण एवं गृह निर्माण में हस्तशिल्प वस्तुओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। झारखण्ड में हस्तशिल्प वस्तुएँ आदिकाल से संस्कृति का प्रतीक एवं परंपरागत प्रभावशीलता को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम रही हैं।[8] यह राज्य की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में सहायक है। हस्तशिल्प वस्तुओं को शुद्धता, शुभता और समृद्धि का प्रतीक माना जाता है।[9] इसलिए पर्व-त्यौहार एवं पूजा-पाठ में हस्तशिल्प वस्तुओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सजावट के क्षेत्र में हस्तशिल्प वस्तुओं का महत्वपूर्ण स्थान है। मानव जीवन और हस्तशिल्प में अटूट संबंध है। हस्तशिल्प की उपयोगिता मानव-जीवन के विकास में एक महत्वपूर्ण अंग है। गृह-कार्य, कृषि-कार्य, पर्व-त्यौहार और रीति-रिवाज हस्तशिल्प के बिना अधूरे हैं। हस्तशिल्प मानव जीवन का सहचर और सहायक है।[10] अतः आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में हस्तशिल्प की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

झारखण्ड हस्तशिल्प तथा शिल्पियों का राज्य माना जाता है। यहाँ प्राचीन काल से ही हस्तशिल्प कलाओं की अपनी विलक्षणता एवं विशिष्टता रही है। डोकरा शिल्प कला, बाँस शिल्प कला, मिट्टी कला, पत्थर शिल्प कला, पत्ता शिल्प कला तथा घास शिल्प कला इत्यादि के निर्माण में निपुण शिल्पियों का कला कौशल दृष्टिगोचर होता है।[11] इस चिर अर्जित विशेषता को शिल्पकार पारम्परिक तौर पर बनाए हुए हैं। हस्तशिल्प के निर्माण में शिल्पियों के मन की भावनाएं, मस्तिष्क की चेतनता तथा शरीर की क्रियाएं सभी संयुक्त रूप से कार्य करती हैं, जिससे एक कलात्मक सामंजस्य निर्मित होता है। हस्तशिल्प सदैव से ही मानव समाज की एक मूल गतिविधि रही है। हस्तशिल्प का विकास समाज में दृढ़ एवं प्रभावशाली मानवतावाद तथा भावुकता के संवर्धन का द्योतक है। मानवीय आवश्यकताओं एवं सुविधाओं के अतिरिक्त कुछ सौंदर्य बोधता प्राप्त करने की उत्कंठा ही मानव का विकास की ओर बढ़ना दर्शाती है और हस्तशिल्प में इसकी सहज अभिव्यक्ति आदिकाल से होती रही है।

झारखण्ड हस्तशिल्प उत्पादन का सर्वोत्कृष्ट केन्द्र रहा है। यहाँ दैनिक जीवन की सामान्य वस्तुएँ भी कोमल कलात्मक रूप में गढ़ी जाती हैं। ये हस्तशिल्प झारखण्ड के शिल्पियों की रचनात्मकता को नया रूप प्रदान करते हैं। झारखण्ड में प्राचीन काल से ही इन हस्तशिल्प वस्तुओं के लिए काफी सम्मान का भाव रहा है। इन वस्तुओं की मांग रही है। देश के अन्य राज्यों में भी इनकी प्रसिद्धि रही है। हस्तशिल्पियों और उनकी कलात्मक वस्तुओं का समाज में प्रमुख स्थान रहा है। मलार जनजातीय समूह द्वारा डोकरा कला का निर्माण किया जाता है। उराँव, मुण्डा, खड़िया, बिरहोर, भुईंया, हो और बेदिया जनजातियों द्वारा काष्ठ कला का निर्माण किया जाता है। तुरी, डोमरा और महली जातियों द्वारा बाँस कला का निर्माण किया जाता है। कुम्हार जातियों द्वारा मिट्टी कला का निर्माण किया जाता है। मलार जनजाति समुदाय की महिलाएं कोयले के काले रंग का प्रयोग कर सूई से गोदना अंकित करती थीं। चित्रकला जनजाति तथा गैर जनजाति सभी समुदाय द्वारा बनाया जाता है। बिरहोर और हो समुदाय द्वारा रस्सियां बनायी जाती हैं। चिक बड़ाईक जनजातियों और कोस्टा जातियों द्वारा कपड़े की बुनाई

की जाती है। अन्य विविध कलाओं का निर्माण सभी जनजाति तथा गैर जनजाति समुदाय द्वारा किया जाता है। झारखण्ड का प्रत्येक क्षेत्र अपने विशिष्ट हस्तशिल्प पर गर्व करता है। उदाहरणार्थ- डोकरा कला, काष्ठ कला, बाँस कला, मिट्टी कला तथा अन्य विविध कलाओं (चित्रकला, पत्ता कला, पत्थर कला, घास कला) के लिए झारखण्ड प्रसिद्ध है। राँची जिले के रेगे मलार कॉलोनी और टुंकी टोली डोकरा कला के लिए प्रख्यात है। प. सिंहभूम जिले के चाईबासा काष्ठ और मिट्टी कला के लिए जाना जाता है। लातेहार का सीसल प्लांट सीसल रेशे की वस्तुएँ तथा गिरिडीह जिले के मधुबन पीरटांड़ बांस कला के लिए प्रसिद्ध है। राँची जिले के जोन्हा कोयनारडीह गांव काष्ठ कला और बांस कला विशेषकर सजावटी सामानों की नक्काशी के लिए प्रख्यात है। सरायकेला जिले के चांडिल, ब्लॉक-नीमडीह के केतुमगाह गांव कांशी घास तथा खजूर पत्ता की नक्काशी झारखण्ड के विशिष्ट पारंपरिक सजावटी दस्तकारी के उदाहरण हैं। ये आधुनिक झारखण्ड की विरासत के भाग हैं।[12] ये हस्तशिल्प कलाएं हजारों सालों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी पोषित होती रहीं और बड़ी तादाद में हस्तशिल्पियों को रोजगार प्रदान करती हैं। अतः झारखण्ड के हस्तशिल्पी अपने अंगुलियों की जादूई स्पर्श से एक बेजान धातु, लकड़ी, बांस, मिट्टी, पत्थर, पत्ता एवं घास को कलाकृतियों में बदलकर झारखण्ड की हस्तशिल्प को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अतुलनीय पहचान दिलाते हैं।

झारखण्ड में शिल्पियों के लिए जरूरी कच्ची सामग्री की कमी नहीं है। धातु, काष्ठ, बाँस, मिट्टी, पत्थर, पत्ता, घास सारी कच्ची सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।[13] विभिन्न समुदायों के अनुभवी शिल्पकार इन कच्ची सामग्रियों को कलाकृतियों में बदलकर सुंदर एवं उपयोगी बनाते हैं। शिल्पकारों को नए-नए विन्यास और बाजार की सुविधा मुहैया करने के लिए झारखण्ड की राजधानी राँची में झारक्राफ्ट की स्थापना 2006 में हुई। झारक्राफ्ट के जरिए झारखण्ड के शिल्पकारों को अपनी जिंदगी संवारने में मदद मिली है। उनके कौशल में निखार आया है।[14] झारक्राफ्ट के माध्यम से उन्हें हस्तशिल्प वस्तुओं के निर्माण के अलावा उनकी विपणन में भी सहायता मिली है। झारखण्ड के हस्तशिल्प को झारक्राफ्ट राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने के लिए अग्रसर है।

राष्ट्रीय भावना से निर्मित 21वीं सदी के झारखण्ड की हस्तशिल्प कलाएँः

झारखण्ड का नक्शा- झारखण्ड की राजधानी राँची के टुंकी टोली के डोकरा कला उत्पादन केन्द्र में झारखण्ड का एक नक्शा का निर्माण किया गया है। यह नक्शा रेगे निवासी डोकरा शिल्पकार पंचम मलार द्वारा निर्मित है। यह काँसा और ताँबा के मिश्रित धातु से निर्मित है। यह मिश्रित धातु के आयताकार फ्रेम पर टिका हुआ है। इस नक्शा में झारखण्ड के 24 जिलों को दर्शाया गया है।[15] डोकरा कला में निर्मित झारखण्ड का यह नक्शा झारखण्ड के उन्नत हस्तशिल्प कला का परिचायक है। यह नक्शा शिल्पकार की राष्ट्रीय भावना को सूचित करता है।

चित्र-1 स्त्रोत- टुंकी टोली राँची का डोकरा कला उत्पादन केन्द्र

झारखण्ड का राजकीय पशु हाथी - झारखण्ड राज्य के राँची जिले के मांडर प्रखंड

के रेगे मलार कॉलोनी में डोकरा कला का निर्माण किया जाता है जिसमें पंचम मलार द्वारा झारखण्ड का राजकीय पशु हाथी निर्मित है। यह लगभग 7 इंच ऊँचा काँसा और

ताँबा के मिश्रित धातु से निर्मित है। इसकी कलात्मक बनावट अनूठी है। हाथी के पीठ पर क्षैतिज सरल रेखाएँ एवं वक्र रेखाएँ अंकित हैं।[16] हाथी झारखण्ड का राजकीय पशु है। यह राष्ट्रीय भावना को सूचित करती है।

चित्र-2 स्रोत- रेगे निवासी पंचम मलार का निवास स्थान

मोर डिबरी - मोर डिबरी दीया जलाने का उपकरण होता है। इसका आकार उड़ता हुआ मोरनुमा होता है। रेगे निवासी शिवनाथ मलार द्वारा मोर डिबरी का निर्माण किया गया है। यह डिबरी 8 इंच ऊँचा एल्युमिनियम से निर्मित है। इसकी कलात्मक बनावट अन्य डिबरी से अनूठी है। डिबरी का पेंदी अंडाकार है, जो शंकुकार स्टैंड पर टिका हुआ है। इसकी बनावट अंडाकार है। मुख बहुत सँकरा और उपर उठा हुआ है। डिबरी का पेंटावास में दो पंखनुमा आकृतियाँ जुड़ी हुई हैं जिनके बीच में मोर का गला और सिर बनाया गया है।[17] सिर के सामने चोंच, बगल में दो आँखें एवं सिर पर दो पंखुड़ीनुमा पंख की आकृतियाँ लगी हैं। डिबरी का पिछला हिस्सा में 9 चम्मचनुमा पंख की

आकृतियाँ लगी हुई हैं। डिबरी का पेंटावास और मुख के बीच आँवला फल की गोलाकार पट्टियाँ एवं वक्र रेखाएँ अंकित हैं। मोर डिबरी का गला में सिकड़ीनुमा हार सुशोभित है। मोर भारत का राष्ट्रीय पक्षी है। डोकरा कला में निर्मित झारखण्ड की मोर डिबरी राष्ट्रीय भावना का सूचक है।

चित्र-3 स्रोत- रेगे निवासी शिवनाथ मलार का निवास स्थान

चरखा चलाते हुए महात्मा गाँधी - झारखण्ड की राजधानी राँची के पुरानी राँची कुम्हार टोली में मिट्टी की मूर्तियों का निर्माण किया जाता है। टेराकोटा शिल्पकार राजेश कुमार प्रजापति द्वारा महात्मा गांधी की टेराकोटा मूर्ति निर्मित है। इस मूर्ति में गांधीजी को दाहिने हाथ से चरखा चलाते हुए तथा बाएँ हाथ से सूत कातते हुए दर्शाया गया है।[18] यह मूर्ति काली चिकनी मिट्टी के मिश्रण से निर्मित है, जिस पर सुंदर एल्युमिनियम का पेन्ट

लगाया गया है। झारखण्ड की यह टेराकोटा मूर्ति राष्ट्रीय भावना का प्रतिनिधित्व करती है और भारत में हुए 1905 ई. का स्वदेशी आंदोलन एवं 1920 ई. का असहयोग आंदोलन की कहानी कहती नजर आती है।

चित्र-4 स्रोत- पुरानी राँची कुम्हार टोली के टेराकोटा शिल्पकार राजेश कुमार प्रजापति का निवास स्थान

बुनकरी कला - बुनकरी कला झारखण्ड की प्राचीन कलाओं में से एक है। हाथ से बुना कपड़ा को बुनकरी कला कहा जाता है। हाथ से कपड़ा बुनना चीक बड़ाईक

जनजाति का मुख्य पेशा रहा है। ये जनजातियाँ लोगों के पहनने एवं अनेक अवसरों पर उपयोग में आने वाले कपड़ों का निर्माण अपने घरों में लकड़ी के बने करघों से करते हैं। ये जनजातियाँ पेछोरी, बरकी, गमछा, बेतरा गमछा, पगड़ी, धोती, साड़ी एवं शॉल की बुनाई करते हैं। करघों से बुनाई की जाने वाली लाल-लाल धारियों से बने कपड़े बहुत सुंदर और आकर्षक होते हैं। ये कपड़े काफी मजबूत और टिकाऊ होते हैं तथा झारखण्डी संस्कृति की पहचान कराते हैं।[19] इन कपड़ों की अपनी विशिष्ट पहचान है। इन कपड़ों में राष्ट्रीय भावना निहित होती है। झारखण्ड राज्य के सिमडेगा जिले के केरसई ब्लॉक में किनकेल से उत्तर लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर गुलझरिया बासेन नामक गाँव है। इस गाँव के कोस्टा जाति के लोग 1950 ई. के पहले से कपड़ा बुनाई का कार्य करते आ रहे हैं। ये बुनकर पेछोरी, बरकी, पिन्धना (साड़ी), फूल वाला माँ साड़ी, बेतरा गमछा, छोटा गमछा आदि कपड़ों का निर्माण करते हैं। कपड़ों की बुनाई

हाथाभाड़ी द्वारा किया जाता है।[20] हाथों से कपड़ों की बुनाई करना स्वाधीनता का प्रमुख अंग है। ये कपड़े झारखण्डी संस्कृति की पहचान है। इन कपड़ों में राष्ट्रीय भावना निहित होती है।

चित्र-5 स्रोत- गुलझरिया बासेन का कपड़ा बुनकर लालमोहन मेहर का निवास स्थान

34वें राष्ट्रीय खेलों का शुभंकर 'छौवा' - फरवरी 2011 में जब झारखण्ड की राजधानी राँची में 34वें राष्ट्रीय खेलों का आयोजन किया गया था, तब प्रमुख सचिव, खेल और संस्कृति विभाग ने राष्ट्रीय खेलों के लिए शुभंकर 'छौवा' को बनाने की जिम्मेदारी झारक्राफ्ट को सौंपा था। झारक्राफ्ट ने हजारीबाग, रामगढ़, धनबाद, दुमका, राँची, खूँटी, प. सिंहभूम और लोहरदगा से लगभग 300 डोकरा शिल्पकारों को आमंत्रित किया और स्मृति चिन्ह 'छौवा' को सफलतापूर्वक बनवाया।[21]

झारखण्ड की राजधानी राँची में 34वाँ राष्ट्रीय खेल के आयोजन में झारक्राफ्ट की

पहल पर बाहर से आए सभी खिलाड़ियों, मेहमानों को पीतल का स्मृति चिन्ह 'छौवा' (राष्ट्रीय खेल का शुभंकर) प्रदान किया गया। इससे झारखण्ड की डोकरा कला को राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय पहचान मिली।[22] राष्ट्रीय खेल का शुभंकर 'छौवा' पीतल से निर्मित था। यह भारत की प्रगतिशीलता का सूचक था, जिसमें राष्ट्रीय भावना निहित थी।

चित्र-6 स्रोत- डोकरा एन अनटोल्ड स्टोरी, मुख्य पृष्ठ

निष्कर्ष - झारखण्ड कलाओं की धरती है। यहाँ अनेक हस्तशिल्प कलाओं का निर्माण किया जाता है। झारखण्ड की हस्तशिल्प कलाओं में झारखण्ड की संस्कृति एवं राष्ट्रीय भावना निहित है। झारखण्ड में हस्तशिल्प आय का वैकल्पिक स्रोत है और कई समुदायों की अर्थव्यवस्था का आधार भी है। झारखण्ड का हस्तशिल्प जैसे- झारखण्ड

का नक्शा, झारखण्ड का राजकीय पशु हाथी, मोर डिबरी, चरखा चलाता हुआ महात्मा गाँधी, हाथ से बुना हुआ कपड़ा एवं 34वाँ राष्ट्रीय खेल का शुभंकर 'छौवा' राष्ट्रीय भावना का सूचक एवं स्वाधीनता का प्रमुख अंग है।

संदर्भ :

1. विसेश्वर प्रसाद केशरी, छोटानागपुर का इतिहासः कुछ सूत्र कुछ संदर्भ, नागपुरी संस्थान पिठोरिया, रांची, 2014, पृ.121
2. प्रतियोगिता दर्पण अतिरिक्तांक, भारतीय कला एवं संस्कृति, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा, 1994-95, पृ. 09
3. गिरिधारी राम गौंझू 'गिरिराज', झारखण्ड की पारंपरिक विविध कलाएँ, झारखण्ड झरोखा, राँची, 2017, पृ.15
4. वही, पृ.27
5. वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी, 1977, पृ. 09
6. निरंजन महावर, छत्तीसगढ़ की शिल्पकला, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 83
7. प्रेम प्रकाश गर्ग, मिट्टी व कुट्टी का काम, विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर, 1956, पृ. 03
8. शकुन्तला मिश्र, कला और उसके स्वरूप, झारखण्ड झरोखा, राँची, 2017, पृ. 13
9. अंजु कुमारी साहु, झारखण्ड की पारंपरिक मिट्टी कला, झारखण्ड झरोखा, राँची, 2017, पृ. 60
10. उपेन्द्र महारथी, वेणु शिल्प, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, 1961, पृ.11
11. शकुन्तला मिश्र, पूर्वोद्धृत, पृ.12
12. शत्रुध्न कुमार पाण्डेय, छोटानागपुर का आर्थिक इतिहास, झारखण्ड झरोखा, राँची, 2017, पृ. 234-235
13. वही, पृ. 202-203
14. धीरेन्द्र कुमार, डोकरा- एन अनटोल्ड स्टोरी, झारक्राफ्ट, राँची, 2013, पृ. 13
15. चित्र-1
16. चित्र-2
17. चित्र-3
18. चित्र-4
19. गिरिधारी राम गौंझू 'गिरिराज', पूर्वोद्धृत, पृ. 27-28
20. चित्र-5, 21. चित्र-6
22. अंजुलता कुमारी, झारखण्ड की पारंपरिक धातु-कला, झारखण्ड झरोखा, राँची, 2017, पृ. 315

शोधार्थी, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची

'21वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना: 'न्यूटन' के परिप्रेक्ष्य में'

डॉ. कृष्णात आनंदराव पाटील

भारत एक बहुभाषिक देश है। इसकी सुंदरता इसकी विविधता में समायी हुई है। जैसे एकाध बगीचा विभिन्न रंगों के पुष्पों से सुंदरता धारण कर लेता है, उसी तरह भारत की सुंदरता विभिन्न भाषा और राष्ट्रीय भावनाओं में है। देश की भिन्न भौगोलिकता के कारण यहाँ के लोगों की भाषा भी भिन्न दिखाई देती है। देश की स्वतंत्रता के पश्चात भाषायी दूरी खत्म करने तथा देश में राष्ट्रीय एकता बनाए रखने के लिए संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार किया गया। देश में राष्ट्रीय एकता बनाए रखने की दृष्टि से हिंदी का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है।

भारत देश की स्वतंत्रता से लेकर 21वीं सदी तक विश्व भर में हिंदी भाषा को पहुँचाने का कार्य हिंदी ने ही किया है। 21वीं सदी तक भारत की सरकार हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा तक नहीं दिला पायी है, यहाँ हिंदी उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक सभी लोगों को हिंदी बोलना और समझना सिखा रहा है। यही हिंदी की देन है, जो अहिंदी भाषी प्रदेशों में भी लोग इसे बोल और समझ पा रहे हैं, जिससे राष्ट्रीय एकता बढ़ती दिखाई दे रही है।

एक वक्त था, जब दर्शकों को गोविंदा के ठुमके, अमिताभ बच्चन का करिश्माई शहंशाह रूप और सनी देओल का ढाई किलो का हाथ पसंद था। भारतीय दर्शकों को उस वक्त अपनी समूची समस्याओं को दूर करने वाले किसी चमत्कारी नायक की अपेक्षा रहती थी। वे अपने अपनी समस्त समस्याओं को 'शोले' के वीरू और जय पर छोड़कर केवल 'तमाशा' देखने में रुचि रखते थे। इसके कुछ समय बाद दर्शकों का यह मोह टूट गया और वे हिंदी की ओर आकर्षित हो गए। वैसे तो लगभग सभी फिल्मों में कम या अधिक भारतीय जीवन का यथार्थ दिखाई देता है लेकिन यहाँ हम 2017 में प्रकाशित फिल्म 'न्यूटन' में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना को देखेंगे-

भारत में विभिन्न जाति, समुदाय, धर्म और मान्यताओं के लोग रहते हैं। फिल्मों में उनकी इन मान्यताओं या व्यवहारों को किसी-न-किसी रूप में अभिव्यक्ति मिलती रही है। ऐसा कहा जाता है कि भारतीय फिल्मों में भारतीय समाज का दर्शन होता है। एक हद तक यह सही भी हो सकता है पर भारतीय समाज में जितनी विविधता और विस्तार है, ये फिल्में उसके सम्पूर्ण अंश का चित्रण करने में सफल नहीं हुई हैं। अधिकतर भारतीय फिल्मों में समाज के कुछ प्रतिशत लोगों का ही चित्रण हो पाया है। समाज का अधिकांश हिस्सा अभी भी इसकी पहुँच से छूटा हुआ है। हाशिये के समाज पर बनने वाली फिल्मों को आज भी उँगलियों पर गिना जा सकता है। यही कारण है कि यह समाज आज भी फिल्मों से अपनी दूरी बनाए हुए है। अधिकतर भारतीय निर्देशक गीत-संगीत से युक्त सौन्दर्य और प्रेम युक्त फिल्में बनाते हैं। वे भारतीय जनता को भी 'लव इन पेरिस' या 'नमस्ते लंदन' दिखाने में ही अपना इतिश्री समझते हैं। यही कारण है कि देश के अन्य समाज और मुद्दों पर फिल्म बनाने में वे पीछे रह जाते हैं। भारत एक ग्रामीण प्रधान देश

है। यहाँ की अधिकतर जनता गाँवों में निवास करती है पर ये निर्देशक गाँव या उसकी समस्याओं पर आधारित फिल्में बनाने से कतराते हैं। भारत में गाँव समुदायों में विभाजित है। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास मैला आँचल से इसको बेहतर तरीके से समझा जा सकता है। यहाँ एक समुदाय ऐसा है जिस पर बहुत कम फिल्में बनी हैं। वह समुदाय आदिवासी समुदाय है। यह समाज शहरों से दूर प्रकृति की गोद में अपनी संस्कृतियों को सँजोए भाग-दौड़ से रहित जीवन जीता है।

न्यूटन फिल्म का आरंभ ही आदिवासी इलाके में चुनाव प्रचार के दौरान नेता की हत्या से होती है। नेता की हत्या करने वाले कौन लोग हैं? वे इस प्रकार नेता की हत्या क्यों करते हैं? इस हत्या के पीछे किसकी चाल है? फिल्म इन सभी प्रश्नों को दर्शकों को सोचने के लिए छोड़कर आगे बढ़ जाती है। हमारी सरकार इस प्रकार की हत्या करने वालों को नक्सली कहती है और अपने इस अभियान में वह आए दिन नक्सलियों को पुलिस मुठभेड़ में मारती रहती है। इस फिल्म में इस समाज की शांति को भंग करने वाले कारक तत्वों को बहुत ही सूक्ष्मता से फिल्माया गया है। न्यूटन एक ऐसी फिल्म है, जो भारत के ऐसे समाज के मताधिकार की वकालत करती है, जो सभ्य लोगों द्वारा सदियों से उपेक्षित रहे हैं। इसी भारत में एक ऐसा समाज भी रहता है, जो प्रकृति की गोद में सारी सुविधाओं और अपने अधिकारों से वंचित जीवन गुजर-बसर करता है। इस समाज की गलती यह है कि ये सीधे-सादे लोग सभ्य समाज की भाषा और मक्कारी को न सीखकर अपनी ही बोली बोलते और सरलतापूर्ण जीवन जीते हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं से कोसों दूर ये अपने इलाज की विधि खुद ही तलाशते हैं। इसी उपचार की विधि में मच्छर से बचने के लिए अपने आपको चींटियों से कटवाने की विधि भी सम्मिलित है। इसके साथ ही इस समाज के लोग पेड़ों पर पाई जाने वाली लाल चींटियों की चटनी भी बनाते है। नंग-धड़ंग मासूम बच्चे जो ठीक से हिंदी बोल और समझ भी नहीं पाते कुछ लोगों द्वारा नक्सलियों के एजेंट करार दिए जाते हैं। जंगल में घास-फूस के मकानों में रहकर पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर रहने वाला यह समाज आज कुछ लोगों की आँखों में गड़ रहा है। इसका कारण उनके क्षेत्रों में पाए जाने वाले अकूत खनिज पदार्थों पर पूँजीपतियों की टेढ़ी नजर है। इसी कारण इनके घरों को जलाकर तथा अन्य कई तरह से डरा-धमकाकर इन्हें उस क्षेत्र से खदेड़ा जा रहा है। फिल्म में इस समाज के लोग कम समय आए हैं पर कम समय में ही आप उनकी स्थिति देखकर सब कुछ समझ सकते हैं। इसमें इनके फटे कपडों से दिखती खुली पीठ, पोपला मुँह, सूखे चेहरे पर स्पष्ट निर्दोषता आपको इनके बारे में सोचने को विवश कर देती है। भारत का कानून बने 69 वर्ष हो गए पर इनके अपने कानून 1000 वर्ष पुराने हैं। इनका मुखिया पटेल कहलाता है जो इनके सभी झगड़े का निपटारा करवाता है। उनके साथ सदियों से इन सभ्य जन द्वारा भेदभाव होता आ रहा है। उनके क्षेत्र में वोटिंग कराने गया अधिकारी न्यूटन सैनिक अधिकारियों द्वारा उनके साथ किए गए व्यवहार को देखकर दंग रह जाता है। इस पर वहीं की आदिवासी मलको उन्हें बताती है, 'आपने जो आज देखा है वो देखते-देखते हम बड़े हुए हैं।'[1] इस संवाद से आप उनके शोषण और यथास्थिति का अंदाजा लगा सकते हैं। फिल्म के अंत में जंगलों में बड़ी-बड़ी मशीनें लगाकर खुदाई

करते हुए दिखाया गया है। इसी खुदाई के कारण ही आदिवासियों को नक्सली सिध्द कर उनके घरों को जलाया जाता है और यहाँ के खनिजों की लूट होती है।

एक विमर्श जिसका इस फिल्म में दृश्यांकन किया गया है और जो अभी तक इस लेख में नहीं आया है वह है स्त्री शिक्षा। हमारे देश में स्त्रियों की संख्या आधी आबादी के रूप में चित्रित की जाती है। यह आधी आबादी आज भी शिक्षा, स्वस्थ्य और रोजगार जैसे मूलभूत जरूरतों से वंचित है। जब न्यूटन की सगाई के लिए वे लोग लड़की से उसके कॉलेज के बारे में पूछते हैं तो लड़की के बाप द्वारा दिया गया उत्तर हमारे समाज के लोगों का कॉलेजों के बारे में उनकी सोच का पर्दाफास करती है। लड़की का बाप कहता है- 'हम न भेजें अपने बच्चों को बदमाशी के अड्डे पे। नाम पढ़ाई का और काम दो नंबर का।'[2] यह हमारे समाज का कॉलेजों के प्रति सोच है। यही कारण है कि समाज में लड़के तो कुछ हद तक पढ़-लिख भी लेते हैं पर लड़कियाँ अभी भी चूल्हे-चौके के लिए ही उपयुक्त समझी जाती हैं। यह सामंती मूल्य ऐसा नहीं है कि पूरी तरह से बदल गया है। अभी भी सिर्फ गिनती की लड़कियाँ ही उच्च शिक्षा में प्रवेश कर पाई हैं। यदि उच्च शिक्षा तक पहुँचने के उनके संघर्ष का जिक्र किया जाए तो अनेकों किताब बन सकती हैं। जब न्यूटन लड़की की उम्र साढ़े सोलह साल सुनकर सगाई करने से मना करता है तो लड़की के पिता का उत्तर होता है- 'बेटा नूतन बच्ची सुसराल में बड़ी हो ज्यादा बेहतर है।'[3] इसी सोच के कारण आज भी गाँवों में कम उम्र की लड़कियों की शादी हो जाती है। कम उम्र में ही माँ बनने के कारण वे अपने स्वस्थ्य से सदा के लिए दूर हो जाती हैं। जब न्यूटन शादी करने से इंकार करता है तो उसके पिता- 'ससुर कनट्रैक्टर दामाद अफसर जिंदगी भर घी में डूबा रहेगा बेटा' और उसकी माँ- 'मान जा बाबू दस लाख रुपए नगद, एक मोटर साइकिल दे रहे हैं साथ में' का प्रलोभन देते हैं। यह दहेज रूपी दानव भारत से कब खत्म होगा पता नहीं। समाज में लोग जितना ही शिक्षित होते जा रहे हैं, उनके दहेज की माँग उतनी ही बढ़ती जा रही है। यह हमारे समाज की कटु सच्चाई है। बात यहीं नहीं रुकती। जब न्यूटन लड़की के ग्रेजुएशन होने की माँग करता है तो उसके बाप का जवाब होता है- 'क्यों तेरी डिग्री कम है क्या चाटने के लिए; जो उसकी भी चाहिए। ग्रेजुएट लड़की तेरे माँ के पैर दबाएगी?' न्यूटन के पिता की यह सोच कम-ज्यादा हमारे समाज के प्रत्येक सास-ससुर की सोच है। उनके लिए घर में बहू का आना सेविका के आने जैसा है। बेटे-बहू मिलकर माता-पिता की सेवा करें इससे किसी को कोई हर्ज नहीं होनी चाहिए पर जिस ससुर के सोच के आरंभ में ही सास का पैर दबाने वाली बहू हो, ऐसे सास-ससुर के विचारों में व्यापक परिवर्तन की जरूरत है।

भारत एक विविधता से परिपूर्ण देश है। उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक अनेक भाषा-भाषी तथा संस्कृति को मानने वाले लोग रहते हैं। सभी भाषाओं की अपनी क्षेत्रीय फिल्में बनती हैं, जो उस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती हैं। हिन्दी फिल्मों का संसार व्यापक है जो सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करता है। इसीलिए इसमें कश्मीर की समस्या से लेकर कन्याकुमारी तक के समाज को दिखाया जाता है। अनेक ऐसी फिल्में बनी हैं, जिसमें भारतीय भाषा, संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष को दर्शाया गया है। 'दिल वाले दुलहनियाँ ले जाएंगे', 'कभी खुशी कभी गम', 'विवाह', 'बागवान' आदि फिल्मों में भारतीय

समाज को वृहद रूप में दिखाया गया है।

संदर्भ :

1. विनोद भारद्वाज-कल, आजः कल, प. सं. 2006.
2. डॉ. विजय महादेव गाडे, मीडिया साहित्यिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में,2016.
3. डॉ. एस. वाय. होनगेकर, 21वीं शती का हिंदी साहित्य, प. सं. 2018.

हिंदी विभागाध्यक्ष, श्री शिव-शाहू महाविद्यालय, सरूड।

'२१वीं सदी के हिन्दी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना'

(संदर्भ -चक दे इंडिया और गदर : एक प्रेमकथा)

प्रा. अजित दादू फाळके

राष्ट्रीय भावना एक मन की स्थिति है जो व्यक्ति को अपने राष्ट्र के लिए उच्च कोटि के शौर्य एवं बलिदान के लिए प्रेरणा देती है। यह जन-समूह को एक सूत्र में बाँधती है। देश प्रेम से ओतप्रोत हिंदी के माध्यम से अतीत का गौरव गान, संस्कृति के प्रति श्रद्धा की भावना, मानवता आदि का जागरण होता है। खेल पर बनी फिल्म 'चक दे इंडिया' में महिला हॉकी टीम कड़ी मेहनत से वर्ल्ड कप का फाइनल मैच जीतकर विश्वविजेता बनती है। इससे लोगों की सोच बदलती है। महिला खिलाड़ियों की ओर देखने का दृष्टिकोण बदल जाता है।

अंग्रेजी राजवट के विरोध में हुए स्वतंत्रता आंदोलन से प्रभावित देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना निर्मित हुई। इसी आंदोलन में हिंदी साहित्यकार तथा हिंदी ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। लोगों में राष्ट्र के प्रति त्याग, उत्सर्ग और बलिदान की भावना प्रकट हुई। राष्ट्रीय भावना जन-समूह को एक सूत्र में बाँधती है। भारत अनेक जाति-धर्मों का देश होने के कारण सभी को एक सूत्र मे बाँधकर ही राष्ट्रीय उद्देश्य की प्राप्ति हो सकती है। एक जन-समूह राष्ट्र के सुख-दुख को अपना सुख-दुख मानने की भावना से जब प्रेरित होता है तो वह राष्ट्रीय भावना का सामूहिक रूप बनता है। राष्ट्रीय भावना एक मन की स्थिति है जो व्यक्ति को अपने राष्ट्र के लिए उच्च कोटि के शौर्य एवं बलिदान के लिए प्रेरणा देती है। राष्ट्रीय भावना से अपने भू-भाग के प्रति लगाव तथा राष्ट्रविरोधी शक्ति से संघर्ष करने की प्रवृत्ति को जन्म देती है। हमारी राष्ट्रीय भावना रंगभेद, जातिभेद से हटकर तन, मन, धन से देश के प्रति समर्पित होने की रही है।

राष्ट्रीय भावना के निर्माण में हिंदी का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। देश को आजादी दिलाने के लिए अनेक लोगों ने अपना बलिदान दिया। ऐसे पराक्रमी लोगों पर कई हिंदी सिनेमा बनाये गये हैं। इन पराक्रमी, शूरों की दास्ता से लोगों में नया उत्साह पैदा होता है। देश प्रेम से ओतप्रोत हिंदी के माध्यम से अतीत का गौरव गान, संस्कृति के प्रति श्रद्धा की भावना, मानवता आदि का जागरण होता है। हिंदी सिनेमा ने समय-समय पर जनता में चेतना लाकर राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता की भावना बढ़ाने का काम किया है।

आज हमारे देश में आजादी का अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है। ऐसे महोत्सव के माध्यम से देश के युवाओं को अखंड और एकसंघ बाँधना, राष्ट्रीयता, देशप्रेम की भावना जागृत करना आवश्यक है। युवा ही राष्ट्र की रीढ है। उनके बल पर राष्ट्र की प्रगति तथा खुशहाली निर्भर होती है। इन युवाओं में यह भावना निर्माण करने का काम साहित्य के साथ ने भी किया है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौर से लेकर आज तक अनेक ऐसे सिनेमा का निर्माण हुआ जिनमें राष्ट्र के लिए बलिदान देने की भावना को दिखाया है और एक प्रभावी माध्यम के रूप में अभूतपूर्व लोकप्रियता हासिल की है। खेलों पर आधारित फिल्मों द्वारा देश के उपेक्षित खिलाडियों के चरित्र को सामने लाना, खिलाडियों को प्रांत, राष्ट्र की भावना से मुक्त करके भारतीयता की भावना को बढ़ावा

देना, अन्तर्जातीय विवाह आदि विषयों को लेकर समाज में व्याप्त जाति - भेदभाव को दूर करने का प्रयास करना, लोगों की सोच बदलना उद्देश्य रहा है।

'चक दे इंडिया' में राष्ट्रीय भावना :

10 अगस्त, 2007 में प्रदर्शित 'चक दे इंडिया' ने धूम मचायी थी। सभी देशवासियों में जोश भर दिया था। 24 सितंबर, 2007 यह दिन भारतीय क्रिकेट इतिहास के लिए खास है। अफ्रीका में खेले गये पहले टी- ट्वेंटी वर्ल्ड कप फायनल मॅच में भारत ने पारंपरिक प्रतिस्पर्धी पाकिस्तान को हराया था और पूरे देश को जश्न मनाने का मौका दिया था। भारत और पाकिस्तान फायनल मॅच के समय सभी चैनल पर 'चक दे इंडिया' का शीर्षक गीत लोगों में जोश और उत्साह बढ़ा रहा था। इसमें भारतीय महिला हॉकी टीम की कहानी है। भारत के विभाजन की विरासत, धार्मिक कट्टरता, जाति और क्षेत्र का पूर्वाग्रह आदि को दर्शाता है। इस फिल्म ने लोगों की सोच बदलने का संदेश दिया है।

देशभक्ति से ओतप्रोत फिल्म 'चक दे इंडिया' की कहानी के नायक रहे कबीर एक मुस्लिम खिलाडी के रूप में चित्रित हुए हैं। जिस दिन वह इंडिया हॉकी टीम का कप्तान बनता है, उसने निश्चय किया कि पूरी टीम को साथ लेकर इंडिया के लिए सुवर्णपदक प्राप्त करें। यह सपना अधूरा रहता है। भारत और पाकिस्तान के बीच हॉकी वर्ल्ड कप का अंतिम मॅच शुरू होता है, पाकिस्तान 1-0 से आगे था। भारतीय टीम के कप्तान कबीर को स्कोर बराबर करने का मौका मिल जाता है लेकिन स्ट्रोक चुकने से टीम इंडिया हार जाती है। मुसलमान होने के कारण कबीर पर अनेक आरोप लगाये जाते हैं। उसको गद्दार कहा जाता है। उसे अपना घर छोड़ना पड़ता है। फिर सात साल बाद कबीर लौटते हैं। भारतीय महिला हॉकी टीम को ऐसे कोच की आवश्यकता है जो विपरीत परिस्थिति में साधनों के अभाव में भी टीम में जीतने का जज्बा निर्माण कर सके। इसी को अपने ऊपर लगाये दाग को मिटाने का मौका समझकर कबीर महिला टीम का कोच बनता है। ट्रेनिंग के लिए उनको लड़कियों का एक दल मिलता है। ये खिलाड़ी अपने लिए और अपने राज्य के लिए खेलने की भावना जगाते दिखते हैं। उनको एकसंग बाँधकर उनमें अपने राज्य के लिए नही तो अपने देश के लिये खेलने की भावना तैयार करते हैं। कड़ी मेहनत से यह महिला हॉकी टीम वर्ल्ड कप खेलने जाती है। वर्ल्ड कप के सभी मॅच में इंडिया टीम ने जबरदस्त प्रदर्शन करते हुए फायनल में ऑस्ट्रेलिया टीम को हराकर वर्ल्ड कप का खिताब जीता। यह टीम विजेता बनने से लोगों की सोच बदलती है और महिला खिलाड़ी की ओर देखने का दृष्टिकोण भी बदल जाता है। कबीर अपने पर लगा दाग निकालता है। इस फिल्म के माध्यम से हिंदुस्तान में स्थित सभी देशवासियों में चाहे वह हिंदू हो या मुस्लिम सभी में राष्ट्रीय चेतना निर्माण की है।

'गदर एक प्रेम कथा' फिल्म में राष्ट्रीय भावना :

'गदर एक प्रेमकथा' यह फिल्म सरदार तारा सिंह और मुस्लिम सकीना की प्रेम कहानी है। कहानी भारत विभाजन के समय हुए दंगे फसाद से शुरू होती है। इसके माध्यम से भारत-पाकिस्तान का संघर्ष दिखाया गया है। नायक तारासिंह के संवादों ने युवाओं में जोश भर दिया था। परिवार से बिछड़ने के बाद तारा सकीना को झुंड से बचाता है। यहाँ इन्सानियत का दर्शन होता है। वह सकीना को अपने साथ लेकर चलता

है। सकीना मान लेती है कि उसके पिताजी अशरफ अली दंगे में मर चुके हैं। सकीना और तारा का ब्याह होता है। दोनों को एक लड़का होता है जिसका नाम जीत है। पुराना अखबार पत्र पढ़ते वक्त सकीना को पता चलता है उसके पिता अशरफ अली मरे नहीं हैं। वह लाहौर के मेयर हैं। सकीना अपने पिताजी से मिलने पाकिस्तान जाती है। वीजा न मिलने के कारण तारा और जीत नहीं जा पाते। अशरफ अली सकीना की दूसरी शादी करने का फैसला करते हैं। तारा अपने लड़के को लेकर लाहौर सकीना के पास जाना चाहता है लेकिन अशरफ अली के कहने पर वीजा का बहाना बनाकर उसको लाहौर जाने से रोका जाता है। उस वक्त तारा कह उठता है 'एक कागज की मोहर नहीं लगेगी तो क्या तारा पाकिस्तान नहीं जायेगा। मुझे मेरे बच्चे को उसकी माँ से मिलाने से कोई ताकत, कोई सरहद नहीं रोक सकती।'

गैर-कानूनी रूप से तारा पाकिस्तान जाता है। सकीना से मिलता है। सकीना को भारत ले जाने की बात पर अशरफ अली तारा के सामने पाकिस्तान और इस्लाम कबूल करने की शर्त रखते हैं। तारा अपने बीवी-बच्चे के लिए इस्लाम कबूल करने का निर्णय लेता है। अशरफ अली तारा को पक्का मुसलमान साबित करने के लिए हिंदुस्तान मुर्दाबाद का नारा देने को कहते हैं तब तारा क्रोधित होकर पूरी ताकत के साथ अपने देश प्रेम की मिसाल देते हुए कहते हैं -

'अशरफ अली! आपका पाकिस्तान जिंदाबाद है, इसमें हमें कोई ऐतराज नहीं लेकिन हमारा हिंदुस्तान जिंदाबाद हैं, जिंदाबाद था और जिंदाबाद रहेगा'।

अशरफ अली ने तारा के पक्के मुसलमानत्व पर सवाल उठाया तो तारा कहता है-

'इस मुल्क से ज्यादा मुसलमान हिंदुस्तान में हैं। उनके होंठों और दिलों की धड़कनें हमेशा कहती हैं हिंदुस्तान जिंदाबाद, तो क्या वो पक्के मुसलमान नहीं हैं।'

फिल्म में तारा के संवाद देशवासियों के लिए प्रेरणा बन जाते हैं। तारा के भाव करोडों लोगों के भाव हैं।

इस तरह मनोरंजन का प्रमुख साधन भले ही रहा है, स्वतंत्रता आंदोलन के दौर से लेकर आज तक देशप्रेम, राष्ट्रीय भावना पर अनेक फिल्में बनी हैं। इस फिल्मों ने देशवासियों में उत्साह भर दिया है। इसके माध्यम से देशभक्ति जागरण का प्रयास हुआ। युवाओं को नई दिशा मिल गयी है। इन फिल्मों का युवाओं पर इतना प्रभाव रहा कि युवक देश के लिए बलिदान देने के लिए तैयार हुए। खेल पर आधारित फिल्म में अखंड देश की भावना का दर्शन हुआ है।

संदर्भ :

1. चक दे इंडिया - निर्देशन -शिमित अमीन प्रदर्शन तिथि - 10 अगस्त, 2007
2. गदर : एक प्रेम कथा निर्देशन- अनिल शर्मा प्रदर्शन तिथि - 15 जून, 2001
3. इंटरनेट दि . 26/09/2022

सहाय्यक प्राध्यापक ,हिंदी विभाग
म.ह.शिंदे महाविद्यालय तिसंगी
तहसील - गगनबावडा जिला- कोल्हापुर

हिंदी काव्य में राष्ट्रीय भावना

निलेश सखाराम डामसे

भारत सरकार द्वारा आजादी के अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में पूरे देश में 13 अगस्त 2022 से 15 अगस्त 2022 तक 'हर घर तिरंगा' अभियान का आयोजन किया गया। भारत विविधता वाला विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। अलग-अलग विचारधाराओं का जन समूह अल-अलग राजनैतिक पार्टियों में बँटा हुआ दिखाई देता है फिर भी सत्तारूढ़ पार्टी द्वारा चलाए गए 'हर घर तिरंगा' अभियान में देश के सभी लोगों ने सहभागिता लेते हुए अपने घर पर तिरंगा लहराया। लोगों द्वारा दिखाई गई यह भावना ही 'राष्ट्रीय भावना' है। हेन्स कोहन कहते हैं कि, 'राष्ट्रीयता मन की एक अवस्था है।'[1] मन की स्थिति और जागृति हमारी संस्कृति पर निर्भर करती है। अर्थात मन की स्थिति हमारी परंपरा पर आधारित होती है। इस लिए हम अपने मन के मूल को अपनी विरासत में ढूँढ सकते हैं। भारत के गौरवशाली इतिहास में ही हमें आज की राष्ट्रीय भावना के बीज मिलते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने निबंध 'कविता क्या है?' में कहते हैं कि बिना प्रकृति प्रेम के क्या देश प्रेम?'[2] अर्थात् शुक्ल जी प्रकृति के हर घटक को महत्व देते हुए कहते हैं कि, 'राष्ट्रीय भावना का उद्गम हमारी चिर सहचर प्रकृति ही है। वन, पर्वत, नदी, नाले, निर्झर, कछार, पठार, चट्टान, 'राष्ट्रीयता वास्तव में राजनीतिक धारणा नहीं बल्कि शैक्षणिक धारणा है।'[3] राष्ट्रीयता का संबंध अपने इतिहास से होता है, वह अपनी प्राचीन परंपरा को आवेग प्रदान करती है। कोई राष्ट्र जितना प्राचीन हो, जिसने जितना अधिक त्याग किया हो, वह राष्ट्र अपेक्षाकृत अधिक राष्ट्रीयता का वाहक होता है। बच्चा जन्म लेते ही अपने पास रहने वालों से प्रथमतः परिचित होता है। बच्चे की भूख को माँ मिटाती है इस कारण वह माँ से अलग नहीं हो पाता। इसे हम प्राकृतिक नियम भी कह सकते हैं। यही बच्चा बाद में माता-पिता, भाई-बहन से पड़ोसियों से परिचित होता है। बड़ा हो जाने पर यही बच्चा किसी धर्म और जाति की विचारधारा से बंध जाता है। किसी एक विशेष भाषा, रीति-रिवाज से जुड़कर एक भूप्रदेश का हो जाता है। पहले आत्मरक्षा के लिए मनुष्य को समूह बनाकर रहना पड़ा होगा। आगे जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती गई होगी रहने के स्थान भी विस्तृत होते गए। इसी क्षेत्र विस्तार से राज्य का अस्तित्व हुआ होगा।

मनुष्य को शुरू से ही अपनी इच्छा पूर्ति के लिए संघर्ष करना पड़ा। शत्रुओं से जब अपने लोगों की अपने क्षेत्र की रक्षा करने में असमर्थ रहा तब किसी एक नेता अर्थात् राजा की आवश्यकता निर्मित हो गई। राजा के अधीन रहकर शत्रुओं का सामना किया। राजा के नेतृत्व में जब लोग संघटित हुए तब समूह के नियमों का पालन भी करना पड़ा और जब समुदाय में राजनीतिक चेतना बढ़ गई तब सरकार का निर्माण हुआ। बर्गेस कहते हैं कि एक जन समुदाय जिसकी भाषा एवं साहित्य, रीति-रिवाज तथा भले-बुरे की चेतना सामान्य हो और जो भौगोलिक समानता वाले प्रदेश में रहता हो, राष्ट्र कहलाता है। इस राष्ट्र के प्रति जन समूह के मन में तीव्र अपनत्व तथा ममता की भावना होने के कारण ही राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। फ्रांस की क्रांति ने विश्व के सभी राष्ट्रों में राष्ट्रीयता

की भावना को जागृत कर दिया। जब फ्रांस की राजनैतिक उथल-पुथल और राष्ट्रीयता की खबर विश्व में घूमने लगी तब जाकर परतंत्र राष्ट्रों को अपनी परतंत्रता खटकने लगी और फ्रांस की देखा-देखी राष्ट्रीय आंदोलन करके एक-एक राष्ट्र स्वतंत्र होने लगे।

भारत में राष्ट्रीयता का उदय भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के साथ ही देखने को मिलता है। मुगल शासन के काल में ही भारत का 'सोने की चिड़िया' यह अतिरंजित वर्णन सुनकर अंग्रेज भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से आए। 'कंपनी के द्वारा भारतीय जनता का अधिकाधिक आर्थिक और राजनीतिक शोषण किया जा रहा था। किसी न किसी बात को आधार बनाकर देशी राजाओं और नवाबों से उनके क्षेत्र छीने जा रहे थे। भारतीयों के सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप किया जा रहा था और सैनिकों तथा अन्य भारतीयों की धार्मिक भावनाओं को जानबूझकर आघात पहुंचाया जा रहा था।'[4] तब अपने देश की यह लूट देख कर भारतीय जनसमुदाय संघटित होने लगा और उनके मन में राष्ट्रीयता की भावना तीव्र होने लगी।

आधुनिक काल में अंग्रेजों द्वरा किए जाने वाले शोषण और अत्याचारों ने भारतीय समाज को स्वदेश में ही विदेशी कर दिया। इस परिस्थिति को देखकर ही भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने कहा-

रोवहु सब मिलि आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई।।'[5]

भारतेन्दु के 'नीलदेवी' तथा 'भारत दुर्दशा' नाटकों में प्रयुक्त कविताओं में हमें राष्ट्रीय भावना के स्वर मिलते हैं। डॉ. श्रीकृष्ण लाल कहते हैं कि,'हिंदी में राष्ट्रीय कविता के जन्मदाता हरिश्चंद्र हैं। श्रीधर पाठक, सत्य नारायण कविरत्न, मैथिली शरण गुप्त इत्यादि कवियों ने हरिश्चंद्र के पश्चात राष्ट्रीय भावनापूर्ण कविताएँ रचीं। इंडियन नॅशनल कांग्रेस और आर्य समाज के कारण राष्ट्रीय भावना का प्रचार हो चला था और ब्रज भाषा की शृंगारिक कविताओं के स्थान पर इनका प्रचार बढ़ रहा था।'[6] द्विवेदी युग के कवियों ने समाज में जागरण की भावना भर दी। ठाकुर गोपाल शरण सिंह विश्वप्रेम में ही जीवन का सार देखते हुए कहते हैं -

'जग की सेवा करना ही बस है / सब सारों का सार'

कवि रामनरेश त्रिपाठी 'जन्म भूमि भारती' शीर्षक से कविता लिखकर भारत में जन्म होने का अभिमान व्यक्त करते हैं। -

'जिसके तीनों ओर महाद्वीप रत्नाकर है
उत्तर में हिमरक्षी रूप सर्वोच्च शिखर है।
जिसमें प्रकृति विकास रम्य ऋतु-क्रम उत्तम है
जीवजन्तु फल-फूल शस्य अद्भुत अनुपम है।
पृथ्वी पर कोई देश भी इसके नहीं समान है।
इस दिव्य देश में जन्म का हमें बहुत अभिमान है।

इस समय मैथिलीशरण गुप्त जी की कविताओं में प्रमुखता से राष्ट्रीयता दिखाई देती है। इस युग के सभी कवियों की कविताओं में किसान, मजदूर और शोषितों के प्रति प्रेम दिखाई देता है। महात्मा गांधी जी द्वारा जो स्वातंत्र्य प्राप्ति का आंदोलन चल रहा था,

उसके कारण अब राष्ट्रीयता जन आंदोलन के समान कविताओं मे दिखने लगी थी। कवि इकबाल ने राष्ट्रीयता दिखाते हुए लिखा-

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा
हम बुलबुले हैं इसकी, यह गुलिस्ताँ हमारा।
गुरबत में हो अगर हम, रहता है दिल वतन में
समझो वहीं हमें भी, दिल हो जहाँ हमारा। / xxx /
मजहब नहीं सिखाता, आपस में वैर रखना
हिंदी हैं हम वतन है, हिन्दोस्ताँ हमारा।'[7]

सुभद्रा कुमारी चौहान जी राष्ट्रीय जन आन्दोलन में सहभागी रहीं। इस कारण इनकी कविताओं में राष्ट्रीयता के स्वर दिखे। 'झाँसी की रानी' लक्ष्मी बाई की वीरता के गुणगान द्वारा लोगों में राष्ट्र पर मिटने की प्रेरणा दी। यह वही समय था जब माखनलाल चतुर्वेदी जी ने 'एक भारतीय आत्मा' नाम से देश के युवकों को बलिदान पथ पर चलने की प्रेरणा देते हुए 'पुष्प की अभिलाषा' में लिखा -

'चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ।
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ/ xxx /
मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ में देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।'[8]

जहाँ चतुवेर्दी जी राष्ट्र पर कुर्बान होने की सीख युवकों को देते हैं, वहीं अपने आपको देश का एक सिपाही मानते हुए कहते हैं-

'सिर पर प्रलय, नेत्र में मस्ती, मुट्ठी में मनचाही
लक्ष्य मात्र मेरा प्रियतम है, मैं हूँ एक सिपाही।'[9]

पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने वीर रस की कविता द्वारा राष्ट्रीय भाव को व्यक्त किया है।

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए।
एक हिलोर इधर से आये एक हिलोर उधर से आये।
प्राणों के लाले पड़ जायें त्राहि त्राहि रव - नभ में छाए।[10]

इस प्रकार हिंदी कविता में एक आत्मा की तरह राष्ट्रीय भावना देखने को मिलती है। आज राष्ट्र का पथप्रदर्शन कविता करती है, साथ ही अंध राष्ट्र भक्ति का विरोध भी करती है। आज जो सामाजिक प्रश्न हैं, आर्थिक प्रश्न हैं, उन्हें सामने लाने का सफल प्रयास हिंदी कविता में हुआ है। आज जो भ्रष्टाचार दिखाई देता है उसका चित्रण भी हिन्दी कविता में मिलता है। सांप्रदायिकता, दंगे-फसाद के चित्रण द्वारा कवि राष्ट्रीयता का परिचय दे रहे हैं। आज की सभी क्षेत्रों की समस्याओं का चित्रण भी हिंदी कविताओं में मिलता है। आज की राष्ट्रीयता के लिए डॉ. रामकुमार वर्मा का यह कहना सटीक लगता है कि - 'राष्ट्रीयता के लिए देश की अथवा राज्य की इकाई होना आवश्यक है। यह बात दूसरी है कि विभिन्न युगों में देश अथवा राज्य की सीमाएं घटती बढ़ती हैं। सीमाओं के अनुपात में ही राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण में अंतर आ जाता है।'[11]

संदर्भ :
1. द आयडिया ऑफ नेशनलिस्म, हेन्स कोहन- पृष्ठ -16
2. चिंतामणि भाग-1, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 1977, पृष्ठ - 219
3. वही, पृष्ठ 224
4. भारत का राष्ट्रीय आंदोलन तथा संविधानिक विकास, पुखराज जैन,1972 पृष्ठ 4
5. भारतेन्दु संचयन- सं. रामजी यादव, संस्करण 2011 पृष्ठ 237
6. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. श्रीकृष्ण लाल पृष्ठ 82
8. युग चरण, माखनलाल चतुर्वेदी - संस्करण 1956 पृष्ठ 31
9. चुने हुए कवि और लेखक, पृष्ठ 109
10. चुने हुए कवि और लेखक, पृष्ठ 130
11. धर्मयुग - रामकुमार वर्मा -1956

सहायक प्राध्यापक , अध्यक्ष हिंदी विभाग
मालती वसंतदादा पाटील कन्या महाविद्यालय, इस्लामपुर

21वीं सदी की हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना

डॉ. अशोक मरळे

साहित्य और राष्ट्रीयता का अभिन्न संबंध रहा है। उसे एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता। साहित्य हमेशा अपने क्रांतिपूर्ण विचारों द्वारा राष्ट्र के नवनिर्माण में सहायता प्रदान करता है। राष्ट्रीय विशिष्टताओं ने साहित्य सृजन में महत्वपूर्ण प्रेरणा एवं सबल पृष्ठभूमि प्रदान की है, उसी तरह साहित्य भी राष्ट्र के उन्नयन में अपनी विशिष्ट भूमिका निभाता हुआ योगदान देता है। राष्ट्रीय चेतना वह मूल्य दृष्टि है जो विवेकपूर्ण सृजन और संकल्प को जन्म देती है, जिससे राष्ट्र की अस्मिता का निर्माण होता है। 'देश अथवा राष्ट्र को अपनी जन्मभूमि मानकर अपने को उसका एक अंग मानना और उसके लिए कुछ न कुछ करने को तत्पर होना ही राष्ट्रीयता है।'[1] राष्ट्रीयता के संदर्भ में प्रो. होलकूम्ब की धारणा है कि 'राष्ट्रीयता एक सामूहिक भाव है, एक प्रकार की साहचर्य की भावना है तथा पारस्परिक सहानुभूति है, जो स्वदेश विशेष से संबंधित रहती है।'[2] भौगोलिक, राजनैतिक एवं जन-संस्कृति अर्थात सांस्कृतिक एकता के समन्वय से इस राष्ट्रीयता का निर्माण होता है। राष्ट्रीय चेतना केवल एक भाव मात्र नहीं है, बल्कि वह इतिहास से भविष्य तक की सांस्कृतिक यात्रा के सजग अनुभव का नाम है।

21वीं सदी के अनेक कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से जनमानस में राष्ट्रीयता का संचार करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता आंदोलन से हमने यह देखा है और कविता की यह विशेषता भी रही है कि कविता के माध्यम से लोगों के हृदय में राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय संदेशों को आसानी से संप्रेषित किया जा सकता है। 21वीं सदी के कवि ने राष्ट्र-निर्माण को यथार्थ आधार देने के लिए उन शक्तियों की ओर से सावधान रहने को कहा है जो देश की वर्तमान अव्यवस्था के लिए उत्तरदायी हैं। देश की इस अव्यवस्था के लिए अवसरवाद, स्वार्थ परायणता और संकीर्णता जिम्मेदार हैं। इन्हीं के कारण यह देश वर्गों में बंट गया है तथा अस्थिरता के कगार पर पहुँच गया है। देश के भविष्य के लिए इनसे लड़ना पहली आवश्यकता है। यदि इन्हें समाप्त नहीं किया जाएगा, तो हमेशा संकट ही बना रहेगा। इसी कारण कविता ने इस पूरी प्रवृत्ति को ही समाप्त करने की बात कही है -

'लोगों! भविष्य में जीने वाले लोगों!! / सोच लो। / अगर उसकी ताकत अभी भी कामयाब हो जाती है। / तो आगे भी ऐसा ही होता रहेगा। / बहते हुए बाजार की अंधेरी किसी गली में/ घसीटकर/ क्या हम इस बदमाश को / खत्म नहीं कर सकते हैं?'[3]

गौरवबोध राष्ट्रीय चेतना का अभिन्न अंग है। यही गौरवबोध मनुष्य को राष्ट्राभिमुख होने की प्रेरणा देता है। गौरवबोध राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ कविता का भी नया मूल्य है जो स्वतंत्रता-काल के प्रारंभिक समय में अंकुरित होकर 21वीं सदी की हिंदी कविता तक पुष्पित और पल्लवित हुआ है। कविता के माध्यम से राष्ट्र को नए रूप से जोड़ने का यह प्रयास इस कविता की महत्वपूर्ण विशेषता है। यह कविता नवनिर्माण में विश्वास करती है। यह नया नवनिर्माण नफरत की दीवारों का विनाश करके संपन्न होगा। देश का वातावरण ऐसा बनेगा जिसमें नई सभ्यता का सूरज चमकेगा, उल्लास महकेगा, प्रेम का संदेश प्रत्येक व्यक्ति के मन में गूँजेगा और नई संस्कृति नए गौरव के

साथ पुष्पित होगी-

'तुमने भारत को पोस्टरों में देखा है/ एक साँवली औरत / घने जूड़े में /
बड़ा-सा फूल खोंस रही है / एक देसी कमल पोखर से बच्चे की तरह/
उझक रहा है/ एक आदमी गाँव को बोझ लिए मचकता जा रहा है /
वहाँ कभी / तुमने भारत देखा है?'[4]

इस सदी के कवियों की हमेशा यह मंशा रही है कि हम रहें या ना रहें, देश का श्रेष्ठत्व अबाधित और अमर रहना चाहिए। हमें दौलत, नाम, शोहरत नहीं चाहिए बल्कि हमारा देश सर्वप्रथम होना चाहिए, देश के प्रति ये हमारा दायित्व है। हम किसी भी हालात में रहें, पर देश का ध्वज तिरंगा हमेशा लहराना चाहिए। कवि कुमार विश्वास कहते हैं कि-

'दौलत ना अता करना मौला, शोहरत ना अता करना मौला
बस इतना अता करना चाहे जन्नत ना अता करना मौला
शम्मा-ए-वतन की लौ पर जब कुर्बान पतंगा हो
होठों पर गंगा हो, हाथों में तिरंगा हो'[5]

कवियों ने अपनी कविताओं में धार्मिक विकृतियों और विद्रूपताओं को अत्यंत प्रामाणिकता से निरूपित किया है। सांप्रदायिकता की समस्या की वजह से देश का वातावरण जहरीला हो चुका है। समाज में अपनापन, सद्भाव, भाईचारा तथा इन्सानियत समाप्त हो चुकी है। इस युग के कवि ने समाज में व्याप्त नफरत की भावना को समाप्त करना जरूरी माना है क्योंकि नफरत की भावना से कुछ भी हासिल नहीं होने वाला है। अपनेपन से समाज का वातावरण आनंददायी बन जाता है। हिंसा किसी समस्या का समाधान नहीं है। हिंसा को सभी धर्मग्रंथों में निषिध्द माना गया है। मासूमों का बेवजह खून बहाना कहाँ की बहादुरी है। इन सब वाद-विवादों को भुलाकर हमें चाहिए कि देश में स्नेह का वातावरण निर्माण करें। कवियों की यही कामना है कि देश में सद्भाव का वातावरण निर्माण हो। इसलिए डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा अरूण लिखते हैं -

'हाथों में अपने थाम लो अपनत्व की मशाल /
अँधियारा नफरतों का हटाना है दोस्तो /
पानी नहीं है, खून हुआ आदमी का है /
हिंसा के हामियों को बताना है दोस्तो /
जिसमें मुहब्बतों की महक थी भरी हुई /
वो फूल फिर चमन में खिलाना है दोस्तो'[6]

भारत जैसे सभ्य और लोकतांत्रिक राष्ट्र की आधारशिला यह है कि वह अपने नागरिकों में लिंग, धर्म, जाति, आर्थिक स्थिति आदि के आधार पर बिना किसी भेदभाव के सभी के साथ समान व्यवहार करे परंतु जब समान व्यवहार की यह प्रक्रिया समाज के रूढ़िवादी विचारों, धार्मिक कट्टरता, व्यक्तिगत और राजनीतिक स्वार्थों से बाधित होती है, तो इसकी परिणति एक शोषणकारी व्यवस्था के सृजन के रूप में होती है। इस सदी के कवि ने शोषित वर्ग की दयनीय स्थिति का चित्रण पूरी ईमानदारी और सहानुभूति के साथ किया है, वहीं उन मानसिक प्रवृत्तियों के उद्घाटन की भी कोशिश की है जो

वर्तमान स्थिति को बनाये रखने में मददगार हैं। आम आदमी के लिये चिंतित अभिमन्यु अनत कहते हैं कि -

''जीवन के अभाव में जीवन का आविष्कार करता हूँ
अनजाने में दुःख सुख और मृत्यु भी उससे चिपक जाती है
जन्म से मृत्यु तक के लम्बे फासले को
मैं ही संकुचित कर जाता हूँ एक सांस की लम्बाई में।''[7]

धर्मनिरपेक्षता हमारे देश की विशेषता रही है। लेकिन बदलते समय के साथ ये संदर्भ अपने मायने बदल रहे हैं। कुछ स्वार्थी धर्मांध अपने स्वार्थ के लिए सांप्रदायिक माहौल पैदा कर रहे हैं। सांप्रदायिकता के उन्माद ने देशवासियों में अजीब तरह का डर पैदा किया है। प्रसिद्ध कवि राजेश जोशी अपनी 'मारे जाएँगे' कविता में लिखते हैं -

'जो इस पागलपन में शामिल नहीं होंगे / मारे जाएँगे।
.... सबसे बड़ा अपराध है इस समय/ निहत्थे और निरपराध होना /
जो अपराधी नहीं होंगे / मारे जाएँगे।'[8]

निष्कर्ष रूप में कहना सही होगा कि देश और समाज के निर्माण में 21वीं सदी के हिंदी कवि का बहुविध तथा असीमित योगदान रहा है। वे अपनी कविताओं के माध्यम से समाज व राष्ट्र का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। साहित्य से समाज में चेतना का संचार कर, ज्ञान के अंधकार को दूर कर समाज को आलोकित कर रहे हैं। उन्होंने राष्ट्र की सांस्कृतिक गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखना अपना कर्तव्य माना है। इसी कारण देशवासी अपने अधिकार व कर्तव्य तथा न्यायिक व्यवस्था से परिचित होकर जागरूक बन रहे हैं। वर्तमान समय में देश के सामने जितनी भी राष्ट्रीय समस्याएँ हैं, उन पर यह कवि लिख रहा है जिसके कारण देश में बड़ी मात्रा में जागृति हो रही है।

संदर्भ

1. नरेश चंद चतुवेर्दी एवं डॉ. उपेंद्र- राष्ट्रीय कविताएँ (भूमिका), पृ. 17
2. प्रो. होलकूम्ब - फाउंडेशन ऑफ मार्डन कामनवेल्थ, पृ. 133
3. ऋतुराज- अबेकस, भाषा दिसंबर 2013 पृ. 44.
4. विजेंद्र-ये आकृतियाँ तुम्हारी, समकालीन भारतीय साहित्य, सितंबर 2011 पृ. 44.
5. डॉ.कुमार विश्वास - अनदेखा, अनजाना, सुधा, मई 2015 पृ॰ 74
6. डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा अरुण - बहती नदी हो जाइए, मधुमती, जून 2014 पृ. 63
7. डॉ. महेंद्र पाल शर्मा - आधुनिक हिंदी काव्य में जीवन दर्शन - पृ-800
8. राजेश जोशी - नेपथ्य में हँसी' - हंस फरवरी 2005 पृ. 35

सहायक प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक,
हिंदी विभाग,
मालती वसंतदादा पाटील कन्या महाविद्यालय
इस्लामपुर

२१ वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना

डा. संतोष रायबोले

फिल्म निर्देशक अपनी अलग कल्पनात्मक उड़ान के बूते साहित्यकार का भी अतिक्रमण करता है। वह स्वस्थ मनोरंजन के साथ-साथ बुनियादी प्रश्न और राष्ट्रीयता को मद्देनजर रखते हुए देश को एकसूत्र में बाँधने का मौलिक कार्य करता है। 14 मार्च 1931 'आलम आरा' भारत की पहली बोलती फिल्म है। तब से ही हिंदी सिनेमा राष्ट्रीयता का लोकदूत बनकर योगदान दे रहा है। देशभक्ति, वीरता और बलिदान की भूमिका निर्देशक के लिए अहम रही है। एलओसी कारगिल (2003), टैंगो चार्ली (2005), शौर्य (2008), गाजी अटैक (2017) आदि फिल्में देशभक्ति और सेना की महत्ता को दर्शाती है।

राष्ट्रवाद की भूमिका केवल युद्ध के द्वारा निर्धारित नहीं की जाती बल्कि खेल के द्वारा अधिक सशक्तता के साथ पेश की जा सकती है। इसे लगान (2001) फिल्म क्रिकेट मॅच जीतकर राष्ट्रीयता का परिचय करवाती है। हॉकी खेल के द्वारा 'चक दे इंडिया' (2007)देशभक्ति के नए पैमाने प्रस्तुत करता है। दौड के द्वारा 'भाग मिल्खा भाग' (2013)के साथ सारा भारत जैसे दौड का हिस्सा बना। कुस्ती द्वारा 'दंगल' (2016)लडाकू तेवर और वह भी स्त्रियों के द्वारा वीरांगना की ललकार साबित होता है। भगत सिंह के जीवन पर बनी तीनों फिल्में 'द लिजेंड ऑफ भगत सिंह', शहीद और शहीद-ए-आजम देश के प्रति फिल्मकारों की रुझान को बयान करती हैं। 'नेताजी सुभाष चन्द्र बोस : द फॉर्गाटन हीरो' (2004) की फिल्म सब को चौंकाती है। वर्तमान में फिल्मी दुनिया की मुख्य प्रवृत्ति राष्ट्रवाद ही रही है। इस अवधारणा को प्रस्तुत शोधालेख के द्वारा दर्शाना प्रयोजन है।

आधुनिक भारत के चिंतन में फिल्मों की भूमिका प्रभावी है। इनका झुकाव अक्सर राष्ट्रीयता की ओर रहा है। क्रांतिकारियों के जीवन चरित्र पढ़ने की अपेक्षा लोग फिल्मों को देखना पसंद करते हैं। देश निर्माण और राष्ट्रभक्ति किताबों की अपेक्षा फिल्मों के द्वारा अधिक उम्दा तरीके से प्रस्तुत की जाती है। फिल्म की रोचकता और मनोरंजक ढंग शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्गों को प्रेरित करता है। पौराणिक और धार्मिक कथानकों की भरमार आरंभिक फिल्मों में झलकती है। देशव्यापी जनजागृति का जादू सिनेमा की ही देन है। ब्रिटिश शासन के खिलाफ बगावती तेवर निर्मिति के इरादे फिल्मों ने पुख्ता किये। फिल्मों की संचार शक्ति ने व्यवसाय की अपेक्षा स्वराज्य की भावना को अधिक उर्जा प्रदान की। स्वतंत्रता के कई आंदोलन फिल्मों का परिणाम हैं। 21वीं सदी की अधिकतम फिल्में राष्ट्र को सर्वोपरि रखती हैं। लाला लाजपत राय की हत्या, गांधी का सत्याग्रह, भगत सिंह, राजगुरू, सुखदेव की फाँसी, नेताजी सुभाष बाबू की 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा' वाली ललकार हिंदी फिल्मों की राष्ट्रीय जमीन तैयार करती है।

स्वातंत्र्योत्तर कई फिल्में देश-विभाजन की विभीषिका का यथार्थ अंकन हैं। स्वाधीनता का अलख और देशभक्ति के मशाल की आग सिनेमा ने सुलगाई। अहिंसा और हिंसक प्रतिरोध दोनों तरह की फिल्मों का मूल मकसद स्वतंत्रता और देश-निर्माण ही है। 'रास्ते

अलल-अलग पर मंजिल एक'। देश की स्वतंत्रता, अंतर्गत सुरक्षा, भारत-पाक सम्बन्ध, सीमा विवाद, पाक का निर्माण, अन्य देशों के बीच के सम्बन्धों पर कई हिंदी फिल्में देश की सुरक्षा, अखंडता और संप्रभुता का पुरजोर समर्थन करती हैं।

'हे राम' (2000) फिल्म भारत विभाजन की त्रासदी है। पाक निर्मिति की सत्तान्ध प्रक्रिया में झुलसते दोनों इलाकों के सामान्य जनता की पीड़ा इसमें समाहित है। अराजकता और दंगों का सिलसिलेवार लेखा-जोखा मन द्रवित करता है। देश-विभाजन से लेकर गांधी हत्या तक की घटनाओं को फिल्म में वाणी दी गई है।

युवाओं के दिलो-दिमाग पर भगत सिंह का प्रभाव फिल्मों की उपलब्धि मानी जाती है। भगत सिंह के जीवन पर बनी 'द लिजेंड ऑफ भगत सिंह' में भरी अदालत में वे अपनी राष्ट्रीय चेतना, अस्मिता और स्वतंत्रता की बेबाक प्रस्तुति करते हैं, 'क्रांति बम और पिस्तौल की संस्कृति नहीं है, क्रांति से हमारा प्रयोजन है कि अन्याय पर आधारित वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन होना चाहिए। क्रांति मानव जीवन का जन्म सिद्ध अधिकार है।'[1] भगत सिंह की राष्ट्रीयता प्रजातंत्र की पैरवी करती है। असल में आजादी का मूल उद्देश्य परिवर्तन को वे मुस्तैदी से जाहिर करते हैं। देशभक्ति के लिए भगत सिंह के जीवन पर बनी सभी फिल्में क्रांति की स्वर्ण अवधारणा का रचाव हैं।

21वीं सदी की देशभक्ति युक्त फिल्में राष्ट्रीय भावना, बुद्धि और संवेदना का मेल हैं। वर्तमान में 'मल्टीप्लेक्स कल्चर' का बोलबाला है। सिनेमा की तरफ कापोर्रेट जगत फायदेमंद निवेश के रूप में देख रहा है। 'ग्लोबल विलेज' और सेटेलाईट की दुनिया ने सिनेमा को 'शॉपिंग मॉल' संस्कृति का अभिन्न हिस्सा बनाया है। घरों की जगह पर अब दर्शक मल्टी स्क्रीन के दिवाने बने हैं। भारतीय फिल्में भारत में ही नहीं तो भारत के बाहर भी प्रसिद्धि और गल्ला जमा रही हैं। 'लगान', 'चक दे इंडिया', 'भाग मिल्खा भाग,' 'रंग दे बसंती' फिल्में युवाओं के उग्र और घातक राष्ट्रवाद के खिलाफ रचनात्मक विधायक और सृजनशील देशभक्ति का विकल्प हैं। फिल्म में आमिर खान और उनके दोस्त युवकों को नये तरीके से देश के प्रति सोचने के लिए मजबूर करते हैं। खराब व्यवस्था को नाम रखने की अपेक्षा युवाओं को भ्रष्टाचार आदि देशविघातक विकारों को खत्म करने और देश की भलाई के लिए आगे आने का आह्वान करते हैं।

'नो वन किल्ड जेसिका' फिल्म यथार्थता का उत्कृष्ट नमूना है। इसमें देशप्रेम की भावना की नई परिभाषा गढ़ी गई है। राष्ट्र और राष्ट्रवाद की अवधारणा का निरंतर बढ़ता पैमाना इसमें समाहित है। 'चक दे इंडिया' फिल्म के खेल की तर्ज पर रंगमंच का अवतरण मात्र नहीं है। वह भारतीय स्त्री-पुरुष विषमता, धार्मिक अंधविश्वास, भारत-पाक विभाजन की त्रासद मनोवृत्ति आदि वर्तमान विसंगतियों का दस्तावेज है। देश को तोड़ने और कमजोर करने वाले गैर-तत्वों की पोल यह फिल्म खोलती है। राष्ट्रीयता केवल दुश्मन राष्ट्रों से लड़ना मात्र नहीं है। व्यापक पैमाने पर अंतर्गत समस्याओं का निष्कासन सबसे बड़ी देशभक्ति है। 'माय नेम इज खान' फिल्म इंसान की राष्ट्र के लिए क्या जवाबदेही है? राष्ट्रवादी कौन? आदि सवाल खड़े करती है।

'लगान' फिल्म क्रिकेट खेल के द्वारा लगान मुआफी से इलाके को निजात दिलाती है। गाँव का एक अदना-सा सीधा-साधा लड़का भुवन अपनी धर्मनिरपेक्ष टीम के द्वारा

अन्य साथियों में अहिंसात्मक खिलाड़ू वृत्ति की उर्जा भरकर गाँव की लगान मुआफी करवाता है, 'समकालीन सिनेमा में राष्ट्रवाद धार्मिक रूप में उग्र राष्ट्रवाद के रूप में जन-राष्ट्रवाद के रूप में हमारे सामने आता है। जिसमें कुछ हिंसा के रास्ते पर भी जाकर लक्ष्य प्राप्त करने से नहीं चूकते हैं। यह सिनेमा राष्ट्रवाद को बचाने व उसके विरोधी समस्याओं से संघर्ष करने की प्रेरणा देता नजर आता है।'[2] गाँव की एकता देश की एकता की प्रेरक कथा अगर बनी तो देश का अनोखा इतिहास होगा। यह फिल्म केवल लगान की बात नहीं करती बल्कि देश के ग्राम का असली चेहरा सामने लाती है, जो देश की एकता और समृध्दि के लिए खतरनाक है।

वर्तमान में देशभक्ति पूर्ण फिल्मों की कमी चौंकाती है। स्वतंत्रता के पश्चात आज फिर से भारतीय होने का मतलब और व्यापक हो गया है। स्वतंत्रता केवल देश की आजादी मात्र नहीं बल्कि देश के भीतरी विसंगतियों से मुक्ति में समाहित है। हर भारतीय को स्वतंत्रता सेनानी बनकर राष्ट्रविघटक और देश को तोड़ने वाली ताकतों को खत्म करना ही सच्ची राष्ट्रीयता है। विदेशों की अपेक्षा भारत में आंतरिक चुनौतियाँ अधिक हैं। चीनी और पाकिस्तानी आक्रमण के विरुद्ध हमारी सेना मुँहतोड़ जवाब दे सकती है। एलओसी करगिल (2003), टँगो चार्ली (2005), शौर्य (2008), गाजी अटैक (2017) आदि वर्तमानकालीन फिल्मों ने नया अंदाज और नजरिया भारतीय जनमानस को प्रदान किया। एलओसी करगिल युद्ध की सारी घटनाएँ आज भी रौंगटे खड़ी करती है। मायनस टेम्प्रेचर में हमारे जॉबाज सैनिक अपनी जान की परवाह किये बगैर कारगिल के लिए शहादत दे रहे थे। बॉर्डर फिल्म बनाने के परिणामतः निर्माता को जान से मारने की धमकियाँ मिलने लगी थीं। उनका परिवार भी एलओसीः कारगिल फिल्म बनाने के विरुद्ध था पर वे धमकियाँ और परिवार की परवाह किये बगैर फिल्म निर्माण के संदर्भ में अपनी मान्यता को दर्ज करते हैं, 'मैंने अपने परिवार के साथ यह कहते हुए बहस की कि हम सभी को किसी न किसी तरह से मरना है। अगर वह (एक सैनिक) वहाँ खड़ा हो सकता है और मेरे लिए मर सकता है, तो मैं उसके लिए क्यों नहीं मर सकता? मैं अपनी पूंछ को अपने पैरों के बीच रखकर दौड़ने वाला नहीं हूँ। मैं वहाँ जाऊँगा और इतिहास दर्ज करूँगा, चाहे वह (लेफ्टिनेंट) मनोज पांडे हो, या (कप्तान) विक्रम बत्रा, या (लेफ्टिनेंट सौरभ कालिया)'[3] सशस्त्र अंगरक्षकों के घेरे में रहकर भी एक सिपाही की तरह इस फिल्म का निर्माण किया गया। सैनिकों के परिवारों से मिलकर यथार्थता का मेल इस फिल्म में किया गया है। 1999 की घटना को राष्ट्रीयता में 2003 में फिर से मूर्त रूप प्रदान किया गया।

'टैंगो चार्ली' (2005) फिल्म में अर्धसैनिक बल भरतीय सीमा पर कैसे जीते हैं, क्या उनकी वीरता का सही सम्मान हो रहा है जैसी उनकी आपबीती को फिल्माया गया है। सिपाही कृत्रिम तरीके से बनाए नहीं जाते। वे तो पैदाइशी होते हैं। देश के भीतरी विसंगतियों को सिपाही अपने कठोर अनुभवों से बयाँ करते हैं। यह फिल्म भारतीय सीमा सुरक्षा बल में भर्ती से लेकर कठिनतम युद्ध, अभ्यास और मेहनत का दर्शन कराती है। नव-नियुक्त सिपाही की कड़ी मेहनत को निर्देशक मणि शंकर ने इस फिल्म में दर्शाया है। सिपाहियों की असल जिंदगी को पत्रकार भी पेश करने का साहस नहीं करते, जो

इस फिल्म ने किया है। बीबीसी पत्रकार जसप्रीत पांडोहर का कथन है, 'यह भारत में फैले आतंकवाद, हिंसा और उनसे जूझते लोगों की वीरता को जानने का नया रुचिकर अध्याय खोलती है।'[4] पत्रकारिता का साहस ऐसे विषय को सार्वजनिक बनाकर समस्या निष्कासन का बायस बन सकता है। भारत के भीतरी तत्व जैसे अतिवादिता, द्रोह आदि को एकता और संप्रभुता के लिए फिल्म घातक करार देती है।

2008 में बनी 'शौर्य' फिल्म सेना के अपराधीकरण का वाकया है। सिपाही वरिष्ठ अधिकारी की गोली मारकर हत्या करता है। काश्मीर घाटी के पुलवामा जिले के पुंज क्षेत्र का एक तुकड़ी द्वारा किए गए घेराबंदी का वर्णन है। सेना में भाईचारा कैसे खत्म होता जा रहा, इसका भी जायजा लिया गया है। सेना के सामान्य सिपाही और अधिकारियों का वैमनष्य चिंतापूर्ण है। सेना अधिकारी के कोर्ट-मार्शल को केंद्र में रखा गया है। सिपाही गोली मारकर भागता नहीं, आत्मसमर्पण कर देता है। सैनिकों का आंतरिक द्वन्द्व और अवसाद की कहानी फिल्माई गई है। देश और सेना के हौसले तब पस्त होते हैं, जब सैनिक आपस में लड़ बैठते हैं। सिपाही का वरिष्ठ अधिकारी के प्रति विद्रोह खतरे की आशंका है। कहीं कुछ न कुछ गड़बड़ है, 'फिल्म एक काल्पनिक कहानी प्रस्तुत करती है, जो एक भारतीय सेना अधिकारी जावेद खान के कोर्ट-मार्शल के इर्द-गिर्द घूमती है, जिसने अपने वरिष्ठ अधिकारी की गोली मारकर हत्या कर दी थी। कोर्ट मार्शल के दौरान भाईचारे की हत्या तक की परिस्थितियों का धीरे-धीरे पता चलता है।'[5] सेना में इतना अंतर्विरोध अगर है तो भारत की संरक्षण और सैन्य नीति पर सवाल खड़े होने की संभावना को नकारा नहीं जा सकता।

1971 का भारत-पाक युद्ध और बांग्लादेश निर्मिति को केंद्र में रखते हुए गाज़ी अटैक फिल्म का निर्माण किया गया है। वीर भारतीय सैनिकों द्वारा पाकिस्तान की गाजी पनडुब्बी को नष्ट करने का घटनाक्रम फिल्म के केंद्र में है। भारत के पूर्वी बंदरगाहों को नुकसान से बचाते हुए युध्दपोत आईएनएस विक्रांत की रक्षा सेना ने की थी। इस अभियान में शहीद जवान नदारद ही रहे। किरदारों के मनोभावों को यहाँ अभिव्यक्त किया गया है। अंधराष्ट्रभक्ति की अपेक्षा यह फिल्म सच्ची राष्ट्रीयता और देश पर मर मिटने की हुंकार है। गाजी को नष्ट करना संसाधनों की अपेक्षा देशहित की स्ट्रेटजी, दृढ़ इच्छाशक्ति और राष्ट्रीय भावना का समायोजन है। समुद्र में 18 दिनों तक यह युध्द चला था। पाकिस्तान ने विक्रांत को नष्ट करने के लिए गाजी को समुद्र में उतारा था। गाजी के खात्मे के लिए भारतीय नौसेना का साहस अलौकिक है। रेडिफ के प्रसन्ना डी जोर ने कहा कि, 'गाजी अटैक एक युध्द की कहानी की एक दिलचस्प कहानी है।'[6] समुद्र में लड़ा गया युद्ध जिसके बार में लोग अधिक नहीं जानते। इस फिल्म के द्वारा जाँबाज सैनिकों के शौर्य ओर बलिदान की बेमिसाल प्रस्तुति हुई है।

भारतीय वर्तमान देशभक्ति से ओतप्रोत हैं। कई फिल्में बॉक्स ऑफिस पर सुपरहिट रही हैं। आजादी और देशप्रेम का सही अर्थ हिंदी फिल्मों ने ही बखूबी समझाया है। आजादी के अमृत महोत्सव में हमें कुछ फिल्मों का जिक्र अनिवार्य हो जाता है, जिन्होंने देशप्रेम की नई परिभाषा गढ़ी है। फिल्में हमें बाहरी और अंतर्गत दोनों दुश्मनों का परियच कराती हैं। (2004) की फिल्म 'स्वदेश' बेहतर जिंदगी की तलाश के लिए पलायन

करने वाले भारतीय युवाओं की आँखों में अंजन लगाती है। 'रंग दे बसंती' (2006) सरकार और देश को कोसने की अपेक्षा हमारी जिंदगी का मकसद क्या है, यह सवाल खड़ा करती है। (2007) की फिल्म 'चक दे इंडिया' की लड़कियों की हॉकी टीम का दर्शक स्वयं हिस्सा बनकर लड़कियों की लड़ाई हमें हमारी लगने लगती है। (2016) की 'पिक' फिल्म गलती किसी की भी हो दोष लडकियों को देने वाली विकृत मनोवृत्ति वाली अवधारणा पर प्रहार करती है। 'दंगल' में 'मोरी छोरी क्या छोरों से कम है' के द्वारा सारे भारत का दर्शक कुश्ती लड़ता है। 'एलओसी कारगिल' का सैनिकी शौर्य भारतीय जनमानस को देश के लिए मर-मिटने की कसम दिलाता है।

संदर्भ :

1. काळे अनिल, (संपादक) जनसंचार और तकनीकी हिंदी विविध आयाम, चिन्तन प्रकाशन, 3 ए/119, आवास विकास, हंसपुरम, कानपुर-208021 प्र.सं. 2021, पृ. 28
2. पांडेय शौव्य कुमार, समकालीन सिनेमा में राष्ट्रवाद ('मीडिया विमर्श'विशेषांक-3, जुन 2013) पृ. 44
3. Bollywood News, time. Com. translate. goog
4. hi.m.wikipedia@org
5. cipedia@-org.translate.goog
6. hmoob.in

कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय फोंडाघाट
जि. सिंधुदुर्ग - 416601

जयभारत नाटक में राष्ट्रीय भावना

प्रा. जेलित कांबळे

भारत में अंग्रेजों के खिलाफ रणनीतियाँ 1857 के युद्ध से शुरू हुई थी। भारत के क्रांतिकारियों ने और यहाँ के नेताओं ने यह तय किया था कि किसी भी हालत में भारत देश आजाद होना चाहिए। इस आजादी की लड़ाई में भारत के कई वीर पुरुषों ने अपनी जान की बाजी लगाई। इस समय के साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से लोगों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का कार्य किया है।

रामकुमार वर्मा, मैथिली शरण गुप्त, रांगेय राघव, भगवतीचरण वर्मा, प्रेमचंद आदि साहित्यकारों का देश को आजाद करने में बहुत बड़ा योगदान रहा है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से देश के क्रांतिकारियों में राष्ट्रीय प्रेम, राष्ट्रीय जागृति आदि की चेतना अपने साहित्य द्वारा उनमें जगाई है। डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित 'जय भारत' यह नाटक भारतीय संस्कृति को आगे बढ़ाने वाला नाटक है। इस नाटक में भारत के राष्ट्रीय इतिहास में घटित प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की बड़ी महत्वपूर्ण और रोचक कथा चित्रित करने का काम किया है। साथ ही साथ राष्ट्रीय भावना, त्याग, तपस्या, व्रत और आत्म बलिदान की भावना जागृत करने का भी प्रयास किया गया है। इसलिए डॉ. कमल सूर्यवंशी कहती है, 'देश भक्ति और राष्ट्र प्रेम को भी सांस्कृतिक चेतना के अंतर्गत माना है'[1] उस समय का दौर ही ऐसा था। हर व्यक्ति को भारतीय नागरिकों को लगता था कि देश आजाद होना चाहिए। और देश आजाद करने के लिए नाटकों की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उसमें संस्कृति, संस्कार और प्रेरणा देने की कोशिश क्रांतिकारियों को की गई है।

रामकुमार वर्मा का 'जय भारत' नाटक भारतीय संस्कृति की धरोहर है। यह नाटक भारतीय स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि पर आधारित है। भारत के राष्ट्रीय इतिहास में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की बड़ी महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी रचना है। ईस्ट इंडिया कंपनी इस देश में केवल व्यापार करने के उद्देश्य से आई थी। लेकिन उन्होंने अपनी चालाकी और छल-कपट से यहाँ पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इससे उनकी रणनीति और यहाँ के राजाओं की गफलत स्पष्ट होती है।

1857 के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की व्यापकता इतनी बड़ी है कि उसे संपूर्ण रूप से किसी भी विधा में समाहित करना एक कठिन कार्य है। उस समय राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए इस देश के प्रत्येक वर्ग के जनमानस में जो लहरें उठीं, यह कार्य किसी व्यक्ति तक सीमित नहीं रहा। वह उसका कर्तव्य बन गया था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की पहली लहर जाति और धर्म की सीमा तोड़कर सभी का कर्तव्य बन गई थी। सभी देशवासी देश के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर करने के लिए तैयार थे। इसका मुख्य कारण था अंग्रेजों का अन्याय और अत्याचार। डॉ. रामकुमार वर्मा ने जय भारत नाटक के संबंध में लिखा है, 'मुझे विश्वास है प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का संपूर्ण चित्र हमारे विद्यार्थियों को प्राप्त होगा और वे राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत होकर त्याग तपस्या व्रत व और आत्म बलिदान की भावना से देश के महान नागरिक बनने का गौरव प्राप्त कर सकेंगे।'[2] इस प्रकार से यह नाटक एक देश भक्ति क्रांतिकारकों के लिए प्रेरणास्रोत बन

सकता है, यही उद्देश्य सामने रखकर इसका निर्माण किया गया है और देश आजाद होने के लिए किन किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा है, इसका उदाहरण इस नाटक में व्यक्त भावनाएं और पात्र हैं। इतने व्यापक विषय को नाटक में व्यक्त करना कठिन कार्य होने की बात नाटककार ने लिखी है। वह कहते हैं, 'इसीलिए जो परिस्थितियाँ प्रमुख रूप से इस संदर्भ में घटित हुई हैं, उनके समुचित आकलन का प्रयत्न इस नाटक में हुआ है। क्रांति की जो अग्नि किसी स्थान विशेष में प्रज्वलित हुई उसकी आँच किन-किन स्थानों में अनुभव की गई और उसके परिणाम स्वरूप जो विस्फोट विविध स्थानों पर हुआ, उनको सम्यक रूप में प्रतिबिंबित करने का प्रयत्न इस नाटक में किया गया है। जिन प्रमुख केंद्रों में क्रांति का आतंक पूर्ण उद्भव हुआ है, उन्हें अलग अंकों में निरूपित किया गया है। इसलिए इस नाटक में अंकों की संख्या सात हुई है।'[3] किसी भी रचना में उस समय का चित्रण करने के लिए रचनाकार को उस युग में जाना होता है, जिस युग का यह कथानक है।

इस नाटक के आरंभ में नाटककार डॉ. रामकुमार वर्मा ने पूर्वरंग की स्थापना की है। यह एक इस नाटक में नया प्रयोग है। पूर्वरंग में यह बात स्पष्ट करने का प्रयास है कि भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की कुटिल नीति का निराकरण उसकी केंद्रीय समिति के द्वारा किया गया। कंपनी के अधिकारियों के द्वारा छल और कपट से भरी हुई नीति ही सर्वत्र वर्तमान थी तो उसके विरोध में क्रांति की परिस्थितियाँ उत्पन्न होने में किसी भी प्रकार का संदेह नहीं रह गया। 'क्योंकि अंग्रेज लोग अपनी बात के पक्के नहीं है। कल आश्वासन देते हैं और आज तोड़ देते हैं, और मजे की बात यह है कि जो इनका मित्र बनकर सहायता करता है, उसी के गले पर यह अपने खूनी खंजर चला देते हैं। इन पर विश्वास कर अपने आप को ही धोखा देना है।'[4] इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत में जिन-जिन स्थानों पर अंग्रेजों की हुकूमत थी, वहाँ की जनता के मन में उनके खिलाफ एक आक्रोश था। इस आक्रोश की परिणति 1857 का यह समर रहा है। इस क्रांति का नेतृत्व कर रहे सभी क्रांतिकारी महानायक जिन्होंने यह नेतृत्व किया और जनता को इस क्रांति आंदोलन में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया, वे सभी महान हैं। यह बात दूसरी है कि इस क्रांति के आंदोलन में उन्हें सफलता भले ही ना मिली हो परंतु क्रांति की शुरूआत यहाँ से ही मानी जाती है।

राष्ट्रीय एकात्मता का उदाहरण इस नाटक में देखने को मिलता है। एक हिंदू या मुसलमान सब कुछ सह सकता है परंतु अपने संस्कृति और धर्म का अपमान नहीं सह सकता है। वह अपने संस्कृति और धर्म के अपमान के बदले अपने प्राण देने के लिए भी तैयार रहता है। इसी नाटक में भोलाराम कहता है, 'न हीं इज्जत रही सलामत और न ही धर्म परंपरा रही है, धर्म पालन के लिए जिस सेना को जलील किया गया, वह तो हमारे ही धर्म के हैं। अगर धर्म के पीछे उसका अपमान हुआ है, तो हम समझेंगे कि हमारा ही अपमान हुआ है। स्वधर्म पर तो वह अपना बलिदान कर सकता है।'[5] भारतीय संस्कृति में देश-प्रेम और मातृभूमि को सर्वोच्च स्थान पर सभी भारतीय लोगों ने रखा है। इसीलिए सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी अपने मातृभूमि पर उसकी रक्षा के लिए न्योछावर होने के लिए आगे पीछे नहीं देख सकता है। भारतीय सैनिकों को ऐसे कारतूस दिए जाते

हैं, जो गाय और सुअर की चर्बी से चिकनाई लाए गए हैं। नाटक का एक पात्र कहता है,' हम लोगों को कहा गया है कि इन कारतूस का टाँका मुँह से तोड़कर उन्हें इस्तेमाल करना है। आप ही बताओ हम हिंदू लोग गाय की चर्बी से चिकनाए गए कारतूस को मुंह लगाएंगे? तो मुस्लिम सैनिक कहता है क्या हम सूअर की चर्बी होठों से छू सकते हैं? सूअर हमारे लिए हराम हो गया है।'[6] सैनिकों के मन में सांस्कृतिक धार्मिकता को कुचलने के विरोध में यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय सैनिकों और यहां के क्रांतिकारियों में किसी भी प्रकार का साहस और उत्साह की कोई कमी नहीं है। यह सैनिकों का हो रहा अपमान देखकर सामान्य लोग भी भड़क उठे हैं। इसी नाटक का एक पात्र मंगलाचरण पांडे कहता है, 'भाइयों उठो। उठो रणचंडी को रक्त चढ़ाना है, अब हम एक-एक फिरंगी को काट कर रख देंगे! हमारा देश परतंत्र नहीं रहेगा। हमसे हमारी देशभक्ति तो नहीं छीन सकते।'[7] इस समय देशभक्ति की जो लहर शुरू हुई वह सन् 1947 तक चलती रही। इसी लहर से देश आजाद होता है और भारत गणतंत्र कहलाता है। यही जीत क्रांतिकारियों की और भारतीयों की है। इसी जोश और साहस को देखकर क्रांतिकारियों को लगता है, 'अगर लाखों सिपाहियों की यह सेना हमारे साथ हो तो भारत में मुट्ठी भर अंग्रेज हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं।'[8] भारतीय क्रांतिकारियों को लगता है, यह भारत के सिपाही अंग्रेजों की ओर से भारतीय लोगों के खिलाफ लड़ रहे हैं, यह अगर हमारे साथ आएँगे तो देश आजाद करने में हमें सहायता मिल सकती हैं। इसीलिए इन सिपाहियों का मन परिवर्तन करना होगा। यहाँ हम देख सकते हैं, कि प्रमुख क्रांतिकारियों में बैरकपुर कोलकाता से मंगल पांडे, दिल्ली के सम्राट बहादुरशाह, बिठूर का नानासाहेब, बिहार के कुंवर सिंह, मंदसौर के फिरोज शाह, कालपी की ओर से तात्या टोपे, बुंदेलखंड से झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, इन सारे क्रांतिकारियों ने देश आजाद करने की शुरुआत की थी। इनकी वीरता से ही भारत देश का इतिहास गौरव संपन्न हुआ है। देश और धर्म के लिए जब व्यक्ति बलिदान करने को तैयार होता है, तो यही भावना देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम की भावना बनती है। इस नाटक का एक पात्र आमिर खान कहता है, 'हम आखरी साँस तक तुम्हारा साथ देंगे हमें अपनी जान से ज्यादा अपना देश प्यारा है।'[9] इस युद्ध में एक ही व्यक्ति पीछे नहीं रहा। चाहे स्त्री हो या पुरुष वह देश को आजाद करने के लिए हाथ में शस्त्र लिए दुश्मनों का सामना करने के लिए तत्पर थे। स्त्रियों में देखा जाए तो झांसी की रानी लक्ष्मीबाई और उनके साथ की स्त्रियाँ युद्ध करने के लिए अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार थीं। रानी लक्ष्मी बाई के साथ युद्ध मैदान में उतरी झलकारी बाई भी और उनकी सेना अंग्रेजों के खिलाफ मानो इस प्रकार का युद्ध कर रही थी यह देख कर अंग्रेज आश्चर्यचकित हो चुके थे, इसी संदर्भ में डॉ रामकुमार वर्मा लिखते हैं, अंग्रेजी इतिहासकार इस बात पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं, कि भारत देश की स्त्रियों में इतना अधिक मनोबल कैसे है कि वे पुरुषों से भी आगे बढ़कर अपने प्राण हथेलियों पर रखकर रणसंग्राम के भूमि में अपनी शक्ति का परिचय दे सकती हैं। महारानी लक्ष्मीबाई ने बाईस वर्ष की अवस्था में जो युद्ध कौशल प्रदर्शित किया है। वह संभवतः इतिहास में पहली घटना है। महारानी लक्ष्मीबाई की शक्ति और साहस की ध्वजा युद्ध के इतिहास में सबसे अधिक ऊंचाई

पर फैलती रहेगी। यह हमारे देश की परंपरा का सबसे ज्वलंत प्रमाण है कि पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी कंधे से कंधा मिलाकर देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर सकती हैं। भारतीयों के लिए ही नहीं बल्कि विदेशियों के लिए भी लक्ष्मीबाई आदर्श हो सकती हैं। जिस अपरिचित शक्ति से रानी लक्ष्मीबाई ने राष्ट्रीयता की शपथ ली थी और विदेशियों के आतंक से इस देश को मुक्त कर उसे स्वाधीनता की दिशा में अग्रसर करने का प्रयत्न किया था वहां इस देश के लिए ही नहीं तो विदेशियों के लिए भी साहस के ध्रुव नक्षत्र की भांति अटल होना चाहिए।

इस प्रकार डॉ रामकुमार वर्मा ने इस नाटक के माध्यम से क्रांति की उस चिंगारी को दर्शाया है, जिसने 1942 तक आते-आते एक विशाल अंगारे का रूप धारण कर लिया और जिसकी तीखी आँच से सारी अंग्रेजी शक्ति जलकर राख हो गई। उन्होंने इस नाटक के माध्यम से हिंदू-मुस्लिम एकता के साथ- साथ देश-प्रेम, राष्ट्रीय भावना, देश और जाति-धर्म की सीमा लाँघकर मानवता और देश ही सबसे ऊपर है। यह भावना दिखाने का प्रयास इस नाटक के द्वारा किया गया है।

संदर्भ :

1. डॉ. कमल सूर्यवंशी, नाटककार डॉ रामकुमार वर्मा किताब महल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 86
2. डॉ. रामकुमार वर्मा, जय भारत, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, लोधी रोड, नई दिल्ली। पृष्ठ- 03
3. डॉ. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली -2, जय भारत, डॉ. गोयंका / डॉ. शर्मा, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ। पृष्ठ-412
4. डॉ. गोयनका / डॉ.शर्मा,रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली -2,जय भारत, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान,लखनऊ, पृष्ठ- 52
5. रामकुमार वर्मा, जय भारत, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन लोधी रोड, नई दिल्ली, पृष्ठ -52
6. डॉ. रामकुमार वर्मा, जय भारत, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, लोधी रोड, नईदिल्ली, पृष्ठ- 437
7. डॉ. रामकुमार वर्मा, जय भारत, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, लोधी रोड नईदिल्ली, पृष्ठ- 55
8. डॉ. गोयनका डॉ.शर्मा, रामकुमार वर्मा, नाटक रचनावली- 2 जय भारत, उत्तरप्रदेश संस्थान, लखनऊ, पृष्ठ-433
9. डॉ. गोयनका / डॉ. शर्मा,रामकुमार वर्मा नाटक रचनावाली 2, जय भारत, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ। पृष्ठ -442

हिंदी विभाग
विठ्ठलराव पाटील महाविद्यालय, कळे

'लौटे हुए मुसाफिर' में प्रतिपादित राष्ट्रीय भावना

गीतु दास (शोध छात्र)

डॉ. जी. शान्ति (शोध निर्देशिका)

भारतीय स्वतंत्रता के दौरान हुआ भारत-पाकिस्तान विभाजन ने देश में अनेक तरह के परिवर्तन लाए। विभाजन की त्रासदी पर लिखा गया कमलेश्वर का उपन्यास है 'लौटे हुए मुसाफिर'। शांतिपूर्ण, प्रेम भरा जीवन जीने वाले बस्ती के हिन्दू-मुसलमानों में किस प्रकार नफरत के ज्वालामुखी का विस्फोट होता है, वे एक दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं, कई सपने लेकर कुछ मुसलमान पाकिस्तान जाने के लिए निकलते हैं, फिर भी उन्हें निराशा ही प्राप्त होती है। इस प्रकार यह विभाजन-रेखा भूगोल को ही नहीं बल्कि लोंगों के दिलों को भी बाँट देती है, उसका दर्दनाक चित्रण इस उपन्यास में किया गया है।

15 अगस्त सन् 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। भारत के स्वतंत्र होने की घोषणा से ही भारतीय जनता का मन एक नए उत्साह और उल्लास से भर उठा। सदियों से परतंत्र भारतीय जनता ने सुशासन के संबंध में सुनहरे सपने देखा। देश की स्वतंत्रता के लिए हमें काफी कीमत चुकानी पड़ी। स्वतंत्रता के साथ ही देश का विभाजन हो गया। इस बंटवारा ने देश की धार्मिक और राजनीतिक परिस्थिति को जड़ से उखाड दिया। देश-विभाजन की दुर्दशा तथा सांप्रदायिक दंगों के कारण हर कहीं राजनीतिक उधल-पुथल और अस्थिरता का वातावरण दिखाई पड़ा। साथ ही साथ देश को स्वतंत्र भारत के नवनिर्माण तथा अन्य अनेक समस्याओं का सामना भी करना पडा। सरदार वल्लभभाई पटेल ने देशी रियासतों को भारतीय संघ में मिलाकर भारतीय एकता का और अपनी प्रतिभा और दूरदर्शिता का अभूतपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किया। सन् 1948 में महात्मा गांधी की हत्या हुई। इस अप्रत्यशित घटना ने भारतवासियों को बेसहारा बना दिया। सन् 1949 में नया संविधान स्वीकृत हुआ। समता, स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता आदि तत्वों को स्वीकार करके भारतीय संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ और भारत एक ''जनतांत्रिक गणतंत्र राज्य'' घोषित किया गया। स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रीय कांग्रेस ने सता संभाली थी।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति हर बार जनता को आशाएँ दिलाती, वादा करती लेकिन नहीं निभाती। राजनीति और प्रशासन् में दल-बदल, भ्रष्टाचार और बेइमानी के कारण सामान्य जन की यातनाएँ बढ़ती रहीं। लोकतंत्र के प्रति जन-साधारण की आस्था भी कम होती गयी। प्रशासन् और राज नेताओं द्वारा जनतांत्रिक मूल्यों का धीरे-धीरे अवमूल्यन होता गया। आज का राजनीतिज्ञ कथनी और करनी में अंतर रखता है। प्रत्येक युग के साहित्य में राजनीति, जीवन और समाज तीनों जुड़े होते हैं। राजनेताओं के लिए राजनीति अब व्यवसाय और व्यापार बन गई है और व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि को महत्व देने लगी है। इसके फलस्वरूप राजनीतिक परिवेश में अवसरवादिता, स्वरति, स्वार्थांधता, बेइमानी और भ्रष्टाचार ने गहरी अव्यवस्था पैदा कर दी है। चारों ओर की अवव्यवस्था, अनुशासनहीनता, दायित्वहीनता, कार्य-अकुशलता, खोखली नारेबाजी ने गांधीजी के रामराज्य के स्वप्न का नाश कर दिया। इस अवस्था के कारण देश में

भाषावाद, प्रांतीयता, क्षेत्रीयता, सांप्रदायिकता आदि को लेकर दंगे हुए और इस परिवेश ने प्रत्येक व्यक्ति को संकीर्ण बना दिया।

प्रत्येक साहित्यकार की रचनाओं में युग की समसामयिक विषय परिस्थिति और संस्कृति प्रकट होती है। कमलेश्वर स्वतंत्रता आंदोलन के भी प्रत्यक्ष दर्शक रहे। साहित्य में कमलेश्वर का आगमन तब हुआ, जब देश का प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा था। दूसरी ओर हिन्दू व मुसलमानों में दंगा छिड़ा हुआ था। जो हिन्दू-मुसलमान पहले मिल-जुलकर भाइयों की तरह रहते थे, वे अब एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए और एक-दूसरे को जान से मारने में भी संकोच नहीं रखते। देश अपनी कठिनतम् परिस्थितियों से गुजर रहा था। शरणार्थियों का आदान-प्रदान हो रहा था, यहाँ आनेवाले शरणार्थी शिविरों में रखे गए। ऐसी जटिल परिस्थितियों में कमलेश्वर स्वयं उन शरणार्थियों के शिविरों में जाते, उनकी सेवा करते और उनके लिए आवश्यक सामग्री भी दिलाते थे। इस बात पर कमलेश्वर ने स्वयं कहा है कि हमारा ट्रक पहुँचते ही वे आपस में लड़ने लगते थे, पर बाद में हर व्यक्ति का हिस्सा खुद लड़-झगड़ कर दिलवाते थे ... वे मौत का दरिया पार करके आये थे।

प्रत्येक उपन्यासकार युगीन संदर्भों से गुजरता है। इसलिए वह अपनी पृष्ठभूमि, परंपरा तथा परिवेश से जो भी अनुभूतियाँ प्राप्त करता है, वे उसकी संवेदनाओं को तीव्रता प्रदान करती हैं। कमलेश्वर के उपन्यासों में भी विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों को हम देख सकते हैं। कमलेश्वर ने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'लौटै हुए मुसाफिर', 'कितने पाक्स्तिान', 'काली आँधी' आदि राजनीतिक समस्या प्रधान उपन्यास हैं। 'लौटे हुए मुसाफिर' कमलेश्वर का 1961 में प्रकाशित दूसरा और बहुचर्चित उपन्यास है। यह उपन्यास ठीक उसी समय के परिदृश्य का चित्रण है, जब सारे देश में स्वतंत्रता की माँग बढ़ रही थी, देश का विभाजन तय हो गया था, जगह-जगह सांप्रदायिक दंगे एवं मारकाट शुरू हो गयी थी। देश-विभाजन एक ऐसी राजनीतिक घटना साबित हुई थी, जिसका भीषण परिणाम आम आदमी को भुगताना पड़ा था, विशेषकर निम्न मध्यवर्गीय हिन्दू एवं मुसलमानों को। ऐसे में लेखकों ने आस्था एवं विश्वास का आशावादी स्वर उभारकर मानवीय मूल्यों को बनाए रखने का प्रयास किया है। हिन्दू और मुसलमान राजनेताओं के वायदे झूठे साबित हुए तथा लोगों के सपने चूर-चूर हो गए। विभाजन का परिणाम बाहरी रूप में हिंसा, मारकाट, भीषण हत्याकण्ड एवं बलात्कार के रूप में निकला, तो आंतरिक रूप से नफरत, संदेह, धोखा, द्वेष, शंका और अविश्वास के रूप में प्रकट हुआ। कमलेश्वर ने अपने इस उपन्यास में विभाजन के बाहरी परिणामों के साथ-साथ इन्हीं आंतरिक यानी व्यक्ति-व्यक्ति के बीच उत्पन्न भेद-भाव को उभारने का प्रयास किया है।

इस औपन्यासिक कृति के विषय में सुरेश सिन्हा लिखते हैं- 'लौटै हुए मुसाफिर में आस्था, आत्मविश्वास, कर्तव्य परायणता, देशानुराग तथा दायित्व निर्वाह का जो उन्होंने महान संदेश दिया है, वह आज के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसलिए इस पीढ़ी के प्रकाशित उपन्यासों में कमलेश्वर का 'लौटे हुए मुसाफिर' अत्यंत महत्वपूर्ण है। उपन्यास का मुख्य केन्द्र बिंदु निम्नवर्गीय चिकवा बस्ती है। यहाँ कस्बाई जीवन

है, जिसमें प्रत्येक धर्म के लोग बड़े प्यार से रहते हैं। इस कारण यह उपन्यास विषेश उल्लेखनीय हो जाता है।'

उपन्यास का प्रारंभ चिकबों के कस्बे से शुरू होता है, जहाँ हिन्दू-मुसलमान साथ-साथ मिलजुल कर रहते थे। यह कमलेश्वर का ऐसा यथार्थवादी उपन्यास है ,जिसका प्रारंभ स्वतंत्रता- प्राप्ति आंदोलन से शुरू होता है। समस्त भारतवासियों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर भारत को आजाद कराने का बीड़ा उठाया था। सभी भारतवासियों का एकमात्र लक्ष्य यही था कि किसी भी प्रकार अंग्रेजों को भारत से भगाया जाए तथा देश को गुलामी से मुक्त कराया जाए। राजनीतिक गतिविधियों से दूर चिकबों के लोग आपसी सुख-दुख में शामिल होते थे। हिन्दू एवं मुसलमान सभी लोगों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए गांधीजी का पूर्ण सहयोग किया। इसके बाद देश में अनेक संगठनों तथा पार्टियों ने जन्म लिया और आपसी विवाद बढ़ने लगा। हिन्दू-मुसलमानों में भेद समझा जाने लगा। दोनों जातियों में अपनी-अपनी जाति का एहसास बढ़ता गया।'हिन्दू अपने को ज्यादा हिन्दू समझने लगे और मुसलमान अपने को ज्यादा मुसलमान।''

कमलेश्वर ने स्पष्ट रूप से दर्शाया है कि कैसे हिन्दू और मुसलमानों में राजनीतिक चेतना विकसित हो रही थी। राजनीति में सांप्रदायिकता का बारूद भरा जा रहा था तथा धीरे-धीरे पाकिस्तान की माँग बढ़ने लगी। सन् 1945 ई तक आते-आते सब कुछ बदल गया। भाई-भाई की तरह रहने वाले हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे बन गए। संघ के लोग भी बस्ती में अपना शौर्य दिखाने एवं भाषण देने लगे। बस्ती में संघ के अधिकारी आये और भाषण में कहा कि- 'हिन्दू राष्ट्र ने आज अपना तीसरा नेत्र खोला है, वह सब इसमें भस्म हो जो विदेशी है। वीरभोग्या वसुंधराः वीर वही है जो हिन्दू है।'' इस भाषण ने कस्बे के वातावरण में जहर फैला दिया था। सन् 1946 अगस्त 16 के दिन मुसलमानों ने काले झण्डे लेकर जुलूस निकाला और पाकिस्तान की माँग की। देशभर में राजनीतिक एवं सांप्रदायिक दंगे होते रहे।

चिकबों की बस्ती ही कथा का मुख्य केन्द्र है। इस बस्ती में बहुमत मुसलमान हैं। जुम्मन साई रूढ़िवादी एवं कट्टर मुसलमान है तो नसीबन मुसलमान होकर भी सबको समान मानने वाली ममतामयी स्त्री है। वह विधवा थी और छोटे-मोटे काम करके अपने बच्चों का पालन-पोषण करती थी। सत्तार किसी दूसरे बस्ती में रहने वाला था और एक सर्कस कंपनी में काम करता था, अब वह भी इसी कस्बे में आया है। सत्तार सलमा नामक युवती से प्रेम करता है जो अपने पति को छोड़ कर पिता के साथ रहती है। सलमा बस्ती के जनाने अस्पताल में काम करती है। सत्तार और सलमा दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। बस्ती के हिन्दुओं में बच्चन और रतन मुख्य पात्र हैं। बच्चन विधुर है जिसके दो बच्चे हैं। बच्चन की अनुपस्थिति में नसीबन ही बच्चन के बच्चों की देख-भाल करती। रतन साइकिल मरम्मत की दुकान चलाता है। राजनीतिक उथल-पुथल से अनजाने ये लोग अपने सुख-दुख में लीन बडी शांति एवं चैन से रह रहे थे। वहाँ एक दिन अचानक सलमा का पति मकसूद और अलीगढ़ का सियासी कारकून यासीन आ जाता है। मकसूद, यासीन और साई ये तीनों मिल जाते हैं और यहीं से कस्बे में नफरत की आग फैलने लगती है।

जुम्मन साई के नेतृत्व में मस्जिद में मुसलमानों का बैठक होने लगी। मुसलमानों के मन में हिन्दुओं के प्रति, कांग्रेस के प्रति तथा गांधीजी के खिलाफ नफरत की आग फैलाने में मकसूद और यासीन सफल हो जाते हैं। साई भी इस आग को प्रज्वलित करने में अपना योगदान देता रहा। इसके खिलाफ 'संघ' भी हिन्दुओं को जुटाने के काम में लग जाता है। इस प्रकार अफवाहों एवं धोखेबाजी की खबरें फैलाने का नतीजा यह होता है कि कल तक के दोस्त हमसाया हिन्दु-मुसलमान एक-दूसरे को अविश्वास एवं नफरत की नजरों से देखने लगते हैं। अब दोनों जातियों में अपने हिन्दू और मुसलमान होने का एहसास बढ़ता जाता है। साई इस भेद को बढ़ावा देने में भरसक प्रयत्न करता रहता है लेकिन नसीबन, बच्चन, इक्केवान इफ़्तिकार, सत्तार आदि इसका विरोध करते हैं। बच्चन के बच्चों की देखभाल करने से साई और अन्य मुसलमान नसीबन से कुपित होते लेकिन नसीबन उनकी परवाह न करती। सब तरफ सांप्रदायिकता और भेद-भाव की आग जलने लगती है और असंख्य हिन्दू एवं मुसलमान बेघर हो जाते हैं। सामान्य जनता का जीवन दूभर बन गया। सत्तार, सलमा को लेकर पाकिस्तान जाने का निश्चय कर लेता है। सत्तार के मन में मकसूद और यासीन से द्वेष है क्योंकि उसकी बस्ती में आने के बाद ही सलमा उससे मिलना-झुलना बंद कर देती है। सलमा मकसूद के साथ पाकिस्तान जाने का निर्णय कर लेती है।

चिकबों की बस्ती में आजाद हिन्द फौज का प्रभाव पडने लगा। पाकिस्तान का ऐलान हो जाता है। पाकिस्तान की घोषणा सुनकर नसीबन के सिवाय बाकी सभी मुसलमान संतुष्ट हो जाते हैं। नसीबन के मत में पाकिस्तान बनने से बस्तीवालों को कोई फायदा नहीं होगा। नसीबन पूर्ण रूप से मानवीयता युक्त नारी है और दूसरों की भलाई और खुशी की कामना करती है।

देश विभाजन के बाद बस्ती के धनिक मुसलमान पहले पाकिस्तान की ओर जाने लगे। जो मघ्य वर्गीय और गरीब लोग खुशहाल जिन्दगी के नए-नए सपने लेकर पाकिस्तान की ओर रवाना हो गए उनमें से कुछ पाकिस्तान पहुँच ही नहीं पाये, भूख-प्यास से अनेकों की रास्ते में ही तड़प कर मृत्यु हो गयी और कुछ जो पाकिस्तान पहुँचे, उनका भी सपना टूट गया। न उनके पास पहनने के लिए कपड़े थे, न खाने के लिए पर्याप्त भोजन। पूरी बस्ती में केवल नसीबन और साई की ही कोठरी रह गयी।

काफी समय बीत गया। जीवन की नवीन दिशाएँ खुलने लगीं। साई को अपने किए का पछतावा सदा रहता था। सालों बीतने पर भी कोई वापस नहीं आया। इफ्तिकार कभी-कभी समाचार लेकर आया करता था। उस उजड़ी बस्ती में जब पाताल कुआँ खोदने जर्मन कारीगर और अनेक युवा मजदूर आये तो बातों से पता चला कि ये वही बच्चे हैं, जो पाकिस्तान चले गये थे और अब जवान बनकर मजदूरी करने के लिए लौट आये हैं। नसीबन बड़ी खुशी से उनके खाने-पीने का प्रबंध करती है। इन मुसाफिरों के लौट आने से नसीबन के खुशियों का पारावार न था।

'लौटे हुए मुसाफिर' में उजड़ी हुई बस्ती का यह दृश्य-बिंब बस्ती के उदास वातावरण के साथ-साथ वहाँ के निवासियों की हताश मनःस्थिति को भी सजीव करता है। वस्तुतः लौटै हुए मुसाफिर एक अंतहीन विभाजन की करुण त्रासदी है। ऐसी अंतहीन

विभाजन की प्रक्रियाओं और शंकाओं से हम निरंतर घिरते जा रहे हैं। कमलेश्वर के उपन्यासों में स्थितियों को स्पष्ट करने की प्रतिभा खूब है और अपनी शैली को अत्यधिक प्रभावी बनाने का उन्होंने बार-बार प्रयत्न किया है। शैली की यथार्थता, मार्मिकता और अनूठी अभिव्यंजना शक्ति ने इस उपन्यास को पूर्णता प्रदान की है।

संदर्भ :

1. कमलेश्वरः जीवन यथार्थ के शिल्पी, सुधारानी सिन्हा, वाणी प्रकाशन, 2013
2. लौटे हुए मुसाफिरः कमलेश्वर, लोक भारती, इलाहाबाद, 1978
3. मेरी प्रिय कहानियाँः कमलेश्वर, राजपाल एंड सन्स, 1965
4. कमलेश्वरः मधुकर सिंह, शब्दकार प्रकाशन

हिन्दी विभाग
श्री अबिरामी इल्लम, वनप्रस्था रोड
2/179इ2, वडवल्लि, कोयम्बत्तूर-41 तमिलनाडु

डॉ. परशुराम शुक्ल के बाल साहित्य में राष्ट्रीय चेतना

प्रा. आनंद र. बक्षी

बाल- साहित्य के अर्थ की गवेषणा करने पर स्पष्ट होता है कि बच्चों से सम्बन्ध रखने वाला साहित्य ही बाल साहित्य है पर यह ऐसा साहित्य भी होता है जो समाज और देश के भावी स्वरूप की नींव निर्धारित करता है क्योंकि बालक ही देश का भावी निर्माता होता है। इस दृष्टि से बाल साहित्य का अर्थ गाम्भीर्य और भी बढ़ जाता है। राष्ट्रधर्म की भावना को बाल साहित्य में सर्वोपरि महत्व दिया गया है क्योंकि बालकों का मन मस्तिष्क स्थायी रूप से प्रभाव ग्रहण करता है। बाल अवस्था के संस्कार उसको जीवन भर मार्गदर्शन देते हैं। डॉ. शुचिता सेठ ने लिखा है- 'राष्ट्रीयता और देश प्रेम सर्वोपरि तत्व हैं। इनके प्रभाव से देश के लिए व्यक्ति सब कुछ न्यौछावर करने को उद्यत हो जाता है।' स्वामी विवेकानन्द का एक उदाहरण इसी प्रकार का है। जब वे जापान भ्रमण पर गए तो एक जापानी से कहा कि यदि मैं गौतम बुद्ध को अपशब्द कहूँ तो तुम क्या करोगे?' वह व्यक्ति बोला- 'मैं आपका सर धड़ से अलग कर दूँगा।' विवेकानन्द ने कहा- 'और यदि गौतम बुद्ध जापान को अपशब्द कहें तो?' इस पर उस जापानी ने कहा- 'मैं गौतमबुद्ध का सर धड़ से अलग कर दूँगा।' इसका तात्पर्य यह हुआ कि राष्ट्रीयता सर्वोपरि है। राष्ट्र स्वयं में एक धर्म हैं।[1]

स्पष्ट है कि राष्ट्र और राष्ट्रीयता सर्वोपरि हैं। राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना प्रत्येक नागरिक के हृदय में होनी चाहिए। इसकी याद कवि- साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से दिलाते रहते हैं। बच्चों के हृदय में राष्ट्रीयता और मानवता की भावना जागृत और पुष्ट करने के लिए बाल साहित्यकारों ने पर्याप्त मात्रा में बालगीत, कहानी, बाल नाटक तथा बाल उपन्यास लिखे हैं। नवजागरण काल में जब राष्ट्रीय विचारधारा की लहर चल रही थी, अधिकांश कवियों ने राष्ट्रीय गीत लिखकर बच्चों और बड़ों के हृदय में राष्ट्र-रक्षा तथा राष्ट्रीयता के भाव जागृत करने का प्रयास किया है।

डॉ. परशुराम शुक्ल वर्तमान युग के श्रेष्ठ बाल साहित्यकार हैं। आपने बाल साहित्य की सभी विधाओं में लेखनी चलाई है। आपने अपनी रचनाओं में बाल- मनोविज्ञान एवं युवा पीढी को दी जानेवाली शिक्षा का अद्भुत समन्वय किया है। आपकी कहानियाँ, कविताएँ, आलेख समय-समय पर पत्र - पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते है।

राष्ट्रभक्ति और देशप्रेम मूलतः एक ही है। राष्ट्र और देश विभिन्न जातियों, धर्मों और संस्कृतियों के लोगों का संगम होता है। भारतवर्ष एक ऐसा ही विशाल देश है जिसमें अनेकता में एकता और अखण्डता के दर्शन होते हैं। भारत में निवास करने वाले सभी धर्मों, जातियों, संस्कृतियों, संप्रदायों के लोग अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम और भक्ति का भाव रखते हैं। डॉ. शुचिता सेठ ने लिखा है - 'भारत अनेक धर्मों और संस्कृतियों के समन्वय वाला देश है। इसकी राष्ट्रीयता समन्वयवादी विचारधारा वाली है। देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम का तात्पर्य राष्ट्र के सभी निवासियों के प्रति अभेद व्यवहार है। अपने देश की अस्मिता की रक्षा के लिए समय-समय पर देशभक्तों ने क्रान्तियाँ की है। आत्मबलिदान दिये हैं। डॉ. शुक्ल ने अपनी रचनाओं में राष्ट्रीयता और देशभक्ति के प्रेरक भावों का समावेश किया है। भारतीय स्वतंत्रता के पूर्व देशभक्ति के तराने गाए

गए, जिनसे प्रेरणा प्राप्त कर समूचा जनमानस जाग्रत हो गया था, परन्तु आजादी प्राप्त हो जाने के बाद वह जज्बा कुछ कम हो गया।'[2]

डॉ. परशुराम शुक्ल ने बच्चों को राष्ट्रप्रेम और देशभक्ति की शिक्षा दिए जाने पर बल दिया है। डॉ. शुक्ल ने देशभक्ति और देशप्रेम के नाम पर व्यापार करने वाले राजनेताओं की कड़ी निन्दा की है। 'बाल सतसई' पुस्तक में डॉ. शुक्ल ने लिखा है-

'बचपन से ही दीजिए, देशभक्ति का ज्ञान।/ देशभक्त बच्चे अगर, होगा देश महान।।
बच्चों के आर्दश हैं, बापू, नेहरू, बोस।/देशप्रेम सम्मुख जिन्हें, रहा न कुछ भी होश।।
जहाँ राष्ट्रभाषा नहीं, गूँगा है वह देश।/डूब मरो सब शर्म से, बच्चों का आदेश।।'[3]

इन दोहों में राष्ट्रप्रेम और देशभक्ति की प्रेरणा दी गई है। महात्मा गाँधी की जीवन शैली राष्ट्रीयता का प्रतीक बन गई है। लगभग सभी बाल साहित्यकारों ने राष्ट्र निर्माण की प्रेरणा देने के लिए बाल साहित्य में गाँधी सहित तमाम राष्ट्र निर्माताओं को लक्ष्य कर कविताएँ और गीत लिखे हैं। डॉ. परशुराम शुक्ल ने देश का मान बढ़ाने वाले कवियों, कलाकारों और देशभक्तों को अपने बाल गीतों में स्थान दिया है-

'भारत माता के चरणों में, शीश झुकाते हैं।।
शस्य श्यामला भूमि हमारी, देव भूमि कहलाती है।
इसकी महिमा गाते गाते, जिह्वा नहीं अघाती है।
धर्म अनेक दिये हों जिसने, हम उसके गुण गाते हैं। शीश...
ईश्वर ने भी मानव बनकर, इस धरती पर जन्म लिया।
कंस और रावण से पापी, दुष्टों का संहार किया।
राम, कृष्ण, गौतम, नानक सब, भारत के गुण गाते हैं। शीश...
कालिदास से लेकर मुझ तक, सबने इसका रूप सजाया।
लेकर नाम शारदा माँ का, भारत माँ का मान बढ़ाया।
सूर और तुलसी से कवि भी, वैभव गीत सुनाते हैं। शीश...
वीर भगतसिंह विस्मिल जैसे, भारत माता के सपूत हैं।
सीमाओं पर लड़ने वाले, सब भारत के देवदूत हैं।
प्राणों की बलि देकर अपने अपना ध्वज फहराते हैं।
भारत माता के चरणों में, शीश झुकाते है।'[4]

वर्तमान युग प्रजातंत्र का युग है। धीरे- धीरे समाज और राजनीति के मानदण्ड बदल रहे हैं, परन्तु बच्चे राष्ट्र के जिस स्वरूप को प्रेम करते हैं, उसकी एक झलक एक गीत में इस प्रकार देखने को मिलती है -

'सब कुछ करने की आजादी,/ इनको नया विधान चाहिए।/
बदल सके जो इनकी किस्मत,/ इनको वह भगवान चाहिए।
घर-घर बच्चों की हो पूजा,/ऐसा हिन्दुस्तान चाहिए।'[5]

डॉ. परशुराम शुक्ल ने पद्य एवं गद्य दोनों ही विधाओं में लिखी गई रचनाओं में राष्ट्रभक्ति और देशप्रेम की प्रेरणा बालकों को दी है। इनकी बाल कहानियों में भी राष्ट्रप्रेम और देश भक्ति की चेतना के प्रसंग हैं। मोघिया लोक कथाएँ की जीवन डोरी लोक कथा में अपने देश और अपनी भूमि के प्रति प्रेम और भक्ति का भाव दर्शाया गया

है। भारतीय वीरांगनाएँ में संग्रहीत जीवनीपरक कथाओं में बत्तीस वीर नारियों के चरित्र चित्रित किए गए हैं। इन वीरांगनाओं के बलिदानी चरित्रों से प्रेरणा मिलती है कि पुरुष ही नहीं बल्कि नारियों के हृदय में भी राष्ट्रप्रेम तथा देशभक्ति की भावना होती है। डॉ. शुक्ल ने भारतीय वीरांगनाएँ में वीरांगना पद्मा से लेकर महारानी लक्ष्मीबाई तक के जीवन चरित्र राष्ट्रप्रेम तथा देशभक्ति से परिपूर्ण बतलाए है तथा देशभक्त नारियों को राष्ट्र के लिए समर्पित भावनावाला प्रदर्शित किया है। राष्ट्र प्रेम और देशभक्ति की प्रेरणावाला यह बाल साहित्य बच्चों को देश के लिए समर्पित नागरिक बनने की प्रेरणा देता है। डॉ. शुक्ल के बाल साहित्य में राष्ट्र के प्रति भक्ति का भाव प्रबल है।

संदर्भ :

1. समकालीन हिन्दी बाल साहित्य : डॉ. शुचिता सेठ, अंकित पब्लिकेशंस, जयपुर, 2014, पृष्ठ 238
2. वही, पृष्ठ 238, 239.
3. बाल सतसई, डॉ. परशुराम शुक्ल, दोहा क्रं.482,484,486, नमन प्रकाशन नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 489
4. सूरज पाना है, डॉ. परशुराम शुक्ल, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 2012 पृष्ठ 18
5. मेरा रोबो बडा निराला, डॉ. परशुराम शुक्ल, पाण्डुलिपि, पृष्ठ 13

हिन्दी विभाग, कला, विज्ञान एवं वाणिज्य
महाविद्यालय, चिखलदरा

21वीं सदी के हिंदी बाल साहित्य की कविता में राष्ट्रीय चेतना

डॉ. पंडित बन्ने
डी. लिट्

बाल साहित्यकारों ने देशभक्ति एवं राष्ट्रीय चेतना के गीत लिखे जिससे बच्चों के मन में देशप्रेम की भावना बलवती हो, देशप्रेम की भावना बलवती रहे। देशप्रेम की भावना को जाग्रत रखने के लिए बाल साहित्यकारों ने राष्ट्रभक्ति से परिपूर्ण बाल-गीतों की रचना की। राष्ट्रीय पशु- पक्षी, पुष्प, ध्वज एवं राष्ट्रीय चिह्नों पर जोश एवं उत्साह भरने वाली कविताएँ लिखी गईं जिससे बच्चों में देश-प्रेम की भावना सदैव बलवती रहे। इस देशप्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना की बाल कविताओं का सृजन अनेक साहित्यकारों ने किया, जिनमें मैथिलीशरण गुप्त से लेकर डॉ. परशुराम शुक्ल, डॉ. गणेश दत्त सारस्वत, डॉ. चक्रधर नलिन, भानुदत्त त्रिपाठी, भगवती प्रसाद गौतम, डॉ. प्रसाद, डॉ. हरीश निगम, सोहनलाल द्विवेदी, कृष्ण कमल, डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, डॉ. प्रकाश मनु, डॉ. गोपालसिंह शेष, बलबीर सिंह रंग, रामनिरंजन ठिमाया, घमण्डीलाल अग्रवाल, राजगोस्वामी आदि प्रमुख हैं। इन साहित्यकारों ने बालगीतों का सृजन कर बचपन से ही बालकों के अंदर देशप्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना भरने का प्रयास किया है, जिससे बालकों में देश के प्रति सच्ची श्रद्धा उत्पन्न हो सके। राष्ट्र के हित के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर करने में भी वे न हिचकिचाएँ और हँसते-हँसते देश के लिए प्राणों का बलिदान कर शहीद हो जाएँ।

तिरंगा भारत का राष्ट्रीय ध्वज है। तिरंगे में केसरिया रंग बलिदन का प्रतीक है, हरा रंग खुशहाली और सुख समद्धि का प्रतीक है एवं उसमें 24 तीलियों वाला अशोक चक्र देश की एकता और प्रगति का प्रतीक है। यह तिरंगा राष्ट्रीय त्यौहार गणतंत्र दिवस एवं स्वतंत्रता दिवस के शुभ अवसरों पर प्रत्येक विद्यालय एवं महाविद्यालयों तथा शासकीय भवन पर लहराया जाता है जिसे देखकर प्रत्येक बच्चे के मन में देश के प्रति श्रद्धा एवं राष्ट्रीय चेतना का संचार होता है।

सोहनलाल द्विवेदी जी अपनी बाल कविता 'हम नन्हें-नन्हें बच्चे हैं' में बच्चों में राष्ट्रीय ध्वज फहराने के लिए हर मुश्किल से लड़ने और आगे बढ़ने को तैयार रहने की प्रेरणा देते हैं। वे कहते हैं -

'हम नन्हें-नन्हें बच्चे हैं, / नादान उमर के बच्चे हैं /
पर अपनी धुन के सच्चे हैं / जननी की जय जय गाएँगे /
भारत की ध्वजा उड़ाएँगे / अपना पथ कभी न छोड़ेगे /
अपना प्रण कभी न तोड़गे।'[1]

जब बालक पैदा होता है तो इसी धरती पर रहकर हँसता, खेलता, कूदता है। सच्चे अर्थों में धरती हमारी माँ है। यही हमारे माता-पिता हमें सिखाते हैं। धरती पर हमने जन्म लिया है। उस वतन को हम राष्ट्रीय चेतना जागृत करने एवं देश के प्रति अपना अपार प्रेम व श्रद्धा भाव बनाये रखने हेतु अनेक कवियों एवं साहित्यकारों ने अपनी लेखनी

से बालगीत लिखकर बालकों एवं आम जनता में देशप्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना का संचार किया।

उषा यादव ने अपनी बाल कविता 'माँ' और 'मातृभूमि' का बड़ा ही सजीव चित्रण कर दिखाया है। एक माँ जन्म देनेवाली होती है तो दूसरी माँ पालने वाली होती है, जिसे मातृभूमि कहते हैं। उन्होंने लिखा है -

'तुमको अपनी माँ प्यारी है / माँ को भी तुम प्यारे हो /
उसके दिल के टुकड़े हो तुम / सूरज चाँद सितारे हो /
पर माँ से भी बढ़कर है जो / मातृभूमि है वह प्यारी।'[2]

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश' ने 'वही हमारा देश' कविता में भारत माता की रक्षा में पर्वतराज हिमालय सच्चे वीर के समान सीना ताने खड़ा है एवं जिसके गौरव का गान गंगा, गोदावरी करती हैं। कवि लिखता है -

'जिसको कहते भारत माता / वही हमारा देश / जिसे स्वर्ग भी शीश झुकाता
वह है प्यारा देश / खड़ा हिमालय सीना ताने / सच्चे वीर समान /
गंगा, गोदावरी, नर्मदा/ करती गौरव गान/ नहीं प्रलय से भी जो हारा /
वही हमारा देश।'[3]

हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी है। अनेक साहित्यकारों ने बाल कविताएँ लिखीं। हिंदी एवं हिंदीतर साहित्यकारों ने राष्ट्रभाषा के प्रति प्रेम व्यक्त किया है। डॉ. शकुंतला कालरा ने अपनी कविता राष्ट्रभाषा हिंदी में लिखा है। जैसे

'राष्ट्र हमारा भारत प्यारा / हम बहु भाषा-भाषी हैं / अलग प्रांत हो चाहे अपने /
पर हम भारतवासी हैं / चाहे बोले कोई बंगला / और असमिया उड़िया जी /
तमिल तेलुगु कन्नड़ चाहे / बोले कुछ मलयालम जी / अपनी गुजराती पंजाबी /
और मराठी सिंधी है / अलग-अलग भाषाएँ कितनी / राष्ट्र की भाषा हिंदी है
संस्कृत भाषा सबकी जननी / सब भाषाएँ बहनें हैं /
सीखें हिंदी और सिखाएँ / सदा राष्ट्र की शान बढ़ायें।'[4]

राष्ट्रीय गान को बालगीत के माध्यम से प्रस्तुत कर बालक में 'जन गण मन' राष्ट्रीय गान के महत्व को बढ़ा दिया है। राजगोस्वामी कृत 'चंद्रयान से जाएँगे' कविता में -

आज वतन की रक्षा करने लड़ने जाऊँगा /
जन-गण-मन अधिनायक जय हे, जय हे गाऊँगा / कितनी भी दुर्गम हों राहें /
ना घबराऊँगा / माँ मुझको बन्दूक दिला दे / धूम मचाऊँगा
मातृभूमि की बल वेदी पर शीश चढ़ाऊँगा।'[5]

अनेकता में एकता भारत की विशेषता है। हमारा देश अनेक जाति, धर्म, संप्रदाय, रीति-रिवाज, परंपराओं वेषभूषा एवं रहन-सहन वाला देश है। हमारे देश के महान साहित्यकारों ने भारत की अनेकता एवं अखंडता बनाये रखने के लिए बाल गीतों की रचना की। डॉ. परशुराम शुक्ल ने अनेक देशप्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना के गीत लिखकर बच्चों में राष्ट्रप्रेम की भावना जाग्रत की है। 'सबको अपने गले लगाओं' कविता में इसी राष्ट्रीय एकता पर बल दिया है। जैसे -

'हिंदू मुस्लिम, सिख, ईसाई / ठाकुर, पंडित, हरिजन भाई / बैर छोड़कर प्रीति

बढ़ाओ,/ सबको अपने गले लगाओ, / दीन, दुःखी, पीड़ित, निर्धन में,/ बूढ़े, रोगी, निर्बल जन में / जीवन का उत्साह जगाओ / सबको अपने गले लगाओ।'[6]

देश को स्वतंत्र कराने, मातृभूमि को गुलामी की जंजीरों से आजाद कराने, हमारे अमर शहीद, सुखदेव, राजगुरु, भगतसिंह, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, चंद्रशेखर आजाद, महारानी लक्ष्मीबाई, झलकारी बाई, तात्या टोपे आदि महान क्रांतिकारियों एवं वीर शहीदों के बल पर इस गुलाम देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। डॉ. परशुराम शुक्ल ने वीरों के प्रति भारत के रखवाले' नामक कविता में बालकों के मन में उत्साह भरते हुए लिखा है -

'ओ! भारत के वीर सिपाही / कभी न मत घबराना / पर्वत नदियाँ और समंदर /
पार सभी कर जाना / जब दुश्मन आते सीमा पर / उसको मार भगाते।'[7]

भारत को गुलामी से आजाद करवाने में वीर शहीदों, क्रांतिकारियों का योगदान है। देश के महापुरुष म. गांधी, नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, राजीव गांधी आदि नेताओं ने भी योगदान देकर इस देश को एक नई दिशा दी। मुख्तार अहमद अंसारी जी ने अपनी कविता 'बापू तुम आ जाओ ना' कविता में देश में व्याप्त चारों ओर हिंसा अन्याय व भ्रष्टाचार पर प्रकाश डालकर देश के प्रति बच्चों में जागृति पैदा की है। उन्होंने लिखा है -

हो रहा पतन अहिंसा का / बढ़ रहा देश में भ्रष्टाचार / न्याय की स्थिति डांवाडोल
फैला जाता है व्यभिचार / फिर से राह दिखाओ ना / बापू तुम आ जाओ ना /
जाति धर्म पर जाना / सीख गए हैं भारतवासी / मार रहे हैं अपना भाई
जेल मिले या चाहे फांसी / आकर के समझाओ ना / बापू तुम आ जाओ ना।'[8]

सक्सेना जी ने देश की यथार्थ स्थिति पर नजर डालते हुए लोगों की धारणा के बारे में चर्चा की है। ऊँच-नीच जाति के चक्कर में एक जुट नहीं हो पाते और जिसका फायदा हमारे दुश्मन उठाते हैं। कवि कहते हैं -

'बच्चों का संसार अलग हो / आपस में भी प्यार अलग हो /
कई पीढ़ियाँ राह दिखाईं / बाल सुलभ, मन, बालभाव से /
निर्मल तन, निर्मल मन छाँटो / मिला दिलों की दूरी पाटो।'[9]

सक्सेना जी अपने बालकाव्य के माध्यम से मनोरंजन के साथ बच्चों के मन में देश के प्रति प्रेम की भावना भी भरते हैं। बालक ही हमारे भारत का भविष्य हैं जो पढ़-लिखकर अलग-अलग क्षेत्र में जाकर हमारे भारत देश का नाम रोशन करेंगे। कवि कहते हैं-

'साथ अहिंसा प्रेम देश में / सिर्फ तुम्हारे जिम्मे लाना /
भारत की समृद्ध संस्कृति / बच्चों अब है तुम्हें बचाना /
बापू के सारे सपने अब / खींच धरा पर तुमने लाना।'[10]

बचपन में राष्ट्रीय गान जन-गण-मन, राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा, राष्ट्रीय पर्व-स्वतंत्रता दिवस व गणतंत्र दिवस पर अनेक कवियों ने कविताओं का सृजन कर बाल-मन को देश प्रेम की ओर आकर्षित किया है। राष्ट्रीय प्रतीकों के माध्यम से बालकों में अपने राष्ट्र के मान व सम्मान के प्रति सदैव सजगता बनी रहे। परशुराम शुक्ल बालकों में राष्ट्रीय प्रतीक मोर के प्रति प्रेम जाग्रत करने के लिए अपनी कविता में कहते हैं -

'राष्ट्रीय पक्षी भारत का / मैं मयूर कहलाता / सुंदर पंखों के कारण मैं /
जग में जाना जाता / दाने, तिनके, की पतंगे।'[11]

कवि ने आपस के बैर भाव को खत्म कर नए सिरे से भारत का निर्माण करने का सुझाव दिया है। एक नया संसार बसाओं अपने सपनों को धरती पर लाओ, जैसे देश का निर्माण करना चाहते हो, वैसा संसार बनाओं, जो चीजें बुरी हैं उसे एक ठीक तरह करो, सिर्फ अच्छी-अच्छी चीजें ही तुम लेकर आओ।

राजकिशोर जी ने बालकाव्य के माध्यम से बच्चों को शांति का संदेश दिया है, कवि ने बच्चों को गाँधी जी के तीनों बंदर का आधार बनाकर संदेश दिया है। जब समाज में सत्य, शांति और सुख हमेशा रहेगा तो झगड़े का कारण ही उत्पन्न नहीं होगा। कवि कहते हैं-

'गांधी जी के तीनों बंदर / बैठे बाल पार्क के अंदर /
सुखकर जीवन को जीने के /बाँट रहे हैं सबको मंतर /
बापू ने यह सूत्र सुझाए / बंदर तीन प्रतीक बनाए
सत्य, शांति सुख रहेगा हमेशा / सद्गुण तीन सटीक सिखाएँ।'[12]

कवि ने बालकाव्य के माध्यम से बच्चों को सफलता का संदेश दिया है।

मनुष्य जिस देश में रहता है, वह उसका अंश होता है। और देश के लिए प्रत्येक प्रकार के कष्ट उठाना उसका कर्तव्य बनता है। देशवासियों के मन में राष्ट्रीयता के प्रति प्रेम और अपनेपन की भावना को जाग्रत करना होता है, जिसमें देश की स्वतंत्रता, एकता, अखंडता को प्रमुख माना जाता है, जिसके लिए बलिदान की आवश्यकता का प्रतिपादन किया जाता है। राष्ट्र के प्रति राष्ट्र के निवासियों की विशाल और उदात्त मानसिकता ही राष्ट्रीय चेतना है। भारतीय साहित्य में भारत की राष्ट्रीय चेतना का उद्भव 19वीं शती के नवजागरण से शुरू होता है। राजाराम राममोहन राय, केशवचंद्र, दयानंद सरस्वती, विवेकानंद आदि सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत थे।

संदर्भ :

1. हम नन्हें-नन्हें बच्चे हैं, बचपन एक समंदर सोहनलाल द्विवेदी, सं. घमण्डीलाल अग्रवाल, पृ. 173
2. ऊषा यादव : माँ और मातृभूमि, देशप्रेम के बालगीत, सं. घमण्डीलाल अग्रवाल, पृ. 31
3. वही हमारा देश, देश प्रेम के बरालगीत-भानुदत्त मधुरेश, सं. घमण्डीलाल अग्रवाल, पृ. 141
4. अजय जगमेजय पंद्रह अगस्त, देश प्रेम के बालगीत, सं. घमण्डीलाल अग्रवाल, पृ. 12
5. रामनिरंजन ठिमाऊँ : नमक शहीदों बारम्बार, देशप्रेम के बालगीत, सं. धमण्डीलाल अग्रवाल, पृ. 139
6. अवध किशोर सक्सेना- बापू का देश, तिरंगा, पृ. 84
7. साहित्य प्रभा-सं. डॉ. चंद्रसिंह तोमर 'मयंक', अक्टूबर-दिसंबर, 2016, पृ. 9
8. पद कथायें कभी सिखाए कभी हंसाये-डॉ. राजकिशोर सक्सेना, पृ. 52

9. मयूर मंगल ग्रह जायेंगे-डॉ. परशुराम शुक्ल, पृ. 78
10. जय गणतंत्र विधान-देशप्रेम के बालगीत, सं. घमण्डीलाल अग्रवाल, पृ. 202
11. ममता बालचंद्रिका- डॉ. राजकिशोर सक्सेना, पृ. 76
12. साहित्य प्रभा - सं. चंद्रसिंह तोमर 'मयंक', अक्टूबर-दिसंबर, 2016, पृ. 14

शोध-निर्देशक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल)
तह. करमाला, जि. सोलापुर (महाराष्ट्र)

अज्ञेय के काव्य साहित्य में चित्रित राष्ट्रीय जीवन

प्रा. डॉ. शिवाजी उत्तम चवरे

अज्ञेय एक चिंतक कवि हैं। उनकी कविता में हमें विचार और चिंतन के वे बिंदु मिलते हैं जिनसे आज का व्यक्ति प्रभावित हो रहा है। आधुनिक कवि होने के नाते अज्ञेय अपने समय के उन सवालों का सामना करते हैं जो उनके रचना कर्म को प्रभावित करते हैं। अज्ञेय व्यक्ति को मूल्यों का द्दष्टा और प्रतिष्ठापक मानते हुए भी व्यक्ति और समाज का संबंध परस्पर निर्भरता का मानते हैं। वे मानते हैं कि समाज और व्यक्ति की परस्पर निर्भरता भी उन मूल्यों में से एक है जिसका सृष्टा और प्रतिष्ठा मानव है। यह परस्परता विवेक पर आश्रित है और स्वतंत्रता के आधारभूत मूल्य की रक्षा और उसके विकास के लिए भी वांछनीय है। 'अज्ञेय यह मानते हैं कि विज्ञान के द्वारा नयी द्दष्टि मिलने पर मानव की मान्यताओं में बदलाव आया है। अज्ञेय कहते हैं कि वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव को नयी द्दष्टि दी है, पर उसके कारण मान्यताओं में और उनके आधारों में जो परिवर्तन आते हैं उन्हें हम पूर्णतया स्वीकार नहीं कर सके हैं, जीवन और आचार में आत्मसात करना तो दूर की बात है। ज्ञान और आचार की अवस्थाओं का यह विपर्यय अनेक समस्याएँ और संघर्ष उत्पन्न करता है जो आधुनिक जीवन का एक मूलभूत सत्य है।'

अज्ञेय ने सामाजिक परिवर्तन से कविता के रिश्ते को जोड़ते हुए कहा है कि 'भारी सामाजिक परिवर्तनों के साथ काव्य की वस्तु में असाधारण विस्तार आया। कवि ने नये सत्य देखे, नये व्यक्ति-सत्य भी, और उनको कहने के लिए उसे भाषा को नये अर्थ देने की आवश्यकता हुई। आवश्यकता काव्य क्षेत्र में भी प्रयोग की जननी है और जिन-जिन कवियों ने अनुभूति के नये सत्यों की अभिव्यक्ति करनी चाही सभी ने नये प्रयोग किये। ये प्रयोग अनेक दिशाओं में हुए।' आज के परिवेश का लेखक निरंतर जटिल होते जा रहे भावबोध को बोधगम्य बनाना चाहता है। वह कविता को बहुजन संवेद्य बनाना चाहता है। नए सत्य को संवेद्य बनाने के लिए प्रयोग की यह एक महत्वपूर्ण दिशा है जिसे आधुनिक हिंदी कविता में सबसे पहले अज्ञेय ने ही शिद्दत से महसूस किया और अपने पूरे साहित्य में प्रयोग की इस दिशा को एक आकार दिया।

शाश्वत सत्य एवं आस्था : अज्ञेय की कविता में भारतीय परंपरा के प्रमुख स्वर दिखाई देते हैं लेकिन अज्ञेय के परंपरा के उन स्वरों को रूढ़िवादी ढंग से स्वीकार नहीं किया है बल्कि उन्होंने परंपरा के सभी स्वरों की जांच-पड़ताल की है। ऐसा करके उन्होंने भारतीय परंपरा को प्रमाणित किया है, उसकी प्रासंगिकता को सिद्ध किया है। अज्ञेय परंपरा के प्रत्येक स्वर को प्रयोग की कसौटी पर कसकर देखते हैं। सत्य भी अज्ञेय के लिए जीवन और परिवेश से जुडकर ही परिभाषित होता है। जीवन और मृत्यु शाश्वत सत्य हैं, इसे नकारा नहीं जा सकता। भारतीय परंपरा में सत्य को बहुत महत्व दिया गया। अज्ञेय तो शाश्वत सत्य के आलोक के एक क्षण के लिए भी संपृक्त होकर अपने को विभोर हुआ पाते हैं। वे कहते हैं - हमारे पाये सत्य के मसीहा तो हमारे मरते ही, बंधुआप बन जायेंगे असल में सच तो सार्वभौम व्यवस्था का अंश है। इस अंश को युगानुरूप अपनी साधना से जान पाते हैं। मूल्यों के बदलते रहने पर भी सत्य शाश्वत

का अंश है। यह व्यक्ति से परे है और वैयक्तिक प्रभावों अथवा संघर्ष और समय की अवस्थाओं से अप्रभावित रहता है। इन सारी बातों का संबंध बा 'अभिव्यक्तियों से है, आंतरिक वास्तविकता से नहीं। विश्वास, सम्पत्तियाँ, सिद्धांत सभी अस्थायी और परिवर्तनशील है तथा उनके मूल्य बदलते रहते हैं। इसके विपरीत सत्य शाश्वत और अपरिवर्तनीय है।' भारतीय परंपरा का स्वर जीवन के प्रति आस्थावादी है। अज्ञेय में आस्था और विश्वास सर्जनात्मक पद्धति है। भारतीय परंपरा में आत्मा की परिशुद्धि के लिए जीवन के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण ही अपनाया गया है। अज्ञेय भी आस्था और विश्वास के कवि हैं। वह कहते हैं कि -

अभी न हरो, अच्छी आत्मा, / मैं हूँ, तुम हो,/ और अभी मेरी आस्था है।

अज्ञेय भारतीय परंपरा के इस आस्था के स्वर को आज के परिवेश में महत्वपूर्ण मानते हैं, लेकिन अज्ञेय की आस्था अंधविश्वास नहीं है। अज्ञेय के लिए आस्था व्यक्ति को निरंतर उठते रहने की शक्ति देती है।

जीवन और मृत्यु : अज्ञेय मृत्यु को भी जीवन से जोड़कर देखते हैं। वह जानते हैं कि सब कुछ मरणधर्मा है लेकिन यह कोई भय का कारण नहीं बनता। अज्ञेय की यह दृष्टि भी भारतीय चिंतन की परंपरा से जुडी हुई है। हमारे यहाँ मृत्यु जीवन का उच्च स्तर है, जन्मांतरवाद है। जीवन जहाँ मरने के लिए है वहीं क्रियाशील होने के लिए भी है। मृत्यु और जीवन हमारे यहाँ अनंत काल से समझने के विषय रहे हैं और इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मरण का धर्म ही जीवन का स्रोत है, यही अज्ञेय भी मानते हैं और अपनी कविता में कहते हैं -

सदियों से मैंने बस एक सीख पायी है
जो मरण-धर्मा हैं वे ही जीवनदायी हैं।'

अज्ञेय मृत्यु और जीवन को पश्चिमी दृष्टि से नहीं समझना चाहते वह उसे भारतीय दृष्टि से समझना चाहते हैं, अपनी कविता में उन्होंने ऐसा ही किया है।

मनोविज्ञान : अज्ञेय की कविता मनोविज्ञान का सहारा लेकर मानव मन के रहस्यों को भी टटोलती है और मनोविज्ञान एक आधुनिक मुहावरा है। इस आधुनिक मुहावरे का प्रयोग अज्ञेय ने अपनी कविताओं में किया है। अज्ञेय का रहस्यवाद मनोविज्ञान पर आधारित है। मानव मन की मूल प्रवृत्ति के कारण ही कवि को रात घेरती है, कभी दिन टेरता है। मन कब क्या बोलता है कवि यह जानना चाहता है - अज्ञेय कहते हैं -

'कभी रात मुझे घेरती है / कभी मैं दिन को टेरता हूँ /
कभी एक प्रभा मुझे हेरती है,/ कभी मैं प्रकाश-कण बिखेरता हूँ /
कैसे पहचानूं कब प्राण-स्व मुखर है, / कब मन बोलता है।'

यहाँ कवि मन के बोलने को सुनना चाहता है, प्राणों के स्वरों को सुनना चाहता है। यह एक रहस्यपूर्ण स्थिति है पर आध्यात्मिक नहीं है। अज्ञेय सृजन के मूल में मानव की मूल प्रवृत्तियों का बहुत बड़ा हाथ मानते हैं क्योंकि मनोविज्ञान ने इस युग के सभी चिंतक और कवियों को अपनी अवधारणा से प्रभावित किया है। आधुनिक कवि और चिंतक मनोविज्ञान से रस ग्रहण करके सुंदर और शिव काव्य प्रदान कर सकता है। पश्चिम में मनोविज्ञान की अवचेतना की अवधारणा के कारण ऐसे साहित्य का जन्म

हुआ जिसमें कुंठा, संत्रास, नग्नता और अतिशय कुरूपता थी। यद्यपि ये मानव जीवन के सत्य हैं लेकिन कहीं-न-कहीं मानव जीवन के शिव और सुंदर रूप पर हावी हो बैठते हैं। इसलिए अज्ञेय कवि से कहते हैं कि 'गहरे न जाना कहीं, /आंचल बचाना सदा, / दामन हमेशा पाक रखना पंकज-सा पंक में, / कंज-पत्र में सलिल-सा, तुहिन की बूंद में/ प्रकंप हेम-शिशु-सा असंपृक्त रहना। यहाँ हम अज्ञेय को अवचेतन की अवधारणा का मानव जीवन को शिव और सुंदर बनाने के लिए प्रयोग करता देखते हैं। इस प्रकार अज्ञेय एक प्रयोगशील मानसिकता के कवि सिद्ध होते हैं जो पूर्ववर्ती जातिगत अनुभवों को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं करते, परंपरा के प्रति अज्ञेय का सदैव ही इस प्रकार का प्रयोगशील दृष्टिकोण रहा।

परंपरा के साथ जुडाव : अज्ञेय परंपरा का अंधानुकरण नहीं करते, वह तो परंपरा के उस तेजोमय प्रभापुंज पर अपना ध्यान केंद्रित करना चाहते हैं जिससे कवि का अनुभव आलोकित हो उठे। जिससे अनुभव के नये अंकुर फूटें और नये कवि का अनुभव रूपायित हो सकें। अज्ञेय कहते हैं -

मेरी खोज / नहीं थी उस मिट्टी की / जिसको जब चाहूं मैं रौंदू : मेरी आँखें/
उलझी थीं उस तेजोमय प्रभा पुंज से/जिससे झरता कण-कण उस मिट्टी को/
कर देता था कभी स्वर्ण तो कभी राख,/ कभी जीवन तो कभी जीव्य,
अनुक्षण नव-नव अंकुर स्फोटिय, नव रूपायित।'

अज्ञेय स्वयं अपनी परंपरा के साथ प्रयोग करते रहे हैं और परंपरा के रूप को आकार देकर वह आगे बढ़ते रहे हैं। वह चाहते हैं कि आनेवाली पीढ़ी दोबारा से फिर नये संदर्भ में उसकी जाँच-पड़ताल करे। परंपरा को जाँचने-परखने का भी एक दर्प होता है। यह दर्प स्फीत विजय के उल्लास का और सामर्थ्य का भाव होता है। अज्ञेय के पूरे चिंतन में हमें यह दर्प दिखाई दे सकता है और अज्ञेय नये कवि में भी इस दर्प की अपेक्षा करते हैं। अज्ञेय नये कवि को एक तो परंपरा के आलोक पुंज से जुड़ाने की सलाह देते हैं जिससे प्राचीन अनुभव से पथ-प्रदर्शन हो, एक रास्ता दिखाई दे, लेकिन वहीं उसे सावधान भी करते हैं कि पथ पर चलते समय चौकस होकर चलें। अज्ञेय के अनुसार परंपरा बालू की लिखत के समान है, जिसे परिस्थितियों का प्रवाह कभी भी मिटा सकता है और उसकी जगह नयी लिखत को स्थापित कर सकता है। इसलिए अज्ञेय नये कवि से कहते हैं कि 'बालू के इस अनुभव के संशोधन में ही नये अनुभव का जन्म संभव है और क्योंकि नया कवि नये अनुभव का जन्मदाता होता है और अपनी परंपरा का अनुसंधाता होता है। इसलिए वह अज्ञेय की दृष्टि में 'जयि युगचेता, पथ-प्रवर्तक' होगा। जब परंपरा कवि की चेतना का विकास करती है तो अज्ञेय इसका श्रेय भी परंपरा को ही देना चाहते हैं। अज्ञेय उन सबको श्रेय देते हैं जो परंपरा को लगातार विकसित करते रहे हैं।

प्रयोगशील मानसिकता : यदि अज्ञेय प्रयोगशील मानसिकता के न होते तो वह परंपरा को, अतीत को ज्यों का त्यों स्वीकार करने की बात करते। परंतु अज्ञेय परंपरा और आधुनिकता के बीच सामंजस्य खोजने की बात करते हैं। वह परंपरा और नवीनता दोनों के साथ प्रयोग करते हैं और जो मानव जीवन के लिए सार्थक, शक्तिदायी है, उसे स्वीकार करना चाहते हैं। अज्ञेय कहते हैं -

सब खेतों में / लीकें पड़ी हुई हैं / (डाल गये हैं लोग)/
जिन्हें गोड़ता है समाज : / उन लीकों की पूजा होती है।'

अज्ञेय के अनुसार परंपरा का एक रूप यह भी है, जहाँ पुरातनता मात्र की पूजा होती है। परंतु वे मानते हैं कि पुरानी लीकों पर ही चलते रहने से नई लीकें नहीं बन पायेंगी। अज्ञेय का इस ढंग से सोचना उनकी प्रयोगशील मानसिकता का परिचायक है। प्रयोगशील मस्तिष्क का व्यक्ति ही परंपरा की जमीन को दोबारा अपने ढंग से, अपने समय के अनुसार तोड़ता है। यह दृष्टिकोण परंपरा के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। हिंदी साहित्य के इतिहास में 'नई कविता' का विरोध कम नहीं हुआ क्योंकि वह अपनी पुरानी काव्य-परंपरा के साथ एक नया प्रयोग था। प्रयोगशील मानसिकता के कारण ही अज्ञेय को भी विरोधों का सामना करना पड़ा, भले ही बाद में उनके प्रयोगों को स्वीकृति मिल गयी।

समर्पण का भाव : अज्ञेय में अपनी परंपरा के प्रति समर्पण का भाव है। अपनी काव्य परंपरा के सम्मुख अपने अहं से मुक्ति का प्रयास है। इस विषय में अज्ञेय का कहना है कि हमारी प्राचीन काव्य परंपरा में अपने अहं को विलय करके लिखने की प्रथा थी। आधुनिक कविता की विशेषता यह है कि वह कवि के व्यक्तित्व के साथ अधिकाधिक बंधी हुई होती जा रही है। अज्ञेय का 'मैं, सृजन में जलकर स्वयं को सफल मानता है। रामविलास शर्मा ने लिखा है 'अज्ञेय अपने सीमित अहं की शक्ति को जोड़ देना चाहते हैं।' यानी अज्ञेय का अहं परंपरावादी उस असीम शक्ति के प्रति समर्पित होना चाहता है जो सृजना का स्रोत है लेकिन परंपरा में निहित जो प्रतिगामी तत्व है, वहाँ अज्ञेय का अहं तना हुआ विद्रोही मुद्रा में दिखाई देता है। परंतु अज्ञेय का अहं अभिमान और अहंकार का रूप धारण नहीं करता। वह मानते हैं कि कवि विगत युगों में जो कुछ कहा जा चुका है, उस सुख का आविष्कार ही करता है यानी अपनी परंपरा का ही शोध करता है। अपने ही अहं में तो मानव एक सामाजिक अभिव्यक्ति पाता है। अज्ञेय कहते हैं -

तुम जो कुछ कहना चाहोगे / विगत युगों में कहा जा चुका /
सुख का आविष्कार तुम्हारा ?/ बार-बार वह सहा जा चुका ?/
रहने दो, वह नहीं तुम्हारा / केवल अपना हो सकता जो /
मानव के प्रत्येक अहं में / सामाजिक अभिव्यक्ति पा चुका।'

अहं के विलय के दृष्टिकोण को लेकर अज्ञेय अपनी कविता और विचार में भारत की प्राचीन काव्य परंपरा से जुडते हैं, जिसके वह हामी हैं। यह बात मात्र कहने के लिए ही उन्होंने नहीं कही है बल्कि उनकी कविताओं में यह स्पष्ट दिखाई देती है।

बदलती जीवन पद्धति : अज्ञेय की दृष्टि व्यापक परिवेश को देखती है। इस परिवेश में टूटते हुए मानवीय मूल्य, बढ़ता हुआ शोषण, विगलित होती हुई राजसत्ता सभी कुछ कवि की चेतना पर दबाव डालते हैं और इन सारी परिस्थितियों का असर कवि की कविता पर पड़ता है। अज्ञेय भी यह समझते हैं कि आज हम एक नयी दुनिया का सामना कर रहे हैं जहाँ मध्ययुगीन जीवन पद्धति नहीं है बल्कि उसका स्थान विज्ञान ने ले लिया है, जहाँ मनुष्य की बुद्धि को आत्यन्तिक माना जाता है। यांत्रिक उन्नति से जो परिवेश बना है, उसने मानव के सामने एक ऐसे संकट को पैदा किया है जो पहले नहीं था। अज्ञेय

का कवि भी परिवेश की इस घुमड़न और त्रास को महसूस करता है, जहाँ मशीनों की गड़गड़ाहट में आत्माएँ प्यासी हैं। वे अनुभव करते हैं -

किंतु यहाँ आसपास / घुमड़न है, त्रास है / मशीनों की गड़गड़ाहट में /
भोली (कितनी भोली) आत्माओं की / अनुरणन की मोहमयी प्यास है।/
यंत्र हमें दलते हैं / और हम अपने को धलते हैं /
थोड़ा और खट लो थोड़ा और पिस लो -/
यंत्र का उद्देश्य तो बस शीघ्र अवकाश है।/ और अवकाश मात्र एक अवकाश है।
बाहर हैं वे- वही तारे, वही एक शुक्रतारा / वही सूनी ममता से भरा आकाश है।

इस कविता में अज्ञेय नये संदर्भ में पुराने और नये परिवेश को देखते हैं। जहाँ यंत्र का आविष्कार हमें बदलता है, वहीं कविता के पुराने उपादान 'वही तारे, वही एक शुक्रतारा, वही सूनी ममता से भरा आकाश आज तक सूनेपन को जन्म देता है। यानी जिस ढंग से पहले का व्यक्ति आकाश और तारों की छाया में मानसिक शांति महसूस करता था आज विज्ञानजन्य परिवेश में वह शेष नहीं रहा है। प्रकृति के संपर्क से व्यक्ति लगातार कटता जा रहा है और यांत्रिकता के संपर्क में अधिक-से-अधिक आता जा रहा है और इसका कारण है बदलता हुआ परिवेश। कविता में इस अनुभव को लेकर अज्ञेय प्रयोग करते हैं और बदलते परिवेश के सत्य को उद्घाटित करते हैं।

प्रकृति चित्रण : प्रकृति के प्रति कवि की पुरानी दृष्टि को तोड़कर प्रकृति को यथार्थ के प्रति नये उन्मेष के उपादान के रूप में अज्ञेय ने देखा है। उनका प्रकृति परिचय व्यापक है। इसलिए उनकी कविता में प्रकृति तथ्य और सत्य के समन्वित रूप को पेश करती है। अज्ञेय की कविता प्रचलित सौंदर्यबोध को तोडती है और स्थापित मान्यताओं पर व्यंग्य करती है। अज्ञेय प्रकृति का सिर्फ वर्णन ही नहीं करते बल्कि उसके साथ प्रयोग करके उसे नयी अर्थवत्ता भी प्रदान करते हैं, नए सत्यों को उससे प्राप्त करते है। सागर को देखकर कवि को लगता है जैसे सागर कुछ कर रहा है। भला क्या? -

कहा सागर ने चुप रहो! / मैं अपनी अबाधता जैसे /
सहता हूँ, अपनी मयार्दा / तुम सहो। /
जिसे बांध तुम सह नहीं सकते / उसमें अखिन्न मन / बहो।'

अज्ञेय परंपरा के ऐसे तत्वों को स्वीकार कर लेते हैं जो जीवन को उदात्त बनाने में सहायक होते हैं। उन्होंने अपनी कविता में प्रकृति को देखने की वह दृष्टि अपनाई है जो जीवन को मुकम्मल बनाये। अज्ञेय प्रकृति के संपर्क में आकर उसके उदात्त तत्वों से प्रभावित होते हैं और उनसे प्रभावित होकर उन तत्वों को मानव जीवन में देखना चाहते हैं और एक मुकम्मल जीवन के निर्माण की बात सोचते हैं। यहाँ हमें प्रकृति और मनुष्य के बीच में एक संबंध दिखाई देता है।

प्रतीकात्मकता : प्रतीकों का संबंध व्यक्ति और समाज के रिश्ते का तो है ही वह प्रकृति और मानव जाति के संबंध का भी सवाल है। अज्ञेय का संपूर्ण काव्य उनके सृजन-सामर्थ्य की पहचान कराता है क्योंकि उनके काव्य में पारंपरिक प्रतीकों का नये संदर्भ में इस्तेमाल तो हुआ ही है, नूतन प्रतीकों का सृजन भी हुआ है। हिंदी साहित्य में हिंदी के कवियों ने प्रयोगशील दृष्टि से प्रतीकों का प्रयोग किया। इनमें अज्ञेय, मुक्तिबोध,

शमशेर आदि के साहित्य में पारंपरिक और नये प्रतीकों का सर्जनात्मक रूप देखने को मिलता है। व्यक्ति और समाज के आधुनिक रिश्ते की अवधारणा को व्यक्त करने के लिए अज्ञेय ने नदी और द्वीप के परंपरागत प्रतीक को लिया है। नदी को विशाल समाज के प्रतीक के रूप में प्रयोग किया और द्वीप को अपनी अस्मिता से परिपूर्ण व्यक्ति के प्रतीक के रूप में।

किन्तु हम हैं द्वीप। / हम धारा नहीं है। /
स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप है स्त्रोतस्विनी के।
किन्तु हम बहते नहीं हैं। क्योंकि बहना रेत होना है
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे। प्लावन होगा। ढहेंगे। सहेंगे बह जायेंगे।'

अज्ञेय सागर के रूप में जीवन को बनते-मिटते और आंदोलित होते देखते हैं, जहाँ जीवन नश्वर नहीं। अज्ञेय जीवन विषयक भारतीय अवधारणा से जुड जाते हैं क्योंकि प्राचीन भारतीय मनीषी ने भी जीवन की नश्वरता में नहीं बल्कि जीवन की सनातनता में विश्वास किया। अज्ञेय के यहाँ जीवन कभी नष्ट नहीं होता, मरता नहीं है। यही है अज्ञेय की कविता में प्रयोगशील दृष्टि जहाँ परंपरा भी प्रयोग की कसौटी पर कसकर ग्रहण की जाती है।

अज्ञेय का समूचा साहित्य विशेषकर उनकी कविता आधुनिकता की ऐसी सार्थक दृष्टि का निर्माण करती है जिसका उत्स भारतीय भावभूमि है। उनकी प्रयोगशील दृष्टि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बदलते हुए जीवन और जीवन मूल्यों की स्पष्ट पहचान कराती है। अज्ञेय की कविता में जहाँ एक ओर नया भावबोध, नया परिवेश, नयी जीवनदृष्टि दिखाई देती है वहीं अपनी परंपरा के प्रमुख तत्वों के साथ प्रयोग भी दिखाई देते हैं। इसीलिए अज्ञेय की कविता में परंपरा प्रयोग संबंधता स्थिति में दिखाई पडते हैं। अज्ञेय अपनी कविता में भारतीय परंपरा के आस्थावादी स्वर को पहचानते हैं। आज जबकि साहित्य और जीवन में घोर यथार्थवादी प्रवृति ने मनुष्य को भौतिकवादी और व्यक्तिवादी दायरों में जकड़कर रख दिया है ऐसी स्थिति में अज्ञेय यथार्थ के अधूरेपन को कविता में उजागर करते हैं। वास्तव में काव्य में कवि का व्यक्तित्व नहीं, वह माध्यम प्रकाशित होता है जिसमें विभिन्न अनुभूतियाँ और भावनाएँ चमत्कारिक योग में युक्त होती हैं। काव्य एक व्यक्तित्व की नहीं, एक माध्यम की अभिव्यक्ति है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अज्ञेय सृजन प्रक्रिया को नितांत निजी चीज नहीं मानते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि सृजन प्रक्रिया पूरी तरह से अपनी परंपरा, अपने जातिगत अनुभव से जुडकर ही फलीभूत होती है।

संदर्भः

1. अज्ञेय - स्त्रोत-सेतु
2. अज्ञेय - आधुनिक हिंदी साहित्य
3. अज्ञेय - पूर्वा
4. अज्ञेय - अरी ओ करुणा प्रभामय
5. अज्ञेय - आंगन के पार द्वार

6. अज्ञेय - नदी की बांक पर छाया
7. अज्ञेय - पूर्वा-हरी घास पर क्षण भर
8. अज्ञेय - आत्मनेपद
9. अज्ञेय - इंद्रधनुष के रौंदे हुए ये
10. अज्ञेय - बाबरा अहेरी
11. अज्ञेय - पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ
12. डॉ. राधाकृष्णन - पूर्व और पश्चिम
13. रामविलास शर्मा - नयी कविता और अस्तित्ववाद
14. रमेश ऋषिकल्प - अज्ञेय की कविता परंपरा और प्रयोग

असोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
प्रा.संभाजीराव कदम महाविद्यालय, देऊर-सातारा -415524

इक्कीसवीं सदी के भारतीय सिनेमा में राष्ट्रीय चेतना

प्रा. बहिरम देवेंद्र मगनभाई

इक्कीसवीं शताब्दी का वर्तमान समय आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है फिर से हम लोग भारतीय राष्ट्रीय चेतना की बात करने लगे हैं। वर्तमान समय में राष्ट्रीय भावना भारतीय लोगों में जगाने का काम हिंदी फिल्मों ने किया है। हम जानते हैं तकनीकी दृष्टि से हिंदी फिल्मों का विकास बड़ी तीव्रता से हुआ है, लेकिन फिल्मों के कथावस्तु का स्तर उतना ऊंचा नहीं उठा जितना 1975 के कालखंड में था। इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ में हिंदी फिल्मों में पारंपरिक विषयों के अलावा कुछ उत्तर आधुनिक विषय भी हमें दिखाई देते हैं, जिसमें राष्ट्रीय चेतना की भावना हमें दिखाई देती है। साहित्य और दोनों अत्यंत महत्वपूर्ण कला रूप हैं। वर्तमान समय में अभिव्यक्ति की शक्ति अत्यंत प्रभावी रूप में जिस कला रूप में है, वह सिनेमा है। सिनेमा मनोरंजन को आधार मानकर समाज में अपने विचार प्रभावी रूप में अभिव्यक्त करता है।

सकारात्मक प्रभाव की दृष्टि से विचार किया जाय तो स्वतंत्रता पूर्व बने सिनेमाओं ने समाज सुधार, देशप्रेम, आर्दश आचरण के लिए समाज को प्रेरित किया है। 'आदमी' दुनिया न माने, पड़ौसी' जैसी फिल्मों ने जीवन के आदर्शों को दर्शकों के सामने रखा। विधवा विवाह, बेमेल विवाह, जातिगत वैमनस्य मजदूरों-किसानों का संघर्ष, स्त्रियों का दमन, जैसी समस्याओं को सिनेमा के माध्यम से उठाकर समाज की वास्तविक स्थिति को हमारे सामने प्रस्तुत किया गया। तीस और चालीस के दशक में अनेक ऐसी फिल्मों का निर्माण हुआ जिनमें सिर्फ ज्वलंत सामाजिक मसलों को चित्रित किया गया बल्कि उनके समाधान का सर्वमान्य हल भी प्रस्तुत किया गया। भाग्यवादी, अंधविश्वासी भारतीय समाज को उस समय के सिनेमा ने रोशनी की नई राह दिखाई। आजादी के आंदोलन के समय एक नया जोश और आर्दशवाद था, लोग भविष्य के भारत के सपने देखा करते थे और सिनेमा के चरित्र भी उसी प्रकार रखे जाते थे। राजनीतिक, सामाजिक बदलाव के साथ-साथ सिनेमा में भी परिवर्तन आने लगा।

इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ में लगे रहो मुन्ना भाई एम.बी.बी.एस., रंग दे बसंती, द लीजेंड ऑफ भगत सिंह, शहीद आदि द्वारा भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों तथा भारतीय विचारधारा को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया। महात्मा गांधी की विचारधारा को आधुनिक पद्धति से राजकुमार हीरानी ने अपनी फिल्म लगे रहो मुन्ना भाई में दर्शाया है। गांधीवाद को जिसमें सत्य, अहिंसा के तत्व दिखाई देते हैं, फिल्म का नायक जिसमें गांधीजी के प्रति मानसिक दृष्टि से लगाव निर्माण होता है, जिसके परिणाम स्वरूप वह गांधीजी के विचारों को अपनी आधुनिक शैली द्वारा जिसे हम लोग कहते हैं मुंबइया हिंदी, जो गुंडागर्दी की भाषा है, उस भाषा द्वारा गांधीजी के विचारों को प्रस्तुत करना एक नया प्रयोग था। 21वीं शताब्दी में गांधीजी के प्रति नई पीढ़ी को जागरूक करना बहुत ही सफल प्रयोग माना जाता है। उदाहरणार्थ मुन्ना उसे ज्ञान देता है, 'तेरे को मालूम! बापू ने सिर्फ नमक बनाया और उसको डायरेक्ट अंदर कर दिया।' इस पर सर्किट हैरत जताता है, 'बापू की इज्जत की तो वाट लग गई होगी।' 'अरे! नई रे! जितना टाइम बापू अंदर रहा ना उतनाई उनका इज्जत बढ़ा क्योंकि वो राइट था।' मुन्ना को गांधीवादी विशेषज्ञ

जानकर, इन बिगड़ती हुई स्थितियों के बारे में सवाल करते हैं। मुन्ना बापू की मदद से समाधान देता है, 'उससे कहना चाहिए था, फुल पुतला गिरा दो। फुल कंट्री में बापू का जितना भी पुतला है, सब गिरा दो।' ऐसे विचार सुनकर सभी बुजुर्ग हैरत में पड़ जाते हैं। यहाँ तक कि जाह्नवी भी। वह अपनी तकरीर जारी रखते हुए कहता है, 'जितनी भी तस्वीर लटकेली है, हटा दो हर बिल्डिंग, रोड-वोड से बापू का नाम निकाल दो. अगर बापू को रखने काइच है, तो अपने दिल में रखो' 'आज अगर बापू होता तो कहता, देश अपना हो गया, लोग पराए हो गए।'[1]

बीसवीं शताब्दी के सिनेमा में कलात्मक सिनेमा अपनी अलग पहचान रखता था। लेकिन 21वीं शताब्दी में सिनेमा पूर्ण रूप से व्यवसायिक रूप में प्रस्तुत होने लगा। वर्तमान समय में हिंदी सिनेमा अपना विशेष रूप प्रस्तुत कर रहा है। 100 करोड़, 200 करोड़, 500 करोड़ आदि क्लब स्थापित होने लगे लेकिन व्यवसाय और कला का समन्वय स्थापित करके कुछ महत्वपूर्ण फिल्में जो भारतीय समाज का दर्पण बन कर सामने आने लगीं।

भारत की विशालता को प्रस्तुत करने के लिए तथा महान इतिहास को प्रस्तुत करने के लिए अलग-अलग पद्धति के फिल्मों ने सकारात्मक प्रयास किए हैं। विशेष रूप से एनिमेशन फिल्मों में महाभारत, रामायण के प्रति अभिरुचि दिखाई है, जिस के पात्र नई पीढ़ी के जहन में बस रहे हैं। इसी के साथ हम लोग देखते हैं कि लगे रहो मुन्ना भाई, कारगिल, उरी द सर्जिकल स्ट्राइक, बाहुबली, रंग दे बसंती, भगत सिंह, पीके, नमस्ते लंदन, चक दे इंडिया, एम एस धोनी, शेरशाह, 26 - 11, लक्ष्य, परमाणु, मेजर, केसरी, भुज, राजी, दीवार, लगान, मंगल पांडे, जमीन, टैंगो चार्ली, एल.ओ.सी. कारगिल, द गाजी अटैक, एअरलिफ्ट, मिशन मंगल, अब तुम्हारे हवाले वतन साथियों, गोल्ड, रुस्तम आदि फिल्मों का उल्लेख महत्वपूर्ण है।

राष्ट्रीय चेतना का अभिप्राय (समाज की उन्नति) राष्ट्र की चेतना-प्राण शक्ति समाज से है। राष्ट्र शब्द समाज के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। जिस क्षण समुदाय में एकता की एक सहज लहर हो, उसे राष्ट्र कहते हैं। समाज और साहित्य का भी ऐसा ही विरोध-संबंध है। साहित्य सामुदायिक विकास में सहायक होता है, सामुदायिक भावना भी राष्ट्रीय चेतना का अंग है। एक राष्ट्र में चेतना भरने के लिए हमें अपने निजी स्वार्थ का बलिदान करना होगा, तभी हम राष्ट्र के लिए परोपकार का कार्य कर सकते हैं। दूसरों के हित का ध्यान रखकर ही हम राष्ट्र के हित के लिए कार्य कर सकते हैं। नैतिक मूल्यों को समझने के लिए अच्छा साहित्य भी पढ़ाना चाहिए। इससे देशप्रेम की भावना जागृत होगी। राष्ट्रीय चेतना को दर्शकों में जाग्रत रखने का काम 21वीं सदी के दूसरे दशक में ने 'शेरशाह' एक युद्ध पर आधारित फिल्म है, जो कारगिल युद्ध में शहीद हुए विक्रम बत्रा के जीवन पर आधारित तथा अत्यंत मार्मिक और राष्ट्रभक्ति को जगानेवाली फिल्म है। विक्की कौशल की यह फिल्म एक सर्जिकल स्ट्राइक पर आधारित है, जो 2016 में आर्मी बेस पर हमला करने वाले आतंकवादियों पर इंडियन आर्मी द्वारा की गयी थी।

'राजी' एक इंडियन रॉ एजेंट की कहानी पर आधारित फिल्म है, जिसकी शादी एक पाकिस्तानी मिलिट्री फैमिली में हुई है। 'रंग दे बसंती' एक ड्रामा फिल्म है, जिसे राकेश

ओमप्रकाश मेहरा ने डायरेक्ट किया है। फिल्म में इंडिया के पांच स्वतंत्रता सेनानियों से प्रेरित होकर युवा पीढ़ी को भ्रष्टाचार और सिस्टम की कमियों के खिलाफ लड़ते हुए दिखाया गया है। 'द लीजेंड ऑफ भगत सिंह' भारत के सबसे निडर फ्रीडम फाइटर भगत सिंह की बायोपिक है, जो अपने देश की सेवा करते हुए शहीद हो गए थे। इस प्रकार की फिल्में राष्ट्र के लिए त्याग, समर्पण और बलिदान की भावनाएं को जाग्रत करती हैं। राष्ट्रीय चेतना का अभिप्राय (समाज की उन्नति) राष्ट्र की चेतना-प्राण शक्ति से है। राष्ट्र में चेतना भरने के लिए हमें अपने निजी स्वार्थों का बलिदान करना होगा, तभी हम राष्ट्र के लिए परोपकार का कार्य कर सकते हैं। डॉ. कुलदीप सिंह कहते है 'दूसरों के हित का ध्यान रखकर ही हम राष्ट्र के हित के लिए कार्य कर सकते हैं। नैतिक मूल्यों को समझाने के लिये सिनेमा कला का भी सार्थक प्रभाव पड़ता है ।'[2]

आधुनिक समाज में जातियों के नाम पर धर्म के नाम पर छुआछूत और किसी के जीने का अधिकार ही छीन लिया गया। पारिवारिक मूल्यों की स्थापना कर परिवार को एक नई दिशा मिल सके, इस उद्देश्य को लेकर चित्रीकरण हो रहा है। आने वाले सौ सालों में फिल्म की रूपरेखा क्या होगी? इस पर प्रकाश झा कहते हैं- 'सौ साल बाद सिनेमा किस रूप में आएगा पता नहीं, लेकिन फिल्म में प्रतिबिंबित तो वही दिखेगा जो समाज के आयाम है। आयाम बदलते रहते हैं तो फिल्में भी बदलेंगी। विषय काल्पनिक लोक से नहीं आएगा। जैसा समाज होगा, वैसी ही फिल्म बनेंगी।'[3]

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि, 21वीं शताब्दी केमें हमें देशभक्ति की भावना अलग-अलग रूप में दिखाई देती है, जिसमें आधुनिक युग की समस्याओं को सुलझाने के लिए हमारे स्वतंत्रता सेनानियों की विचारधारा को प्रस्तुत किया जाता है। साहित्य और सिनेमा सामुदायिक विकास में सहायक होता है। सामुदायिक भावना भी राष्ट्रीय चेतना का अंग है। भारतीय समाज में व्याप्त कई समस्याएं हैं -भ्रष्टाचार, आतंक, आंदोलन बेरोजगारी, समाज के बिगड़ते हालात, भूखमरी, अकाल, पानी की समस्या, भ्रष्ट राजनीति आदि समस्याएं को लेकर फिल्मकारों ने अपने फिल्मों में समाज की वास्तविकता का चित्र प्रस्तुत किया लेकिन मनोज कुमार जैसे अभिनेता, दिग्दर्शक, निर्माता जो अपनी फिल्मों का निर्माण राष्ट्र चेतना जाग्रत करने के लिये ही करते थे, उनकी कमी महसूस होती है।

संदर्भ :

1. लगे रहो मुन्ना भाई (of life script soft copy) - राजकुमार हिरानी (पेज 178-189)
2. फिल्म निदर्शन : डॉ. कुलदीप सिंह मनोरमा प्रकाशन . पृ 48
3. द. संडे इंडियन, संजय उपाध्याय (साक्षात्कार- प्रकाश झा), 22 जुलाई 2012
4. साहित्य और- संपा- पुरुषोत्तम कुदे

एम.जे.एस. कॉलेज, श्रीगोंदा, ता. श्रीगोंदा,
जि. अहमदनगर (महाराष्ट्र)

21वीं सदी के हिन्दी साहित्य में नारी चेतना

प्रा. डॉ. भारत बा. उपाध्य

21वीं सदी की कविता पुरानी घिसी पिटी लकीरों पर चलने के बजाय अपना नया रास्ता चुनती है। नए तेवर अपनाती है। नवीनतम विषय वस्तुओं को अपनाती है। बेकारी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, अत्याचार, व्यभिचार, अनाचार, दुराचार आदि तमाम विषयों को इस युग की कविता ने स्वीकारा है। आज की कविता निरंतर बदलते मानवीय मूल्यों एवं पारस्परिक संबंधों में चेतना लाने के लिए लगातार प्रयासरत है। वैश्वीकरण, मुक्त बाजारवाद विकृत उपभोक्तावाद, राजनीतिक अधिनायकवाद, मूल्यों का विघटन संस्कृतियों का संघर्ष, पूंजीवाद का प्रभुत्व एवं भ्रष्टाचार आदि हमारे समाज के अंग बन गए हैं। वर्तमान समय भूमंडलीकरण और बाजारीकरण का है, जिससे जीवन मूल्यों पर भी बाजार और स्वार्थ प्रबल हो गया है। फलस्वररूप संवेदना तत्व पलायन कर गया है, जिसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई देने लगा है।

इक्कीसवीं सदी की महिलाओं ने अपने लेखन में जीवन एवं समाज के सभी रंगों को अपनी कुशल तूलिका से बड़ी भावात्मकता एवं कलात्मकता से उकेरा है। बचपन से ही उसके अंदर लड़के और लड़की का भेद-भाव भर दिया जाता है और बड़ी होते-होते वह अपना भाग्य पुरुष के हाथों सौंप देती है। वह कौमार्य में पिता, यौवन में पति और बुढ़ापे में पुत्र के आगे लाचार बनकर रह जाती है। उसका स्वयं का कोई वजूद नहीं कोई अस्तित्व नहीं, कोई पहचान नहीं। इसी बात को कवयित्री शशि प्रभा अत्रि अपने काव्य संग्रह 'आस्था एहसास और स्वीकृति में 'पहचान' शीर्षक कविता में बखूबी कहती हैं-

मैं/ आंसुओं की लौ में / मोमबत्ती से / लगातार / पिघलती चली गई।

आधुनिक समय की स्त्री समस्याओं को अपने लेखन का माध्यम बनाने वाली प्रमुख लेखिकाओं में कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, मन्नू भंडारी, अमृता प्रीतम, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, कुसुम अंसल, मृणाल पाण्डे, शशिप्रभा शास्त्री, सुधा अरोड़ा, मेहरुन्ननिशा परवेज, ऊषा महाजन, लवलीन, मधु कांकरिया, गीतांजलि श्री आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

21वीं सदी में जहां आम आदमी के सामने अनेक प्रकार की विसंगतियां हैं, वहीं समस्या के रूप में अनेक सवाल भी सिर उठा रहे हैं। भारत में आजादी के पूर्व साहित्य की मुख्य धारा यही थी कि भारत को विदेशी शासन् से कैसे मुक्त किया जाए? यद्यपि सामाजिक समस्याएँ भी थीं क्योंकि समस्याएँ एक दिन में पैदा नहीं होतीं, किन्तु हर युग की कुछ विशेष समस्याएं अवश्य होती हैं। साहित्य में शोषक वर्ग को चिह्नित करते हुए पहले जहाँ किसान-मजदूरों की बात की जाती थी, वहीं वर्तमान समय में दलित, आदिवासी और स्त्री विमर्श का मुद्दा विशेष रूप से चिह्नित किया जा रहा है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में नारी लेखन की भूमिका अहम रही है।

21वीं सदी में नारी लेखन की एक सशक्त धारा प्रवाहित हुई। महिला कवियों ने मानव जीवन की विशेषतः नारी जीवन की विविध समस्याओं का गहन अध्ययन कर उनकी बेबाक अभिव्यक्ति की है। स्त्री-चेतना के स्वर एक सामाजिक निर्मिति हैं। नारी

अपनी वास्तविक स्थिति का विवरण प्रस्तुत करना चाहती है। इक्कीसवीं सदी में समाज परिवार और व्यक्ति सभी स्तरों पर जो तीव्रता से बदलाव आया है, उसका असर हिन्दी कविता पर भी व्यापक रूप से परिलक्षित होता है। नारी शिक्षा के कारण स्त्रियों की मानसिक और बौद्धिक स्थिति में काफी बदलाव हुए हैं। उन्होंने पुरानी मान्यताओं को तोड़कर व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मार्ग अपनाया है। इक्कीसवीं सदी के काव्य का स्वरूप वह नहीं रह गया जो स्वतंत्रता पूर्व था। नारी के सम्बन्ध भी परिवार के साथ पूर्व जैसे नहीं रहे।

इक्कीसवीं सदी में नारी अपनी सही भूमिका को तलाशती हुई स्वयं को पहचानने और कुंठा से मुक्त करने की दिशा में आगे बढ़ रही है। उसकी संकल्प की दृढ़ता उसे लेखनी के माध्यम से प्रतिष्ठित करने में सहायक सिद्ध हो रही है। इक्कीसवीं सदी का नारी लेखन हमें आधुनिकता, वैज्ञानिकता, तार्किकता, समसामयिकता तथा युगीन भाव बोध का परिचय कराता है। आज का नारी लेखन उच्च कोटि का होने के साथ-साथ वैविध्यपूर्ण भी है। इस सदी की महिलाओं ने अपने लेखन में जीवन और समाज के सभी रंगों को अपनी तूलिका रूपी लेखनी से बड़ी भावात्मकता और कलात्मकता से उकेरा है। इनमें कहीं वृद्ध समस्या है तो कहीं नारी मुक्ति की छटपटाहट, कहीं किसी बड़े परिवार की समस्या है, तो कहीं आधुनिक जीवन का खोखलापन।

इक्कीसवीं सदी की कविताओं का लेखन क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण और बहुआयामी है। उनके लेखन में स्त्री चेतना के स्वर प्रमुखता से देखने को मिलते हैं। इस सदी की कविता में नारी की चुनौतियों, अवरोधों, चिंताओं, विवशताओं का चित्रण प्रमुख है। इन कवयित्रियों ने नारी के अन्तरंग, विषम, जटिल समस्याओं, ज्वलंत सवालों को समझदारी से समझने, सुलझाने का अथक प्रयास किया है। प्रसिद्ध लेखिका ममता कालिया का कविता संग्रह खांटी घरेलू औरत' इस संदर्भ में काफी चर्चित रहा है-

'मेरी जगह तुम होते,/ इस घर में, एक सर्वहारा का जीवन जीते हुए/
मैंने परिश्रम को ही माना पारिश्रमिक,/ तुम मेरी जगह होते,/
क्या करते सातों दिन श्रम

वर्तमान में नारीवादी लेखिकाएं एक सदी की संपूर्ण जटिलताओं को अपने साहित्य में उठाती हुई वर्गीय अधिकारों का संघर्ष चला रही हैं। साथ ही आंदोलनात्मक चेतना के स्वर के प्रति भी प्रयासरत हैं। जैसे चित्रा मुद्गल का ''आवां' एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है। इसकी कथावस्तु मजदूर नेता देवीशंकर की बेटी नमिता के मोहभंग, पलायन एवं वापसी की कहानी है। इस उपन्यास में नारी शोषण के कई रूप देखने को मिलते हैं, जिनमें निम्न एवं उच्च वर्ग की यथास्थिति को उजागर किया गया है। उच्चवर्गीय पात्र निम्न वर्ग के पात्रों का शोषण करते हैं। अर्थात् कविता में व्यक्त संवेदना की अपेक्षा स्त्री चेतना को कथा साहित्य में व्यापकता मिलती है। आज बहुत सी युवा कवयित्रियों के स्त्री चेतना के स्वर अंतर्जाल पर धड़ल्ले से उभरते देखे जा सकते हैं। जब-जब भी स्त्री पर कोई अनाचार, अत्याचार हुआ है, उनके विरोध में साहित्य में कविताओं की बाढ़-सी आ जाती है। इक्कीसवीं शताब्दी की कवयित्रियों का लेखन उच्चकोटि का होकर वैविध्य पूर्ण है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि 21वीं सदी की कविता रचनाधर्मिता के नये राह तलाश रही है। युग-परिवेश के अनुरूप उसके मूल्य और मान्यताएँ भिन्न है। यह नए परिवेश और दौर की कविता है। इसे प्राचीन काव्य-शास्त्र की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। वह इसका इच्छापूर्ण त्याग भी नहीं कर सकती। इस स्थिति में कविता का दायित्व दोगुना हो जाता है। एक तरफ वह जीवन-मूल्यों और विचारों को महत्व देना चाहती है तो दूसरी तरफ समाज और संस्कारों के प्रति उसका मोह है। देश के विकास में महिलाओं का महत्त्व और अधिकार काफी महत्वपूर्ण है। समाज में जागरूकता लाने के लिये मातृ दिवस, अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस आदि जैसे कई सारे कार्यक्रम सरकार द्वारा चलाए जा रहे हैं। महिलाओं को कई क्षेत्रों में विकास की जररूरत है। भारत में, महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए सबसे पहले समाज में उनके अधिकारों और मूल्यों को जतन करना होगा। 21वीं सदी कविता में दहेज प्रथा, अशिक्षा, यौन हिंसा, असमानता, भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा, मानव तस्करी जैसे विषयों को अधिक अभिव्यक्त करना होगा। तभी कविता में स्त्री-चेतना का स्वर अधिक बुलंद हो सकेगा।

संदर्भ :

1. खांटी घरेलू औरत - ममता कालिया
2. सम्पा, रवीन्द्र कालिया, वागर्थ,
3. डॉ रामस्वरूप चौधरी- आधुनिक कविता यात्रा,
4. आलोचना पत्रिका
5. देवेन्द्र आर्य, इक्कीसवीं सदी का आल्हा,
6. हिंदी साहित्य का इतिहास - आ.रामचंद्र शुक्ल

'हम एक हैं' नाटक में प्रतिबिंबित राष्ट्रीय एकता

प्रा. भिमाशंकर लक्ष्मण गायकवाड

प्रचार-प्रसार के नये माध्यमों द्वारा सांप्रदायिकता, आतंक और उग्रवाद का बड़ी तेजी से हो रहा है। यह हमारी राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक परिवेश को नुकसान पहुँचा रहा है। हमारे आत्मीय रिश्तों में तनाव, घुटन, कुंठा और द्वेष का माहौल निर्मित हुआ है। यह देश की अखंडता के लिए बाधक है। अखंडता को कायम रखने के लिए राष्ट्रीय एकता आवश्यक है।

21 वीं शताब्दी को तकनीक एवं परिवर्तनशीलता के लिए पहचाना जाता है। इस युग में अनेक आविष्कार हुए हैं। साहित्य में भी अनेक परिवर्तन हुए हैं। नाटकों की कथावस्तु में नया यथार्थ प्रस्तुत हुआ है। नाटक सीधे जनमानस को प्रभावित करता है। वरिष्ठ नाटककार माताप्रसाद का मंतव्य है, 'नाटक साहित्य की शक्ति और सामर्थ्य को अपने आलेख में समाहित करने वाली वह विशिष्ट साहित्यिक विधा है जिसकी अपार संभावनाओं का प्रभाव केवल दृश्य रूप में ही निहित रहता है। मूल आलेख में विद्यमान नाट्य व्यंजना की अनंत संभावनाएँ मंच पर जीवन धारण करती हैं।'[1] स्पष्ट है कि नाटक के माध्यम से मानवीय जीवन का यथार्थ दर्शाया जाता है। भारतीय परिवेश में वर्ण-जाति, धर्म-संस्कृति और भाषा में विविधता दिखाई देती है। इन सब में एकता का होना आवश्यक माना जाता है। ज्यों 'राष्ट्र' को एक सूत्र में बांधा जाता है।

स्वतंत्रता के बाद भारत की राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने के लिए हिंदी साहित्यकारों ने कविता, कहानी, उपन्यास के साथ-साथ नाटकों का भी निर्माण किया है। वरिष्ठ नाटककार माताप्रसाद ने 2005 में प्रकाशित अपने नाटक 'हम एक हैं' में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, सांप्रदायिक, राजनैतिक एकता को स्थापित करने का प्रयास किया है। वे कहते हैं, 'इस नाटक का उद्देश्य समाज में धार्मिक सौहार्द का प्रसार है जो राष्ट्रीय एकता को बनाए तथा समाज में शांति और सुख के प्रसार में सहायक हो सके।'[2] स्पष्ट है कि नाटककार ने धार्मिकता को आधार बनाने वाली व्यवस्था को नकारा है।

21 वीं सदी में बाजारवाद भी पनपता हुआ दिखाई देता है। इसमें मनुष्य का मन भी यंत्रवत बना है। वीणा गौतम लिखती हैं, 'बाजारवाद मन की रंगभूमि को बंजर बना रहा है। शब्द बंधुआ हो गये हैं। वैचारिक स्वराज्य मरणासन्न एवं बंधक है। सत्ता का गणित चेहरे विहीन समाज की ओर धकेल रहा है।'[3] स्पष्ट है कि सत्ता को प्राप्त करने के लिए मानवीय मन संवेदनाहीन बना हुआ दिखाई देता है। एक-दूसरे के प्रति द्वेष की भावना को बढ़ावा मिल रहा है। स्नेह और अपनापन समाप्त होते दिखाई देता है। हिन्दू-मुस्लिम धर्म में सम्प्रदायगत बढ़ती खाई का माहौल निर्माण किया गया है। इस बारे में डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर लिखते हैं, 'प्रस्तुत नाटक 'हम एक है' में वर्ण व्यवस्था और धार्मिक आस्थाओं की बुराइयों पर चोट करते हुए दर्शाया है कि हम जातिगत निजी स्वार्थ व धार्मिक भावनाओं से उपर उठकर सोचें कि हम सब भारतीय हैं।'[4] स्पष्ट है कि जाति तथा धार्मिकता के स्थान पर भारतीयता तथा भारत की एकता को महत्वपूर्ण स्थान देना आवश्यक है।

भारत में कभी-कभी दो जाति या धर्मों के त्योहार एक ही दिन आ जाते हैं। दोनों धर्मों

के अनुयायी उन्हें मनाने के लिए जुलूस या शोभायात्रा निकालते हैं, तब उनमें अचानक धार्मिक जज्बात एकनिष्ठ रूप से आने लगते हैं और देखते- देखते साम्प्रदायिक आग भडक उठती है। धर्म के ठेकेदार समाज में गलत जानकारी देकर हिन्दू-मुस्लिमों में द्वेष का वातावरण निर्माण करते हैं। इनके बहकावे में आकर लोग एक-दूसरे के दुश्मन बनते हैं, परंतु इसमें सामान्य लोगों का ही नुकसान होता है। इस बारें में मौलवी अल्लाउद्दीन कहते हैं, 'हालाकि यहाँ के हिन्दू भी फसाद नहीं चाहते लेकिन धर्म के नाम पर कुछ लोग आग में घी डालकर तमाशा देखना चाहते है।'[5] स्पष्ट है कि धर्म के नाम पर लोगों का विभाजन करने वालों की संख्या समाज में कम नहीं है।

धर्म के ठेकेदार बने रामचरण अग्रवाल हिन्दू होने के नाम पर दलितों और मुस्लिमों को आपस में लड़वाना चाहते हैं। वे दलितों को मुस्लिमों के खिलाफ भड़काते हैं। इन दोनों में वैमनस्य निर्माण करना चाहते हैं। तब दलित इनके झाँसे में नहीं आते। वे आज अच्छा बुरा सोचते हैं और अपने विवेक के अनुसार संत चौथीराम जवाब में कहते हैं, 'हम हिन्दू-मुस्लिमों के झगडे में या मंदिर-मस्जिद के झगड़े में किसी का साथ नहीं देंगे। हाँ जो अन्याय करेगा हम लोग उसका विरोध जरूर करेंगे।'[6] स्पष्ट है कि अन्याय के खिलाफ लडना ही मानवीयता है। अन्याय करनेवाला हिंदू-मुस्लिम जो भी हो उसके खिलाफ लड़कर न्याय की प्राप्ति करता है।

हमेशा मनुष्य को एक-दूसरे के धर्मों का आदर सम्मान करना चाहिए। ऐसा करने से समाज की उन्नति तथा एकता को बढ़ावा मिलता है। समाज में असामाजिक तत्वों को फैलाने वाले इसके विपरीत हमें दिखाई देते हैं। स्वामीनाथ पांडेय हिन्दू युवकों को मुस्लिमों के खिलाफ भड़काने की कोशिश करते हैं। वे दुर्गा जी की मूर्ति विसर्जन में बाधा डालकर हमारे धर्म पर आक्रमण कर रहे हैं तो मुहम्मद कासिम भी मुस्लिम युवकों को हिन्दुओं के खिलाफ भड़काते हैं। दोनों धर्म के युवक आपस में एक-दूसरे के साथ लड़ते-झगड़ते हैं तब पुलिस उन्हें सच्चाई से रू-ब-रू कराती है, 'तुम लोग लड़ना बंद करो नहीं तो गोली मार देंगे। यहाँ न तो मुहम्मद कासिम और न ही कोई स्वामीनाथ पांडेय दिखायी पड़ते हैं। लगता है तुम लोग इनके बहकावें में आ गये थे।'[7] स्पष्ट है कि समाज में गलत अफवाहें फैलाकर सामान्य लोगों को एक दूसरे का दुश्मन बनाया जाता है। उनकी जान इस दंगे फसाद में चली जाती है। जो इसे करवाता है, वह सुरक्षित जगह बैठ जाता है। सामान्य लोग एक दूसरे को मारने के लिए दौड़ते दिखाई देते है।

धर्म के ठेकेदारों द्वारा समाज में लोगों की धार्मिक भावना भड़काकर शहर में दंगे-फसाद कराये जाते हैं। जगह-जगह आग लगाई जाती है। शहर का माहौल अशांत किया जाता है। प्रशासन पर भी इस घटना का प्रभाव निर्माण होता है। इस माहौल में लोग लूट-पाट भी करते हैं। लोगों के मकानों को आग लगायी जाती है। इस स्थिति से लोगों को बचाने के लिए प्रशासन् की ओर से शहर में कर्फ्यू लगा दिया जाता है। जिलाधिकारी नीरा परमार द्वारा शहर में शांति समितियाँ बनाने के लिए कहा जाता है। इसके माध्यम से शहर के वातावरण में शांति बनाये रहे। सी.डी.ओ. कहते हैं, 'सभी मुहल्लों की शांति समितियाँ बन गई हैं। हर समिति में हिन्दू मुस्लिम के अलावा वार्ड समितियों के सदस्यों के अतिरिक्त इलाके के सम्मानित नागरिकों को रखा गया है।'[8]

स्पष्ट है कि शहर में शांति बनाये रखने के लिए और लोगों की सुरक्षितता के लिए प्रशासन हमेशा प्रयासरत होता है। समाज के सम्मानित सदस्यों के माध्यम से गलत विचारों को बढावा देकर अशांति का वातावरण निर्माण करनेवालों पर अंकुश लगाया जा सकता है। इस समिति द्वारा अफवाहों पर विश्वास न करने के साथ सभी नागरिकों का प्रबोधन करेगी और शहर में शांति प्रस्थापित करने के लिए सहयोग करेगी। इस समिति की बैठक में जनता की समस्याओं का हल किया जायेगा और उनके सुझाव भी सरकार के पास भेजें जायेंगे। धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर समाज में विभाजन किया जाता है। मनुष्य धर्मांध बनकर एक-दूसरे का शत्रु बना दिखाई देता है। केवल शत्रु नहीं वह उसे जान से मारना चाहता है। इसलिए कि वह दूसरे धर्म का है। भारत में हिन्दू और मुस्लिम दोनों भाईचारा से अपना जीवनयापन करतें है। परंतु असामाजिक तत्वों को फैलाने वाले इन दोनों को शत्रु बनाकर लड़वाते है। शहर में दंगों के समय अपने आपको मुस्लिमों के रक्षणकर्ता मानने वाले समाज विघातक लोग हाथों में शस्त्र लेकर डॉ. अबू मोहम्मद के अस्पताल के पास जाते हैं। उनके अस्पताल में इलाज करवाने आये हिन्दू मरीजों को अपने हवाले करने के लिए धमकाते हैं। तब इन्सानियत के रखवाले बने डॉ. अबू मोहम्मद उन्हें डरते नहीं बल्कि जवाब में कहते हैं, 'हमारे यहाँ भर्ती मरीज हैं, वह न तो हिन्दू हैं, न मुसलमान। मुझ पर यकीन करके आये हैं वो दुखी और परेशान हैं। उन्हें मैं राहत दूँगा। आप लोग वापस जाएँ।'[9] स्पष्ट है कि मनुष्य को धर्म के नाम पर न पहचानकर केवल मनुष्यता के माध्यम से ही जानना चाहिए।

मुस्लिम दंगाइयों से हिंदुओं की रक्षा डॉ. अबू मोहम्मद करते हैं। उसी प्रकार हिन्दू दंगाई मुस्लिमों के जान के पीछे पड़ जाते हैं। मुस्लिम औरतों को मारने के लिए कुछ लोग उनके पीछे दौड़ते हैं। तब वह जान बचाने के लिए अपने बच्चे के साथ एक हिन्दू के घर में पनाह लेती है। जब दंगाई औरतों को ढूँढने आते हैं तब उनकी रक्षा करने वाले पं. मिश्रीलाल चौबे मैंने देखा नहीं यह कहकर उनकी जान बचाते हैं। मुस्लिम औरतों की रक्षा हेतु अपनी पत्नी को पं. मिश्रीलाल चौबे कहते हैं, 'इन औरतों को घर में परिवार के साथ बैठाओ। इन्हें कोई परेशानी न हो।'[10]

स्पष्ट है कि किसी के बहकावे में न आकर प्रत्येक मनुष्य ने मानवीयता का पालन करना जरूरी है। भारतीय समाज एक परिवार की तरह है। जैसे परिवार का सदस्य एक-दूसरे के प्रति समर्पित होता है। उसी प्रकार हर व्यक्ति एक-दूसरे प्रति समर्पित होना चाहिए तभी देश की अखंडता कायम बनी रहेगी। महामहिम राज्यपाल कहते हैं, 'भारत की एकता और अखंडता को बनाये रखने के लिए यहाँ 'सेक्युलरिजम' बनाये रखना आवश्यक है। भारत जैसे बहुधर्मी देश में लोगों को एकता के सूत्र में बाँधे रखने का सबसे शक्तिशाली साधन है।'[11] स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति ने एक-दूसरे के साथ स्नेह तथा सौहार्द के साथ अपना जीवनयापन करना चाहिए।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'हम एक है' नाटक में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक एकता को पुर्नस्थापित करने और उसे अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए प्रयास किए हैं। आज भारत की एकता और अखंडता महत्वपूर्ण है।

संदर्भ :
1. माताप्रसाद - दलित साहित्य में प्रमुख विधाएँ, पृ.26
2. माताप्रसाद - हम एक हैं, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रकाशन 2005, दो शब्द से
3. वीणा गौतम- रंगानुशासन : प्रायोगिक नवोन्मेष नाटक एवं रंगमंचः अन्त संबंध, पृ.294
4. डॉ. सोहनलाल सुमनाक्षर- हम एक हैं, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रकाशन 2005,भूमिका से
5. माताप्रसाद- हम एक हैं, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रकाशन, पृ. 12-13
6. वहीं- पृ.20
7. वहीं- पृ.24
8. वहीं- पृ. 26
9. वहीं- पृ. 30
10. वहीं- पृ. 33
11. वहीं- पृ. 63

सद्गुरू गाडगे महाराज कॉलेज, कराड

21 वीं सदी के हिंदी फिल्मी गीतों में राष्ट्रीय भावना

डॉ. जे. ए. पाटील

देशभक्ति या राष्ट्राभिमान की भावना देश के प्रत्येक नागरिक की आत्मीय और गौरव की भावना होती है। आजादी के पूर्व कालखंड में विदेशी शासनकर्ताओं के विरुद्ध हमारे क्रांतिकारियों ने स्वाधीनता आदोलन को बढ़ावा देने हेतु विभिन्न पद्धतियों से लोकजागरण करके लोगों में राष्ट्रीय चेतना का निर्माण किया। इस चेतना के फलस्वरूप लोगों में अन्याय के विरुद्ध लड़ने की उर्जा निर्माण हुई। आजादी का जो सुनहरा सपना देखा गया था उसकी पूर्ति भी लोगों की राष्ट्रनिष्ठा, बलिदान की कामना तथा उत्कट देशप्रेम के कारण ही हुई।

किसी भी देश के देशवासियों के मन सें राष्ट्राभिमान की भावना का अनन्य महत्त्व रहता है। राष्ट्राभिमान की भावना स्वयंप्रेरित होती है। अनेक राष्ट्रीय नेताओं, क्रांतिकारियों, साहित्यकारों आदि ने भी राष्ट्र गौरव और राष्ट्रीय सम्मान की भावना को निरंतर कायम रखने का प्रयास किया है। देशभक्ति को बढ़ावा देने में जितना बहुमूल्य सहयोग उपर्युक्त घटकों का रहा, उतना ही महत्त्व हमारे फिल्मी जगत और उनके अमर गीतों का रहा है। इसमें अनेक लोकगीत भी सम्मिलित किए जा सकते हैं। इन गीतों ने मातृभूमि के विषय में अनन्य भक्ति का परिचय दिया है। विभिन्न गीतकारों ने अपनी कोमल, ओजस्वी तथा उत्साहपूर्ण भावनाओं से मातृभूमि का यथार्थ स्वरूप अभिव्यक्त करते हुए अपनी प्रतिबद्धता का निर्वाह किया। कवि प्रदीप इसका सर्वोत्तम प्रमाण हैं, जिनके गीतों ने अपने देश के प्रति लोगों में अभिमान, स्नेह, सम्मान की भावना को दृढ करने का सराहणीय कार्य किया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी मातृभूमि की गौरवपूर्ण प्रशंसा अनेक क्षेत्रों में निरंतर दिखायी देती है। फिल्म लोगों के मनोरंजन का उत्कृष्ट साधन है। साथ ही लोगों में विशेष वैचारिक दृष्टिकोण निर्माण करने, उनकी भावनाओं को प्रबल करने में भी फिल्मों का बहूमूल्य योगदान है। वास्तव में जबसे फिल्म निर्माण का सिलसिला शुरू हुआ तब से फिल्मी गीतों ने न केवल देशवासियों की प्रशंसा बटोरी बल्कि उनके हृदय पर अमिट छाप बनकर सदा स्मृतियों में अंकित रहे।

वर्तमान युग के अनेक फिल्मी गीतों में राष्ट्रीयता की प्रखर भावना का परिचय प्राप्त होता है। स्वार्थरूप से देखा जाए तो गीत शैली आत्माभिव्यक्ति का प्रबल साधन है। आजादी की लडाई ने तो कवियों, गीतकारों को एक आत्माभिव्यक्ति का गरिमामय स्वर प्रदान किया। लेकिन आजादी के बाद भारत-चीन लडाई, भारत-पाकिस्तान लडाई, कारगिल की लडाई, जैसी घटनाओं ने देशवासियों की राष्ट्रीय भावना को प्रेरित किया इसका गुणगान और दर्शन अनेक गीतों में प्राप्त होता है। ''गुलाम देश में ही राष्ट्रीय भावना की धारा जीवंत और शक्तिशाली हो जाती है।''[1] ऐसी कई विद्वानों की धारणा है परंतु स्वतंत्र राष्ट्र में राष्ट्रीय भावना को इतने सीमित और संकुचित रूप में नहीं देखा जा सकता है। जन्मभूमि के प्रति प्रेम, स्वर्णिम अतीत, प्रकृति प्रेम, सामाजिक सुधार का आग्रह, वीर पुरुष-नेताओं की स्तुति व पूजा देश की उन्नति के प्रयास, संस्कार और परंपराओं का महत्त्व पर्व - त्यौहारों की गरिमा, स्वभाषा, स्वदेश, स्वधर्म का

अभिमान और गुणगान, एकता व अखंडता का वर्णन, भाईचारा, आत्मीयता की भावना, सामाजिक सौहार्द की प्रवृत्ति आदि जैसे अनगिनत मुद्दे हैं, जिनके माध्यम से आधुनिक फिल्मी गीतों ने अपनी एक विशेष पहचान निर्माण की है। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित अधिकांश फिल्मी गीत प्रत्येक युग में अमर हुए दिखायी देते है। इन गीतों को अधिक सजीव, यथार्थ, ओजस्वी विद्रोही और क्रांतिकारी बनानेवाले गीतकार भी लोकप्रिय और लोकचर्चित बने हुए हैं।

21वीं सदी के अनेक फिल्मी गीत ऐसे हैं, जिन्होंने राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ावा दिया और लोगों के हृदय पर राज भी किया। अनेक ऐसे गीत हैं जिनमें बलिदान की कामना, स्वदेश का गुणगान, राष्ट्रगीत और राष्ट्रीय गीत का महत्त्व, देश की विभिन्नता का सुनहरा दर्शन, मातृभूमि का गौरव और उसे अभिवादन, सांस्कृतिक एकात्मता की प्रशंसा, स्वतंत्रता, समता, आत्माभिव्यक्ति जैसे राष्ट्रीय मूल्यों का गुणगान करके लोगों के दिलो दिमाग को उत्साहित, प्रेरित करते हुए अपनी आवाज, बुलँद करते नजर आते है। 21 वीं सदी में 'द लिजेंड ऑफ भगतसिंह', 'एल.ओ.सी.कारगिल', 'स्वदेश', 'वीर-जारा', 'फना', 'रंग दे बसंती', '23 मार्च शहीद', 'ए.बी.सी.डी. - 2', 'राजी', 'केसरी' आदि जैसे कई हिंदी फिल्मों कें गीतों में राष्ट्रीय भावना का स्वर प्रखरता से अभिव्यक्त हुआ है। उनमें से अनेक ऐसे गीत हैं, जो छोटे बच्चों से लेकर वृद्ध नागरिकों के हृदय में भी हलचल उत्पन्न करते हैं। इन गीतों में व्यक्त 'राष्ट्रीय भावना' को इस तरह देख सकते हैं- 2002 में प्रसारित '23 मार्च 1931 शहीद' और 'द लिजेंड ऑफ भगतसिंह' इन दोनों फिल्मों में

''मेरा रंग दे बसंती चोला, मेरा रंग दे बसंती चोला, हो आज रंग दे हो माये रंग दे मेरा रंग दे बसंती चोला....''[2] यह गीत आजादी के लिए बलिदान करने वाले अमर शहीदों की अमर गाथा है। देशभक्ति, राष्ट्रनिष्ठा की सर्वोच्च भावना की सजीव हुंकार इन गीतों में अभिव्यक्त हुई है। देश की युवा पीढी के सामने राष्ट्रभक्ति का आदर्श कायम रखने का कार्य इस गीत ने किया है। देश के लिए अपने प्राणों को निछावर करने वाले वीर शहीदों की पावन स्मृतियों को, कार्यों को अभिवादन करने एवं उनका बलिदान व्यर्थ न जाने हेतु कार्य करने की प्रेरणा प्रस्तुत गीत के माध्यम से प्राप्त होती है। राष्ट्रीय भावना की बेजोड मिसाल के रूप में इस गीत को देखा जाता है। ''देश मेरे ,देश मेरे मेरी जान है तू / देश मेरे, देश मेरे, मेरी शान है तू,/मिटाने से नहीं मिटती, डराने से नहीं डरते / वतन के नाम हम सर कटाने से नहीं डरते....''[3]

'द लिजेंड ऑफ भगतसिंह' (2002) फिल्म का यह देशभक्ति से प्रेरित गीत जीवन में अन्य सभी घटकों से अधिक अपने देश को सर्वाधिक महत्त्व देने की भावना को अभिव्यक्त करता है।

अंबर हेठाँ धरती वसदी ऐथे हर रूत हॅस दी हो
किन्ना सोना देश है मेरा, देश है मेरा, देश है मेरा.....
धरती सुनहरी अंबर नीला हो..../ धरती सुनहरी अंबर नीला हो /
हर मौसम रंगीला / ऐसा देश है मेरा हो..... ऐसा देश है मेरा.....।

यह गीत प्रत्येक हिन्दुस्तानी व्यक्ति को ही नहीं अपितु विदेशी लोगों को भी हिन्दुस्तान

की पहचान कराता है। यहाँ के मौसम, भाषा-बोली, त्यौहार-उत्सव, संस्कार, खानपान, रीति-रिवाज, बुजुर्गों का सम्मान, रहन-सहन आदि का जो सूक्ष्म और अनुपम वर्णन इस गीत में अभिव्यक्त हुआ है, जिससे हर व्यक्ति का हृदय अभिमान से भर उठता है। इस देश में मेहमानों को भगवान कहा जाता है यह पंक्ति तो हमारे देश की गौरवशाली महिमा को और भी अधिक मंडित करती है। राष्ट्रीयता का संबंध केवल सरहद की लडाई से नहीं बल्कि इन सीमाओं के अंदर खडा देश आदर्श और सम्मान की प्राप्ति का हकदार बने इसके लिए किए गए कार्य और प्रयास भी राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत होते हैं। 2006 की 'फना' फिल्म का 'देश रंगीला' यह गीत भी हिन्दुस्तान की प्राकृतिक सुषमा को सजीवता से प्रकट करता है। उसमें भी अपने देश की संस्कृति और सभ्यता का सूक्ष्म वर्णन हुआ है। यह गीत वर्तमानकाल में राष्ट्रीय एवं सार्वजनिक समारोह का प्रमुख आकर्षण बना हुआ है। 2015 की 'ए.बी.सी.डी-'2 फिल्म का लोकचर्चित गीत

'इक तेरा नाम साँचा...../ मन मेरियां रे बाँचा
बस नाम तेरा माँ / वन्दे मातरम....''

इस गीत में मातृभूमि के प्रति अभिमान की भावना व्यक्त की है। एक बार नहीं सौ बार बलिदान करने की कामना प्रत्येक देशवासी के मन में राष्ट्रनिष्ठा की चेतना को बलशाली बनाती है। मातृभूमि को वंदन करने के ये स्वर हमारे हृदय में राष्ट्रीय भावना को जागृत करते है। स्वयं के कार्यों से देश को उँचा उठाने की भावना निश्चित ही प्रेरणादायी है।

2018 की फिल्म 'राजी' का प्रसिद्ध देशभक्ति गीत ''ऐ वतन, वतन मेरे आबाद रहे तू मैं जहाँ रहू जहाँ में याद रहे तू.....''

यह गीत अपना वतन हमेशा सुरक्षित रहने और रखने की आकांक्षा को व्यक्त करता है। इतना ही नही अपने देश को ही अपने जीवन की मंजिल, पहचान, बुनियाद बनाकर देश पर कोई भी संकट न आए इसके लिए केवल प्रयास ही नहीं बल्कि कुर्बानी देने की भावना प्रत्येक भारतीय का सीना चौड़ा करती है। 2019 की सबसे लोकचर्चित फिल्म 'केसरी' का सुप्रसिद्ध गीत-

''तलवारों पे सर काट दिए / अंगारों में जिस्म जलाया है/
तब जाके कहीं हमने सर पे / ये केसरी रंग सजाया है /
ए मेरी जमीं अफसोस नही / जो तेरे लिए सौ दर्द सहे /
महफूज रहे तेरी आन सदा / चाहे जान ये मेरी रहे ना रहे.../
तेरी मिटटी में मिल जावाँ / गुल बनके खिल जावाँ / इतनी सी है दिल की आरजू''।

इस गीत में देशभक्ति की इतनी उत्कट भावना व्यक्त की है कि आनेवाली अनेक पीढ़ियों के लिए यह गीत हृदयस्पर्शी बन गया है। वर्तमानकाल का सर्वाधिक राष्ट्रीय भावना को उर्जा प्रदान करनेवाला यह गीत देश के लिए मर मिटने की दिल में आरजू व्यक्त करता है। व्यक्तिगत माया-मोह, स्वार्थ-भ्रष्टाचार में लिपटे लोगों के लिए ये गीत देश के काम आने की सीख देता है। हृदय की धडकन, खून का प्रत्येक कतरा भी देश के लिए उपयोगी सिद्ध हो ऐसी आकांक्षा निश्चित ही देशभक्ति का सजीव प्रमाण है।

निष्कर्ष :- देश कीआजादी के लिए प्राणों का बलिदान देनेवाले क्रांतिकारियों का

त्याग, समर्पण, उत्कट राष्ट्रनिष्ठा की भावना के साथ-साथ देश का गौरव, सन्मान, यहाँ की सांस्कृतिक परंपराएँ उसका आर्दश स्वरूप आदि का महत्त्व निरंतर देशवासियों के हृदय में कायम रखने का कार्य अनेक भाषाओं के गीतों ने किया है। हजारों लोगों के बलिदान से प्राप्त आजादी का मूल्य आनेवाली पीढ़ियों तक पहुँचाना और अपनी मातृभूमि की उन्नति के लिए प्रयासरत रहने की भावना निश्चित ही राष्ट्रीय भावना को दृढ़ बनाती है। इन गीतों ने निश्चित ही देश के गौरव , सम्मान और महत्त्व में वृद्धि की है ऐसा कहना अतिशयोक्ति न होगी।

संदर्भ :

1. आधनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ.सूर्यनारायण रणसुभे, विकास प्रकाशन, कानपुर, 208027, द्वितीय संस्करण, 2008,पृष्ठ -79
2. https://www.hinditracks.in 27/09/2022, 11:30 A.M.
3. https://www.lyricinhindi.com 27/09/2022 11:35 A.M

प्र. प्राचार्य,
क्रांति अग्रणी जी. डी. बापू लाड महाविद्यालय,
कुंडल, तहसिल - पलुस, जिला - सांगली (महाराष्ट्र)

'21 वीं सदी की हिंदी फिल्मों में राष्ट्रीय भावना'

प्रा. एस. ए. वनिरे

फिल्में समाज का आईना होती हैं। फिल्मों में समाज को प्रभावित करने और हमारे सोचने-समझने का नजरिया बदलने की शक्ति होती है। फिल्मों का सबसे ज्यादा और गहरा प्रभाव युवा पीढ़ी पर पड़ता है। 21 वीं सदी के इस दौर में आज समस्त विश्व पर सबसे ज्यादा प्रभाव जिस माध्यम का है, वह है। हमारे रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन चिंतन, आदि पर ये फिल्में अपना गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। सिनेमा के द्वारा ही मानव सभ्यता का यथार्थ चित्रण हमारे सामने उपस्थित होता है। सिनेमा ने विश्व संस्कृति की अवधारणा को नये आयाम दिए हैं, मानवीय संवाद बनाये रखने के लिए तथा जनसंचार के सशक्त माध्यम के रूप में आज सिनेमा समाज की सबसे बड़ी जरूरत बन गया है।

भारतीय सिनेमा की शुरूआत 1913 से मानी जाती है। भारत की पहली मूक फिल्म 'राजा हरिशचंद्र' थी। इसके निर्माता दादासाहेब फालके थे। दादा साहब फालके के भारतीय सिनेमा में आजीवन योगदान के प्रतीक स्वरूप उनके जन्म शताब्दी वर्ष 1969 में भारत सरकार द्वारा दादा साहेब फालके पुरस्कार की स्थापना उनके सम्मान में की गयी। आज भारत में सिनेमा का वह सबसे प्रतिष्ठित पुरस्कार हो गया है। भारतीय सिनेमा ने स्वतंत्रता आंदोलन के समय काफी अहम भूमिका निभायी है। भारत को स्वतंत्रता दिलाने में स्वतंत्रता सेनानियों ने जितना योगदान दिया है, उतना ही योगदान भारतीय सिनेमा ने भी दिया है। उस काल में भारतीय सिनेमा ने न केवल प्रचारक की भूमिका निभायी बल्कि लोगों के अंदर देशभक्ति की भावना जगाने का भरसक प्रयास किया। आज की पीढ़ी को उस समय का आभास कराने के लिए ये फिल्में काफी हद तक मदद करती हैं।

हिंदी फिल्म जगत में उस समय कई ऐसी फिल्में बनीं जो आज भी स्वाधीनता संग्राम की याद दिलाती हैं। आज भी ये फिल्में देखने के बाद लोगों के दिलों में देशभक्ति की भावना जग उठती है। जब भारत में स्वतंत्रता संग्राम की आवाज बुलंद हो रही थी, तभी हिंदी सिनेमा की आवाज भी आंदोलन की आवाज बनने लगी थी। फिल्मों में चित्रित देशभक्ति पर गीत सुनते ही लोगों के दिलों की धड़कनें बढ़ने लगती थीं। उन्हें देश पर मर मिटने के लिए प्रेरणा मिल रही थी। भारतीय सिनेमा ने गुलामी भी देखी थी और आजादी भी। आजादी मिलने के बाद भी देशभक्ति पर बहुत सारी फिल्में बनायी गयीं जो बॉक्स ऑफिस पर सुपरहिट हो गयीं। आज 21वीं सदी में भी काफी सारी देशभक्ति पर फिल्में बनती हैं, जो हमें देशप्रेम के लिए प्रेरित करती हैं। आईना वही है, बस तस्वीर बदल गयी है। आज कल जो फिल्म बन रही है, वह सही मायने में हमें आजादी का नया आईना दिखाती है। सिनेमा के मजबूत कंधों पर देश-काल और सामाजिक-दायित्व का दोहरा बोझ हुआ करता है। ये फिल्में हमें बताती हैं आजादी के नये मायने-

21 वीं सदी की देशभक्ति पर कुछ बनी ऐसी फिल्में हैं, जो अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह कर देश की युवा पीढ़ी में देशभक्ति की भावना जागाने की कोशिश करती हैं।

लगान (2001)

इस फिल्म का नायक भुवन भारत है। जिसके पास अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए हथियार न होते हुए भी वह केवल आत्म बल के भरोसे लड़ाई लड़ता है। जीत के लिए बस एक मौके की उसे तलाश थी। हारने के कई मौकों के बावजूद बेफिक्र भुवन अपनी मिट्टी व अपने लोगों के लिए आखिरी साँस तक लड़ता रहता है और अपनी जिद के कारण जीत भी जाता है।

द लीजेंड ऑफ भगत सिंह (2002)

'द लीजेंड ऑफ भगत सिंह' एक ऐतिहासिक जीवनी वाली फिल्म है, जो हमें भगत सिंह की कहानी बताती है कि कैसे इस युवा क्रांतिकारी ने भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ सशस्त्र प्रतिरोध किया और आने वाली कई पीढ़ियों को प्रेरित किया।

स्वदेश- (2004)

इस फिल्म का नायक मोहन भार्गव बेहतर जिंदगी की तलाश में देश छोड़कर भागना चाहता है। वो नासा में रहता है लेकिन उसकी जड़ें भारत में है। वह चाहकर भी इनसे अलग नहीं हो पाता। बाद में वह उस बुनियादी समस्याओं को ठीक करने में जुड़ जाता है, जो नवयुवकों को देश छोड़ने पर मजबूर करती हैं।

लक्ष्य (2004)

एक बेरोजगार लक्ष्यहीन, गैर-जिम्मेदार व्यक्ति सेना में शामिल हो पाता है तो युद्ध के मैदान में नायक के रूप में परिपक्व हो जाता है क्यों कि वह सीखता है कि अपने देश का प्रतिनिधित्व करना क्या है।

नेताजी सुभाष चंद्र बोसः द फॉरगॉटन हीरो (2004)

यह फिल्म भारतीय नेता सुभासचंद्र बोस जी के जीवन के आखरी पाँच वर्षों पर फिल्मायी गयी है। भारतीय राष्ट्रीय सेना (आई एन ए) के जरिए उन्होंने क्या-क्या हासिल किया जो कोई और नहीं कर सकता, यह प्रस्तुत फिल्म में बताया गया है।

रंग दे बसंती (2006)

डायरेक्टर राकेश ओमप्रकाश मेहरा की इस फिल्म ने अमीर खान की जिंदगी ही बदल दी। प्रस्तुत फिल्म द्वारा नवयुवकों को संदेश दिया गया है, जो उन्हें सोचने के लिए मजबूर करता है। यह फिल्म एक क्रांति है जो युवाओं के दिमाग में एक मौका लेकर आई थी और देश परिपूर्ण नहीं है, इसकी आलोचना करने की बजाय इसे अपनाने और परिपूर्ण बनाने का संदेश देती है।

लगे रहो मुन्नाभाई (2006)

लगे रहो मुलाभाई हमें यह संदेश देती है कि महात्मा गांधी जी के सिद्धांत अभी भी हिंसा, अपराध और असहिष्णुता की दुनिया पर कैसे लागू होते हैं। यह फिल्म गांधीगिरी के तत्व नये जमाने को भी अपनाने के लिए प्रेरित करती है।

1971 (2007)

यह फिल्म 6 बहादूर सैनिकों के उपर फिल्मायी गयी है, जो पाकिस्तान सेना के चंगुल से बच निकलते है और अपने घर की यात्रा के लिए बलिदान के साथ सम्मान और साहस के साथ मौत का जोखिम उठाते हैं।

चक दे इंडियाः (2007)

चक दे इंडिया एक ऐसी फिल्म है जिसमें एक बदनाम हॉकी खिलाड़ी अपना सम्मान वापस पाने के लिए महिला राष्ट्रीय टीम को प्रशिक्षित करता है। इसमें खेल राष्ट्रीयता मिलती है। यह फिल्म केवल राष्ट्रीयता का जश्न नहीं मनाती बल्कि हाकी में खोई हुई रूचि को भी वापस लाती है।

उरी : द सर्जिकल स्ट्राइक (2016)

सन् 2016 में जम्मू और कश्मीर के उरी सेक्टर में स्थित भारतीय सेना के स्थानीय मुख्यालय पर आतंकवादियों ने हमला किया था। इस हमले में सेना के करीब 18 जवान शहीद हुए थे। इसके 11 दिन बाद भारतीय सेना ने पाकिस्तान में घुसकर सर्जिकल स्ट्राइक की थी और आतंकवादियों के कई ठिकानों को तहस-नहस कर दिया था। विक्की कौशल और यामी गौतम पर यह फिल्म फिल्माई गयी है।

राजी (2018)

यह एक ऐसी जासूसी लड़की की कहानी है जो कश्मीरी मुस्लिम महिला है। उसकी शादी एक पाकिस्तानी आर्मी अफसर से हुई थी, जो भारत संबंधी संवेदनशील जानकारियाँ युद्ध के समय पहुंचाती थी। अपनी पहचान छुपाने के बावजूद भी वह बहादुरी, त्याग और देशभक्ति की असली परिभाषा बताती है।

परमाणु : द स्टोरी ऑफ पोखरण (2018)

सन् 1998 में भारत ने अंतरराष्ट्रीय दबाव को दरकिनार करते हुए परमाणु शक्ति हासिल की थी। ये फिल्म इसी पर आधारित थी। फिल्म में जॉन अब्राहम ने आई. ए. एस. का किरदार निभाया था।

सत्यमेव जयतेः (2018)

इस फिल्म मे जॉन अब्राहम ने एक ऐसे व्यक्ति का किरदार अदा किया है जो समाज के दुश्मन बन चुके एक-एक पुलिसवालों का खात्मा करता है।

हिंदी फिल्में हर युग में बदलती परिस्थितियों के साथ भारतीय समाज के हर रूप और रंग को किसी न किसी रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुई है। पिछले 75 वर्षों में हिंदी की अनेक यादगार फिल्मों ने लोगों में देशभक्ति का भाव, शौर्य, और देश के लिए बलिदान का भाव भरा है। फिल्मों के विषय स्वतंत्रता संघर्ष, आक्रमण और युद्ध, खेल, प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास, विद्रोह आदि रहे हैं लेकिन सबके मूल में भारतीय होना और देश के प्रति कर्तव्य का भाव रहा है। लेकिन आज के बॉलीवुड में कम संख्या में देशभक्ति की फिल्म बन रही है। पुराने जमाने में बंबई फिल्म उद्योग में देशभक्ति वाली फिल्मों की संख्या अधिक हुआ करती थी।

देशभक्ति एवं राष्ट्रीय भावना हिंदी फिल्मों के लिए पुराना विषय है। आजादी के पहले भी इस तरह की फिल्में बनती थीं और लोगों को देशभक्ति के लिए प्रेरित करती थीं। ये फिल्में सीधी तरीके से अंग्रेजी सत्ता से टक्कर नहीं लेती थीं बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से नागरिकों में देशभक्ति की भावना जागृत करती रहीं। आज आजादी के लगभग 75 साल बाद देश की स्थिति को देखते हुए फिल्म निर्माता अपने आसपास के यथार्थ को वाणी देना चाहते हैं, जिसके कारण आज 21 वीं सदी में भी ऐसी फिल्में बन रही हैं,

जो देश की कड़वी सच्चाइयों को बयान करती हैं और दर्शकों को इस सब के खिलाफ लड़ने के लिए उत्तेजित करती है। कई हिंदी फिल्मकार आज भी अपना देशभक्ति का दायित्व अच्छी तरह निभा रहे हैं।

संदर्भ :

1. Akhil Bharatiy Marathi Film Industry.
2. Isak Mujavar: Gatha Marathi Cinemachi Publication No. 115, Pune. Edition - 3 rd May 2012.
3. Sudhir Phadke: Shitrasharada Chieraman- Akhil Bharatiya Marathi Chitrapat Maha-mandal, Kolhapur. Publised 1982.
4. Patil Dinkar D. Patlacha Por,
5. Bhai Bhagat: Filmyateal Lokwadmaya Grah, Mumbai. First Edition- May 1996.
6. Pibiindia, word Press.com

7. विनोद भारद्वाज, कल, आज, कल, प.सं. 2006
8. डॉ. विजय महादेव गाडे, मीडिया साहित्यिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में, प. सं. 2016
9. डॉ. एस. वाय. होनगेकर, 21वीं शती का हिंदी साहित्य, प. सं. 2018

हिंदी विभाग, न्यु कॉलेज, कोल्हापुर

21वीं सदी में हिंदी सिनेमा और राष्ट्रीय भावना

डॉ. सौदागर साळूंखे

सिनेमा का कथ्य साहित्य और समाज से जुड़ा होता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य में उन्हीं बातों का लेखा-जोखा होता है, जो समाज में घटित होती हैं। इन घटित घटनाओं को देखने में दर्शकों की रुचि होती है। इसलिए सिनेमा उमंग और उत्साह बढ़ाने का कार्य करता है। जिन बातों से हम अपरिचित होते हैं, उन्हीं बातों से हम सिनेमा द्वारा परिचित हो जाते हैं। सिनेमा में मनोरंजन के साथ-साथ राष्ट्रीयता का भाव भी अब बढ़ने लगा है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी राष्ट्रीयता की भावना आगे पल्लवित करने का कार्य सिनेमा ने किया है, जिससे राष्ट्र और राष्ट्रीय भावना बनाए रखी जाए और उस पर कोई आँच न आए। लगभग सभी भाषाओं में राष्ट्रीय भावना को आधार बनाकर सिनेमा बनाया जा रहा है।

21वीं सदी के जो हिंदी सिनेमा राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत हैं, उनमें लगान (2001), लेजेंड ऑफ भगत सिंह, (2002) माँ तुझे सलाम (2002), गदरः एक प्रेमकथा (2003) एल. ओ. सी. कारगिल (2003), लक्ष्य (2004) स्वदेश (2004), मंगल पांडे, द रायझिंग (2005) रंग दे बसंती (2006), चक दे इंडिया (2007) भाग मिल्खा भाग (2013), गाझी अटैक (2014) राजी (2018), मनकर्णिकाः झाँसी की रानी (2013), उरीः द सर्जिकल स्ट्राइक (2019) केसरी भुजः द प्राइड ऑफ इंडिया (2021) आदि प्रमुख हैं।

खेल के माध्यम से राष्ट्र की एकता-अखंडता को आधार बनाकर लगान (2001) सिनेमा बनाया गया। बारिश की कमी के कारण किसान सूखे की चपेट में आ जाते हैं। फिर भी लगान दुगनी देनी पड़ती है। इसे माफ करने के लिए क्रिकेट खेल में जीतने की शर्त रखी जाती है। क्रिकेट से अपरिचित भारतीय किस प्रकार इस प्रतियोगिता को जीतते हैं और अपना लगान माफ कराते हैं, इसी को दर्शाते हुए आशुतोष गोवारीकर के निर्देशन में यह फिल्म बनी है।

व्यापार विवाद और सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक पर इस फिल्म का निर्माण किया गया है। लार जेल में भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु आदि स्वतंत्रता सेनानियों को गिरफ्तार कर बंदी बनाया और किस प्रकार पीडा दी गई, इसका घटनाक्रम इस फिल्म में पाया जाता है। इससे राष्ट्र के प्रति बलिदान की भावना को उजागर किया गया है। भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु आदि हँसते हुए सूली पर चढ़ जाते हैं, इसका प्रमुख चित्रण हुआ है। त्याग और समर्पण की भावना राजकुमार संतोषी ने बखूबी दिखाई है।

पाकिस्तान से होने वाली घुसखोरी और उनके नापाक इरादों को नाकाम करने का परिदृश्य 'माँ तुझे सलाम' (2002) फिल्म में पाया जाता है। सीमावर्ती इलाकों में स्थित नवयुवकों में आतंकवाद के दुष्परिणामों और नवजागरण का मुख्य कार्य भी इस फिल्म ने किया है।

देश विभाजन पर आधादित 'गदरः एक प्रेम कथा' (2003), निर्देशक अनिल शर्मा ने इस फिल्म का निर्माण किया। अलग मजहब के प्रेमी देश विभाजन में अलग हो जाते हैं। उनका पुनर्मिलन प्रसंग इस सिनेमा का कथानक है। तत्कालीन धर्म व्यवस्था की

भयावह परिस्थिति का वर्णन इसमें राष्ट्रीय भावना के परिप्रेक्ष्य में किया गया है।

पाकिस्तानी सैनिकों को खदेड़ने के लिए 26 जुलाई 1999 में ऑपरेशन विजय चलाया गया था। इसको आधार बनाकर निर्देशक जे. पी. दत्ता ने 'एल.ओ.सी. कारगिल' फिल्म का निर्माण 2003 में किया। लगभग 550 जवानों ने जिस प्रकार वीरगति प्राप्त की थी, इसका वर्णन पाया जाता है। राष्ट्रप्रेम और भारतीय सेना के प्रति आदर एवं सम्मान बढ़ाने का कार्य इस फिल्म ने किया है।

फरहान अख्तर द्वारा निर्देशित 'लक्ष्य' (2004) का कथानक कारगिल युद्ध पर आधारित है। कारगिल युदध एक ऐतिहासिक घटना है, जिसका मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय भावना बरकरार रखना रहा है। देश का विकास तभी संभव है जब उच्चशिक्षित लोग इसमें जुट जाएँ। यही दिखाने का कार्य आशुतोष गोवारीकर द्वारा निर्देशित फिल्म 'स्वदे-श' (2004) करती है। देश की कई समस्याओं को तकनीकी माध्यम से सुलझाना कितना आनंददायी होता है, यह इस फिल्म का वर्ण्य विषय है।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम सेनानी वीर सिपाही मंगल पांडे के जीवन पर आधारित 'मंगल पांडे : द रायजिंग स्टार' यह फिल्म केतन मेहता के निर्देशन में बनी है। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिशों के प्रति की गई बगावत ही मुख्य कथा है, जिससे राष्ट्र प्रेम उभर आया है। यही दिखाना फिल्म का उदेश्य रहा है।

रंग दे बसंती (2006) फिल्म का निर्माण ओमप्रकाश मेहरा ने किया है। उमंग, उत्साह, प्रेम, और क्रांति को कथ्य का आधार बनाकर इसमें राष्ट्र प्रेम दिखाया गया है। राष्ट्रीय खेल हॉकी की दयनीय स्थिति और उसके प्रमुख कारण आदि को आधार बनाकर सोच-विचार बदलने की आवश्यकता पर किस प्रकार राष्ट्रीय भावना निर्भर है, यह दिखाया है 'चक दे इंडिया' (2007) में। खेल में पिछड़ापन क्यों होता है, इसे बखूबी जयदीप साहनी ने निर्देशितत कर राष्ट्रीयता को उजागर किया है। खेल को ही माध्यम बनाकर वैश्विक स्तर पर राष्ट्रीय भावना दिखाना 'भाग मिल्खा भाग (2013) फिल्म का मुख्य उद्देश्य रहा है। इस फिल्म का निर्माण ओमप्रकाश मेहरा ने किया है।

संकल्प रेड्डी द्वारा निर्देशित गाझी अटैक (2014) फिल्म भारतीय नौसेना पर आधारित है। पीएनएस गाझी को 1971 में विशाखापट्नम तट पर किस प्रकार भारतीय नौसेना एस -21 में सवार देश वीरों ने डुबाया था इसका चित्रण पाया जाता है।

सन् 1971 में हुए भारत पकिस्तान युद्ध की पृष्ठभूमि पर आधारित निर्देशक मेघना गुलजार ने राजी (2018) फिल्म बनायी है। फिल्म के निर्माण में कश्मीरी मुसलमान लड़की के माध्यम से तत्कालीन परिवेश पर प्रकाश डाला है, जिसमें राष्ट्र उन्नति और राष्ट्र-प्रेम आपस में जुड़ी है।

राष्ट्रीय भावना किसी लिंगभेद को स्वीकार नहीं करती बल्कि समानता बनाए रखती है। इसको आधार बनाकर ईस्ट इंडिया कंपनी के विरुद्ध लड़ी झाँसी की रानी के जीवन पर आधारित मणिकर्णिका : झांसी की रानी (2019) फिल्म का निर्माण कंगना राणावत के निर्देशन में हुआ है। राष्ट्रीय भावना को केंद्र में रखकर ही उरीः द सर्जिकल स्ट्राइक और केसरी फिल्म का निर्माण 2019 में हुआ।

उपर्युक्त सभी सिनेमा के कथ्य में काल्पनिकता का जोड़ अवश्य है, फिर भी

मनोरंजन के साथ-साथ देश भावना में निहित त्याग, समर्पण, बलिदान की आवश्यकता और राष्ट्र-विकास का मुख्य हेतु यथार्थ रूप में अंकित हुआ है।

संदर्भ :

1. डा. महेंद्र मित्तल, भारतीय चलचित्र
2. सौ. भास्करराव, फिल्म और फिल्मकार
3. पारख जवरीमलल, लोकप्रिय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ

मा. ह. महाडिक कला व वाणिज्य माहविद्यालय मोडनिंब

‘समीचीन’ के लिए शुभकामनाओं सहित

श्रीमती सुनीता गुप्ता

पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष
एल. एस. रहेजा कॉलेज
सांताक्रुज (पश्चिम),
मुंबई - 400 054

21 वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना

डॉ. प्रकाश विठ्ठल शेटे

आज के दौर में भारतीय समाज में हिंदी सिनेमा की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है। हिंदी सिनेमा को फिल्म निमार्ता, निर्देशक, गीतकार, कलाकार, संगीतकार, फिल्म पटकथा लेखकों ने एक नये आयाम पर पहुँचाया है। पिछले 75 वर्षों में हिंदी की अनेक यादगार फिल्मों ने भारतीय समाज में देशभक्ति की भावना, शौर्य और देश के लिए बलिदान करने की भावना विकसित की है। 21वीं सदी के शुरू में देशप्रेम की भावना को जगाने वाली कुछ फिल्में रिलीज हुई हैं। इन फिल्मों के विषय स्वतंत्रता-संघर्ष, आक्रमण और युद्ध, खेल, विद्रोह, त्याग और प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास रहे हैं है। लेकिन सबके मूल में भारतीय होना तथा देश के प्रति कर्तव्य और त्याग की भावना दिखाई देती है। हिंदी सिनेमा की कहानियाँ, संवाद, गीतों से आज भारत गूंज उठता है। हिंदी सिनेमा के गाने, संवाद केवल सिनेमाघरों में ही नहीं अपितु फेसबुक, इन्स्टाग्राम रील्स जैसे सोशल मीडिया, यूट्यूब, जिओ सावन आदि पर धूम मचाते हुए बड़ी मात्रा में भारतीय तथा अभारतीयों के मन में देशभक्ति की भावना जगाने का काम करते हुए दिखाई देते हैं।

सिनेमा का उद्देश्य मनोरंजन होता है। साथ ही साथ सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा प्राकृतिक घटनाओं को आधार बनाकर समाज में त्याग की भावना को प्रकट करना भी होता है। डॉ. जालिंदर ईंगले कहते हैं कि 'साहित्य और सिनेमा समाज रूपी सिक्के के दो पहलू हैं। इनके बिना समाज की भावना एवं संवेदनाओं का कोई मूल्य निर्धारित नहीं हो सकता' राष्ट्र प्रेम से जुड़ी घटनाओं को आधार बनाकर समाज मन जागृत करने एवं मातृभूमि के प्रति त्याग की भावना निर्माण करने का सफल प्रयास हिंदी सिनेमा में निरंतर होता रहा है। ऐसे ही कुछ फिल्मों का जिक्र कर रहें हैं जिनमें प्रमुख रूप से लगान, माँ तुझे सलाम, गदर : एक प्रेम कथा, एल.ओ.सी. कारगिल, परमाणुः द स्टोरी ऑफ पोखरण, इंडियन, स्वदेश, मंगल पांडे, द गाझी अटैक, केसरी, उरीः द सर्जिकल स्ट्राईक, सुर्यवंशी, चक दे इंडिया, लक्ष्य आदि फिल्में देशभक्ति और देशप्रेम को जागृत करती हैं।

हिंदी फिल्म जगत में 2001 में रिलीज हुई 'गदरः एक प्रेम कथा' अनिल शर्मा द्वारा निर्देशित एक सफल प्रेम कहानी है। इस फिल्म में एक मोड़ इस तरह का आता है कि फिल्म देखते समय देशप्रेम की भावना उत्पन्न होती है। यह बॉलीवुड के इतिहास में सबसे खुले तौर पर देशभक्ति के दृश्यों में से एक के रूप में रैंक करेगा। सिनेमा की नायिका सकीना (अमीष पटेल) के पिता अशरफ अली (अमरीश पुरी) तारा सिंह (सनी देवल) को इस्लाम धर्म स्वीकारने और अपनी पत्नी सकीना को वापस पाने के लिए पाकिस्तान में रहने के लिए मजबूर करते हैं। तारा सिंह इस बात पर सहमत होता है किंतु, अशरफ अली जब पाकिस्तानी जनता के सामने तारा सिंह को कहते हैं 'हिंदुस्तान मुदार्बाद' कहो, तब तारा सिंह का हिंदुस्तानी रक्त खौल उठता है और वह 'हिंदुस्तान जिंदाबाद' चिल्लाता है जो कभी नहीं देखा गया था। जब भी यह दृश्य कोई भारतीय देखता है तो उसमें देशभक्ति और देशप्रेम का ऐसा जोश भर जाता है जो शब्दों में बयां

करना मुश्किल है।

'एल.ओ.सी. कारगिल' फिल्म पूरी तरह से 1999 के भारत-पाकिस्तान युद्ध की कहानी पर केंद्रित है। यह कारगिल युद्ध की जमीनी हकीकत को सामने लाने के साथ-साथ भारतीय सेना के साहस और वीरता को पूरी तरह से दर्शाती है। जे.पी. दत्ता के निर्देशन में बनी इस फिल्म में संजय दत्त, अजय देवगण, अभिषेक बच्चन, अशुतोष राना, सैफ अली खान, सुनील शेट्टी, करीना कपूर, रवीना टंडन, रानी मुखर्जी जैसे अनेक कलाकार हैं। इस फिल्म के ऐसे अनेक दृश्य हैं जो हर भारतीय के मन में देशभक्ति की भावना जागृत कराते है। भारत-पाकिस्तान युद्ध पर आधारित यह फिल्म 'ऑपरेशन विजय' नाम से भी जानी जाती है। वास्तविक घटना पर आधारित याने 3 मई, 1999 में कारगिल की उँची पहाड़ियों में पाकिस्तान के लगभग 5000 से अधिक सैनिक घुसखोरी करते हैं। उन्हें खदेड़ने के लिए ऑपरेशन विजय' चलाया जाता है। इस ऑपरेशन में 26 जुलाई, 1999 को भारतीय सैनिकों को जीत हासिल होती है। भारतीय तिरंगा कारगिल पहाड़ी पर लहराया जाता है। इस युद्ध में 550 भारतीय सैनिकों को वीरगती प्राप्त होती हैं तथा पाकिस्तान के लगभग 2700 से अधिक सैनिक मारे जाते हैं। दो महीने से ज्यादा चले इस युद्ध में भारतीय सैनिकों का हौसला बुलंद था। इस कथा पर बनी यह फिल्म रोचकता से भरी है और देशभक्ति, देशप्रेम से ओत-प्रोत है।

'द गाजी अटैक' सिनेमा भारत और पाकिस्तान के बीच हुए युद्ध पर आधारित है। फरवरी 2017 में रीलिज हुए इस सिनेमा में पनडुब्बी और नौसेना का साहस दिखाया है। समुद्र में हुए इस युद्ध के बारे में कम ही लोग जानते हैं। 1971 में जब भारतीय नौसेना के सबसे दमदार आईएनएस विक्रांत को नुकसान पहुँचाने के लिए पाकिस्तान समुद्र के रास्ते से अपनी पनडुब्बी 'गाजी' को भेजता है। नौसेना चीफ वी.पी. नंदा 'सर्च लँड' आपरेशन का गठन करते हैं, जिसकी जिम्मेदारी सौंपी जाती है। एस-21 पनडुब्बी के कप्तान रणविजय सिंह और ले. कमांडर अर्जुन आदि लोग मिलकर पाकिस्तानी पनडुब्बी का नामोनिशान मिटा देते हैं। इस कथा पर आधारित यह फिल्म भारतीय जनमानस में नौसेना के प्रति गर्व और देशप्रेम को जताती है। इस फिल्म का निर्माण संकल्प रेड्डी ने किया है। समुद्र के अंदर युद्ध दिखाने का मुश्किल काम निर्माता ने बखूबी किया है। इसी वर्ष दूसरी एक फिल्म रिलीज हुई जिसका नाम 'परमाणुः द स्टोरी ऑफ पोखरण' है। पोखरण की परमाणु परीक्षण की घटना को आधार बनाकर इस फिल्म का निर्माण किया गया है। इस फिल्म में अमेरिका जैसे शक्तिशाली राष्ट्र के सॅटेलाईट को चकमा देकर अश्वत रैना, हिमांशु शुक्ला की मदत से एक योजना बनाता है। कश्मीर में पाकिस्तान के खिलाफ युद्ध का माहौल तैयार करता है और पोखरण में सफल परमाणु परीक्षण करके हिंदुस्तानी जनता का सर गर्व से उँचा कर देता है। दुनिया भर में भारत को अणुशक्ति के लाइन में खड़ा कर देता है। फिल्म देखने से भारतीयों को भारतीय वैज्ञानिकों के प्रति गर्व महसूस होता है और देश के प्रति उनकी निष्ठा को दशार्ता है।

सन् 2019 में राष्ट्रीय भावना को केंद्र में रखकर 'उरीः द सर्जिकल स्ट्राइक' और 'केसरी' नामक दो सिनेमा सत्य घटना पर आधारित रीलिज हुए। भारत द्वारा पाकिस्तान पर किया गया सर्जिकल स्ट्राईक इसका मुख्य कथ्य है। पाकिस्तानी आतंकवादी उरी में

सेना के अड्डे पर हमला करते हैं। इस हमले में अनेक सिपाही वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं। इस बात का बदला लेनी की सफल कोशिस सर्जिकल स्ट्राईक है। 'उरी : द सर्जिकल स्ट्राईक' सिनेमा के निर्देशक आदित्य धर हैं। चार भागों में विभाजित यह सिनेमा जहाँ हमें भावुक बनाता है वहाँ कुछ प्रसंगों पर देशभक्ति का जज्बा दिखाकर खून खौला देता है। 'केसरी' सिनेमा के निर्देशक अनुराग सिंह है। 1897 में ब्रिटिश भारतीय सेना की 36वीं सिख रेजिमेंट की सारागढ़ी की लड़ाई को केंद्र में रखकर इसे बनाया गया है। ऐतिहासिक लड़ाई पर आधारित यह सिनेमा हमें राष्ट्रप्रेम की शक्ति देता है। देशभक्ति का गहरा रंग इसमें दिखाई देता है।

21वीं सदी के हिंदी सिनेमा राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हैं। भारत के प्रति प्रेम, त्याग और समर्पण की भावना महत्वपूर्ण है। यह भावना राष्ट्रविकास के लिए और सुरक्षा के लिए आवश्यक है। यथार्थ हमें इस भावना से जोड़े रखता है। सिनेमा की प्रासंगिकता, उनका प्रभाव श्वाश्वत है और निश्चित ही प्रेरणादायी है।

संदर्भ :

1. साहित्य और सिनेमा - डॉ. जालिंदर इंगळे
2. हिंदी सिनेमा और उसका अध्ययन - प्रो. रमा
3. सिनेमा : कल आजकल - विनोद भारद्वाज
4. इसके अतिरिक्त सिनेमा की जानकारी गुगल डिजनी प्लस, हॉटस्टार, यूट्यूब से ली गई है।

बाबूराव पाटील कला व
विज्ञान महाविद्यालय, अनगर
तहसील- मोहोळ, जि. सोलापूर

हिंदी साहित्य और सिनेमा

गौरी त्यागी
शोधार्थी

साहित्य और सिनेमा हमारे जीवन की नीरसता को कम करते हैं। साहित्य ज्ञान का सूचक है, वहीं सिनेमा मनोरंजन का साधन है। दोनों विधाएँ भिन्न हैं फिर भी ये दोनों एक दूसरे के संपूरक हैं। हिन्दी साहित्य पर आधारित अनेक फिल्मों का निर्माण हुआ है। सिनेमा के माध्यम से साहित्य प्रत्येक वर्ग के जनसमूह तक पहुँच सकता है और साहित्य से निर्माता को सिनेमा के निर्माण हेतु कहानी मिल जाती है। सिनेमा दृश्य-श्रव्य के माध्यम से तथा साहित्य पाठ के माध्यम से व्यापक स्तर पर जनसमूह को प्रभावित करते हैं।

साहित्य और सिनेमा समाज का प्रत्यक्ष चित्रण करता है। सिनेमा और साहित्य अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम हैं। सिनेमा के जन्म को लगभग 100 वर्ष ही बीते हैं जबकि साहित्य का इतिहास बहुत पुराना है। सिनेमा जनसमूह को व्यापक स्तर पर प्रभावित करता है क्योंकि इसे बच्चे-बूढ़े, शिक्षित-अशिक्षित सभी वर्गों के लोग आसानी से समझ पाते हैं। दोनों विधाओं का सम्बन्ध कला से है। सिनेमा दृश्य-श्रव्य माध्यम है अर्थात इसे देखने के साथ-साथ सुना भी जा सकता है लेकिन साहित्य को केवल पढ़ा जा सकता है। साहित्य शिक्षित वर्ग तक ही सीमित है जबकि सिनेमा में आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया जाता है इसलिए इसे कोई भी आसानी से समझ सकता है। दोनों विधाएँ अलग हैं लेकिन एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। साहित्य से सिनेमा को उत्तम कोटि की कहानी का आधार मिल जाता है। सिनेमा के माध्यम से साहित्य का सन्देश हर वर्ग के व्यक्ति को प्राप्त हो जाता है। इससे साहित्य को भी प्रसिद्धि प्राप्त होती है जिससे वह अधिक जनसमूह तक अपनी पहुँच बना लेता है। सिनेमा में जनमानस की भाषा प्रतिफलित होती है। पराधीनता के समय सिनेमा ने लोगों के मन में राष्ट्रप्रेम की भावना जागृत की और आजादी की लड़ाई में जोश के स्वर फूंके। सिनेमा ने भाषा के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की, लोगों को जागरूक बनाया और उन्नति की ओर अग्रसर किया। सामाजिक एवं रूढ़िवादी कुरीतियों से समाज को अवगत कराने में सिनेमा ने प्रमुख भूमिका निभाई है। साहित्य हमारे समक्ष समाज का प्रतिरूप प्रस्तुत करता है। किसी भी देश का साहित्य, हमें वहां के लोकजीवन, संस्कृति, समाज, पिछले समय में घटी घटनाओं से अवगत कराता है। साहित्य हमारे मनोभावों, इच्छाओं और सामाजिक मूल्यों को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। वहीं सिनेमा की बात की जाए तो सिनेमा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। सिनेमा की आज तक की यह यात्रा बेहद रोचक है। सिनेमा ने सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक स्थितियों के अनुसार साहित्य, संगीत, चित्रकला, शिल्प, नाट्यकला के कलास्वरूपों को अपने में आत्मसात किया और समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। सिनेमा ने ग्लोबल विलेज की धारणा को साकार रूप देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

सिनेमा के जन्म से ही सिनेमा और साहित्य का अंतः संबंध देखने को मिलता है। सिनेमा की आधारशिला साहित्य की भूमि पर ही रखी गई है। साहित्य ने सिनेमा को समृद्ध बनाने में अहम भूमिका निभाई है। साहित्य ने सिनेमा के माध्यम से चिंतन को

एक नई अभिव्यक्ति दी है। वहीं सिनेमा ने कला के माध्यम से साहित्य को जीवंतता प्रदान की है। सिनेमा का शुरूआती दौर पौराणिक साहित्य से प्रभावित रहा है। भारतीय सिनेमा के जनक दादा साहब फाल्के ने 1913 में भारत की पहली मूक फिल्म 'राजा हरीश्चंद्र' का निर्माण किया। इसके बाद, 1913 में 'मोहिनी भस्मासुर', 1914 में 'सत्यवान सावित्री', 1917 में 'लंकादहन', 1918 में 'श्री कृष्ण जन्म', 1919 में 'कालिया मर्दन' का निर्माण किया गया। दादा साहब फाल्के ने लगभग 125 फिल्मों का निर्माण किया था। उनमें से अधिकतर फिल्में पौराणिक-धार्मिक कथाओं पर आधारित थीं। पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर फिल्म का निर्माण करने का कारण यह था कि इन कथाओं से अधिकतर लोग वाकिफ थे और इनकी पृष्ठभूमि को आसानी से समझ सकते थे। इन फिल्मों का निर्माण बेशक पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर किया गया लेकिन इन पौराणिक कथाओं का मूल तो साहित्य में ही मिलता है। इसलिए इन फिल्मों को साहित्य आधारित कहना गलत नहीं है। सिनेमा के निर्माण में एक कहानी की आवश्यकता होती है, जो कि साहित्य से आसानी से प्राप्त हो जाती है। 1913 से 1925 तक मुख्यतः धार्मिक कथाओं को आधार बनाकर फिल्मों का निर्माण किया गया। इनमें 'दादाकर्ण', 'प्रहलाद चरित्र', 'अहिल्या उद्धार', 'श्री कृष्ण भगवान', 'कबीर कमल', 'कालिया मर्दन', 'विश्वामित्र मेनका', 'महाभारत', 'श्रीराम जन्म', 'कंस वध', 'जगदंबा', 'जगत जननी', 'भीष्म प्रतिज्ञा', 'गुरू द्रोणाचार्य', 'चंद्रकांता', 'देवी अहिल्याबाई', 'भक्त प्रहलाद', 'कीचक वधम', 'हनुमान विजय' आदि जैसी फिल्में शामिल थीं। 1931 में आर्देशिर ईरानी ने पहली सवाक् फिल्म 'आलम आरा' का निर्माण किया। इसके पश्चात् फिल्मों का दौर ऐसा चला जो आज तक नहीं रुका।

हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद सिनेमा की सशक्तता से भली-भाँति परिचित थे। वे सिनेमा के माध्यम से समाज में व्याप्त रूढ़ियों, व्याधियों और शोषण के विरूद्ध अपनी आवाज उठाना चाहते थे। उनके उपन्यास 'सेवासदन' पर निर्देशक नानूभाई देसाई ने 'बाजारे हुस्न' फिल्म का निर्माण किया था। अजंता सिनटोन के लिए प्रेमचंद की लिखी कहानी पर 'गरीब मजदूर', 'सेठ की बेटी', 'मिल मजदूर' आदि कई नामों से फिल्मों का निर्माण किया गया। लेकिन निर्देशक, निर्माताओं ने इसमें कई परिवर्तन किए जिससे प्रेमचंद बहुत व्यथित हुए। 28 नवम्बर 1934 को जैनेन्द्र कुमार को लिखे पत्र में उन्होंने अपनी अंतर्व्यथा जाहिर की। इस पत्र में उन्होंने लिखा 'मैं जानता था मिल-मजदूर आपको पसंद नहीं आएगी। मैं जिन इरादों से यहाँ आया था उन में से एक भी पूरा होता नजर नहीं आता। ये प्रोड्यूसर जिस ढंग की कहानियाँ बनाते आए हैं उसकी लीक से जरा भर नहीं हट सकते।' वर्ष 1942 में मोहन भवनानी ने उनके 'रंगभूमि' नामक उपन्यास पर फिल्म बनाई। यह फिल्म यथार्थवादी थी। इसलिए यह फिल्म आर्थिक दृष्टि से उतनी लाभप्रद साबित नहीं हुई। ए.आर. केदार ने प्रेमचंद की कहानी 'त्रिया चरित्र' पर स्वामी नाम से फिल्म का निर्माण किया। इसके बाद उनके उपन्यासों पर कई फिल्मों का निर्माण हुआ।

सिनेमा के शुरुआती वर्षों में कई ऐसी फिल्में सामने आईं, जो साहित्यिक कृतियों पर आधारित थीं। बिमल रॉय ने सलिल चौधरी की कहानी पर 'दो बीघा जमीन', सुबोध

घोष की कहानी पर 'नौकरी', शरतचंद्र के उपन्यास पर 'बिराज बहु' नामक फिल्में बनाई। जिनमें से 'दो बीघा जमीन' को उस वर्ष की सर्वश्रेष्ठ फिल्म घोषित किया गया। वर्ष 1959 में प्रेमचंद की प्रसिद्ध कथा 'दो बैलों की कथा' पर 'हीरा मोती' नाम से फिल्म बनाई गई। इस फिल्म के फिल्मांकन में सहजता और स्वाभाविकता थी। वर्ष 1962 में प्रेमचंद के कालजयी उपन्यास 'गोदान' पर त्रिलोक जेटली ने इसी नाम से फिल्म का निर्माण किया। इस फिल्म में अभिनेता राजकुमार को मुख्य भूमिका में लिया गया था। इसके बाद वर्ष 1966 में ऋषिकेश मुखर्जी ने 'गबन' पर इसी नाम से फिल्म बनाई। सत्यजीत रे ने प्रेमचंद की रचनाओं 'सदगति', 'शतरंज के खिलाड़ी' पर फिल्म का निर्माण किया। वर्ष 2006 में विनोद कुमार ने प्रेमचंद की रचना 'कफन' पर फिल्म बनाई। प्रेमचंद की कृतियों ने पाठकों के मन पर गहरा प्रभाव डाला। उनकी कृतियों ने समाज सुधारक की भूमिका भी निभाई। जो छाप प्रेमचंद ने अपने पाठकों पर छोड़ी वह प्रभाव निर्देशक अपने दर्शकों पर नहीं बना सके। उपन्यासकार भीष्म साहनी के प्रसिद्ध उपन्यास 'तमस' पर प्रसिद्ध निर्देशक गोविन्द निहलाणी ने 1988 में फिल्म का निर्माण किया। यह फिल्म भारत पाक विभाजन के दौरान हुए दंगों में हिंदू-मुसलमान के नाम पर इंसानियत का जो मखौल बनाया गया उसका चित्रण करता है। इस उपन्यास ने लोगों को अंदर तक झकझोर कर रख दिया। उस समय पूरे देश में 'तमस' को लेकर बहस का वातावरण देखने को मिला।

वर्ष 1962 में बी. आर. चोपडा ने आचार्य चतुरसेन शास्त्री के प्रसिद्ध उपन्यास 'धर्मपुत्र' नाम से ही फिल्म बनाई। यह एक प्रेरणास्त्रोत फिल्म थी। इस फिल्म में हिंदू-मुस्लिम के बीच स्नेह संबंधों को बढ़ावा दिया गया। वर्ष 1965 में आर.के. नारायणन के अंग्रेजी उपन्यास गाइड पर इसी नाम से फिल्म का निर्माण किया। इस फिल्म को काफी लोकप्रियता मिली। विजय आनंद के निर्देशन में वहीदा रहमान और देवानंद के अभिनय-कौशल ने फिल्म में जीवंतता ला दी थी। फणीश्वरनाथ 'रेणु' की कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर वर्ष 1966 में बासु भट्टाचार्य के निर्देशन में 'तीसरी कसम' नाम से बनी फिल्म में भारतीय परिवेश की सादगी को दिखाया गया। यह फिल्म व्यावसायिक रूप से तो सफल सिद्ध नहीं रही लेकिन फिल्म के श्रेष्ठ निर्देशन और अदाकारों के अभिनय के कारण इस फिल्म को श्रेष्ठ फिल्मों की श्रेणी रखा जाता है।

1965 में भवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' पर केदार शर्मा के निर्देशन में फिल्म बनी। 'इस फिल्म का कथानक उपन्यास के अनुरूप जीवंत था। संवादों में सजीवता और मर्मस्पर्शी प्रभाव था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि केदार शर्मा केवल साठ हजार की लागत से बनाई गई इस फिल्म की आत्मा को उभारकर प्रस्तुत करने में सफल हो गए।' 1969 में राजेंद्र यादव के उपन्यास 'सारा आकाश' पर बासु चटर्जी के निर्देशन में इसी नाम से फिल्म बनाई गई। यह फिल्म पारिवारिक स्थितियों को दिखाती है। इस फिल्म ने सिनेमा जगत में एक नई लहर की शुरूआत की।

भारत की अन्य भाषाओं में रचित साहित्यों का अनुवाद हुआ और उन पर सफल फिल्में भी बनीं। रविन्द्रनाथ टैगोर के उपन्यासों और कहानियों का दृश्य-श्रव्य रूपांतरण कर फिल्म और धारावाहिक का निर्माण किया गया। 'नौका डूबी', 'काबुली वाला',

'मालगुडी डेज' आदि प्रमुख हैं। फिल्म शरतचंद्र के उपन्यास 'देवदास', 'परिणीता' पर इन्हीं नामों से फिल्मांकन किया गया। सिनेमाकार सत्यजीत राय की प्रसिद्ध फिल्म 'पाथेर पांचाली' बिभूतिभूषण बन्दोपाध्याय के 'पाथेर पांचाली' (1929) उपन्यास पर आधारित थी। इस फिल्म में गांव के गरीब परिवार की कठिनताओं को दिखाया है। धर्मवीर भारती के उपन्यास 'सूरज का सातवां घोड़ा' पर श्याम बेनेगल ने इसी नाम से फिल्म बनाई। 1957 ई. में गुरुदत्त ने 'प्यासा' फिल्म बनाई। गुरुदत्त ने इस फिल्म में अभिनेता की भूमिका अदा की तथा वहीदा रहमान अभिनेत्री। वर्ष 1974 में कम बजट की फिल्मों का निर्माण होने लगा। इन फिल्मों में सामाजिक व्यावहारिकता, मानवीय संवेदना और कलात्मकता थी। इन फिल्मों के माध्यम से साहित्य और सिनेमा के विभिन्न आयाम उभरकर आए। इन फिल्मों ने कम बजट होने के बावजूद बड़े बजट वाली फिल्मों की तुलना में दर्शकों का ध्यान अधिक आकृष्ट किया। इस क्रम में बासु चटर्जी की 'रजनीगंधा' से इस दौर की शुरूआत हुई। वर्ष 1969 में मणिकौल ने अपनी पहली फिल्म 'उसकी रोटी' का निर्माण किया। यह फिल्म कम बजट की थी और इसकी कथा मोहन राकेश की कहानी से प्रेरित थी। केशवप्रसाद मिश्र की रचना 'कोहबर की शर्त' पर वर्ष 1982 में गोविंद मुनिश ने 'नदिया के पार' फिल्म का निर्माण किया। इसी उपन्यास को आधार बनाकर सूरज बड़जात्या ने फिल्म 'हम आपके हैं कौन' का निर्माण किया। एक ही उपन्यास पर बनी दोनों फिल्मों के फिल्मांकन का अंदाज अलग है। नदिया के पार फिल्म में ग्रामीण जीवन को चित्रित किया गया है वहीं 'हम आपके हैं कौन' आधुनिक शहरी जीवन को दर्शाया गया है। लेकिन दोनों ही फिल्मों ने अपने-अपने समय में सफलता हासिल की। वर्ष 1986 में राजेन्दर सिंह बेदी की रचना 'एक चादर मैली सी' पर इसी नाम से फिल्म का निर्माण किया गया। 'उसने कहा था', 'आम्रपाली', 'कटी पतंग', 'आषाढ़ का एक दिन', 'बदनाम बस्ती', 'फिर भी', 'मायादर्पण', 'झील के उस पार', 'दुविधा', 'रजनीगंधा', 'डाक बँगला', 'आँधी', 'पहेली', 'मोहल्ला अस्सी', 'आपका बंटी', 'आधे अधूरे' आदि कितनी ही फिल्मों का निर्माण हिंदी साहित्य को आधार बनाकर किया गया है।

फिल्म के माध्यम से निर्देशक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के चित्रण के माध्यम से दर्शकों तक अपनी पहुंच बनाने की कोशिश करता है। उसका भरसक प्रयास रहता है कि फिल्म की अभिव्यक्ति इस प्रकार हो कि दर्शक उस फिल्म से अपने आप को जोड़ सके और अपने जीवन की परिस्थितियों को फिल्म के माध्यम से महसूस कर सके। फिल्म का निर्माण उसकी कथा, पटकथा, संगीत, अभिनय, चित्रकला, मूर्तिकला, नृत्यकला, पेंटिंग आदि के संयोग से किया जाता है। लेकिन आधारभूत स्तर पर देखा जाए तो फिल्म निर्माण का मूल तत्व कथा है। इसके बिना फिल्म निर्माण की प्रक्रिया संभव ही नहीं है। इस संबंध में सी. भास्कर राव का मत है- 'सिनेमा का पहला संबंध साहित्य से बनता है। शेष कलाएँ उसमें बाद में जुड़ती हैं। आज भी इसमें कोई आधारभूत फर्क नहीं आया है। कोई भी सिनेमा सबसे पहले और सबसे अनिवार्य रूप में साहित्य से जुड़ता है, तब अन्य कला रूपों से।' साहित्य सिनेमा को उद्देश्यपूर्ण बनाता है। साहित्य ने सिनेमा को सामाजिक यथार्थ से जोड़े रखा है। श्रेष्ठ साहित्य का फिल्मांकन निर्देशकों

के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य है। इसी कारण, वर्तमान में सिनेमा का साहित्य से भटकाव नजर आता है। साहित्य पर 'साहित्यिक रचनाओं के फिल्मांतरण' लेख में जवरीमल्ल पारख कहते हैं कि 'किसी साधारण रचना पर बेहतर फिल्म तो बनाई जा सकती है, परंतु किसी श्रेष्ठ रचना पर उतनी ही श्रेष्ठ फिल्म बनाना अत्यंत चुनौतीपूर्ण काम है। यह काम तभी किया जा सकता है जब रचना के मूल अर्थ को व्यक्त करने वाले दृश्य बिंबों की कल्पना फिल्मकार करे। जरूरी नहीं कि फिल्मकार मूल रचना के विवरणों को यथावत इस्तेमाल करे। आवश्यकता इस बात की है कि मूल अर्थ को अक्षुण्ण रखते हुए रचना की अंतर्वस्तु में परिवर्तन करे और उन्हें दृश्यों के ऐसे संयोजन का रूप दे कि फिल्म देखते हुए मूल रचना का ही अर्थ प्राप्त हो।'

साहित्य सिनेमा को एक दिशा प्रदान करता है। वहीं सिनेमा कला के माध्यम से साहित्य को अभिव्यक्ति का एक मंच प्रदान करता है। सिनेमा समाज की वास्तविकता को दिखाता है। सिनेमा में भारत की आत्मा दिखती है। सिनेमा का निर्माण समाज को शिक्षित करने के लिए किया जाना चाहिए। 1960-70 तक सिनेमा में समाज का यथार्थ रूप मिलता है। समय के साथ साथ सिनेमा का रूप बदलता गया। सिनेमा पर साहित्य से मिलने वाली प्रेरणा के स्थान पर अश्लीलता और फूहड़पन ने ले ली। आजकल बनने वाली फिल्मों में गीत और संवादों की भाषा में गाली-गलौज और अश्लील शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग किया जाता है ताकि वह बाजार में बिक सके। साहित्य को दरकिनार किए जाने से भारतीय सिनेमा का अस्तित्व खतरे में पड़ता जा रहा है। वर्तमान में अधिकतर फिल्में केवल व्यापार के दृष्टिकोण से बनाई जाती हैं। इसी कारण, सिनेमा साहित्य के पथ से किनारा करता नजर आता है।

निष्कर्ष :

सिनेमा मनोरंजन का साधन होने के साथ साथ समाज का आईना भी प्रस्तुत करता है। साहित्य जीवन की नीरसता को कम करने का साधन भी है। साहित्य और सिनेमा हमें एक ओर जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं तो दूसरी ओर मनोरंजन के साथ संदेश भी देते हैं। दोनों ही ऐसे सशक्त माध्यम हैं जो समाज में बदलाव लाने की जबरदस्त ताकत रखते हैं। समाज और राष्ट्रहित के लिए जिस प्रकार साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है उसी प्रकार दृश्य श्रव्य माध्यम भी अपनी अहम भूमिका निभाते हैं। यह मनोरंजन के साथ-साथ ढेर सारी जानकारी और शिक्षा भी देते हैं।

संदर्भ :

1. हरीश कुमार, सिनेमा और साहित्य, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृ. 49
2. डा. महेन्द्र मित्तल, भारतीय चलचित्र, अलंकार प्रकाशन, 1975, पृ. 44
3. सी. भास्कर राव, फिल्म और फिल्मकार, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2010, पृ. 123
4. जवरीमल्ल पारख, लोकप्रिय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ, अनामिका पब्लिशर्स, 2001, पृष्ठ -112

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

21वीं सदी की हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना: उत्तरआधुनिकता बोध के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. आर. पी. भोसले

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविताओं में उत्तरआधुनिक बोध की दृष्टि से जो विचार मंथन हुआ है, उसमें कवियों की राष्ट्रीय भावना का दृष्टिकोण अधिकाधिक रहा है। राष्ट्रीय उत्थान के विचारों के दर्शन सभी कविताओं में दृष्टिगोचर होते हैं। आज आधुनिकता से आगे का समय है। इसने आधुनिकता की सीमा को पहचाना है। उपभोक्तामूलक संस्कृति, बाजारवाद, पूँजीवाद की नई व्यवस्था, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का बढ़ता प्रभाव, विघटित होते राजनीतिक एवं सांस्कृतिक मूल्य आदि के कारण उत्तरआधुनिक युग में काफी बदलाव आया है। हमारे देश के सामाजिक संरचना में जबतक आमूलचूल परिवर्तन नहीं होगा तब तक कुछ समस्याए और प्रश्न अनुत्तरित ही रहेंगे। बदलाव जरूर आया है। नारी का दमन विरोधी संघर्ष सामने आ रहा है लेकिन आज भी आम नारियों की स्थिति वैसी की वैसी ही है। आज भी नारी को बेचा जाता है, गिरवी रखा जाता है, उत्तरआधुनिक साहित्य में यह वर्णन नहीं है। उसे यह कार्य करना होगा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के दीर्घ अंतराल के बाद भी आम आदमी निरंतर संघर्षरत है। कहने के लिए जनतंत्र है पर उस पर राजतंत्र हावी है। आज समाज और साहित्य को सबसे बड़ा खतरा राजनीति का है। राजनीति के प्रांगण में अनीति का नग्न नर्तन हो रहा है। राजनेताओं ने न्याय, प्रशासन, कानून सभी को खोखला बना रखा है। सभी के सभी आम जनता का शोषण कर पालित-पोषित हैं। आदर्श घोटाले हो रहे हैं और घोटालों में आदर्श हो रहे हैं। उत्तरआधुनिकता कविता में इसका प्रखर रूप में अंकन आवश्यक था, लेकिन उतना नहीं दिखाई देता।

योजनाएँ बनती हैं लेकिन वे लाल फीताशाही में बंद होकर राजनेताओं की तिजोरियाँ भरती हैं। शायद अगला विश्व युद्ध इसी को लेकर होगा। डॉ. सभापति मिश्र का मानना है कि 'आज की कविता विसंगतियों, विवशताओं को झेलती हुई बेरोजगारी, महँगाई और सांस्कृतिक विघटनों के बीच अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संघर्षशील है।'[1]

प्राचीन काल से लेकर आज तक युद्धों एवं संग्रामों का सिलसिला जारी है। कभी देह-भोग की लालसा से तो कभी सत्ता एवं वैभव भोग की लालसा से स्वतंत्रता के बाद उनके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष युद्ध हुए, हो रहे हैं। आज आतंकवाद-नक्सलवाद, दंगे-फसाद, खून खराबे से लोगों का जीवन नरक में तब्दील हो गया है। कुछ समाज-घातक शक्तियाँ धार्मिक झगड़े लगाकर हिंसा भड़काने लगी हैं। नगरों एवं महानगरों के लोग अपने ही घरों में असुरक्षित हैं। इन समस्त स्थितियों को उत्तरआधुनिक युग के कवियों ने तह में जाकर पकड़ा है। नचिकेता की 'यह जीना' कविता आतंकित भारतीय मानव की सही तस्वीर उतारती है-

'हँसी, चुहल, उम्मीद नहीं है / हासिल मीठी नींद नहीं है /
निर्भय होली-ईद नहीं है / दरकी है सपनों की मीना।'[2]

उत्तरआधुनिक युग के कवि गहराई में उतरकर ऐसे विषयों का स्पर्श कर रहे हैं

क्योंकि उन्होंने भविष्य के खतरों को पहचान लिया है। वर्तमान युग में संबंधों के ठंडेपन, संबधों की दूरियाँ, आत्मकेंद्रिकता, फ्लैट बंद संस्कृति ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया जो ऊपर से उतनी भयावह नहीं दिखाई देती जितनी अंदर से है।

उत्तरआधुनिकता का शहरीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद के खतरों से अराजक स्थिति बनी है। 'उपभोक्तामूलक' संस्कृति के फैलाव ने कविता मात्र के लिए एक चुनौती भरा संकट उपस्थित कर दिया है। इस संस्कृति में महत्वाकांक्षाएँ हैं, भारी भरकम वेतन प्राप्त करने की लालसाएँ है, खुद को साबित करने का जुनून है और क्षण में जीने की जिद। यहाँ रिश्ते बहुत व्यावहारिक और रस्मी हो गए हैं। खून के रिश्तों में भी ठंडापन एवं अंतराल आया है। परिणामतः अकेलापन, कुंठा, अजनबीपन, घुटन एवं संत्रास से जीवन में उकताहट पैदा हो रही है। उत्तरआधुनिक युग के अनेक कवियों ने पूरे सामर्थ्य के साथ इसे प्रस्तुत करके विचार मंथन के लिये बाध्य किया है। स्वप्निल श्रीवास्तव जो अंतर्मन में छिपकर बैठा है, उसे बाहर खींचते हैं। उनकी 'पापा' कविता पापा के अकेलेपन की त्रासदी को व्यक्त करती है। अपनी पत्नी स्वर्गवासी होने के बाद जिस पापा ने अपने बच्चों को पढ़ाया, लिखाया उँचे ओहदों पर पर पहुँचाया लेकिन बूढ़े पापा के लिए उनके पास वक्त नहीं है। अकेलापन और घुट-घुट कर जीना ही उनके नसीब में है-

'जिंदगी का हिसाब-किताब जोडते-घटाते पापा
सोचते हैं आखिर अकेलेपन के सिवा
उनके जीवन में क्या बचा है।'[3]

बाजारवाद, उपभोक्ता संस्कृति, भूमंडलीकरण, अर्थपूजक वृत्ति का प्रतिफल पापा की व्यथा है। आज हर तीसरे परिवार की यह व्यथा है।

फिर भी कहीं-कहीं समस्या-चित्रण द्वारा भ्रष्ट एवं खोखले वायदे देने वाले राजनेताओं पर कठोर प्रहार हुए है। चर्चित युवा कवयित्री नीलेश रघुवंशी की 'लोग कहते है' कविता स्वतंत्र भारत के जिला विदिशा एवं तहसील गंजबासोदा की समस्याओं को निर्वस्त्र रूप में अंकित करती है-

' हाय - हाय
मजूर-मजूरी के लिए रो रहे है पढे -लिखे नौकरी के लिए, अचानक ही पूरी भीड ने कैमरे और माइक को घेर लिया।'[4]

स्वतंत्रता के पश्चात देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति में आमूलाग्र परिवर्तन हुआ। औद्योगीकरण, नगरीकरण, भूमंडलीकरण आदि की मिलीभगत ने समाज को अनेक समस्याओं ने मुहाने पर लाकर छोड़ दिया। स्वतंत्रता के पूर्व आम आदमी ने एक सुनहरा सपना देखा था। देश स्वतंत्र हो जाएगा, किसी को किसी बात की कमी नहीं रहेगी। लेकिन देश स्वंतत्र होने के पश्चात एक दशक अंदर ही उसकी अभिलाषाओं, आकाक्षाओं तथा सपनों की लाशें गिरने लगीं।

उत्तरआधुनिक युग में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और जनसंचार के साधनों के कारण दुनिया नजदीक आ गई है। परिणामतः सांस्कृतिक आक्रमण हो रहा है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने हमारे भाव-विश्व पर आक्रमण किया है। कवि प्रणय निवेदन करते हैं लेकिन

उसे पहले ही विज्ञापन की भाषा ने तथा सैंकड़ों चैनलों ने प्रकाशित किया है। कवि ओमप्रकाश मिश्र की 'प्रणय याचना' कविता इसी भाव-संकट को व्यक्त करती है-

'किन शब्दो में निवेदन करूँ अपना निवेदन।'[5]

सच कहा जाय तो ओमप्रकाश मिश्र की प्रणय निवेदन की व्यथा वास्तविक है। कालिदास के 'मेघदूत' की कल्पना आज हवा हो गई है। यह सच है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से विश्व एक ग्लोबल गाँव में बदल रहा है। 'देशों के बीच भौगोलिक सीमाएँ ही नहीं, अपितु सांस्कृतिक सीमाएँ भी टूट रही हैं। परिणामतः संचार माध्यमों के सैलाब में बहती चली आई आयातित संस्कृति ने हमारी संस्कृति पर आक्रमण करके स्थापित सार्थक मूल्यों को हशिए पर टाँग दिया है।'[6] वर्तमान कवियों ने इस खतरे को भी पूरी ताकत के साथ उठाकर विचार- मंथन के लिए प्रेरित किया है।

हमारे देश में आम आदमी की जान बडी सस्ती है। भूख से मर जाएगा पर कारण एनीमिया लिखा जाएगा। स्वतंत्र भारत का स्वतंत्र भारतीय भूख से मर जाता है, यह बात भ्रष्ट राजनेताओं को निर्वस्त्र करने वाली है। मदन कश्यप की 'माफीनामा' कविता इन्हीं स्वरों को अनुगुंजित करती है। वर्तमान राजनीति, व्यवस्था गरीबों के शोषण पर तुली है। हर कोई इस व्यवस्था को मिटाना चाहता है, पर असंभव है। हमारे कंधों पर जाति, वर्ण, धर्म, भेद का इतिहास वेताल की तरह चढ़ा है। हर कोई चाहता है, उसे जलाया जाए लेकिन-

'हमारे कंधे पर वेताल की तरह चढ़ा है, तुम्हारे दुराचारों का इतिहास
अब तुम्हीं बताओं इसे कहाँ ले जाऊँ किस आग से जलाऊँ।'[7]

स्त्री संबंधी कुछ समस्याएँ मध्ययुग से लेकर इक्कीसवीं सदी के अंतिम दशक तक बराबर चली आई हैं। स्त्री की स्थिति में बदलाव जरूर आया है, पर कितने प्रतिशत? सोचना अनिवार्य है। आज भी नारी की देह महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। पुरुष केवल देह-भाषा जानता है-

'स्त्री गंध की भाषा पहचानती थी
बोलती थी स्पर्श की बोली पुरुष समझता था देह की भाषा।'[8]

कई पुरुषों के लिए नारी मात्र भोग की वस्तु है, जिसे इस्तेमाल करके फेंका जाता है और अधिकतम लोग नारी को आदर एवं श्रद्धा के रूप में मानते हैं। आज भी कितने ही परिवारों में नारी घुट-घुटकर जीने के लिए विवश है। उत्तरआधुनिक युग में महानगरों में नारी-पुरुष समानता, विवाह बंधन को नकारना सामने आ रहे है, लेकिन ग्रामांचलों में आज भी स्त्री मध्ययुगीन दायरे से बाहर नहीं है-

'एक औरत जो अपने जिंदा रहने की मजबूरियों का
हिसाब-किताब रखते हुए गिनती रहती है अपनी साँसें।'[9]

उत्तरआधुनिक युग में नारी विमर्श और दलित विमर्श पर नए सिरे से विचार हो रहा है। उत्तर आधुनिक किसी भी केंद्र की अवधारणा के विरुद्ध है। यह बात नारी विमर्श के बारे में है, क्योंकि यहाँ भी पुरुष ही केंद्र में है। वैदिक युग की स्वायत्त नारी का देर में रूपांतर हो गया। जहाँ भी दमन है, शोषण, अत्याचार, स्त्री रेप स्वीकार नहीं करेगी बल्कि रेप करनेवालो की हत्या करेगी। अब दो तरीके से नारीवादी साहित्य लिखा जा

रहा- एक सामाजिक शोषण के खिलाफ और दूसरा देह-भोग के खिलाफ। आज का लेखन नारीवादी लेखन नहीं, नारी केंद्रित सवालों को बड़े आशयों में लानेवाला, नारी की मुक्ति को साधारण जन की सार्वदेशिक मुक्ति से जोड़ने वाला, पर बेहतर मानवीय और तर्कसंगत सामाजिक संरचना में नारी को उसकी सही हैसियत के साथ प्रतिष्ठा देने की कोशिश में लगा नारी अस्मिता का प्रामाणिक लेखन है।

उत्तरआधुनिक युग के कवि उन लोगों पर तरस खाते हैं, जो निरंतर चूसे जाने पर भी उम्मीदों के सहारे जीते हैं। सुरेश नारायण कुसूबींवाल की 'उम्मीद' कविता इसी का संकेत देती है।

'उम्मीद है कि इस समय कर्जा चुकने के बाद
बचा रहेगा कुछ सालभर के लिए और नहीं देखने पडेगे
पेड़ों पर किसानों के शव।'[10]

उनकी ही 'कटे हाथ' कविता मेहनतकश आदमी की व्यवस्था द्वारा की गई हालत को प्रस्तुत करके विचारमंथन के लिए बाध्य करती है। वे ही हाथ कट जाते हैं जो मशीनें चलाते हैं, कल कारखानों में बोझ उठाते हैं, फसले काटते हैं, माल-लदी गाड़ियाँ खींचते है, चुनावों में वोट देते हैं। लेकिन ऐसे कटे हाथों का शरीर गायब हो जाता है। पुलिस इस पर मौन धारण करती है। सचमुच भारत में आम आदमी का जान सबसे सस्ती है। लेकिन यह स्थिति ऐसी ही रहेगी तो-

'यह कटे हुए हाथ, यही सूचित करते हैं कि
कट रहे हैं, इस युग के हाथ और आ रहा है, गुंडा युग।'[11]

अर्थव्यवस्था ज्यों-ज्यों अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोश के उधार पर निर्भर होती जाती है, उतना ही सरकारी पूँजी निवेश के नियोजन और जनहित से अपना हाथ खींच लेती है। आम आदमी की प्राथमिक आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो पातीं। आम आदमी दो वक्त की रोटी के लिए तरसता है और मूल्यहीन राजनीति इसका समाधान खोजने की अपेक्षा समस्याओं को और जटिल बनाती है। संवेदनाहीन सत्ता स्वयं शोषक बन जाती है और आम आदमी गरीबी, भुखमरी, शोषण, बीमारी का शिकार बन जाता है। यही उत्तरआधुनिक युग के स्वतंत्र भारत के स्वतंत्र नागरिक की त्रासदी है। इस युग के कवियों ने इस त्रासदी को बराबर पकडकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

अतः कहा जाता है कि इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविताओं में उत्तरआधुनिक बोध की दृष्टि से जो विचार मंथन हुआ है, उसमें कवियों की राष्ट्रीय भावना का दृष्टिकोण अधिकाधिक रहा है। राष्ट्रीय उत्थान के विचार भरे हुए उसके दर्शन सभी कविता में दृष्टिगोचर होते हैं। उपभोक्तामूलक संस्कृति, बाजारवाद, पूँजीवाद की नई व्यवस्था, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का बढ़ता प्रभाव, विघटित होते राजनीतिक एवं सांस्कृतिक मूल्य आदि के कारण उत्तरआधुनिक युग में काफी बदलाव आया है।

संदर्भ :

1. संपादक विजय बहादुर सिंह - 'वागर्थ', जनवरी प्र. 2010, पृ. 24
2. संपादक समकालीन भारतीय परिषद मार्च-अप्रैल, प्र. 2010 पृ. 97
3. सं. विजय बहादुर सिंह- 'वागर्थ' नवंबर, प्र. 2010 पृ. 51

4. श्रीमती नीलेश रघुवंशी, लोग कहते हैं, राजकमल प्र. दिल्ली, 2009, पृ. 39
5. सं. विजय बहादुर सिंह - 'वागर्थ', जनवरी, 2010, पृ. 95
6. डॉ. सौ. माधवी, 'इक्कीसवीं सदी का हिंदी काव्य' विद्या प्र.कानपुर प्र.स. 2013, पृ. 52
7. संपादक विजय बहादुर सिंह- वागर्थ, सितम्बर, 2010, पृ. 49
8. संपादक सुनील गंगोपाध्याय- समकालीन भारतीय साहित्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 22
9. संपादक विजय बहादुर सिंह- वागर्थ, अप्रैल, 2010, पृ. 62
10. संपादक- ब्रजेंद्र त्रिपाठी- समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल, 2010, पृ.108
11. वहीं, पृ. 109

आट्र्स, कॉमर्स कॉलेज, पुसेगाव. तहसील खटाव, जि. सातारा

सुरेश शुक्ल 'चंद्र' के 'वतन के तीन सिपाही' नाटक में राष्ट्रीय भावना

लेफ़्टिनेंट डॉ. रविंद्र पाटील

हिंदी साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना हजारों सालों से देखी जाती है। यह राष्ट्रीयता की विचारधारा निरंतर बहती आयी है। आदिकाल के चारण कवियों ने राष्ट्रीयता से ओतप्रोत अनेक रचनाएँ हिंदी साहित्य को प्रदान की हैं। चारण कवि राजाश्रयित थे। परंतु उनके काव्य में राजा- महाराजाओं का गुणगान एवं पराक्रमपूर्ण कार्य का चित्रण हुआ है। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' भी इसके लिए अपवाद नहीं। रीतिकालीन श्रृगांर और विलासिता के दौर में भी राष्ट्रीय चेतना का संदेश देने वाले कवियों की संख्या काफी मात्रा में देखी जा सकती है। भूषण ने छत्रसाल और छत्रपति शिवाजी जैसे महाराजाओं को अपने काव्य का प्रमुख विषय बनाया। आधुनिक काल तक आते-आते साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना अधिक प्रकाशमान हुई। इसमें सभी विधाओं का बोलबाला रहा। मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, जयशंकर प्रसाद, रामधारी सिंह दिनकर जैसे अनेक साहित्यकारों का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण है।

नाट्य साहित्य अन्य विधाओं के समान राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। हिंदी साहित्य में नाटक विद्या को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस विधा के विकास में साठोत्तरी हिंदी नाटककार एवं नाटकों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इन नाटककारों ने ऐतिहासिक, पौराणिक मिथकीय नाटकों के माध्यम से अतीत की बातों को पात्रों के माध्यम से सजीव बनाने का सफल प्रयास किया है जो देश प्रेम की भावना से भरी पड़ी हैं और जो आज की पीढ़ी के लिए भी प्रेरक बनी हुई हैं।

21 वीं सदी का हिंदी नाट्य साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। सुरेश चंद्र शुक्ल हिंदी के ख्यातनाम नाटककार हैं। अपने देश की संस्कृति, स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास और महान देश भक्तों की प्रेरणा से प्रेरित होकर सुरेश शुक्ल 'चंद्र' की 'वतन के तीन सिपाही' सामने आया। इस नाटक का प्रथम संस्करण, २०१० में अनंग प्रकाशन दिल्ली से हुआ। राष्ट्रीय जागरण की प्रगतिशील दृष्टि से अनुप्रेरित होकर इतिहास को उभारने और एक निश्चित एवं स्पष्ट रूप ग्रहण करने वाले देश के राष्ट्रीय आंदोलन को दृश्यत्व देते हुए चंद्र के तीनों नाटक जनजागरण का संदेश भी देते हैं। प्रस्तुत नाटक में भूषण 'कलम का सिपाही' जो मुगल सम्राट औरंगजेब की आखों में आँखें डालकर बातें करते हैं। तात्या टोपे तलवार और शक्ति के पुजारी हैं जो १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में आखिरी साँस तक लडते हैं। बाल गंगाधर तिलक के हाथों में जनता के जागरण और विद्रोह की मशाल है। तीनों पात्र अपनी राष्ट्रभक्ति अटूट निष्ठा, कर्तव्यबोध संपन्न निःस्वार्थी, जनसेवी और त्याग की भावना से ओत-प्रोत हैं।

डॉ. सुरेश शुक्ल 'चंद्र' के नाटकों में इतिहास देशप्रेम, राष्ट्रीयता आदि बातों का चित्रण है। भारत की महान संस्कृति, स्वतंत्रता संग्राम के ऐतिहासिक पल, भारत माता पर जान नौछावर करने वाले महान देशभक्तों के प्रति निष्ठा और गौरव की भावना से प्रेरित होकर डॉ. सुरेश शुक्ल 'चंद्र' ने 'वतन के तीन सिपाही' नाटक की रचना की है।

इसमें राष्ट्रीय जागरण की प्रगतिशील दृष्टि दिखाई देती है। इस नाटक के संदर्भ में डॉ. लवकुमार लवलीन लिखते हैं, 'इस संग्रह में डॉ. चंद्र कृत 'भूषण भनत अमर सेनानी' और 'नरकेसरी' जैसे तीन पूर्णाकार नाटक के साथ तात्या टोपे भी संकलित है। रीतिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के इन तीन सिपाहियों ने अपनी सीमाओं, शक्तियों और देशभक्ति की उत्कट भावना से जनता को जागृत कर स्वतंत्रता और संगठित होने की प्रेरणा दी है। भूषण कलम का सिपाही है, तात्या टोपे तलवार और शक्ति का पुजारी है। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के हाथों में जनता के जागरण और विद्रोह का मशाल है। तीनों अपनी राष्ट्रभक्ति, अटूट निष्ठा, कर्तव्यबोध संपन्न, निःस्वार्थी जन-सेवी और त्याग-भावना से अद्वितीय है। देश की एकता और अखंडता को बनाए रखने तथा स्वतंत्रता-संग्राम में इनका योगदान अविस्मरणीय है।'[1]

भूषण, तात्या टोपे और बाल गंगाधर तिलक ने भारत की जनता में स्वतंत्रता की मशाल जगायी है। नाटकों का सीधा प्रभाव जनमानस पर हुआ और लोगों में राष्ट्रप्रेम की भावना का नवसंचार हुआ। जनता को स्वयं-शक्ति और सामर्थ्य से अवगत कराया। भ्रष्टाचार और देशद्रोहियों के विरुद्ध आवाज बुलंद किया। इसके संदर्भ में डॉ. लवकुमार लवलीन लिखते हैं, 'भूषण तात्या टोपे और बाल गंगाधर तिलक के कार्यकलापों एवं जनसेवी कार्यों को उद्घाटित करने के लिए 'चंद्र' ने नई संरचनावाली रचनाएँ की हैं। नाटकों के तीनों सिपाही अपनी तरह से अपनी अलग सोच और कार्य पद्धति से संगठन शक्ति और नेतृत्व क्षमता से जन चेतना को उदबुद्ध कर उनमें जागरण का संदेश फूँककर राष्ट्र की अस्मिता और स्वतंत्रता संग्राम में भागीदार होने की विवेक शक्ति उत्पन्न करने में संलग्न दिखाई देते है।'[2]

भूषण एक देशप्रेमी, साहसी और ईमानदार रचनाकार थे। रीतिकाल के अन्य कवियों के समान अलंकारिकता और श्रृगारिकता में कभी नहीं खोए। देश-हित, जनहित उनके रग-रग में समाया हुआ था। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से छत्रसाल और शिवाजी का गुणगान गाते हैं। सत्ता पिपासु राजाओं पर प्रहार करते हैं। जनता को संगठित करते हैं। मुगल सम्राट औरंगजेब के दरबार में उपस्थित रहकर चरित्रोद्घाटन करने का साहस भी करते हैं।

नाटककार ने इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार किया है, भूषण राजदरबार में औरंगजेब से कहता है, 'अब तक आप गंदी रचनाएँ सुनते रहे। इसलिए आपके हाथ गंदे हो गए हैं। मैं साफ रचनाएँ सुनाऊँगा और उनको सुनकर आप के हाथ मूँछों पर जाएँगे, इसलिए हाथ धोना जरूरी है।'[3] अतः यह स्पष्ट होता है कि भूषण में देशप्रेमी, स्वाभिमानी, साहसी, निर्भीक आदि गुण कूट-कूट कर भरे थे। नाटक के अन्य एक प्रसंग में भूषण औरंगजेब को सुनाते हैं-

'किबले के और बाप बादशाह साहजहाँ
वाको कैद कियो मानो मक्के.... आगे लाई है।
बड़ो भाई दारा वाको पकरियौ मरि दा डारयो
मेहरहू नाहि माको जायो सगो भाई है
खाई कै कसम मुराद को मनाई लियो.....।'[4]

औरंगजेब के सामने खडे होकर उसकी निंदा करना, मृत्यु को गले लगाने जैसा था। यह कार्य भूषण जैसा राष्ट्रकवि ही कर सकता है। जिन मुस्लिम शासकों ने हिंदुओं के प्रति सद्भावना रखी उनकी प्रशंसा भी भूषण ने की है।

'अमर सेनानी' नाटक तात्या टोपे को केंद्र में रखकर लिखा गया नाटक है, जिससे तात्या टोपे का व्यक्तित्व और कार्य-कुशलता स्पष्ट होती है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में तात्या टोपे का बहुत बड़ा योगदान रहा है। वे स्वतंत्रता प्रेमी, महापराक्रमी, शूरवीर, कुशल प्रबंधक और बुद्धिमान विद्रोही थे। हिंदू-मुस्लिम एकता के पक्षघर थे। देशव्यापी क्रांति के प्रेरणा स्रोत थे। 'अमर सेनानी' नाटक चंद्र जी का यथार्थफरक नाटक है। इसके केंद्र में तात्या टोपे और सन् १८५७ का स्वतंत्रता संग्राम है। इस स्वतंत्रता संग्राम में तात्या टोपे ने जो क्रांति की मशाल जलाई, वह अंत तक बुझी नहीं। तात्या टोपे अँग्रेजों के खिलाफ हिंदू और मुसलमानों को एक करना चाहते हैं। नाटक के एक प्रसंग में अजीमुल्ला और तात्या टोपे के बीच हुआ वातार्लाप दृष्टव्य है, 'अभी केवल हमें संगठित होना है। विद्रोह हम सब एक साथ करेंगे। अँग्रेजों के पास इतनी शक्ति नहीं है कि वे सभी स्थानों से सेना भेजकर अपनी रक्षा कर सकें। हम अँग्रेजों के क्षेत्र को जीतते हुए, अपनी शक्ति को बढ़ाते जाएँगे। पहले हमारे आक्रमण ऐसे क्षेत्रों पर होंगे, जहाँ अँग्रेजों की शक्ति कमजोर है।'[5]

एकता का अभाव सैनिकों की अनुशासनहीनता आदि के कारण सन् १८५७ का स्वतंत्रता संग्राम असफल हो जाता है। इसके संदर्भ में तात्या टोपे का मंतव्य दृष्टव्य है, 'हम अपनी असावधानियों के कारण पराजित हुए। सही नेतृत्व का अभाव रहा। अँग्रेजी सेना अनुशासित थी। सेनापति का आदेश ही वहाँ सब कुछ था। अपने सैनिकों में ऐसा अनुशासन नहीं था।'[6]

'नर केशरी' नाटक में क्रांतिकारक बाल गंगाधर तिलक सच्चे देश भक्त, ईमानदार, सेवाभावी वृत्ति वाले, संस्कृति के प्रति लगाव रखनेवाले व्यक्तिमत्व के थे। जनता की खुशहाली के लिए देश का स्वतंत्र होना जरूरी है, ऐसा उनका मानना था। वे कहते हैं कि परतंत्रता के कारण जनता ने आत्मविश्वास खो दिया है। इसके लिए स्वाभिमान और राष्ट्रनिष्ठा का होना बेहद जरूरी है। नाटक के एक प्रसंग मे आगरकर और बाल गंगाधर तिलक के बीच हुए वातार्लाप से यह बात स्पष्ट होती है। तिलक आगरकर से कहते हैं, 'मैं सीधे टकराने की बात कहाँ करता हूँ? मैं तो संविधानिक नीति सामने रखता हूँ कि जनता डरी हुई है। उसमें हमें स्वाभिमान और राष्ट्रप्रेम का भाव जगाना होगा।'[7]

नाटक के एक प्रसंग में अँग्रेजों के 'तोड़ो और राजनीति करो' इस नीति के शिकार हिंदू और मुसलमान आपस में लड़ रहे थे। दंगे फसाद हो रहे थे। इस स्थिति से तिलक काफी चिंतित थे। वे समाज-सुधारक परांजपे से कहते हैं, 'हिंदू और मुसलमानों को सोचना चाहिए। उन्हें एक दूसरे के धर्म पर प्रहार नहीं करना चाहिए। न हिंदू ही कोई ऐसा कार्य करे, जो मुसलमानों को व्यथित करे और न मुसलमान ही हिंदू धर्म के खिलाफ कोई विरोध का काम करें। हवा का रुख देखकर सरकार अब मुसलमानों का पक्ष लेने लगी है।'[8]

निष्कर्ष :

हिंदी साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना हजारों सालों से देखी जाती है। आदिकाल के चारण कवियों ने राष्ट्रीयता से ओतप्रोत अनेक रचनाएँ हिंदी साहित्य को प्रदान की हैं। आधुनिकाल तक आते-आते राष्ट्रीयता की भावना अधिक प्रकाश मान हुई। इसमें सभी विधाओं का बोलबाला रहा। नाटक विधा के विकास में साठोत्तरी नाटककारों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। सुरेश शुक्ल 'चंद्र' के नाटकों में इतिहास, देशप्रेम, राष्ट्रीयता आदि बातों का चित्रण हुआ है। 'भूषण भनत', 'अमर सेनानी' और 'नरकेसरी' आदि नाटकों में रीतिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के इन तीन सिपाहियों ने अपनी सीमाओं, शक्तियों और देशभक्ति की उत्कट भावना से जनता को जागृत कर स्वतंत्रता और संगठित होने की प्रेरणा दी है।

संदर्भ :

1. डॉ. लव कुमार लवलीन, डॉ. सुरेश शुक्ल 'चंद्र' की रंग यात्रा विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम सं २०१२, पृष्ठ, १८६
2. वही, पृष्ठ, १८७
3. सुरेश शुक्ल 'चंद्र', 'वतन के तीन सिपाही', अनंग प्रकाशन, प्रथम संस्करण, २०१०, पृष्ठ, २९
4. वही, पृष्ठ, ३०
5. वही, पृष्ठ, ६४
6. वही, पृष्ठ, ९१
7. वही, पृष्ठ, १८६
8. वही, पृष्ठ, १८७

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
राजर्षि छत्रपति शाहू कॉलेज, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

'कृष्णा सोबती के उपन्यासों में राष्ट्रीय भावना'

प्रा. व्ही. एच. वाघमारे

कृष्णा सोबती हिंदी कथा-साहित्य की एक विशिष्ट रचनाकार हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण किया है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज और जीवन की अनेक समस्याओं का चित्रण साहित्य में मिलता है। कृष्णा सोबती अपने साहित्य के माध्यम से सभी सामाजिक, नैतिक मूल्यों को चुनौती देती हैं। सहिष्णुता, निष्पक्ष खेल और न्यायपूर्ण जीवन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। कृष्णा सोबती का सबसे महत्वपूर्ण और स्थायी काम भारत के विभाजन को लेकर है।

कृष्णा सोबती द्वारा लिखित 'जिंदगीनामा' हिंदी उपन्यास जगत में प्रसिद्ध उपन्यास है। पंजाब के विभाजन के पहले की धड़कती जिंदगी इसमें है। 1979 में प्रकाशित प्रस्तुत उपन्यास को 1980 में साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। प्रस्तुत उपन्यास के दो खंड हैं प्रथम खंड (जिंदगीनामा) जिंदा रुख है। द्वितीय खंड 'इंकलाब जिंदाबाद' जो अभी तक अप्रकाशित है। प्रस्तुत उपन्यास को हिंदी साहित्य क्षेत्र में काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई है। सिर्फ जिंदगीनामा को ही नहीं बल्कि कृष्णा सोबती के अन्य सभी उपन्यासों को पाठकों में प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। इसके पीछे कृष्णा सोबती की मानवीय जीवन-दृष्टि भी काफी महत्त्वपूर्ण है। अपनी सभी रचनाओ में कृष्णा सोबती ने जहाँ एक ओर अपने स्त्री चरित्रों को अतिरिक्त संवेदना से चित्रित किया है, वहाँ हर प्रकार के सामाजिक-सांस्कृतिक दमन का भी सशक्त प्रतिरोध किया है। इससे कृष्णा सोबती की जीवन-दृष्टि एक प्रखर मानवतावादी प्रतिरोध करने वाली जीवन-दृष्टि का स्वरूप ग्रहण कर गई है।

जिंदगीनामा में राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की क्रांतिकारी गूँज सुनाई देती है तथा राष्ट्रीय भावना दिखाई देती है। पंजाब कृष्णा सोबती की मातृभूमि है। इसमें उनका बाल्यकाल, खुशहाली का एक-एक क्षण मार्मिक ढंग से चित्रित हुआ है। एक जमींदार शाह है, उसकी जमींदारी का दुर्गम प्रभाव है। इलाके की धन-दौलत का हिसाब-किताब और उसकी खोज खबर उसके पास होती है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से गाँव की जीवंत परंपरा चित्रित की गई है। वहाँ की संस्कृति हिंदू-मुस्लिम एकता की है। जैसे- मस्जिद, गुरुद्वारा, गुरुनानक बाबा फरीद, वारीश शाह मियामीर और छज्जुभगत की बोली सभी को समान रूप भाती है। बैसाखी, लोहडी, शबेरात, ईद सभी मिलजुलकर मनाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में स्वातंत्र्यपूर्व काल का वर्णन है। 1947 के पहले अंग्रेज हिंदू-मुस्लिम लोगों में झगड़ा लगाकर जाति-धर्म के नाम पर देश का विभाजन करने का काम कर रहे थे। पंजाब प्रांत के अंचलवासी भी गदर के बारे में सोचते थे। जैसे -

'तुम्हारा नाम क्या- गदर / तुम्हारा काम क्या- गदर

तुम्हारा पेशा क्या- गदर / तुम्हारा ईमान क्या-गदर

इस तरह प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों को ठुकराकर नये विचारों के माध्यम से समाज को एक नई दिशा देना तथा समाज में राष्ट्रीय भावना जागृत करना यह कृष्णा सोबती का मुख्य उद्देश्य है।

'गुजरात पाकिस्तान से लेकर गुजरात हिंदुस्तान' यह 2017 में प्रकाशित हुआ कृष्णा सोबती का प्रसिद्ध उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को उजागर करने का प्रयास लेखिका ने किया है। प्रस्तुत उपन्यास भारत को आजादी मिलने पर जो देश का बँटवारा हुआ, उस त्रासदी पर लिखा है। लेखिका में अपनी पहली नौकरी करने सिरोही पहुँचकर देश का नागरिक होने का एहसास किस तरह जगा, इसका चित्रण किया है। बँटवारे के बाद बना पाकिस्तान उस त्रासदी से पहले जिनके लिए अपना प्यारा हिंदुस्तान था; वे लोग, अपने ही आजाद मुल्क में जिनके कदम विस्थापित शरणार्थियों के भेस में पड़े, यह रचना उन उखड़े और दर-ब-दर लोगों की रुहों का अक्स है। यही वह समय था जब भारत की आजादी ने एक और कहानी लिखनी शुरू की, जिसका मकसद अपने औपनिवेशिक अतीत को खोना था। आजादी और बँटवारा के रक्तरंजित इतिहास के उस हिंस्र और क्रूर घटना को कोई भूल नहीं सकता। सदियों के बाद देश में अवतरित होने वाली आजादी हर हिंदुस्तानी दिल में धड़कती रही थी। इस उमगती विरासत को राजनीतिक शक्तियों ने विभाजित कर देश का नया भूगोल और इतिहास बना दिया।

आजादी के समय नई सरहदें खींच दी गईं। फिर भी हर हिंदुस्तानी के दिल में धड़कता यह एहसास था कि विभाजन के अँधेरे में उपजी 'आजादी' एक पवित्र शब्द है- 'हमारी राष्ट्रीय अस्मिता।' राष्ट्रीय भावना हर भारतीय दिलों में कूट-कूट कर भरी हुई थी। इसलिए आजादी प्राप्त करने के लिए हर भारतीय दिल अपनी जान भी न्योछावर करने के लिए तैयार था। जैसे हर दिल में गूँज रहा था यही राष्ट्रगान -'हम बुलबुले हैं इसकी। ये गुलिस्ताँ हमारा।'

वस्तुतः कृष्णा सोबती द्वारा लिखित उपन्यास 'जिंदगीनामा' एवं 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' उपन्यासों में राष्ट्रीय भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। जिंदगीनामा में कृष्णा सोबती ने स्वातंत्र्यपूर्व काल का चित्रण करके हिंदू-मुस्लिम समाज में एकता, राष्ट्रीयता की भावना, समानता किस तरह थी, यह व्यक्त करने का प्रयास किया है। 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' इस उपन्यास में आजादी और बॅटवारे के रक्तरंजित इतिहास को उजागर करके भारतीय दिलों में आजादी की जो लालसा थी, राष्ट्रीय एकता की भावना थी, उसे पाठकों के सम्मुख लाने का प्रयास किया है।

संदर्भ :

1. कृष्णा सोबती- जिंदगीनामा
2. कृष्णा सोबती- गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान
3. डॉ. सरिता बहुखंडी- आदर्श नही यथार्थ कृष्णा सोबती का साहित्य
4. डॉ. ब्रिजिट पॉल - कृष्णा सोबती व्यक्ति एवं साहित्य

हिंदी विभागाध्यक्ष,
सी.बी.खेडगीज महाविद्यालय, अक्कलकोट।

मोहनदास नैमिशराय के उपन्यासों में राष्ट्रीय भावना

(महानायक बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर के विशेष संदर्भ में)

प्रा. अशोक गोविंदराव उघडे

'महानायक बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर' वरिष्ठ दलित साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय लिखित एक ऐतिहासिक उपन्यास है। दलित साहित्य के मूलाधार या प्रेरणास्त्रोत डॉ. आंबेडकर हैं। डॉ. आंबेडकर ने बड़ी इमानदारी से राष्ट्र की सेवा की है। डॉ. आंबेडकर का कहना था कि भारत देश को आजादी मिलने से पहले दलितों को आजादी मिलना ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि वे दोहरी गुलामी में फँसे हैं। राष्ट्रभक्त या देशभक्त आंबेडकर कहते थे कि वे प्रथम और अंत तक भारतीय हैं। खून की अंतिम बूँद बहाकर भी देशसेवा करनी चाहीए। देश का कार्यभार अच्छा चलने के लिए डॉ. आंबेडकर ने देश को संविधान दिया, जिसमें स्वातंत्र्य, समता, बंधुता और न्याय को समाविष्ट किया। इस संविधान में लोकशाही को बड़ा महत्व दिया गया। इतना ही नहीं, भारतीय संविधान में सभी भारतवासियों को मतदान का समान आधिकार दिया। नारी-जीवन में परिवर्तन लाने के लिए हिंदू कोड बिल का मसौदा संसद में पारित किया ताकि नारी स्वाभिमानी और स्वावलंबी बन सके। इतना ही नहीं दलित, शोषित, एवं पीड़ित लोगों की भलाई के लिए पुणे का समझौता किया। यह सब देखकर पता चलता है कि डॉ. आंबेडकर सही मायने में भारत देश के सच्चे देशभक्त एवं राष्ट्रभक्त थे।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर सामाजिक क्रांति और कृतिशील विचारों के नेता थे। भारत देश में बीसवीं सदी के महान विचारवंत, कायदामंत्री, वकील, प्रोफेसर, न्यायाधीश, संविधान के निर्माता, समाज सेवक, दूरदृष्टि वाले राजनेता, दलित, नारी एवं बहुजनों के उद्धारक और सच्चे राष्ट्रभक्त के रूप में समाज के सामने डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर आते हैं। भारतीय समाज व्यवस्था में सवर्णों के अन्याय अत्याचार से त्रस्त होकर घुटन भरा जीवन जीने वाले दलित इससे छुटकारा पाना चाहते थे। इस समाज व्यवस्था में दलित और नारी का बहुत ही धार्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक शोषण होता था। उन लोगों को किसी मजबूत डोर की आवश्यकता थी, जो दलितों एवं वंचितों में निस्वार्थ रूप में समाज कार्य करे, वह डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के रूप में प्राप्त हो गए। डॉ. आंबेडकर के विचारों से प्रेरित होकर दलितों में आत्मसम्मान और स्वालंबन की भावना जागृत हो गई। उन्हें गुलामी का अहसास हुआ। इसीलिए दलितों ने विद्रोह किया। इस जातिवादी मानसिकता को हटाने का प्रयास संत कबीर, संत गाडगेबाबा, छत्रपति शाहू महाराज, माहात्मा फुले, गौतम बुध्द, रैदास, चार्वाक तथा डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर आदि बहुत सारे महामानवों ने समाज परिवर्तन करने का प्रयास किया। डॉ. आंबेडकर ने समाज कार्य करते समय राष्ट्रीय एकात्मता और देश की लोकशाही और राष्ट्रीयता को एकसंघ रहने में कहीं पर भी राष्ट्र को समस्या के घेरे में नहीं रखा बल्कि हमेशा राष्ट्र की भलाई का ही विचार किया क्योंकि वे सच्चे देशभक्त थे।

मोहनदास नैमिशराय हिंदी साहित्य के एक श्रेष्ठ दलित साहित्यकार के रूप में पहचाने जाते हैं। छात्रदशा से ही उनका जीवन संघर्षमय रहा है। घर की आर्थिक दशा

खराब होकर भी उन्होंने कभी पढ़ाई खंडित नहीं होने दी। मोहनदास नैमिशराय पर डॉ. आंबेडकर के विचारों का गहरा प्रभाव है। उनसे प्रेरणा लेकर उन्होंने 'महानायक बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर' यह उपन्यास लिखा है। हिंदी दलित साहित्य में उनका यह पहला ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास में डॉ. आंबेडकर का पूरा जीवन-संघर्ष चित्रित किया गया है। यह उपन्यास समय, समाज, राष्ट्र, राजनीति, धर्म को झाँकते हुए सत्य-जीवन को स्पष्ट करता है। इतना ही नहीं, यह समाज में फैली गलत धाराणाओं की वास्तविकता को भी स्पष्ट करता है। इतिहास की वास्तविकता को पहचान कर कालक्रम से घटनाओं को आँकते हुए स्थान और तिथि को सही रूप में बध्द किया गया है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने भारत देश के अस्पृश्य या बहिष्कृत कही जानेवाली जनता को वर्ण व्यवस्था की दासता से मुक्त करने का प्रयास किया है। डॉ. आंबेडकर इतने महान विद्वान होने पर भी इनकी जाति ही बीच में आती थी। ऐसे समय में वो सोच रह थे कि इतना उच्चविद्या विभूषित होने के बाद भी अज्ञानी जातिवादी लोग जब मुझे इतना छलते हैं तो मेरी गरीब अशिक्षित जनता के साथ क्या नहीं होता होगा। उस समय देश के सभी नेता लोग देश को आजादी दिलाने के लिए अंग्रेजों से संघर्ष कर रहे थे। डॉ. आंबेडकर ही ऐसे नेता थे जो कहते थे कि मैं भी देशभक्त या देशप्रेमी हूँ लेकिन भारत देश को आजादी मिलने से पहले दलितों को आजादी मिलनी चाहिए क्योंकि दलित वर्ग दोहरी गुलामी में फँसा था। एक गुलामी अंगेजों की थी तथा दूसरी गुलामी अपने ही देश की हिंदू सवर्ण लोगों की थी। अगर पहले देश को आजादी मिली तो दलितों को सही मायने में आजादी नहीं मिलेगी क्योंकि वह सवर्णों के दास या गुलाम हैं। इसी संदर्भ में डॉ. आंबेडकर ने २६ जनवरी १९१९ में दैनिक टाइम्स ऑफ इंडिया में एक पत्र लिखा था। इसका मजकूर यह था- 'स्वदेशी सरकार की माँग पेश करने से पहले उँची और समृध्द जातियों को सोचना चाहिए कि अछूतों को भी स्वदेशी सरकार और स्वतंत्रता प्राप्त करने की उतनी ही तीव्र इच्छा है, जितनी कि दूसरों को है। हर कोई मानता है कि स्वराज यदि सवर्णों का जन्मसिद्ध अधिकार है तो वह अधिकार एक अछूत का भी है। इसीलिए उँची जातियों का यह प्रथम कर्तव्य है कि वे अछूतों को शिक्षा दिलवाएँ और उनका आदर करें। जब तक सवर्ण हिंदू इस प्रकार की कार्यपद्धति नहीं अपनाते तब तक स्वदेशी सरकार की प्राप्ति एक दूर की बात होगी। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर व्यक्ति की स्वतंत्रता को सर्वाधिक महत्व देते थे। स्वतंत्रता के संबध में 'मूकनायक' समाचार पत्र में उन्होंने लेख लिखा था- 'केवल भारत को स्वतंत्र कराना ही पर्याप्त नहीं है अपितु यह एक ऐसा श्रेष्ठ देश बने जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक अधिकार भी समान रूप से प्राप्त हों। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उन्नति का मार्ग चुनने का अवसर प्राप्त हो।' इस प्रकार डॉ. आंबेडकर ऐसी आजादी चाहते थे जिसमें समता, भाईचारा तथा न्याय हो एवं देश अखंडित बना रहे।

डॉ. आंबेडकर ने मुंबई विधान परिषद की रिपोर्ट पर हस्ताक्षर नहीं किए थे। १७ मई १९२९ को उन्होंने अपनी अलग रिपोर्ट पेश की। कर्नाटक बंबई प्रांत अलग करने के संदर्भ में डॉ. आंबेडकर ने लिखा कि कर्नाटक को बंबई से अलग होने के संदर्भ में मेरा विरोध है। इसका कारण था कि एक भाषा, एक प्रांत का सिद्धान्त अमल में लाने

के योग्य नहीं है। यह बहुत ही विस्तारपूर्वक है। इस सिध्दान्त को सम्मुख रखते हुए जो प्रांत गठित किए जाएँगे, वे मेरे विचार में क्रियात्मक योग्य नहीं होंगे। इस संदर्भ में देशभक्त आंबेडकर ने कहा- 'आज की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि लोगों मे संयुक्त राष्ट्रीयता का आभास उत्पन्न किया जाए। उनमें यह भावना नहीं कि वे सर्वप्रथम भारतीय और बाद में हिंदू, मूसलमान, सिंधी और कर्नाटकी हैं बल्कि यह भावना हो कि वे प्रथमतः और अन्ततः भारतीय हैं।'[1] एक बार महात्मा गांधी और डॉ. आंबेडकर की इस संदर्भ में चर्चा होती है। उस समय देशभक्त या राष्ट्रभक्त के संदर्भ में गांधीजी कहते हैं कि मैं प्रथमतः हिंदू हूँ और बाद में भारतीय हूँ तो डॉ. आंबेडकर कहते हैं कि मैं प्रथम भी भारतीय हूँ अन्ततः भी भारतीय हूँ। इससे यह स्पष्ट होता है कि डॉ. आंबेडकर के खून में या विचारों में भी राष्ट्रनिष्ठा या देशभक्ति झलकती है।

४ एप्रिल १९३८ को विधानसभा में स्वतंत्र कर्नाटक प्रदेश का निर्माण करने वाले विधेयक पर चर्चा चल रही थी। डॉ. आंबेडकर ने इस संदर्भ में कहा था कि इस स्वतंत्र प्रदेश की माँग के कारण राज्य में लिंगायत तथा अन्य सब निवासियों के बीच द्वेष पैदा हो जाएगा। अंग्रेजी शासन की हमें महत्वपूर्ण भेंट यह है कि केंद्रीय शासन शक्तिशाली हो और सब लोगों के लिए एक ही कानून हो। हम सब भारतवासियों का यह ध्येय होना चाहिए कि इस भावना को हम हर व्यक्ति के मन में जागृत करें कि हम सब भारतवासी हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि हम सब इकट्ठा रहकर सभी के मन में राष्ट्र के प्रति भावना जागृत होनी चाहिए।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने नारियों को समाज में सम्मान दिलाने के लिए अथक प्रयत्न किए, उन्हें स्वाभिमानी और स्वावलंबी बनाया। पूरे देश को पता है कि नारी उध्दारक कौन है? डॉ. बाबसाहेब आंबेडकर ने हमारे देश के संविधान में महिलाओं को पुरुषों के बराबर के अधिकार दिए हैं। यह बहुत सम्मानजनक बात है। जिस देश में महिलाएँ सदियों से गुलामी का अपमानित जीवन जीती रहीं, पति के मरने के बाद सती के नाम पर जलाई जाती रहीं, अंधविश्वास के कारण उनका बालविवाह होता था, केशवपन या बाल काटने की प्रथा थी, जब उसका पति मर जाता था तब उन्हें जीने का आधिकार, शिक्षा पाने, नौकरी करने और संपत्ति का आधिकारी बनने का आधिकार किसने दिया? हमारे देश के संविधान में नारियों के आधिकार और कर्तव्य यह सब भारतीय संविधान में समाविष्ट किया। हिंदू कोडबिल के द्वारा उन्होंने सभी जाति धर्म की सवर्ण दलित नारियों को कई आधिकार देकर सबल बनाया। कानून मंत्री के पद पर रहते हुए ऐसे कई कानून बनाकर डॉ. आंबेडकर ने सभी महिलाओं को समानता और सम्मान के साथ जीने का आधिकार दिया। इस तरह डॉ. आंबेडकरजी द्वारा राष्ट्र की उन सभी बेटियों को आज समाज में सम्मान एवं प्रतिष्ठा मिल रही है। वे पुरुषों के समान आधिकार पा रही हैं।

भारत देश में १९४३ में आजादी का प्रश्न ज्वलंत रूप धारण कर चुका था। देश के भीतर और बाहर उथल पुथल थी। एक तरफ गांधी भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के प्रवक्ता थे तो उनके विरोध में मुस्लिम लीग के एकमात्र मोम्मद अली जिन्ना थे। इन दोनों के परस्पर कलह के कारण भारत की आजादी के संदर्भ में धुंधलापन पैदा हो गया था। इसलिए डॉ.

आंबेडकर को उनकी आलोचना करनी पड़ी। महात्मा गांधी और मोहम्मद अली जिना ने भारत की राजनीतिक प्रगति को ठप्प कर दिया था। उस संदर्भ में डॉ. आंबेडकर ने कहा- 'कांग्रेस समाचारपत्र मुझे कितनी भी भद्दी और गंदी गालियाँ दें, मुझे अपने कर्तव्य का पालन करना है। मैं मूर्तिपूजक नहीं, मैं तो मूर्तिभंजक हूँ। मैं यदि गांधी तथा जिन्ना से घृणा नहीं करता हूँ तो मैं उन्हें केवल पसंद नहीं करता। मैं उनसे घृणा नहीं करता। उसका कारण यह है कि मैं भारत से अधिक प्रेम करता हूँ। यह एक राष्ट्रवादी की सच्ची निष्ठा है। मुझे आशा है कि मेरे देशवासी किसी न किसी दिन यह सीख लेंगे कि देश व्यक्ति से कहीं महान होता है।' इस प्रसंग से डॉ. आंबेडकर की सच्ची राष्ट्रनिष्ठा सामने आती है। महात्मा गांधी और डॉ. आंबेडकर ये दोनों भारतरत्न देश को आजादी दिलाने के लिए लड़ रहे थे। महात्मा गांधी और आंबेडकर में वैचारिक मतभेद था। दलितों में परिवर्तन, स्वाभिमान, स्वालंबन यह जादा तौर पर डॉ. आंबेडकर ने ही लाया था। डॉ. आंबेडकर को दिन-रात दलितों की ही चिंता लगी रहती थी। महात्मा गांधी जी कहते थे कि मैं 'दलितों' का मसीहा हूँ। गांधीजी दलितों को हरिजन नाम से पुकारते थे लेकिन गांधीजी से ज्यादा डॉ. आंबेडकर ही दलितों के कैवारी थे क्योंकि वह स्वयं दलित थे। उन्होंने सहा और भोगा था। गांधीजी का दलितों से कितना प्रेम है, यह कुछ प्रसंगों से पता चलता है। जब गांधीजी ने मुसलमान, सिख और इसाई को स्वतंत्र मतदान संघ देने का ऐलान किया, उसी समय जब डॉ. आंबेडकर ने दलितों के लिए भी स्वतंत्र मतदान संघ की माँग की तो गांधीजी ने कहा कि दलित हिंदू ही हैं। मैं हिंदुस्तान के टुकड़े करने में असमर्थ हूँ। इसका मैं विरोध करता हूँ। तब डॉ. आंबेडकर ने कहा- कि 'यदि मूसलमानों, सिखों, ईसाईयों को स्वतंत्र मतदान संघ मिल जाने से देश विभक्त नहीं होता तो अस्पृश्यों को वे ही अधिकार मिल जाने से किस तरह से देश विभक्त हो जाएगा?'[2] इतिहास में इसे पुणे करार कहते हैं। इसके विरोध में गांधीजी का अस्पृश्यों की भलाई के विरोध में उपवास करना यह अत्यंत खेदजनक है। आखिरकार डॉ. आंबेडकर को गांधी-आंबेडकर समझौते के संदर्भ में धमकियों के पत्र आने लगे। उनकी पत्नी कस्तुरबा गांधी, पुत्र देवदास, मदनमोहन मालवीय ऐसे बहुत सारे लोगों ने डॉ. आंबेडकर को 'पुणे करार' को वापिस लेकर गांधीजी के प्राण बचाने के लिए कहा। आखिरकार भगवान बुध्द के इस कारुणिक शिष्य ने सब की प्रार्थना मानकर गांधीजी को जीवन दान दे दिया। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का यह महान दान भी ऐतिहासिक घटना के रूप में जीवित रहेगा। डॉ. आंबेडकर की मानवीय श्रेष्ठता और देशभक्ति का इससे उत्तम उदाहरण और क्या हो सकता है। एक तरफ करोड़ों दलितों के भविष्य का सवाल था तो दूसरी ओर राष्ट्रपिता की जान बचानी थी। डॉ. आंबेडकर ने दुखी होकर पुणे करार पर हस्ताक्षर किया और गांधीजी की जान बचाई।

डॉ. आंबेडकर ने देश को बहुत कुछ दिया है जो कभी समाप्त नहीं होगा और वह है 'भारतीय संविधान'। यह उनके अथक परिश्रम का ही फल है। इस कार्य को उन्होंने अपना परम कर्तव्य ही नहीं परम धर्म मानकर पूरा किया। भारतीय संविधान लिखने के लिए डॉ. आंबेडकर को २ वर्ष ११ महीने १८ दिन लगे थे। २६ नवंबर १९४९ को पूरा करके उन्होंने संविधान राष्ट्र को समर्पित किया। इसके लिए डॉ. आंबेडकर को रोज १८

घंटे तक अध्ययन करना पड़ा। इसीलिए भारतीय संविधान के शिल्पकार डॉ. आंबेडकर को ही कहते हैं, लेकिन कुछ लोग कहते हैं कि संविधान बनाने के लिए और भी कुछ सदस्य थे लेकिन वह सिर्फ कहने के लिए था। कुछ कारणवश वे हाजिर नहीं रह सके। ५ नवंबर १९४८ में प्रारूप समिति के सदस्य श्री. टी.टी कृष्णमाचारी ने संविधान सभा में कहा था- 'संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए सात सदस्य नियुक्त किए गए थे, उनमें से एक की मृत्यु हो गई। उसके स्थान पर दूसरा सदस्य रखा गया। एक अन्य सदस्य की भी मृत्यु हो गई। उसका रिक्त स्थान नहीं भरा गया। एक दूसरा सदस्य अमेरिका में रहता था। उसका स्थान भी रिक्त रहा। एक अन्य सदस्य अपने राज प्रबंध की समस्याओं में उलझे रहे। उन्हें समय ही नहीं मिला। इस प्रकार उसकी भी कमी रही। एक या दो सदस्य दिल्ली में बहुत दूर रहते थे और संभवतः स्वास्थ्य खराब होने के कारण वे इस कार्य में सम्मिलित नहीं हो सके। इस प्रकार संविधान का प्रारूप तैयार करने का काम अंत में डॉ. आंबेडकर के कंधों पर आ पड़ा। मैं उनका अत्यंत कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इस काम को कितने प्रंशसनीय ढंग से निभाया। यह शब्द श्री. टी. टी. कृष्णामाचारी के इस संदर्भ में समाजवादी नेता एच.बी. कामथ ने कहा था- 'डॉ. आंबेडकर की कानूनी योग्यताओं का लोहा माना जा चुका है।' मुसलमान नेता ताजमुल हुसैन ने कहा, 'डॉ. आंबेडकर प्रतिभाशाली हैं। वे संसार के कानूनी और संविधान के विषय में हरबात जानते हैं।' डॉ. वी. पट्टाभि सीतारमैया का कथन है कि 'डॉ. आंबेडकर इस देश के उच्चस्तर के देशभक्तों में से एक हैं। मैंने इन्हें हमेशा प्रस्तुत विषय पर रचनात्मक कार्य में लगे ही देखा है।' इस तरह डॉ. आंबेडकर भारत देश के प्रति असाधारण कार्य करके ही सच्चे देशभक्त हैं, ऐसा बहुत सारे विद्वानों ने स्पष्ट किया है।

भारत जैसे बड़े राष्ट्र के लिए डॉ. आंबेडकर ने अपने संविधान में मतदान का सभी को समान आधिकार दिया। भारत के प्रथम नागरिक राष्ट्रपति से लेकर झोपड़ी में रहने वाले आम आदमी के मतदान को भी समान आधिकार दिया लेकिन यह आसानी से नहीं हुआ। बड़े-बड़े उद्योगपति एवं सवर्ण मनुवादियों के कुछ लोगों ने इसका विरोध किया था। इस संदर्भ में डॉ. आंबेडकर ने कहा था- 'कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को ही मताधिकार दे देने से जो सरकार बनेगी वह अल्पसंख्यकों की सरकार होगी। नतीजा यह होगा कि बहुसंख्यकों के हितों की बागडोर अल्पसंख्यकों के हाथ में रहेगी। संपत्ति, शिक्षा या अन्य किसी कारणवश किसी भी वयस्क भारतवासी को मताधिकार से वंचित करना चाहिए क्या? इंसान भले ही अनपढ़ हो फिर भी वह समझदार होता है। वह अपना हित अच्छी तरह समझता है। केवल गरीबी की वजह से कोई अपने राज्य का प्रतिनिधि न चुन सके तो यह उसके साथ बडी बेईंसाफी होगी।' इस तरह डॉ. आंबेडकर ने सभी भारतवासियों को मतदान करने के समान आधिकार दिया। यह डॉ. आंबेडकर का प्रशंसीनीय राष्ट्रीय कार्य है।

२५ एप्रिल १९४८ को उत्तरप्रदेश में शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के अधिवेशन में डॉ. आंबेडकर लखनऊ रेल्वे सैलून में ही गए थे। उस समय उत्तरप्रदेश के राज्यपाल पद पर भारत कोकिला श्रीमती सरोजनी नायडू आसीन थीं। वह स्वयं डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर को 'राजभवन' के अतिथिगृह में ठहरने का निमंत्रण देने के लिए लखनऊ

रेल्वे स्टेशन पर आई थीं। डॉ. आंबेडकर भारत कोकिला तथा राज्यपाल सरोजनी नायडू की बडी इज्जत करते थे। उन्होंने डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर से कहा- डॉक्टर मैं आपको राजभवन में ले जाने के लिए आई हूँ। आपको वहीं अतिथि गृह में ठहरना है। आप मेरे निमंत्रण को स्वीकार करें। बाबासाहेब के स्वर में प्रेम था। इस समय आंबेडकर कहते हैं, 'बहिन मैं यात्रा के समय रेलवे सैलून में ही रहता हूँ। इसीलिए कि मैं यहाँ पर अध्ययन करता हूँ। इस सैलून में अकेले नहीं बल्कि मेरे साथ मेरे किताबी मित्र हैं। इन मित्रों को छोड़कर मैं अतिथिगृह में नहीं आ सकता। इस प्रसंग के संदर्भ में सरोजनी नायडू ने कहा- 'हाँ, सो तो है। जिधर दृष्टि दौड़ाती हूँ उधर आपके प्रिय मित्र यानी किताबों की ही भरमार है। आपका अध्ययन बहुत ही गहरा है। भारत माँ को आप जैसे प्रतिभाशाली सुपुत्र पर बड़ा गर्व है। गर्व क्यों नहीं होना चाहिए। भारत माँ के यह सुपुत्र इतने अध्ययनशील हैं और भारत को नियंत्रित और शासित करने के लिए संविधान बना रहे हैं। ऐसे सुपुत्र पर किसको गर्व नहीं होगा। आपके प्रकांड पाण्डित्य से सारा देश ही नहीं बल्कि सारा विश्व प्रभावित है।' यह शब्द उत्तर प्रदेश के राज्यपाल सरोजनी नायडू के थे। इस तरह इतना सारा आग्रह होकर भी विशेष अतिथिगृह में भी डॉ. आंबेडकर नहीं गए बल्कि रेल्वे डिब्बे में रहकर संविधान लिख रहे थे। सही में ऐसे राष्ट्रभक्त या देशभक्त के प्रति भारत देश को ही नहीं बल्कि पूरे विश्व को गर्व है, जो उन्होंने ऐशो आराम छोडकर राष्ट्र की एकनिष्ठ सेवा की।

आंबेडकर ने 25 नवंबर 1949 को संविधान सभा में भाषण कहा था- मैं इस तथ्य से चिंतित हूँ कि भारत ने एकबार नहीं बल्कि अनेक बार अपने ही लोगों की गद्दारी और अनिष्ठा के कारण स्वतंत्रता खोई है। जिस समय सिंध पर मोहम्मद बिन कासिम ने आक्रमण किया, उसी समय वहाँ के राजा दाहर के सैनिकों ने मोहम्मद बिन कासिम से रिश्वत ली और शहर की ओर से लड़ने से इंकार कर दिया। जयचंद ने मुहम्मद गोरी को आमंत्रण दिया और पृथ्वीराज के विरुध्द स्वयं अपनी ओर से तथा सोलंकी राजाओं की ओर से सहायता का वचन दिया।

यह कह जाता है कि इतिहास स्वयं की पुनरावृत्ति करता है। डॉ. आंबेडकर ने कहा कि क्या हम पराजय और गुलामी के इतिहास की पुनरावृत्ति होने देंगे। उस समय लोगों ने कहा नहीं। इस संदर्भ में देशभक्त डॉ. आंबेडकर ने कहा-'हमें अपने खून की अंतिम बूँद बहाकर भी स्वतंत्रता चाहिए।' भारत के लोकतंत्र को नायक पूजा से खतरा है। जिन लोगों ने पूरे जीवन भर देश की रक्षा की है, उनके प्रति श्रध्दा प्रकट करना कोई बुरी बात नहीं है लेकिन इस कृतज्ञता ज्ञान की भी कोई सीमा है। इस तरह बड़ी ईमानदारी से डॉ. आंबेडकर ने राष्ट्र की सेवा की है।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि डॉ. आंबेडकर ने दलित, पीड़ित, शोषित तथा नारी में सामाजिक परिवर्तन किया है। इतना ही नहीं अपने देश को आजादी दिलाने के लिए भी डॉ. आंबेडकर ने सराहनीय कार्य किया है। अपने देश का कारभार अच्छा चलाने के लिए उन्होंने भारतीय संविधान देश को दे दिया। भारतीय संविधान में चुनाव में मतदान का आधिकार गरीब- अमीर सभी को देकर देश में लोकशाही का राज्य प्रस्थापित किया। नारीजीवन में परिवर्तन के लिए हिंदू कोड बिल का मसौदा संसद में पारित किया

ताकि नारी स्वाभिमानी एवं स्वावलंबी बन सके। सभी को पता है कि गांधी-आंबेडकर समझौता यानी पुणे करार में स्वतंत्र मतदार संघ की माँग थी मगर गांधीजी ने अनशन किया तो डॉ. आंबेडकर ने दलित समाज का अच्छा विचार किया था। पुणे करार से दलितों को स्वतंत्र रूप से मतों का अधिकार मिलने वाला था परंतु एक जगह पर गांधी की जान थी तो दूसरी जगह पर नौ कोटि दलितों का फायदा होनेवाला था किन्तु निराश होकर अंत में डा. आंबेडकर ने महात्मा गांधी की जान बचाई। यह सब देखकर पता चलता है कि डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर सही मायने में भारत देश के रत्न, सुपुत्र, देशभक्त और राष्ट्रभक्त थे। उन्हें युगों-युगों तक देश याद करेगा।

संदर्भ :

1. मोहनदास नैमिशराय, महानायक बाबसाहेब डॉ. आंबेडकर, धम्मजयोती चॅरिटेबल ट्रस्ट, हर्षविहार, दिल्ली, पृष्ठ क्र. 109
2. वही, पृष्ठ क्र. 255.256
3. वही, पृष्ठ क्र. 212
4. वही, पृष्ठ क्र. 247
5. ज्ञानप्रकाश जखमी, बोधिसत्व बाबासाहेब टुडे, अंतरराष्ट्रीय शोध मासिक पत्रिका आलमनगर, लखनऊ, पृष्ठ क्र. 12, सितंबर 2021
6. वही, पृष्ठ क्र. 15, दिसंबर 2021
7. डॉ. प्रदीप सरवदे,आंबेडकरी चिंतन और दलित उपन्यास, शुभम पब्लिकेशन, हंसपुरम, कानपुर, पृष्ठ क्र. 155
8. वही, पृष्ठ क्र. 107

21 वीं सदी की हिंदी फिल्मों में राष्ट्रीय भावना

डॉ. मारोती यमुलवाड

भारत जैसे देश में जहाँ राष्ट्र ही सर्वोपरि समझा जाता है, वहाँ राष्ट्रीय भावना और देशप्रेम की भावना से जुड़ी फिल्में काफी पसंद की जाती हैं और ये अच्छा बिजनेस भी करती हैं। हिंदी फिल्मों ने राष्ट्रीय भावना को बढ़ावा दिया है और उन्होंने कई कठिनाइयों और बाधाओं के साथ हिंदी भाषा का प्रसार किया है। राष्ट्रीय भावना या देशभक्ति हिंदी फिल्मों के लिए नया विषय नहीं है। आजादी के पहले इस तरह की फिल्में बनती रही हैं और उनका असर एवं योगदान भी रहा है। हालाँकि आजादी के पहले की फिल्मों ने कभी सीधे तौर पर अंग्रेजों की सत्ता को चुनौती नहीं दी, लेकिन अप्रत्यक्ष तरीके से उन फिल्मों ने अवश्य ही देशभक्तों और नागरिकों को प्रेरित किया। देश में विद्यमान विविध प्रकार की समस्याओं पर फिल्में बनाई गयी हैं और बन रही हैं। इन सबके केंद्र में राष्ट्रीय भावना ही प्रभावी रही है। 'जब जन समूह राष्ट्र के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख मानने की भावना से प्रेरित होता है तभी राष्ट्रीय भावना का सामूहिक रूप बनता है। बाह्य आचार विचारों की भिन्नता के होते हुए भी राष्ट्रीय भावना जन-समूह को एकता के सूत्र में बाँधे रखती है। इसी को भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू जी ने राष्ट्र की भावात्मक एकता का नाम दिया था। यह भावना वस्तुतः अंतश्चेतना के रूप में प्रवाहित रहती है। इस अंतश्चेतना का संबंध मनुष्य की समूह में रहने की प्रवृत्ति से जोड़ा जा सकता है। राष्ट्रीय भावना का व्यावहारिक पक्ष राष्ट्र के प्रति त्याग, उत्सर्ग और बलिदान की भावना में प्रकट होता है। राष्ट्रप्रेमी राष्ट्र के रक्षण या कल्याण के लिए प्राणोत्सर्ग करने के लिए भी तत्पर रहता है। राष्ट्र की शक्ति इसी भावना की प्रबलता पर आधारित होती है। जहाँ इस भावना का एक पक्ष एक विशिष्ट भू-भाग के प्रति लगाव में प्रकट होता है, वहाँ दूसरी ओर राष्ट्र विरोधी शक्तियों से संघर्ष करने की प्रवृत्ति भी इसमें रहती है।'[1]

राष्ट्रीय भावना और हिंदी फिल्में :

हिंदी फिल्मों ने राष्ट्रीय भावना को बढ़ावा दिया है। उन्होंने कई कठिनाइयों और बाधाओं के साथ हिंदी भाषा का प्रसार किया है। उन्होंने न केवल राष्ट्रीय मूल्यों को बढ़ावा दिया है बल्कि भारतीय समाज को भी एकीकृत किया है, जो बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक है। हिंदी सिनेमा ने व्यवस्थित ढंग से एकता की भावना को बढ़ाया है। 'हिंदी फिल्मों के आरंभ से भी निर्देशकों और दर्शकों ने देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत फिल्मों को सराहा और स्वीकार किया है। बदलते समय के साथ उसका मिजाज बदलता रहा है।'[2] हिंदी सिनेमा ने राष्ट्रीय भावना, सामाजिक भावना, देश भक्ति के मिशन के साथ-साथ राष्ट्र निर्माण के प्रति समर्पण की भावना को पोषित किया। साथ ही सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, सहिष्णुता, विश्व बंधुत्व जैसे राष्ट्रीय मूल्यों की भी प्रगति हुई है। हिंदी सिनेमा ने पूरे देश में हिंदी को एक संपर्क भाषा के रूप में बढ़ावा दिया। राष्ट्रीय भावना को मजबूत करने के लिए नए विषयों और विचारों को विकसित करके हिंदी सिनेमा हमेशा प्रगतिशील रहा। भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी सिनेमा के संदर्भ में कहते हैं - 'सिनेमा राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और एक

भारत श्रेष्ठ भारत की भावना को मजबूत करता है।'[3]

21वीं सदी की फिल्मों में राष्ट्रीय भावना :

इक्कीसवीं सदी में तीसरे दशक में प्रवेश कर चुके विश्व पर आज सबसे ज्यादा प्रभाव हिंदी फिल्मों का रहा है। हमारे रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन से लेकर चिंतन तक सिनेमा की गहरी पहुँच है। सिनेमा ने एक उभरते हुए देश को आकार दिया है। 'बॉलिवुड ने हमें ही नहीं हमारे देश व समाज को अपने समय के हिसाब से फैशन करना सिखाया, सामाजिक बदलाव को स्वीकार करने की समझ दी, जोर-जुल्म के खिलाफ इन्क्लाब का जज्बा दिया और हमारी भावनाओं को दृश्य-शब्द दिए।'[4] हिंदी सिनेमा ने राष्ट्रीय भावना को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 21वीं सदी के शुरुआत में भारतीय सिनेमा को एक अनूठी शैली, अभिव्यक्ति का नया तरीका, नए सितारे और समकालीन संगीत मिलता है। इस सदी में फिल्मों ने राष्ट्रीय भावना जगाने के लिए खेलों का सहारा लिया। भारत में सबसे अधिक खेले जाने वाला क्रिकेट राष्ट्रीय भावना व्यक्त करने का माध्यम बन गया। सचिन तेंदुलकर ने अपने आपको बेहतरीन खिलाड़ी के तौर पर स्थापित किया था। भारतीय प्रशंसक क्रिकेट को धर्म और सचिन को भगवान मानने लगे थे।

लगानः 'वन्स अपॉन ए टाइम इन इंडिया':

निर्देशक आशुतोष गोवारीकर द्वारा 2001 में प्रदर्शित फिल्म लगान में क्रिकेट के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को बढ़ावा दिया है। लगान फिल्म का लेखन और निर्देशन आशुतोष गोवारीकर ने किया। आमिर खान ने इस फिल्म का निर्माण कर भुवन के रूप में मुख्य भूमिका निभाई। यह फिल्म ब्रिटिश राज की पृष्ठभूमि पर आधारित है। 21वीं सदी में भारत में राष्ट्रीय पहचान, आत्म-पहचान, खेल और इसकी मनोवैज्ञानिक स्थिति के आधार पर इस फिल्म का विश्लेषण करना सार्थक है। भारतीय नागरिकों का सामाजिक मनोविज्ञान कई परिवर्तनों से गुजरा है। कई मुद्दों जैसे स्वयं की पहचान और फिर विभिन्न पात्रों की सामाजिक पहचान को कथात्मक तरीके से दिखाया गया है। अन्यथा सूखाग्रस्त ग्रामीण जो अपने दो बार के लगान के लिए चिंतित हैं, क्रिकेट मैच के आधार पर अपने भाग्य का फैसला करने के लिए तैयार नहीं हैं। भुवन और गौरी गाँव वालों को समझाते हैं कि अगर हम अच्छा खेलते हैं तो यह हमारे फायदे के लिए है। हम फिल्म में भुवन के नेतृत्व कौशल को देखते हैं। इस फिल्म ने दुनिया भर में भारत की सकारात्मक छवि बनाई है। आशुतोष गोवारीकर ने ब्रिटिश सेना को लगान इकट्ठा करने वाले विवेकहीन उत्पीड़कों के रूप में चित्रित किया है। भारत का गाँव चंपानेर दो साल से सूखा ग्रस्त है। स्थानीय ब्रिटिश रेजिमेंट के कमांडर कैप्टन रसेल (पॉल ब्लैकथॉर्न) लगान लेने पर अड़ गए। गाँव के राजा ने कैप्टन को समझाने की कोशिश की लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। भुवन (आमिर खान) लीड लेता है और कैप्टन से बात करता है। कैप्टन रसेल ने ग्रामीणों के साथ दाँव लगाया। यदि वे क्रिकेट मैच में ब्रिटिश रेजिमेंट को हराते हैं, तो उन्हें दो साल की भूमि कर छूट मिलेगी और यदि ग्रामीण हार जाते हैं तो उन्हें लगान की सामान्य राशि का तीन गुना भुगतान करना पड़ेगा। भुवन उन्हें क्रिकेट मैच के लिए प्रशिक्षित करता है। प्रतिद्वंद्विता, प्रतिस्पर्धा, राजनीति, दबाव, निष्ठा, आत्म-पहचान और

सामाजिक पहचान का संघर्ष कथानक को प्रकट करता है और विभिन्न पात्रों के माध्यम से कहानी सुनाता है। 'लगान में राष्ट्रीय विजय है, मगर इसका संदर्भ थोड़ा अलग है। वहाँ शोषक और शासक के खिलाफ एक गाँव के निवासी क्रिकेट के बहाने एकजुट होते हैं। लगान अंधराष्ट्रवाद से प्रेरित नहीं है, फिर भी सफल है।'[5]

चक दे इंडिया : चक दे इंडिया, यशराज प्रोडक्शन की एक फिल्म है, जिसका निर्देशन शिमित अमीन ने किया है। 2007 में प्रदर्शित 'चक दे इंडिया' देशभक्ति से ओतप्रोत फिल्म है। इस फिल्म में शाहरुख खान ने महिला हॉकी टीम के कोच का किरदार निभाया जो भारतीय महिला हॉकी टीम को पहली बार विश्व चैंपियनशिप दिलाता है। फिल्म इतनी ज्यादा पसंद की गई की इसका गाना 'चक दे चक दे इंडिया' देशभक्ति गीत बन गया। मैदान में यदि भारतीय टीम उतरती है तो इस गाने का बजना अनिवार्य होता जा रहा है। फिल्म कबीर खान नामक एक हॉकी खिलाड़ी पर केन्द्रित है। कबीर की कप्तानी में भारत और पाकिस्तान के बीच हुए हॉकी मैच को हारने पर मीडिया कबीर पर फिक्सिंग का आरोप लगाती है और कबीर को हॉकी टीम से निकाल दिया जाता है। मुस्लिम होने के कारण उसकी देशभक्ति पर प्रश्नचिह्न लगा दिया जाता है। उस मैच के बाद खिलाड़ी के रूप में उसका कॅरियर खत्म हो जाता है जो एक गद्दार का लेबल लगाए जाने के बाद हॉकी और राष्ट्रीय अखंडता के लिए अपने जुनून को साबित करने की कोशिश करता है। सात वर्ष बाद वह महिला हॉकी टीम का प्रशिक्षक बनता है। इस टीम को विश्व चैम्पियन बनाकर वह अपने ऊपर लगे हुए दाग को धोना चाहता है, लेकिन उसकी राह आसान नहीं थी। हॉकी खिलाड़ी की स्थिति भारत के लिए खेले एक श्रेष्ठ हॉकी खिलाड़ी की आर्थिक स्थिति क्या होती है, ये निर्देशक ने शाहरुख को एक खटारा स्कूटर पर बैठाकर बिना संवाद के जरिये बयाँ कर दी। इन लड़कियों का ध्यान खेल पर कम था। वे केवल नाम के लिए खेलती थीं। अलग प्रदेशों से आई इन लड़कियों में एकता नहीं थी। सीनियर खिलाड़ियों की दादागीरी थी। कबीर इन खिलाड़ियों के दिमाग में यह बात डालता है कि वे भारतीय पहले हैं, फिर वे महाराष्ट्र या पंजाब की हैं। फिर शुरू होता है प्रशिक्षण का दौर। हर तरफ से बाधाएँ आती हैं और कबीर इन बाधाओं को पार कर अंत में अपनी टीम को विजेता बनाता है। कहानी बड़ी सरल है, लेकिन जयदीप साहनी की पटकथा इतनी उम्दा है कि पहली फ्रेम से ही दर्शक फिल्म से जुड़ जाता है। छोटे-छोटे दृश्य इतने उम्दा तरीके से लिखे और फिल्माए गए हैं कि कई दृश्य सीधे दिल को छू जाते हैं।

दंगल : निर्देशक नितेश तिवारी द्वारा 2016 में प्रदर्शित दंगल फिल्म एक हरयाणवी पहलवान महावीर फोगट की कहानी के साथ-साथ एक पिता और दो बेटियों गीता ओर बबिता फोगट की पहलवानी की कहानी भी है। महावीर की इन दोनों बेटियों ने देश के लिये मेडल जीत कर इतिहास बनाया था। यह अब तक की बॉलीवुड की सबसे ज्यादा कमाई करने वाली फिल्म है। दंगल फिल्म के राष्ट्रमंडल खेल में जब गीता स्वर्ण पदक जीतती है और तिरंगा को ऊपर जाते देख जो गर्व का भाव पैदा होता है, उसे शब्दों में बयां करना मुश्किल है। जब पार्श्व में 'जन-गण-मन' बजने लगता है तो सिनेमा हॉल में मौजूद सारे दर्शकों में राष्ट्रप्रेम की भावना ऐसे हिलोरे लेती हैं कि वह स्वतः ही सम्मान

में खड़ा हो जाता है। नितेश तिवारी ने इस सीक्वेंस को बखूबी फिल्माया है। फोगाट की कहानी बहुत ही दमदार और प्रेरणादायी है। यह दर्शाती है कि कुछ पाने की चाह के आगे साधनहीन होने की बात बौनी साबित हो जाती है। गीता में देश के लिए कुछ कर गुजरने की तमन्ना दिखाई देती है, जो राष्ट्रीय भावना को जागृत करती है।

'उरीः द सर्जिकल स्ट्राइक' विक्की कौशल (Vicky Kushl) की फिल्म 'उरीः द सर्जिकल स्ट्राइक' वर्ष 2016 में उरी आतंकवादी हमले का जवाब देते हुए भारत ने जो सर्जिकल स्ट्राइक की थी, उस पर आधारित है। इस फिल्म में भारतीय आर्मी अफसर की बहादुरी दिखाई गई है। फिल्म का फेमस डायलॉग, 'हाउ इज द जोश' आज भी हर देशवासी में अपने देश के लिए कुछ कर गुजरने की भावना पैदा करता है।

मिशन मंगल : में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के वैज्ञानिकों द्वारा किए गए 'मंगलयान' के सफल परीक्षण की संघर्षमय कहानी बताई गई है। फिल्म की कहानी दो जुनूनी वैज्ञानिकों की है, जिन्हें दंड देने के लिए मंगल परियोजना में स्थानांतरित कर दिया जाता है। मिशन मंगल को सभी लोग असंभव मानकर बैठे हुए थे। दोनों वैज्ञानिक राकेश (अक्षय कुमार) और तारा (विद्या बालन) एक टीम बनाकर उस पर काम शुरू करते हैं। आर्थिक अभाव और समय की बंदिश भी साथ है। कुल सात लोगों की टीम के जुनून और सरकारी संसाधनों की मदद से मिशन मंगल पूरा होता है। इस फिल्म में भारत की तकनीकी व्यवस्था और वैज्ञानिक समाज का अपने देश के प्रति समर्पण देखने को मिलता है। फिल्म में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। इस तरह हम देखते हैं कि फिल्मों में राष्ट्रभाव को सदैव जगह मिलती रही है।

आने वाले युग में भारत को एक महाशक्ति के रूप में पुनर्निर्माण के लिए उपयोगी राष्ट्रीय भावना, देशभक्ति की भावना को हिंदी सिनेमा बढ़ावा देकर मजबूत करता है। वर्ष 2000 के बाद देशभक्ति और राष्ट्रीय भावना से जुड़ी फिल्मों को न केवल दर्शकों का भरपूर प्यार मिला है, बल्कि बॉक्स ऑफिस पर भी उन्होंने काफी कमाई की। 21 वीं सदी की हिंदी फिल्मों ने क्रिकेट, हॉकी, कुश्ती, मंगलयान, सर्जिकल स्ट्राइक जैसे विषयों के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को उजागर करने की कोशिश की है।

सन्दर्भ :

1. http://drnarayanaraju.blogspot.com/2019/04/blog-post_56.html
2. ब्रह्मात्मज अजय, - सिनेमा समकालीन सिनेमा - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण पृ. सं. 48
3. https://hindi.kamalsandesh.org/cinema-has-an-important-role-in-nation-building-narendra-modi/
4. चोपडा धनंजय, - तो क्यों ने देखें फिल्में बार-बार - ('मीडिया विमर्श' सिनेमा विशेषांक, 2 मार्च 2013) पृ. 13
5. ब्रह्मात्मज अजय, - सिनेमा समकालीन सिनेमा - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण पृ. सं. 48

असिस्टेंट प्रोफेसर, स्नातक एवं स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
बलभीम महाविद्यालय, बीड

'घुटन भरी जिंदगी' में राष्ट्रीय भावना

डॉ. गोरख निळोबा बनसोडे

देश के प्रति प्रेमभाव को प्राथमिकता देना ही देशप्रेम है। वही देश प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ता है, जिस देश के शिक्षित, सुसंस्कृत, विद्वान और नीतिमान नागरिक देश के प्रति आदर रखते हुए देश के सुधार की दृष्टि से राष्ट्र की प्रगति में योगदान देते हैं। भारत देश के संत-महात्मा से लेकर समाज-सुधारक, जवान, नेता, उद्योजक, शिक्षक, इंजीनियर, वकील, डॉक्टर, किसान, मजदूर, कर्मचारी, खिलाड़ी, कलाकार, शासकीय-अर्धशासकीय कर्मचारी आदि सभी ने प्रेमभाव से देश की सेवा की है और कर रहे हैं। लेखक वर्ग भी अपनी साहित्यिक रचना के माध्यम से लोगों का प्रबोधन करके देशसेवा का सार्थक प्रयास कर रहे हैं।

गुजरात के अरवली जनपद के छभौव गाँव में जन्मे कवि डॉ. धीरजभाई वनकर जी ने 'अब थोड़े चुप रहेंगे', 'संघर्ष के आदी', 'घुटन भरी जिंदगी', आदि कविता संग्रहों के साथ-साथ प्रचुर मात्रा में समीक्षा ग्रंथों का लेखन किया है। महाराष्ट्र दलित साहित्य अकादमी, भुसावल से 'रवीन्द्रनाथ टैगोर लेखन पुरस्कार', महात्मा फुले प्रतिभा संशोधन अकादमी नागपुर से 'भारतरत्न डॉ. बी. आर. आंबेडकर टेलेंट रिसर्च नेशनल एवार्ड', हिंदी साहित्य मंडल श्रीनाथ से 'हिंदी साहित्य विभूषण', केंद्रीय हिंदी निदेशालय मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली से पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

उनका कविता संग्रह 'घुटन भरी जिंदगी' सन 2021 में ज्ञान प्रकाशन कानपुर से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह की अनेक कविताएँ राष्ट्रीय भावना से युक्त हैं, जिनमें कवि का उच्च देशप्रेम दिखाई देता है। पहली ही कविता 'वतन की मिट्टी से' में कवि कहते हैं -

'वतन की मिट्टी से / मैं बहुत प्यार करता हूँ / पेड़ पौधों प्रकृति के कण-कण से /
पशु-पंछी चराचर से / मैं बहुत प्यार करता हूँ / देश के शहीदों-शूरवीरों से /
आजादी जिसने दिला कर / भारत माता का मस्तक उन्नत किया / मैं बहुत प्यार करता हूँ।[1]

अर्थात् देशप्रेम की भावना में महत्वपूर्ण है देश की मिट्टी, जिस पर हम रहते हैं। खाते-पीते, उठते-बैठते और निवास करते हैं। इसी धरती की खेती से जो अनाज उत्पन्न होता है, उसी पर हम उदर-निर्वाह करते हैं। यही मिट्टी हमें जीवित रखती है, हमारा पालन-पोषण करती है। पेड़, पौधे, पशु, पंछी और प्रकृति पर भी कवि का बहुत प्रेम है क्योंकि ये देश के सृष्टि-सौंदर्य को बढ़ाते हैं। देश का मनोहारी रूप निर्माण करते हैं।

कवि देश को आजाद करने वाले शूरवीरों और शहीदों को न भूलकर उनके प्रति कृतज्ञ है। देशभक्तों ने अपने प्राणों का बलिदान देकर भारत देश की रक्षा की और उसका मान-सम्मान बढ़ाया है। 'सच्ची आजादी' कविता में कवि कहते हैं -

'मेरा देश / गोरों की गुलामी से / 14 अगस्त 1947 की रात समाप्त होते ही /
15 अगस्त 1947 की सुनहरी भोर में स्वतंत्र हुआ /
और देशभर के लोगों के चेहरे पर खुशी लाया / गाँव-गाँव, शहर-शहर में देखो /
नये भारत का सपना लाया'[2]

इसमें कवि ने देश की आजादी से आज तक के 75 साल का इतिहास हमारे सामने प्रस्तुत किया है। 15 अगस्त 1947 को हमारा भारत देश आजाद हुआ। तब से आज तक पूरे देश में खुशी की लहर छाई है। सभी क्षेत्र की प्रगति देखकर ऐसा लग रहा है, जैसे भारत देश दिनों-दिन नया हो रहा है। देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक प्रगति में जमीन-आसमान का अंतर आया है' देश का विश्व में नाम रोशन हो रहा है। 'प्रेम करो' कविता में कवि कहता है -

'प्रेम करो / बहुत गहरा प्रेम / अपनी मातृभूमि से / अपने मातापिता से / प्रेम करो'[3]

कवि राष्ट्रीय प्रेमभाव, भाईचारा बढ़ाने के लिए देश पर बहुत प्रेम करने का संदेश देता है' देश को एक सूत्र में बाँधने में एक मात्र मार्ग प्रेम ही है' एक परिवार में मातापिता या अन्य सदस्यों पर जैसा प्रेम होता है, ठीक उसी प्रकार देश के एक नागरिक का दूसरे नागरिक पर होना चाहिए। तभी देशप्रेम व्यापक रूप में विकसित होगा।

जाति-पाँति का विरोध :

'गुलामी का रुदन' कविता में कवि कहते हैं -

'मेरे कुनबे के लोगों की / युगों-युगों की वेदना / उपेक्षा, अपमान, गुलामी का रुदन /
भूख से भयभीत / आकुल व्याकुल / समूचे परिवर्तन की अभिलाषा में/
मेरा लक्ष्य है समता'[4]

जाति-पाँति के नाम पर अन्याय करके एक वर्ग को अपमानित किया गया है। इससे दलित वर्ग के साथ हमारे देश का भी बहुत बड़ा नुकसान हो रहा है। इस बारे में संतराम बी. ए. कहते हैं, 'जात-पाँति कोई हिन्दुओं की सामाजिक बुराई नहीं हैं। यह एक राष्ट्रीय महारोग है, जो देश की हजारों वर्षों व्यापी दासता का कारण बना है।'[5] अनेक वर्षों के समाज सुधारकों के समाज सुधार से आज इक्कीसवीं सदी में विश्व के मानव-मानव के बीच का भेद दूर होकर समानता प्रस्थापित होने में सहायता हुई है।

आजादी का नारा बुलंद करते हुए 'आजादी की फुलवारी' कविता में कवि कहते हैं -

'यत्र तत्र सर्वत्र लोग हों स्वतंत्र / ना कोई बड़ा ना कोई छोटा /
समरसता मूलक समाज की स्थापना हेतु / लावा बनकर शोषकों को भस्म करने /
आजादी की फूलवारी रचने।'[6]

स्वतंत्रता की निशानी यही होती है कि मनुष्य अपने जीवन का पंछी की तरह मुक्त रूप से आनंद ले सके। 15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ। 26 जनवरी 1950 से कानूनन देश के सभी लोग प्रजासत्ताक बन गए। अब यहाँ सभी समान हैं। सभी को कहीं भी रहना, खाना-पीना, घूमना-फिरना, व्यापार, शिक्षा, चुनाव, बोलना आदि का समान अधिकार होगा। इससे देश पर सभी का समान अधिकार होगा और देश की प्रगति करने का भी सभी की जिम्मेदारी भी होगी।

शिक्षा का महत्व : 'कलम का कमाल' कविता में कवि शिक्षा का महत्व विशद करते हुए कहते हैं-

'मेरे पास ना अस्त्र है / ना शस्त्र है ना शास्त्र है / है केवल कलम /
उसका लक्ष्य देखो -/ जातिवाद को दूर करना / तानाशाह को तिलाजलि देना /

बंधुआ मजदूर की बेडी तोड़ना / आजादी का बिगुल बजाना है'[7]

शिक्षा का प्रतीक अब कलम है। कवि के मतानुसार शिक्षा आज के जमाने में अस्त्र-शस्त्र और शास्त्र है। शिक्षा से जातिवाद दूर किया जा सकता है। तानाशाही दूर की जा सकती है। बंधुआ मजदूर की गुलामी की बेड़ी तोड़कर उन्हें आजाद किया जा सकता है। इसलिए शिक्षा का महत्व स्पष्ट करते हुए डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर कहते थे, 'शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो।'

सर्वधर्मसमभाव : 'मन करता है' कविता में कवि कहते हैं -

'मन करता है / जाति धर्म के नाम पर / दीवारें खड़ी करने वालों को /
सर्वधर्म सम भाव याद करा दूँ / मातृभूमि की सुरक्षा की खातिर /
जान तक न्योछावर कर दूँ।[8]

कवि सभी जाति-धर्म की दीवारें दूर करके सर्वधर्मसमभाव की व्यापक भावना लाना सभी को एकत्रित करने का एकमात्र मार्ग है। यह करने के लिए कवि अपने जान की बाजी तक लगाने को तैयार है।

प्रजातंत्र की सुरक्षा : 'कतई न झुके' कविता में कवि कहते हैं-

'रवीश कुमार तुम सबसे न्यारे / मामूली भूमिहार परिवार में पैदा हुए /
अक्सर विवादों में घिरे रहे / दरसल तुम्हें दबाने की हर संभव कई कोशिश की गई /
पर तुम दबे नहीं और दबंग बनकर उभरे'[9]

कवि के मतानुसार प्रजातंत्र से ही सामान्य लोगों की आजादी, सुख, आनंद सुरक्षित है। प्रजातंत्र से ही देश का और सामान्य वर्ग का सम्मान है। इसलिए प्रजातंत्र सुरक्षित रहना आवश्यक है।

शोषण के खिलाफ बुलंद आवाज :

'घुटन भरी जिंदगी' कविता में कवि कहते हैं -

'सत्तर साल की घुटन भरी जिंदगी के खिलाफ
लुटेरों, मठाधीशों, सेठ साहूकारों के शोषण / भ्रष्ट नेताओं -अफसरों,
माफियाओं के दमनचक्र के खिलाफ / आवाज उठाई जा रही हैं'[10]

दीन-दलित, आदिवासी, गरीब, मजदूर, किसान वर्ग को अशिक्षा, अज्ञान, निर्धनता के कारण उच्च वर्ग ने लूटकर शोषण किया है। इस बारे में डॉ. सोहनलाल सुमनाक्षर कहते हैं, 'दलित समाज का इतिहास हजारों वर्षों के अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न, शोषण, दमन, दुराचार और तिरस्कारों से भरा पड़ा है।[11] अब वर्तमान में इस स्थिति में परिवर्तन होना आवश्यक है।

अलगाववाद का विरोध :

'अलगाववाद' कविता में कवि कहते हैं -

'हे भारतवासी / हमे कुछ तो सार्थक कर्म करना होगा /
हमें कंटकों पर प्रहार करना होगा / हमें मंदी की रफ्तार को धारणा होगा /
हमें एकता को साकार करना होगा / क्यों पनप रहा है आतंकवाद?
कयों तिलमिला रहा है नक्सलवाद? / कैसे खिला है माओवाद?
कैसे बढ़ा है अलगाववाद? / आतंक का अंत है केवल विनाश'[12]

कवि के अनुसार 'अलगाववाद', आतंकवाद, नक्सलवाद आदि बातों से देश का बहुत नुकसान हो रहा है। यह व्यवस्था देश में अराजकता निर्माण करती है। इससे देश का गणतंत्र खतरे में आ सकता है। डॉ. प्रदीप आगलावे कहते हैं, 'मानवता, धर्म, राज्य का विचार न करते हुए दहशतवादी अपना ध्येय साध्य करने के लिए हिंसा का भी प्रयोग करते हैं।'[13] इसलिए देश की सुरक्षा के लिए ऐसी व्यवस्था का जन्म ही न हो इस बात पर हमें ध्यान देना चाहिए।

भारतीय किसान का चित्रण:

स्वतंत्रता पूर्व काल में किसान तथा सामान्य वर्ग को मठाधीश, सेठ साहूकारों से न्याय दिलाने का पहला ताकतवर प्रयास महात्मा ज्योतिबा फुले जी ने किया। सेठ साहूकार किसानों को किस प्रकार लूटते थे इस बारे में 'शेतकऱ्याचा असुड' किताब में महात्मा ज्योतिबा फुले कहते हैं, 'साहूकार किसान को कर्जा देते समय उसके विविध प्रकार के नुकसान करते थे। अनपढ़ किसानों से झूठी लिखा-पढ़ी कर लेते थे। बाद में कोर्ट में झूठे आरोप लगाए जाते। कोर्ट से छूटने के लिए किसान को अपने गहने बेचकर मुक्त होने का प्रयास करना पड़ता।'[14] इतने अन्याय-अत्याचार सेठ-साहूकार अशिक्षित किसानों पर बेरहमी से करते थे। आज भी किसानों को अनेक प्रकार से लूटा जाता है यह वास्तविकता है। 'किसान' कविता में कवि इसी ओर संकेत करता है-

'मैं मेहनतकश किसान हूँ / हर फसल पर कर्जा लेने पर मजबूर हो जाता हूँ /
पीकवीमा के लिए कचहरी चक्कर लगाता हूँ /
उन सूदखोरों की दबंगई से थर-थर काँपता हूँ /
परिवार के पेट खातिर दिन-रात पसीना बहाता हूँ /
बेटे-बेटियों की पढ़ाई शादी अभी तो बाकी है /
जीने का जब कोई चारा नहीं रहता / आत्महत्या करने पर लाचार हो जाता हूँ /
मैं अन्न धान्य उगाता हूँ / मै देश का सच्चा रखवाला हूँ'[15]

नारी वर्ग का सम्मान :

कवि ने 'बेटी है तो कल है' कविता में नारी वर्ग को सम्मानित करते हुए लिखा है -

'बेटी है तो परिवार है / बेटी है तो कल है / बेटी है जगसार है /
बेटी है तो बेटे होंगे / नई सदी में नजरिया बदल दो /
बेटियों को संसार में आने दो / बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ'[16]

नारी को सृष्टि तथा जगत की निर्मात्री कहा गया है लेकिन प्रारंभ से ही नारी का स्वागत नहीं हुआ। उसे हमेशा नकारा गया है। नारी वर्ग की उपेक्षा और शोषण के बारे में डॉ. कुसुम मेघवाल कहती हैं,' शास्त्रकारों ने धर्म के नाम पर युगों-युगों से नारी का शोषण किया है।'[17] महात्मा फुले और सावित्रीबाई फुले ने महिलाओं के शिक्षा को प्रारंभ किया और उससे ही नारी आजाद हुई, उसका सम्मान बढ़ा। कवि भी नारी वर्ग की तरफ देखने की दृष्टि बदलने को प्रोत्साहित करते हुए बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ का नारा बुलंद करते हैं।

देश के भविष्य के बारे में चिंतन :

'अच्छे दिन कब आयेंगे' इस कविता में कवि कहते हैं -

'सदियों से भूख / गरीबी और शोषण कुपोषण /
हमें अंधविश्वास, अशिक्षा, अज्ञानता के कारण /
गुलाम, बंधुआ मजदूर बनाकर रख दिया /
हमें अच्छे दिन कब आयेंगे / उसकी प्रतीक्षा करते खड़े हैं /
पर वे तो नित-नित नई तरकीब अपना रहे हैं /
गरीब को और कैसे गरीब रखा जाए।'[18]

ऐसा कहते हुए कवि शासन व्यवस्था को देश की गरीबी, भूख, सामान्य वर्ग का अभावग्रस्त जीवन इन बातों की ओर ध्यान देकर देश के भविष्य के बारे में सतर्क रहने का आवाहन करते है।

इस तरह देशप्रेम के कारण देश की बढ़ती विविध समस्याओं से कवि दुःखी है। उन समस्याओं के कारण देश की राष्ट्रीयता और अखंडता को खतरा पहुँच सकता है। ये समस्याएँ हद से बाहर बढ़ने के कारण देश की स्वतंत्रता, समता, बंधुता, न्याय जैसे मूल तत्वों को आँच आ सकती है। इसलिए कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीय भावना की परिभाषा और स्वरूप को नये रूप से शब्दबद्ध करके पाठकों को प्रोत्साहित किया है। साथ ही, परिश्रमपूर्वक समाजशास्त्रीय पद्धति से राष्ट्रीय भावना का राष्ट्र की उन्नति हेतु आवश्यकता एवं महत्व पर बल दिया है। राष्ट्रीय भावना के बाधक तत्वों- जातिप्रथा, अंधविश्वास, साम्प्रदायिकता, छुआछूत, असमानता, सामंतशाही, तानाशाही, मंहगाई, बेकारी, गरीबी, बेगारी, कुपोषण, सेठ-साहूकार द्वारा शोषण, भ्रष्ट नेता-अफसर द्वारा शोषण, अलगाववाद, अशिक्षा, गुलामी, स्त्री-पुरुष विषमता आदि का परिचय देते हुए इनके दुष्परिणामों और उनसे देश को होने वाले नुकसानों से कवि ने आगाह किया है। कवि का विश्वास है कि सांप्रदायिक बातों से जागृत होकर हम एकत्रित रूप से देश की सुरक्षा कर सकते हैं।

संदर्भ :

1. धीरजभाई वनकर, 'घुटन भरी जिंदगी', ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2021, पृ. 29
2. वही, पृ. 44
3. वही, पृ. 45
4. वही, पृ. 39
5. संतराम, 'हिंदू विनाश के मार्ग पर, जाति आखिर क्यों नहीं जाती? एस. एस. गौतम, अक्षय कुमार संपा. गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, प्र.सं. 2008, पृ. 62
6. धीरजभाई वनकर, 'घुटन भरी जिंदगी', ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2021, पृ. 46
7. वही, पृ. 49
8. वही, पृ. 50
9. वही, पृ. 63
10. वही, पृ. 74

11. सोहनलाल सुमनाक्षर, 'अंधा समाज और बहरे लोग', भारतीय दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन, दिल्ली, द्वि. सं. 2002, पृ. 05
12. धीरजभाई वनकर, 'घुटन भरी जिंदगी', ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2021, पृ. 77
13. डॉ. प्रदीप आगलावे, 'भारतीय समाज संरचना आणि व्याप्ति', ज श्री साईनाथ प्रकाशन, नागपुर, प्र.सं. 2003, पृ. 292
14. धीरजभाई वनकर, 'घुटन भरी जिंदगी', ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2021, पृ. 81
15. महात्मा जोतिबा फुले, 'शेतकऱ्याचा असूड़', संपा. श्री. धनंजय कीर, महात्मा फुले समग्र वाङ्मय, महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृती मंडळ, मुंबई, प्र.सं. 1969, पृ. 285
16. धीरजभाई वनकर, 'घुटन भरी जिंदगी', ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2021, पृ. 99
17. कुसुम मेघवाल, 'भारत में स्त्री दास्य', मूलनिवासी प्रकाशन, उदयपुर, प्र.सं. 2007, पृ.156
18. धीरजभाई वनकर, 'घुटन भरी जिंदगी', ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2021, पृ. 92

सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
सरदार बाबासाहेब माने महाविद्यालय,
रहिमतपूर, तह. कोरेगाव जि. सातारा महाराष्ट्र

नरेंद्र नागदेव के कहानी साहित्य में राष्ट्रीय भावना

('उन्नीस सौ चवालीस' एवं 'छलांग' कहानी के विशेष संदर्भ में)

नीलेश वसंतराव जाधव
(अनुसंधाता)

राष्ट्र प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना को बढ़ावा देना साहित्य सृजन का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण है। यदि कहा जाए कि साहित्य सदा राष्ट्र की गोद में अंकुरित एवं पुष्पित होता रहा है तो गलत नहीं होगा। साहित्य राष्ट्रीय छत्र-छाया में पलता आया है। राष्ट्रगत विशिष्टताओं से साहित्य सृजन में महत्वपूर्ण प्रेरणा एवं सबल पृष्ठभूमि प्राप्त होती है। इसके साथ ही साहित्य भी राष्ट्र के उन्नयन एवं विकास में सहायक होते हुए नवीन दिशा दर्शन देकर उसे नवीन पथ पर अग्रसर करने में सहायक होता है। साहित्य भी अपने क्रान्तिपूर्ण विचारों द्वारा राष्ट्र के नवनिर्माण में सहायक हो सकता है। साहित्य राष्ट्र पर आधारित है और राष्ट्र साहित्य पर।

राष्ट्रीय भावना की उन्नति में साहित्य की देन अनुपम है। चारण कवियों के प्रबंधकाव्य से लेकर वर्तमान कविताओं तक का महत्व राष्ट्रीय भावना के कारण स्थायी हो गया है। राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत साहित्य के माध्यम से अपने गौरवशाली इतिहास का ज्ञान होता है तथा अपनी संस्कृति के प्रति श्रध्दा की भावना का जागरण होता है। राष्ट्रीय भावना जन-समूह को एकता के सूत्र में बाँधे रखती है। यह भावना वस्तुतः मानव के मन में प्रवाहित रहती है। इस अंतश्चेतना का संबंध मनुष्य की समूह में रहने की प्रवृत्ति से जोड़ा जा सकता है। राष्ट्रीय भावना राष्ट्र के प्रति त्याग, उत्सर्ग और बलिदान से युक्त होती है। राष्ट्रप्रेमी राष्ट्र के रक्षण या कल्याण के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए हरदम तत्पर रहते है। राष्ट्र की शक्ति इसी भावना की प्रबलता पर आधारित होती है। इस भावना में जहाँ विशिष्ट भू-भाग के प्रति लगाव होता है, वहीं राष्ट्र-विरोधी शक्तियों से संघर्ष की प्रवृत्ति भी होती है। नरेंद्र नागदेव के कहानी साहित्य में विषय की दृष्टि से वैविध्य नजर आता है। इनके साहित्य में मूल्य विघटन, समाजिक समस्याएँ, समसामायिक समस्याएँ जैसे - अंतःकरण का दाह, स्नेहिल रिश्तों पर हावी भौतिक लिप्साएँ, भीतरी अंतर्द्वंद्व, बाह्य संघर्ष, असफलता के अंधेरे, स्मृतियाँ और आत्मग्लानि, वर्तमान की विडंबनाएँ, मनौवैज्ञानिक स्प्लिट पर्सनैलिटी, बाजारवाद, स्वतंत्रता संग्राम, राष्ट्रीय भावना आदि विविध विषयों का यथार्थ और कल्पनात्मक रूप में अंकन करने का सफल प्रयास किया गया है। नरेंद्र नागदेव द्वारा लिखित प्रस्तुत दोनों कहानियाँ बहुचर्चित एवं लंबी कहानियाँ हैं। दोनों कहानियों का धरातल स्वातंत्रता संग्राम का है।

'उन्नीस सौ चवालीस' कहानी का नायक अपने सहकारियों एवं अपने माँ-पिता से गद्दारी करता है। उसके पिता विभूतिनन्दन बाबू क्रांतिकारी गतिविधियों के सूत्रधार एवं संगठन के आधार स्तंभ हैं। अपने बेटे की गद्दारी को उनके द्वारा पकड़ना और सीधा पूछना कि, 'मेरा प्रश्न यह है कि, रजत के साथ उस रात अभियान पर जाने के पहले तुमने उसकी सूचना जो पुलिस को दे दी थी, उसका मोटा इनाम उस गोरे कलेक्टर से लेते समय क्या तुमने अपनी टोपी उसके पैरों पर रखी थी? मुझे उत्तर चाहिए अभी!'[1]

शहर में आए नये कलेक्टर द्वारा सभी जुलूसों को नाकामयाब बनाया था तभी इस दल ने उसे मारने की योजना बनाई। जबसे वह इस शहर में आया था- शहर एक अजीब आतंक के साए में जी रहा था और उन्होंने तय किया था कि 'ही शुड बी फिनिश्न्ड।'[2] पिता एक कला भवन चलाते थे; जिसमें बहुत सारे क्रांतिकारी नवयुवक भी आते थे। वह दुमंजली इमारत थी। बाबूजी ने निचली मंजिल पर एक विशेष कमरा बनाया था। जहाँ इन सारी गतिविधियों की योजनाएँ बनाई जाती थीं। माँ को सब सच बताने की और अपनी सफाई देने की कोशिश की लेकिन 'उनके कंधे तो वहीं थे, लेकिन कंधों पर यह चेहरा कौन-सा टिका था- एकदम सर्द.....संवेदनहीन....सफेद चेहरा।[3] माँ ने बेटे का झूठ पकड़ लिया था। उसकी गद्दारी का पता उसे चल गया था। अपने गद्दार बेटे के लिए मौत की सजा सुनाने वाले सख्त पिता एवं क्रांतिकारी के फैसले पर उसे बिलकुल भी परहेज नहीं था।

राजी सेठ ने नरेंद्र नागदेव के बारे में लिखा है कि, 'इस प्रकार की संरचना अब तक के विवरणात्मक घटना-प्रधान कथारूप से भिन्न होने के कारण एक अलग प्रकार के रसास्वादन की सृष्टि करती है।'[4] और उनके चित्रकार और वास्तुशिल्पी होने के बारे में कहा है कि 'घटनाओं के जमघट में कथा के लिए सही और उपयोगी प्रतीकों को ढूँढ लाना खासे कल्पनाशील ढंग से हुआ है। उसे रचना-विन्यास में एक धीमा विश्रांतभाव भी दिखाई देता है जो वास्तुकार का गुण और चित्रकार का धीरज भी माना जा सकता है।'[5] उपरोक्त मत से मै सहमत हूँ कि नागदेव जी की कथाओं के अध्यन के उपरांत उनके साहित्य पर उनका व्यक्तित्व इस तरह छाया है कि हम उसे विभाजित नहीं कर सकते। उनके व्यक्तित्त्व के विविध पहलुओं का दर्शन उनके साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। उनके साहित्यकार के साथ उनका कलाकार एवं वास्तुशिल्पी का रूप घुल-मिल गया है। अतः कहा जा सकता है कि नागदेव जी एक सफल साहित्यिक के साथ एक सफल वास्तुशिल्पी एवं प्रसिद्ध कलाकार भी हैं।

प्रस्तुत कहानी एक क्रांतिकारी परिवार की कहानी है। नरेंद्र नागदेव जीवन में वास्तविकता का निर्माण करते हैं। वह जानबूझकर किसी विचार या कृति का अनुकरण नहीं करते। वह आवेगों और दबावों पर काम करते हैं, जिसके लिए प्रस्तुत कहानी में वह प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं। इस कहानी के बाबूजी और माँ का चरित्र कितने सख्त रूप में अंकित किया है। नायक सब समझ जाता है। जब वह अभियान में क्या घटा, यह माँ को बताने की कोशिश कर रहा था तब भी माँ ने अनसुना कर दिया था। लेकिन बाबूजी की सुनी-सुनाई अभियान की बातें माँ बार-बार सुनती थी। जबसे वह अभियान से वापस आया था, तब अभियान के बारे में माँ-बाबूजी उससे कुछ भी नहीं बोले थे क्योंकि वह सब जानते थे कि अपने बेटे ने अपने दल के साथ विश्वासघात किया है जिन्हें लगता था कि हमारा बेटा देश के लिए एक दिन मर मिटेगा! नायक का सोचना कि वह सब तो उसकी रगों में था? फिर क्या हो गया? वह कौन-सा खतरनाक मोड़ आ गया था उसके जिंदगी का, उसे पता भी नहीं चला। ऐसी पाप की कौन-सी इच्छाएँ और लिप्साएँ उसके भीतर पनप रही थीं? वह वर्तमान से अतीत और अतीत से वर्तमान के बीच झूलने लागा था। माँ-बाबूजी को मातृभूमि से बढ़कर और कोई बड़ा नहीं है।

नायक की कुछ अतृप्त इच्छाएँ और लालसाएँ होने के कारण ही गद्दारी और विश्वासघात कर बैठता है अपने दल के साथ अपने माँ-बाबूजी के साथ। हमारे स्वातंत्रता संग्राम के समय भी कुछ ऐसे ही गद्दारों के कारण हमारे बहुत से क्रांतिकारियों को खोना पड़ा और बहुत से अभियान असफल बनने कारण भी कुछ ऐसे चंद गद्दार ही जिम्मेदार थे। हमें अपने मन पर अपनी लिप्साओं और अतृप्त इच्छाओं को हावी न होने देने की सीख इस कहानी से मिलती है।

उदय प्रकाश जी ने नरेंद्र नागदेव की कहानियों के बारे में लिखा है कि 'नागदेव की कहानियाँ चालू ढर्रे की यथार्थमूलक कहानियों की दरिद्रता और सपाटता से अलग हमें एक ऐसी दुनिया की ओर ले जाती हैं, जो अधिक आत्मीय, संवेदनशील, अन्तरंग और स्मृति संपन्न हैं। इनकी कहानियाँ कल्पना और यथार्थ की विपन्नता की नहीं, दोनों की अपेक्षाकृत संपन्नता की कहानिया है।'[6] 'उन्नीस सौ चवालीस' का क्रांतिकारी चरित्र मुखबिर के शक में अपने ही बेटे को पिता द्वारा मरवा दिया जाता है। तानाशाही की विवेकहीनता और बर्बरता के तत्त्व में वह सोचते रहते हैं कि 'इस घर में आखिर आपसी सम्बन्धों को स्नेह तय करता है या कोई विशिष्ट ऐसी विचारधारा। प्रस्तुत कहानी में नरेंद्र नागदेव तमाम तरह की यातनाओं-बंदिशों को आदमी पर बोझ मानकर स्व के सत्य की तह तक जाकर खोजने की चाहत रखते दिखते हैं।

'छलांग' कहानी का नायक और उनके पिता एक वास्तुशिल्पी हैं। नायक दीपाली नामक क्रांतिकारी लड़की से प्रेम करता था। उसकी माँ को सीढ़ी बनाकर ब्रिटिश कलेक्टर जैक्सन और उसकी पत्नी तथा शहर के राजा साहाब आदि के साथ पहचान बनाना चाहता था। इन बड़े व्यक्तियों के सामने अपनी वास्तुशिल्पी की कला दिखाकर बड़ा प्रोजेक्ट हथियाना चाहता था और जिसमें वह सफल होता है। नायक के पिता दोहरे व्यक्तित्व वाले इंसान थे। खुद नायक बयान करता है कि वह दिन में बाबूजी और रात में दूसरी भूमिका में आ जाते थे। कोठी के पीछे एक गुप्त कमरा था, जिसमें सभी को पिताजी मार्गदर्शन करते थे। इनके खानदान में इस संग्राम में कोई शामिल नहीं हुआ था। राजधानी में घटित हादसा जिसके कारण उन्होंने प्रतिशोध लेने की ठान ली और क्रांतिकारी बने थे। प्रस्तुत कहानी में क्रांतिकारी संघटन द्वारा ब्रिटिश एम्पायर के प्रिंस एवं ईस्ट इंडिया के गवर्नर जनरल के आने की खुशी में उनके स्वागत में शहर के सीमा पर बनाए गए भव्य प्रवेश द्वार को स्फोटक के द्वारा उड़ाने की कथावस्तु है। प्रस्तुत कहानी का नायक धनलोलुप, स्वार्थी, आत्मकेंद्रित और महत्वाकांक्षी वृत्ति का है। शहर में ज्वेलरों की दुकान पर डकैती की खबरें आ रही थीं। जैक्सन की सोच थी कि ये क्रांतिकारी किसी बड़ी वारदात को अंजाम देने के लिए पैसे लूट रहे हैं। मिसेस जैक्सन दीपाली की माँ से पूछताछ करती है। नायक इस विषय से उन्हें प्रोजेक्ट के विषय पर ले आता है।

उस रात धरमवीर घायल हुआ था। डॉक्टर के बयान के आधार पर नायक को शक था कि धर्मवीर को अस्पताल में भर्ती कराने वाली लड़की ने मरून रंग का ड्रेस पहना था। उसे प्रोजेक्ट के इर्द-गिर्द दो बार नायक ने देखा था। निर्विवाद क्रांतिकारी संगठन सक्रिय हो गया था। नायक को अब यकीन हो गया था कि उनके निशाने पर यही प्रवेश

द्वार था और दीपाली उसी की निगरानी कर रही थी। नायक की सर्वश्रेष्ठ रचना तथा सफलता और समृद्ध जिंदगी का प्रवेश द्वार था वह। रौशनी किया प्रवेश द्वार जैक्सन को बहुत अच्छा लगा था और किसी बड़े काम के लिए लंदन जाने की संभावना के बारे में नायक जानना चाह रहा था। नायक को एक भयानक सपना आया, जिसमें धरमवीर लाइव बम लिए प्रिंन्स के काफिले पर गिराने वाला है और पिताजी उम्दा डिझाइन के लिए बधाई देते हुए एका-एक भड़क जाते है। फिरंगी शासकों की चरण-वंदना के लिए ये लो मैं तुम्हें बधाई देता हूँ, कहते हुए पिस्टल निकालते हैं। तभी नायक की नींद टूट जाती है। उसकी अवचेतना पर जैसे कोई दस्तक देने लगा था। नायक अपने प्रोजेक्ट की ओर भागा तो उसे प्रवेश द्वार के नजदीक झाड़ियों में हलचल-सी होते दिखी। आँखों के आगे मेरुन रंग का सूट आ-गया। दीपाली थी वहाँ, प्रवेश द्वार में कहीं बम फिट था। वह किसी दूसरी झाड़ी में छिप गई। उसे पकड़ने के लिए नायक के छलांग मारते ही उसका पैर किसी उपकरण पर गिर जाता है और प्रवेश द्वार बड़े धमाके के साथ खंडहर में बदला जाता है। वह प्रवेश द्वार का सृजनकर्ता भी था और विसर्जन कर्ता भी। दीपाली उसे सहारा देकर झाड़ी से बाहर लाती है। उसके दाहिने पैर की हड्डी टूट गई थी। नायक को लगता है कि अब उसका कोई अस्तित्व ही नहीं रहा।

प्रस्तुत कहानी में ब्रिटिश अंपायर के प्रिंस और इडिया के गवर्नर जनरल के आने की खुशी में शहर की सीमा के बाहर बनाए भव्य प्रवेश द्वार को क्रांतिकारियों का दल उड़ाने में सफल होता है। स्वार्थी नायक उस प्रोजेक्ट को पाने की इच्छा से अपनी प्रेमिका की माँ को सीढ़ी बनाता है। अपने मनसूबों में वह कामयाब भी हो जाता है। इतिहास गवाह है लालची लोग हमेशा अपने ही पक्ष में सोचते हैं और नायक की वृत्ति भी वैसे ही चित्रित है, जो आत्मकेंद्रित, स्वार्थी और मतलबी है। नागदेव आज के आधुनिक समाज में ऐसे व्यक्तियों से खबरदार रहने की हिदायद देते हैं। देशप्रेम से ज्यादा नायक अपने जीवन को समृद्ध बनाने की इच्छा पाले हुए है। अपने पिता का साथ न देते हुए ब्रिटिश हुकूमत के तलवे चाटकर चापलूसी करने में धन्यता मानता है। इससे उलटा नायिका दीपाली जैसी राष्ट्रभक्त एवं अपने प्राणों की आहुति देने के लिए तैयार क्रांतिकारी नारी के रूप में चित्रित हुई है। ज्यादा लालची वृत्ति अच्छी नहीं होती और देशप्रेम से बड़ी चीज और कोई हो नहीं हो सकती है, इसका संदेश यह कहानी देती है। कहानी का शीर्षक सार्थक है क्योंकि ऐसा लगता है कि नायक की छलांग स्वातंत्र्य संग्राम के लिए न होकर अपनी बरबादी की तरफ ही लगाई गई है। आज के नये युग के नवयुवक कितने अवसरवादी, स्वार्थी, एवं मतलबी होते जा रहे हैं, इसका वास्तविक चित्रण प्रस्तुत दोनों कहानियों में किया गया है।

निष्कर्षतः नरेन्द्र नागदेव एक लेखक, एक वास्तुशिल्पी और एक कलाकार हैं। इन तीनों का पुट प्रस्तुत दोनों कहानियों में दृष्टिगोचर होता है। इनका मानन है कि वास्तुकला, कला और साहित्य के बीच अगर कोई 'कॉमन फैक्टर' है, तो वह है तीनों में अन्तर्निहित सृजनात्मकता, जिसके आधार पर नागदेव तीनों ही क्षेत्रों में सहजता से अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं तथा दशकों तक तीनों राहों पर अपनी सृजन यात्रा जारी रखते हुए महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल करते रहे हैं। नरेंद्र नागदेव की भाषा शैली में

कलात्मकता का स्वर देखने को मिलता है। उनके कहानी के चित्र हमेशा किसी विषय या वस्तु पाठ का प्रस्तुतिकरण करते रहे हैं। नागदेव के आर्किटेक्चर की उनकी ट्रेनिंग का उनके लेखन तथा पेंटिंग की कार्यप्रणाली पर अवश्य असर पड़ता दिखाई देता है। उनका कहना है- वे कैनवास पर पेटिंग तभी आरम्भ कर पाते हैं जबकि उसके पहले अपनी कल्पना में ये रंग-विधान सहित उसकी संरचना को ठीक से साकार कर लें। उसी तरह कहानी लिखना ये तभी शुरू कर सकते हैं, जब उसका पूरा प्लॉट, सम्भावित अंत समेत उनके मन में स्पष्ट हो जाए। अवश्य ही यह वास्तुकला का प्रभाव होगा, जहाँ निर्माण की प्रक्रिया तभी आरम्भ होती है। नागदेव फंतासी, बिंब, रूपक और प्रतीक आदि इनकी कहानियों के आवश्यक तत्व के रूप में हमें देखने को मिलते हैं। इन तत्त्वों से कहानी की सघनता, प्रभावशीलता और गहराई बढ़ जाती है। निर्मम यथार्थ और राष्ट्रीय भावना, राष्ट्रीय प्रेम एवं उसके बीच विघटित होते मूल्यों की पड़ताल इनके कहानियों में बार-बार देख सकते हैं। नागदेव के साहित्य के पात्र दो धरातलों पर एक साथ संघर्षरत दिखते हैं। एक तरफ अपने और अपने बीच तथा दूसरी तरफ अपने और बाहरी परिवेश के बीच। अपराध बोध से ग्रस्त, पस्त मानसिकता का प्रभावी चित्रण एवं आत्म संघर्ष को उकेरने में नरेंद्र नागदेव माहिर हैं। नरेंद्र नागदेव की सभी कहानियाँ महत्त्वपूर्ण है। सभी कहानियों के कथ्य विषय अलग-अलग और नये हैं। साथ ही सभी कहानियों की भाषा नई भी नहीं तो उसे एक अलग तरीके से शिल्प के नयेपन के साथ पेश करने में नरेंद्र नागदेव सफल हुए हैं। सभी कहानियों की भाषा मनुष्य के संवेदनशील भावनाओं की तरह प्रवाहमान होती दिखती है। साथ ही भौतिकवाद और उससे उत्पन्न आँच में झुलसती संवेदनाओं का सजीव चित्रण हुआ है। अपनी शिल्प की महीन बुनावट, भावनात्मक स्पर्शवाली मोहक भाषा के जरिए पाठक को अपने ओर खींचने में सफल हुए हैं। नागदेव समकालीन कथाकारों में अपना अलग स्थान निर्माण करने में सफल हुए हैं। साथ ही इनकी कहानियों की यह खासियत है कि वे स्थूल और इकहरी या एकायामी नहीं हैं। आत्म और स्व की खोज के लिए हिंदी साहित्य जगत में जैसे-अज्ञेय और जैनेन्द्र जाने जाते हैं, कुछ-कुछ वैसे ही कोशिश नागदेव करते दिखते हैं।

संदर्भ :

1. नरेंद्र नागदेव, वापसी के नाखून, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण,2006- पृष्ठ सं.104
2. वहीं - पृष्ठ सं.- 115
3. वहीं - पृष्ठ सं.- 113
4. सेठ राजी, अंतकःरण के दाह की कहानियाँ, हंस पत्रिका, फरवरी, 2004 पृष्ठ क्र. 81
5. वहीं - पृष्ठ सं.- 82
6. उदय प्रकाश, 'उसी नाव में', सचिन प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९८८ - किताब की भूमिका में लिखा है।

अनुसंधाता,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

दलित साहित्य की अवधारणा और चिंतन

अखिलेश जैसल (शोधार्थी)
डॉ. व्ही. डी. सूर्यवंशी (शोध निर्देशक)

भारत देश विविध धर्मों वाला विशाल देश है। यहाँ हिन्दू, मुसलमान, इसाई, बौद्ध, जैन, पारसी, सिख जैसे कई धर्मों के लोग सदियों से निवास करते आ रहे हैं। पूरे देश में हिंदुओं की संख्या सबसे अधिक है। शुरू से इनका वर्चस्व रहा है। बहु प्राचीन काल से हिन्दुओं में जटिल वर्ण व्यवस्था प्रचलित है। यह वर्ण व्यवस्था वैदिक काल से शुरू हुई थी। उत्तर वैदिक काल आते आते इस व्यवस्था ने काफी जटिल रूप धारण कर लिया। प्राचीन वैदिक कालीन वर्ण व्यवस्था ने हिन्दू समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और वैश्य इन चार वर्णों में विभाजित किया था।

दलित शब्द का अर्थ है जिसका दलन, उत्पीड़न किया गया हो। दलित शब्द के अर्थ पर प्रकाश डालते हुए डॉ आरती झा लिखती हैं कि- 'दलित शब्द का सामान्य अर्थ है दरिद्र और उत्पीडन'। इसका अर्थ दबा, कुचला, अपमानित और प्रताड़ित प्राणी होता है'। आज दलित का अर्थ अनुसूचित जातियों और जनजातियों के रूढ़ अर्थ में होने लगा है। दलित साहित्य लिखे जाने से पहले दलितों के प्रति संवेदना और उसमें चेतना उत्पन्न करने का काम भारत के विविध भाषाओं के साहित्यकारों ने अपनी-अपनी साहित्यिक कृतियों के माध्यम से किया था लेकिन यह कहना समीचीन होगा कि वास्तव में दलितों में चेतना उत्पन्न करना और दलित साहित्य की रचना करने की प्रेरणा प्रदान करने वालों में जिनकी प्रमुख देन थी, उनमें प्रमुख गौतम बुद्ध, कबीर दास, रैदास दलितों के उद्धार कर्ता माने जाने वाले भारत रत्न डॉ. आंबेडकर हैं।

1990 के दशक से दलित साहित्य ने हिंदी में दस्तक दी। 1990-91 के मंडल कमीशन ने दलित साहित्य को गति प्रदान की। राजेंद्र यादव की 'हंस' पत्रिका और रमणिका गुप्ता की 'युद्धरत आम आदमी' पत्रिका के द्वारा अनेक दलित लेख के क्षेत्र में आगे आये। कई दलित साहित्य सम्मेलनों द्वारा भी समकालीन दलित चेतना का विकास हुआ। दलित साहित्य द्वारा अपने समय और समाज का चित्रण पूरी सच्चाई और यथार्थवादी दृष्टि से किया गया। सितम्बर १९१२ अंक की मासिक पत्रिका 'सरस्वती' में प्रकाशित 'हीरा डोम' की 'अछूत की शिकायत' कविता में चित्रित दलितों की त्रासदी तत्कालीन दलित लेखकों की कलम को आधार बनाया। स्वतंत्र्योत्तर भारत में दलितों में जो सुधार आया है, दलित साहित्य में जो व्यापकता आई है, इसमें सबसे अधिक श्रेय आंबेडकर जी को ही है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने इस सन्दर्भ में अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' में कहा है- 'दलितों की संस्कृति में गुण - दोष हो सकते हैं लेकिन इतना तो निश्चित है कि कल का दलित और आज का दलित भिन्न है। यही अन्तर सांस्कृतिक निष्ठा का निर्माण कर रहा है। भारत वर्ष में दलित चेतना के प्रचार - प्रसार में हिंदी दलित साहित्यकारों का सबसे अधिक योगदान देखने को मिलता है। इस दिशा में दलित साहित्यकारों के अलावा शुरू से कुछ गैर दलित साहित्यकारों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है दलित साहित्य का चिंतन हिंदी साहित्य काल, दर्शन, वाद के भँवर से बाहर निकलते हुए आज इक्कीसवीं सदी

में विमर्शों के दौर से गुजरता हुआ दिखाई देता है। युवा विमर्श, घुमंतू विमर्श, विकलांग विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श आदि विमर्शों तथा आंदोलनों ने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की है पर मेरी नजर में दलित वह हो सकता है जिसका शोषण सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में किया गया हो। भले ही वह फिर किसी भी जाति धर्म का क्यों न हो।

किन्तु हिंदी साहित्य में दलित साहित्य पिछड़े वर्ग, उपेक्षित, घृणित, प्रताडित, पीड़ित, अंछूत, शूद्र की समस्याओं के रूप में अभिव्यक्त होता हुआ हम पाते हैं। आज जिसे दलित साहित्य कहा जाता है, उसे अम्बेडकरवादी तथा गैर अम्बेडकरवादी साहित्य के रूप में स्पष्ट रूप में विभाजित पाते हैं। डॉ.सूर्यनारायण रणसुभे दलित साहित्य के सम्बन्ध में कहते हैं, 'इस देश के श्रमिक, शोषित, पीड़ित, दलित एवं व्यथित इन सब की जो संवेदना साहित्य द्वारा व्यक्त होती है। वह दलित साहित्य कहलाता है।''[2] दलित साहित्य के रूप में विभिन्न विद्वानों की विभिन्न परिभाषाएं देखी जा सकती हैं पर हर स्तर पर किये हुए शोषण की हर आँसू, हर पीड़ा के साथ भोगी हुई अभिव्यक्ति दलित साहित्य है।

'जूठन' जैसी प्रसिद्ध आत्मकथा के लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि जी आत्मकथा के संदर्भ में कहते हैं, 'किसी भी दलित द्वारा लिखी आत्मकथा सिर्फ उसकी जीवनगाथा नहीं होती, बल्कि उसके समाज की जीवनगाथा भी होती है, लेखक की आत्म-अभिव्यक्ति होती है। उसके जीवन के दुःख, दर्द, अपमान, उपेक्षा, आत्मकथा उसकी जाति एवं समाज के दुःख-दर्द और अपमान, उपेक्षा इत्यादि को भी स्वर देता है।''[3] मोहनदास नैमिशराय 1995 'अपने अपने पिंजरे',ओमप्रकाश वाल्मीकि 'जूठन', सूरजपाल चौहान 'तिरस्कृत' कौसल्या बैसंत्री 'दोहरा अभिशाप' निमगडे 'धुल का पंछी भादो' डॉ.एल. एल.शहारे 'यादों के झरोखे 'डॉ.जाटव' मेरे सफर मेरी मंजिल 'श्यामलाल जैदिया' एक भंगी उपकुलपति की आत्मकथा 'माता प्रसाद 'झोपडी से राजभवन, सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे का दर्द' आदि आत्मकथाओं में दलित की उपेक्षा, वेदना, पीड़ा, घृणा, तिरस्कार, अपमान आदि के साथ शिक्षा के प्रकाश का आगमन हुआ। डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर जी ने ऐसी ही बात साहित्यकारों के लिए कही थी, ''हमारे देश में उपेक्षितों ओर दलितों की बहुत बडी दुनिया है। इसे भूलना नहीं चाहिए। उनके दुखों को उनकी व्यथाओं को पहचानना जरूरी है और अपने साहित्य के द्वारा उनके जीवन को उन्नत करने का प्रत्यन करना चाहिए। इसी में सच्ची मानवता है।''[4]

सन्दर्भ :

१. दोहरा अभिशाप - कौसल्या बैसंत्री - परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली।
२. जूठन - ओमप्रकाश वाल्मीकि - राधा कृष्णा प्रकाशन।
३. अपने अपने पिंजरे, मोहनदास नैमिशराय-वाणी प्रकाशन।
४. https://www.rachanakar.org

शोधार्थी, हिंदी अनुसंधान केंद्र
म.स.गा. महाविद्यालय, मालेगांव कैंप जि.नासिक
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
म.स.गा. महाविद्यालय, मालेगांव कैंप जि.नासिक

गुजराती साहित्य में नारी चेतना

डॉ. हेतल पी. बारोट

पूर्व हो या पश्चिम, समाज पुरुष प्रधान रहा है। परिणामस्वरूप, पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे की रही है। एक महिला का कार्य क्षेत्र घर, चूल्हा और बच्चे तक ही सीमित हो गया है। पितृसत्तात्मक समाज के इस नियम और थोपे गए कठोर, अन्यायपूर्ण नियमों और रीति-रिवाजों के कारण दुनिया का पूरा नारी जगत अनेक कष्टों को झेल रहा है। दुनिया के हर कोने में रहने वाली महिला की भाषा, धर्म, संस्कृति या भौगोलिक और सामाजिक परिस्थितियों में अंतर हो सकता है लेकिन पितृसत्तात्मक समाज के कारण जाने-अनजाने में हुए अन्याय की पीड़ा समान है। यह सदियों से चला आ रहा है। पिछली दो शताब्दियों में पुरुषों के इस अधिकार के खिलाफ महिला समाज से एक हंगामा हुआ है।

1929 में, वर्जीनिया वूल्फ ने 'ए रूम ऑफ वन्स ओन' में एक पुरुष-प्रधान समाज में महिला रचनात्मकता के, शोषण के दमन और अभिव्यक्ति के मुद्दे पर चर्चा की। 1949 में, सिमोन दि बौवा का लिखा 'द सेकेंड सेक्स' फ्रांस में प्रकाशित हुआ था। इस महत्वपूर्ण पुस्तक ने इस बात पर प्रकाश डाला कि लिंग भेद समाजीकरण का परिणाम है और इसलिए पुरुषों और महिलाओं के लिए समान अधिकारों की माँग उठाई गई। 1968 में अमेरिकी लेखिका मैरी एलम की किताब 'थिंकिंग अबाउट वीमेन' प्रकाशित हुई थी, जिसमें पुरुषों द्वारा लिखी गई रचनाओं में महिलाओं के हीन चरित्रों पर विस्तार से चर्चा की गई है। 1969 में केट मुलेट की अत्यधिक क्रांतिकारी पुस्तक 'यौन राजनीति' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में पुरुष वर्चस्व और महिला अधीनस्थ स्थिति को न्यायोचित ठहराने वाली सामाजिक संस्थाओं की चर्चा की गई है।

मजे की बात यह है कि जिस तरह जेएस मिल जैसे पुरुषों के कारण पश्चिम में महिला विकास और महिला चेतना आई, उसी तरह भारत में महिला जागरूकता और महिला अधिकारों का नेतृत्व राजा राम मोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, महादेव गोविंद रानाडे, महात्मा फुले ने किया। फुले, केशवचंद्र सेन, स्वामी विवेकानंद, महर्षि केशव कर्वे और महात्मा गांधी जैसे पुरुषों के गहन प्रयासों के परिणामस्वरूप महिलाओं में जागरूकता और आत्मविश्वास उभरने लगा। भारतीय नारीवाद के अपने दबाव वाले प्रश्न थे। यद्यपि पश्चिमी और पूर्वी नारीवाद महिलाओं के शोषण के खिलाफ अभियान और महिला उत्थान के विचार में समानता साझा करते हैं, विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक और ऐतिहासिक संदर्भों के कारण भारतीय नारीवाद की अपनी विशिष्ट छवि है। भारत में धर्म का कारक हर क्षेत्र में और हर स्तर पर प्रभावशाली रहा है। इसे देखते हुए, वैदिक काल से लेकर आज तक भारतीय नारीवाद को समझने में धर्म की जो भूमिका रही है, उसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। इस प्रकार भारतीय संस्कृति की बात करें तो कार्येषु मन्त्री, करणेषु दासी, भोजेषु माता, शयनेषु रम्भा के रूप में स्त्रियों की उनके विभिन्न रूपों में स्तुति की गई। उन्हें देवी या शक्ति कहा जाता था। अतः साहित्य में इसकी प्रतिध्वनि नारी के चरित्र-चित्रण में निरन्तर गुंजायमान रहती है। साहित्य में नारी पत्नीत्व, सती, गृहक्ष्मी के आदर्श का प्रतीक है।

गुजराती साहित्य में पुरुष लेखक और महिला लेखिका ने समाज में आए बदलाव के साथ महिला चरित्र को जिस तरह चित्रित किया है, यहाँ उसका अवलोकन करने का प्रयास किया गया है। 1866 में गुजराती साहित्य के पहले उपन्यास 'सासु-बहूनी लड़ाई' के लेखक महिपत्रम नीलकंठ ने हिंदू समाज में दुल्हनों की दुर्दशा का विडंबनापूर्ण चित्रण किया है। बहू को सास द्वारा प्रताड़ित किया जाता है और अंत में उसकी मृत्यु हो जाती है। जब एक स्त्री दूसरी स्त्री की दुश्मन बन जाती है और दूसरी स्त्री ऐसी क्रूरता गूंगी जुबान से सहती है, उस समय के समाज में त्रासदी को चित्रित किया गया है।

उसके बाद गोवर्धनराम त्रिपाठी ने सरस्वतीचंद्र उपन्यास में कुमुद की रचना की जो उस समय बहुत लोकप्रिय हुआ। यह भी एक आदर्श महिला पात्र है- एक ऐसा चरित्र जो चुपचाप अपने दिल में दर्द को समेटे हुए है। जो त्याग, सेवा, समर्पण की आहुति में अपनी इच्छाओं, भावनाओं को कुर्बान कर देती है। कुमुद और सरस्वतीचंद्र के विवाह की संभावना के बावजूद लेखक विधवा विवाह से बचते हैं। यह लेखक की पुरानी पारंपरिक मान्यताओं को दर्शाता है।

कन्हैयालाल मुंशी अपने समय और समाज से आगे के आधुनिक विचारक थे। अतः उनके उपन्यासों में नारी पात्र स्वतन्त्रचित्त, मुखर, निडर, आत्म-बौद्धिक और थोड़ा स्वाभिमानी हैं। फिर भी इन महिला पात्रों को कहानी के अंत में नायक के प्रति समर्पित होने का सौभाग्य प्राप्त है। यह बात पृथ्वीवल्लभ के मृणाल, 'गुजरातनो नाथ' की मंजरी के जैसे चरित्रों से स्पष्ट होती है। दर्शक के मनुभाई पंचोली के बहुचर्चित उपन्यास 'झेर तो पीड़ा जानी जानी' में 'रोहिणी' का स्त्री चरित्र भी आदर्शों से ओत-प्रोत है।

पुरुष रचनाकारों द्वारा किया गया यह चित्रण वस्तुतः महिला को निष्क्रियता की आकृति में बदल देता है। एक आदर्श की आड़ में एक महिला की पहचान को ढंकना, अंततः उसे अपने अधीन करना। संभव है कि लेखक परम्परागत समाज के नियमों, मूल्यों को उखाड़ना नहीं चाहता हो। जो है सब ठीक है। एवी अपनी समझ पर कायम रहती है। उन्होंने स्वीकार किया है कि 'ऐसा ही होता है' और उनकी महिला पात्र भी इसका अनुसरण करती हैं। जी हां, कुमुद के साथ गोवर्धनराम त्रिपाठी ने कुसुम का भी किरदार निभाया था, जिसे स्त्री के व्यक्तित्व को सम्मान देने वाला सीमा चिन्ह माना जा सकता है। कुसुम के चरित्र के माध्यम से एक महिला विवाह के बारे में अपनी पसंद व्यक्त कर सकती है। इसके बारे में इक्कीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में विनोदिनी नीलकंठ, लीलावती मुंशी, लाभुबेन मेहता ने अपनी कहानियों में नारी के साथ हो रहे अन्याय, शोषण और उपेक्षा को मुखरित किया है लेकिन फिर भी उनके स्त्रीपात्र पितृसत्तात्मक समाज की परम्परागत मान्यताओं वाली आदर्श नारी के हैं। पुरुष को चुनौती देने की मानसिकता के बजाय समझौतावादी रवैया रखने वाली महिला पात्रों को उजागर किया जाता है। शायद जिस रूढ़िवादी ढाँचे में इन लेखकों को पाला-पोसा गया था, उसका असर हो सकता है।

1984 में, गुजराती साहित्य में महिलाओं की व्यक्तिगत पहचान की वकालत करने वाले कुंदनिका कापाड़िया के उपन्यास 'सात पगलां आकाश मा' ने नारीवाद की अवधारणा की शुरुआत की। जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी, तब नारीवाद की

अवधारणा वास्तव में एक आम, मध्यवर्गीय गृहिणी तक नहीं पहुँची थी। उस समय यह ठेठ गुजराती स्त्रीत्व इस दिशा में महिला पात्रों को प्रस्तुत करने का श्रेय यश चंद्रकांत बख्शी, सुरेश जोशी, रघुवीर चौधरी को जाता है।

महिलाओं ने पुरुषों के खिलाफ नहीं बल्कि अन्याय के खिलाफ लड़ने की प्रवृत्ति दिखाई है और उसके लिए घर लौट रही महिलाओं को दुखद स्थितियों के साथ पेश किया जाता है। बिन्दु भट्ट की 'डायरी' और सरोज पाठक की 'मन नामे महासागर' लैरी बायन के रिश्तों पर आधारित मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के उपन्यास हैं, जबकि कुंदनिका कपाड़िया का उपन्यास 'सात पगलां आकाश मा' महिलाओं का पक्षधर है। इस प्रकार अब तक लेखकों ने नारी चेतना में आए परिवर्तनों का एक कलात्मक चार्ट ढूंढ निकाला है। सरोज पाठक, धीरूबेन पटेल, इला अरब मेहता, कुंदनिका कपाड़िया, हिमांशी शेलत, शरीफाबेन, सुवर्णा राय, कृष्णा जोशी आदि ने आधुनिक नारी के विभिन्न पहलुओं को साहित्य में विभिन्न रूपों में चित्रित किया है और वास्तविक मंत्रिस्तरीय कार्य दिए गए हैं। 'रानी पिली वाणी जा' कहानी में सरोज पाठक ने एक मध्यवर्गीय महिला की वर्षों पूर्व की जागृत स्मृतियों और स्मृतियों को अपने प्रेम और प्रेमी की स्मृतियों से वर्तमान को जोड़कर अपनी वर्तमान स्थिति का परीक्षण करने की मदहोश करने वाली इच्छा का सूक्ष्मता से चित्रण किया है।

वर्षा अडालजा ने अपनी कहानी 'खेलदी' में एक ऐसी नायिका का वर्णन किया है जो महिलाओं की भावनाओं के साथ खेलती है, महिलाओं का शोषण करने वाले पुरुष प्रधान समाज के साथ टकराव का रुख अपनाती है। उनकी कहानियों में स्त्री चेतना की संवेदनशीलता, अंतर्बोध और सूक्ष्मता का चित्रण किया गया है। स्वयं एक महिला लेखिका होने के नाते लेखिका ने नारी की विशेष समस्याओं और उनकी सूक्ष्म जटिल भावनाओं को अपनी कहानियों में सुन्दर स्वर दिया है। वह विशेष रूप से शहरी जीवन के विकसित होते शहरी समाज के कठोर, संकीर्ण दायरे में फंसी महिलाओं की संवेदनाओं को चित्रित करने के शौकीन हैं। आज के कथाकार महंदशे ने एक स्वाभिमानी, स्वतंत्र, आत्मनिर्भर, विकास चाहने वाली महिला के संघर्षों, एक महिला की सफलता, असफलता और चुनौतियों का वर्णन किया है। ये महिला पात्र केवल अपने दम पर नहीं बल्कि स्वतंत्र रूप से जीना चाहती हैं। पुरुष समाज और पीड़ा के खिलाफ संघर्ष करने और संघर्ष की स्थिति को स्वीकार करने की चुनौती के साथ लड़ती दिखाई देती हैं।

संदर्भ :

1. नारीवाद, नारीवाद की एक स्पष्ट अवधारणा - रंजना हरीश, उद्देश्य-1999
2. 'सात पगलां आकाश मा'- कुंदनिका कपाड़िया, अशोक प्रकाशन
3. अस्मिता पर्व - अनिला दलाल, बिंदु भट्ट - आद्यकवि नरसिंह मेहता साहित्य निधि (जूनागढ़)
4. बत्रीस पूतली वेदना- मेहता इला अरब - आर.आर.सेठनी कंपनी - 1992

एस एन डी टी कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड एससीबी कॉलेज ऑफ कॉमर्स एंड साइंस फॉर वीमेन एसएनडीटीवीमेन्स यूनीवर्सिटी, मुंबई- 400020

'दोहरा अभिशाप' में व्यक्त क्रांति चेतना

प्रो. अंजना विजन

कौसल्या बैसंत्री जी का नाम हिंदी तथा दलित साहित्य के उन षीर्षस्थ साहित्यकारों में परिगणित किया जाता है, जिन्होंने मात्र एक या दो रचनाएँ लिखकर हिंदी साहित्याकाश में अपना नाम सदा के लिए सुरक्षित कर लिया है। 'दोहरा अभिशाप' बैसंत्री जी का एकमात्र आत्मकथात्मक उपन्यास है जो उन्होंने ६८ वर्ष की अपनी पूर्णतया परिपक्व अवस्था में लिखा था। इस उपन्यास में लेखिका ने अपने लंबे, संघर्षपूर्ण, कड़वे-मीठे अनुभवों से भरे जीवन का सिंहावलोकन किया है। अतः यह आत्मरति या आत्मपीड़न से उत्पन्न उन स्तब्धकारी प्रभावों से मुक्त है जो आम तौर पर दलित साहित्य की रचनाओं में पाए जाते हैं। इसमें ऐसे प्रसंग नहीं हैं कि पाठक क्रोध, घृणा और जुगुप्सा के भावों से भर जाए या दाँतों तले अंगुली दबाकर रह जाए। यह एक सीधी-सादी जीवन-कथा है जो हर प्रकार के साहित्यिक छलों से मुक्त है। (भूमिका-मस्तराम कपूर, दोहरा अभिशाप)

वस्तुतः भारतीय समाज में दो जातियाँ- नारी एवं दलित सदियों से उपेक्षित रही हैं। इन दोनों को निम्न श्रेणी का मानकर इन पर अत्याचार किए गए, इन्हें हर प्रकार से प्रताड़ित किया गया, इन्हें मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया, यहाँ तक कि इन्हें शिक्षा से भी वंचित रखा गया ताकि यह पुरुषवर्ग या उच्चवर्ग का मुकाबला न कर सके। वस्तुस्थिति यह है कि इन दोनों के बिना समाज निर्विघ्न रूप से चल ही नहीं सकता। नारी के बिना वंशवृद्धि असंभव है और दलित वर्ग की सेवाओं के बिना समाज में जीवन अपाहिज हो जाएगा।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समय बदला। इन दोनों जातियों के उत्थान के लिए कुछ महानुभावों ने, समाजसुधारकों ने चिंतन-मनन किया और इनकी स्थिति में आमूल चूल परिवर्तन उपस्थित हुआ। आज आलम यह है कि दोनों ही जातियाँ, जो कभी हाशिए पर थीं, आज समाज की मुख्य धारा से जुड़ गई हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नारी मुक्ति केंद्र, महिला सुरक्षा संस्थान तथा दलित साहित्य में क्रांति चेतना विषय पर हो रही अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियाँ इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। कर्णप्रिय एवं चक्षुप्रिय यह परिवर्तन सहज रूप से या स्वतः नहीं हुए। इनके लिए बहुत प्रयत्न किए गए। कौसल्या बैसंत्री जी का आत्मकथात्मक उपन्यास 'दोहरा अभिशाप इसका ज्वलंत उदाहरण है।

08 सितंबर 1927 को महाराष्ट्र के नागपुर में जन्मी कौसल्या जी बाबा साहेब आंबडेकर की समकालीन छात्र नेता और सामाजिक कार्यकर्त्री थीं। दलित लेखक संघ के संरक्षक प्रो विमल थोरात ने इनके संदर्भ में लिखा है कि कौसल्या जी ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से दलित स्त्री मुक्ति के संघर्ष को मजबूत व विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके लेखन ने दलित महिला रचनाकारों को प्रेरणा और बल दिया है। दलित लेखक संघ के कोषाध्यक्ष दिलीप कठेरिया जी ने इन्हें रचनाकार के साथ-साथ आंदोलनकर्मी की संज्ञा दी है। डॉ. सूरज बड़जात्या ने लिखा है कि कौसल्या जी ने अपने लेखन में जातीय उत्पीड़न के साथ-साथ पुरुष प्रधान समाज की विषमताओं को सामने रखा, स्त्रियों के दोहरे अभिशाप का दर्द अभिव्यक्त किया है।

लेखिका ने यह पुस्तक अपने माँ-बाबा को समर्पित की है जिन्होंने गरीबी, अंधविश्वास

और जातीय प्रताड़नाओं से लड़ते हुए उनको व उनकी सभी बहनों को शिक्षित करके जीने का रास्ता दिखाया। लेखिका की माँ एक समझदार, कर्मठ एवं स्वाभिमानी महिला थीं। उन्हें यह गुण अपनी माँ से विरासत में मिले थे। लेखिका की आजी (नानी) का आजोबा से पाट (विधवा महिला का दूसरा विवाह) हुआ था। आजोबा बहुत अमीर, सुंदर परंतु झगड़ालू एवं गुस्सैल किस्म के व्यक्ति थे। आजी गरीब परिवार की बेटी थी। अतः उन पर अपना रौब जमाने के लिए, अपने पौरुषीय अहं को तुष्ट करने के लिए सदा काम में दत्तचित्त रहने वाली आजी पर अकारण ही हाथ उठाते, उन्हें अपमानित करते। स्वाभिमानी आजी यह अत्याचार का सिलसिला ज्यादा समय बरदाश्त नहीं कर सकीं। और एक दिन अपने तीनों बच्चों को लेकर घर से निकल गईं। वे सहायता के लिए अपने भाई के घर भी नहीं गईं बल्कि मेहनत मजदूरी करके उन्होंने अपना व अपने बच्चों का भरण-पोषण किया व अपने बलबूते पर अपना जीवनयापन किया।

क्रांति का मुख्य आधार है शिक्षित होना। सन् 1930-40 के आसपास प्रायः उच्च वर्ग में भी बच्चों को विशेष कर लड़कियों को पढ़ाने का कोई रिवाज नहीं था। बहुत हुआ तो चौथी-पाँचवी कक्षा तक पढ़ाया जाता था ताकि वे चिट्ठी पत्री बाँच सकें। दलित वर्ग में तो शिक्षा न के बराबर थी। पढ़ने वाले बच्चों के घरों पर पत्थर बरसाए जाते, तरह-तरह से उन्हें प्रताड़ित किया जाता ताकि वे तंग आकर पढ़ाई छोड़ दें। लेखिका की जीवित पाँच बहनें और एक भाई था। आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं थी। माँ-बाबा दोनों एम्प्रेस मिल में नौकरी करके मुश्किल से परिवार का भरण-पोषण करते थे। लेकिन माँ बाबासाहेब आंबेडकर के भाषण सुनती थीं व उनसे बहुत प्रभावित थीं। उन्होंने इन भाषणों को केवल सुना ही नहीं बल्कि उनपर अमल भी किया। सौभाग्यवश दलित ईसाई जाईबाई चौधरी नाम की एक अछूत महिला ने इनके क्षेत्र में चंदा लेकर एक स्कूल खोला, शिक्षा का महत्व बताया, जिससे प्रेरित होकर माँ ने लेखिका और इनकी बहनों को न केवल स्कूल में भेजना आरंभ किया बल्कि अपने सभी बच्चों को ऊँची शिक्षा दिलवाने का प्रण कर लिया। इसी का परिणाम है कि लेखिका की सभी बहनों के बच्चे आज इंजीनियर, डॉक्टर और अच्छे ओहदों पर हैं और इनका भाई इंजीनियरिंग परीक्षा द्वितीय स्थान पर (मैरिट में) पास कर भोपाल के हैवी इलैक्ट्रिकल्स में उपप्रबंधक के पद पर आसीन हुआ। (दोहरा अभिशाप, पृ 108) लेखिका की माँ ने न केवल बच्चों को शिक्षित किया बल्कि नौकरी व परिवार की देखरेख के साथ-साथ प्रौढ़ शिक्षा केंद्र में स्वयं भी शिक्षा अर्जित की। फलस्वरूप जीवन के अंतिम दिनों में रामदास पेठ की पॉश कॉलोनी में सवर्णों के बीच सम्मान से जीवन व्यतीत किया।

क्रांति के लिए विचारों के साथ-साथ स्वयं को व अपने परिसर को स्वच्छ रखना आवश्यक होता है। लेखिका की माँ को साफ-सफाई बहुत पसंद थी। उनकी बस्ती के पास कसाईखाना था, जहाँ से बस्ती के लोग गाय का सस्ता माँस कपड़े में बाँधकर लाते थे। कपड़े में बंधे होने के कारण रास्ते भर में खून टपकता रहता था। पर किसी ने भी इस बात की कभी परवाह नहीं की। लेखिका की माँ को यह अच्छा नहीं लगता था। उन्होंने लोगों को समझाया कि वे किसी बर्तन या डिब्बे में ढककर लाया करें अन्यथा हम गंदे लोग समझे जाएँगे। बस्ती के लोगों को माँ की बात अच्छी लगी और उन्होंने उस पर

अमल किया। (दोहरा अभिषाप, पृ.13) यह किस्सा देखने में भले ही बहुत महत्वपूर्ण न लगे लेकिन स्वच्छता के प्रति के माँ के दृष्टिकोण को उद्घाटित करता है। इसी प्रकार सुबह-सुबह पानी के लिए बस्ती के लोगों के अभद्र एवं अशिष्ट शब्दों से तंग आकर लेखिका ने बहुत दौड़-धूप करके अपने घर के अंदर नल लगवाया जो बस्ती में पहला व्यक्तिगत नल था।

अस्पृश्य जाति व मंद आर्थिक स्थिति के कारण लेखिका को बाल्यावस्था से ही स्कूल में सवर्ण लड़कियों के साथ खेलने-खाने-पीने में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा लेकिन लक्ष्य अटल था जिस कारण समय-समय पर ईसाई भिक्षुणियों तथा खरे जैसे शिक्षकों का साथ मिला जो फुरसत मिलने पर इन्हें गणित और अंग्रेजी जैसे कठिन विषय पढ़ा दिया करते थे। अपनी आर्थिक स्थिति से निपटने के लिए पूरा परिवार एकजुट हो गया था। बाबा को मशीन साफ करने के लिए नए कपड़े की पट्टियाँ मिलती थीं, जिन्हें वे घर ले आते और बहनें घर में पहनने के वस्त्र बना कर पहन लेतीं। स्कूल से आते वक्त रास्ते से गोबर उठा लातीं जिससे बने उपलों से ईंधन का काम हो जाता। बाबा नौकरी के अतिरिक्त किसी डॉक्टर या वकील के बोर्ड ठोकने जैसा छोटा मोटा काम कर लेते। रविवार के दिन माँ अपनी बस्ती में गड्डी गोदाम या पॉश कॉलोनी में चूड़ियाँ, कुंकुम, शिकाकाई वगैरह बेचने चली जाती। इस प्रकार पूरे परिवार ने मिलजुल कर अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने का सफल प्रयास किया।

जब लेखिका नौवीं कक्षा में थी, उनके समाज के विद्यार्थियों ने अपनी शैक्षणिक समस्याओं से निपटने के लिए अस्पृश्य विद्यार्थी परिषद् बनाई जो समय-समय पर विद्यार्थियों की समस्याओं का समाधान करती थी। जैसे फीस माफ करवाना, अधिवेशन करना, भारत भर के अस्पृश्य विद्यार्थियों से संपर्क स्थापित करना। (दोहरा अभिषाप, पृ.75) ये सभी बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों से प्रभावित थे। बाबासाहेब ने ही इन सभी को पहली बार सम्मान से जीने की प्रेरणा दी थी। क्रांति-पथ पर अग्रसर लेखिका भाषण देना सीख गई, बड़े बड़े अधिवेशनों में जाने लगीं। सी. पी. तथा बरार शेड्यूलकास्ट स्टूडेंट फेडरेशन की ज्वांइट सेक्रेटरी बनने के बाद लेखिका अपनी जाति की प्रथा के विपरीत बस्ती के बाहर भी जाने लगी। उच्च पदाधिकारियों से मिलने का सौभाग्य मिला। इसी दौरान इनकी भेंट एम ए, एल एल बी पास एवं डी लिट कर रहे युवक देवेंद्र कुमार बैसंत्री से हुई, जिनके साथ 16/11/1947 को विवाह सूत्र में बंध गईं।

देवेंद्र कुमार बैसंत्री उच्च शिक्षित एवं उच्च पदासीन युवक अवश्य था परंतु उसकी विचारधारा उत्कृष्ट नहीं थी। वह अपने माँ-बाप, अपने बहन भाई पर भी हाथ उठाता था। कौसल्या जी के प्रति उसका व्यवहार बहुत निकृष्ट था, अपनी पत्नी की जरूरत का कभी ध्यान नहीं दिया, छोटी से छोटी चीज छिपा-छिपाकर रखता था। जिस कारण कौसल्या जी को आर्थिक एवं मानसिक कष्ट सहने पड़े। नारी होने का दंश झेलना पड़ा। इसीलिए लेखिका ने इस आत्मकथात्मक उपन्यास का शीर्षक 'दोहरा अभिशाप रखा। लेखिका को दो स्तरों पर अपनी लड़ाई लड़नी पड़ी। आजीवन दलित होने की यातना एवं नारी होने की पीड़ा।

लेखिका ने अपनी गृहस्थी की सारी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाया। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए जब उनके लड़के कॉलेज में पढ़ने लगे तब उन्होंने सामाजिक कार्य करना आरंभ किया। दलित महिलाओं के लिए 'महिला समता समाज' की स्थापना की। उच्च पदाधिकारी महिलाओं से संपर्क स्थापित किया। श्रीमती वेलायुधन, श्रीमती लता दरडे जैसी अन्य उत्साही महिलाओं के प्रयत्नों से 'महिला जागृति परिषद' नामक संस्था की स्थापना की। इसी संस्था के माध्यम से लेखिका ने तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह से भेंट की, देश विदेश में दलित महिलाओं के उत्थान के लिए कई कार्य किए। अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस पर नैरोबी में आयोजित वर्ल्ड वीमेन कान्फ्रेंस में कीनिया के राजदूत के माध्यम से महिलाओं की समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिए प्रस्ताव भेजकर दलित महिलाओं के प्रति अपने कर्तव्य निभाया।

निष्कर्षतः इस आत्मकथात्मक उपन्यास में लेखिका ने तीन (आजी, माँ एवं स्वयं लेखिका) पीढ़ियों की समझदार, स्वाभिमानी, कर्मठ एवं क्रांतिधर्मी महिलाओं का विस्तृत वर्णन किया है जो अपने कर्मों से समाज की चाल से पृथक अपनी एक नई दुनिया सजाती हैं, जिसका सुफल उनकी संतान के साथ-साथ समाज को भी मिलता है। लेखिका की प्रेरणास्रोत उनकी माँ भागेरथी बाई एक आदर्श क्रांतिकारी महिला थीं, जिन्होंने साधनहीन होकर भी अपने सभी बच्चों को शिक्षा दिलवायी, अस्पृश्यता की हीन भावना को अपने नजदीक तक नहीं आने दिया, अपने परिसर को साफ स्वच्छ रखा, अपनी बेटियों के लिए कवच बनीं, आर्थिक स्थिति सुधारने में पति के कंधे से कंधा मिलाकर काम किया, बाबासाहेब आंबेडकर की शिक्षाओं को जीवन में उतारा, धन सम्पन्न होने पर कुँआ खुदवाया, गरीब अस्पृश्य विद्यार्थियों की आर्थिक मदद की, पचपन वर्ष की अवस्था में खेलकूद प्रतियोगिता में भाग लिया व तृतीय स्थान प्राप्त किया। आसपास के लोगों के साथ मधुर संबंध स्थापित किए व सवर्णों में भी सम्मान की पात्र बनी रहीं। इनके उत्तम चरित्र को देखकर कहना ही पड़ेगा-

जीवन में समस्याएँ तो, हर दिन नई खड़ी हैं।
जीत जाते हैं वो, जिनकी सोच बड़ी है।

संदर्भः

1. दोहरा अभिशाप- कौसल्या बैसंत्री, परमेश्वरी प्रकाशन, संस्करण २०१५
2. 'हंस' पत्रिका-दलित विशेषांक, अंक १,अगस्त २००४

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
आर. डी. नेशनल कॉलेज, बांद्रा, मुंबई

मुंबई से सटी येऊर पहाड़ी पर बसी वारली और ठाकुर जनजातियाँ (आदिवासी जीवन पर केंद्रित आलेख)

डॉ. जयश्री सिंह

मुंबई के करीब 'संजय गांधी नॅशनल पार्क' की पहाड़ियों से सटी येऊर पहाड़ी पर आज भी कुछ मूल आदिवासी परिवार रह रहे हैं। येऊर पहाड़ी पर स्थित होने के नाते इस गाँव को लोग येऊर गाँव के नाम से जानते हैं। इस गाँव में वारली और ठाकुर ये दो प्रकार की जनजातियाँ पायी जाती हैं। इसमें कुल नौ अलग - अलग छोटे बड़े पाड़े हैं - पाटिल पाड़ा, पाटोना पाड़ा, भेंडी पाड़ा, नारळी पाड़ा, रोणाचा पाड़ा, अईन पाड़ा, जामुळ पाड़ा, वनिता पाड़ा तथा दल्याचा पाड़ा। इन पाड़ों में पाटिल पाड़ा सबसे बड़ा है जिनमें कुल पंद्रह सौ के करीब घर हैं और दल्याचा पाड़ा सबसे छोटा है जिसमें दस-बारह घर हैं। इस गाँव में अब कई परिवार बाहर से आ कर बस गए हैं। इन आदिवासी जनजातियों के रहन-सहन में भी अब काफी फर्क आ चुका है। ये लोग बाहर से आये हुए परिवारों को किराये पर मकान देने लगे हैं। शहर के बीचों बीच पहाड़ी पर स्थित होने के बाद भी घर की तलाश में कई किरायेदार इनके गाँव तक पहुँच गए हैं। इसके बावजूद भी इस गाँव में कुल पंद्रह सौ मूल आदिवासी परिवार स्थित हैं। गाँव के बुजुर्गों के अनुसार शुरूवात में यहाँ आठ-दस आदिवासी परिवार रहते थे जिनकी संख्या अब पंद्रह सौ से अधिक हो चुकी है।

इस गाँव की तीन लडकियाँ पिछली साल मेरी बी. ए. की छात्रा रह चुकी हैं। बी. ए. तक पढ़ने वाली बेहद शमीर्ली ये तीन लड़कियाँ - शोभा कुरहाडे, चंदा गुहे और सोनिया हिडोळे उनकी पहली पीढ़ी की सर्वाधिक उच्चशिक्षित लड़कियाँ हैं। इन्हीं के सौजन्य से मुझे उनके गाँव की ये ऐतिहासिक जानकारी मिल पायी है।

येऊर गाँव येऊर पहाड़ी के ऊपर स्थित है पहाड़ी के इस ओर ऊँची इमारतों वाला मेट्रोपोलिटन ठाणे शहर तथा उस ओर संजय गांधी राष्ट्रीय उद्यान की अनेक पहाड़ियाँ, झरने, छोटे-बड़े तालाब व दूर-दूर तक फैली पहाड़ी व मनोरम जंगल। इस गाँव के बड़े व बच्चे सभी पहाड़ी के पीछे के गुप्त रास्ते से (जिनसे केवल सेना के जवान, नेशनल पार्क के अधिकारी या फिर गाँव के आदिवासियों को ही जाने की अनुमति है) पहाड़ी के पीछे के जंगल में बेखौफ आते जाते हैं। ये लोग मई महीनों में अपनी कुलदेवी अथवा ग्राम देवी जरी-मरी देवी के नाम पर दो दिनों का मेला लगाते हैं। उस मेले के पहले दिन गाँव के सारे लोग चंदा इकठ्ठा कर बड़े पैमाने पर मुर्गे व बकरे की बलि देते हैं। इस अवसर पर गाँव के कुछ बड़े बुजुर्ग उस बलि के एक हिस्से को जंगल में शेर के लिए रख आते हैं। ये लोग आज भी जंगल के देवता को बलि का वो हिस्सा भेंट कर प्रार्थना करते हैं कि उनके गाँव में कभी कोई प्राकृतिक विपदा न आये तथा उनके गाँव का जो भी व्यक्ति जंगल में जाये वह शाम तक सुरक्षित लौट आये। इत्तेफाकन उनके साथ कभी कोई दुर्घटना भी नहीं घटती इसलिए आज भी इस प्रथा पर उनका दृढ़ विश्वास बना हुआ

है। जंगल में भेंट चढ़ाने के बाद उसी दिन बलि का मांस प्रसाद के रूप में प्रत्येक घर में बाँटा जाता है। इस प्रथा को ये 'खाना-पानी' नाम से पुकारते हैं। मेले के दूसरे दिन पूरे गाँव भर में जरी-मरी देवियों की पालकी निकाली जाती है।

मुख्य व्यवसाय - जंगल से जंगली फल, फूल, पत्ते और सब्जी व लकड़ियाँ तोड़ना और नीचे शहर में आ कर बेचना शुरुवात से ही इनका मुख्य व्यवसाय रहा है। इसमें से सत्तर प्रतिशत लोग आज भी जंगल में जा कर मौसम व त्योहारों की माँग के अनुसार उपलब्ध फल, फूल, सब्जी, पत्ते, लकड़ियाँ व मछलियाँ ला कर ठाणे के जांभली नाका मार्केट में बेचते हैं तथा छोटे मोटे नाकों-चौराहों पर बैठ कर बेचते हैं। फलों में - आम, इमली, करौंदा, चीकू, आवला, बोर, कोकम, जामुन। फूलों में - गेंदा, थेरड़ा, जासवंती, कनेर, चंपा, अबोली, मोगरा और गुलाब। सब्जियों में - फोळीभाजी, अरबी, टाकला, करडू, बाफली, कंटोला, उलसुनी ककड़ी और भिंडी। पत्तों में - आम, चीकू, दूब, अशोक, पलाश, केले, इमली, सोना, बरगद तथा पीपल की पत्ते। बरसात में ये लोग तालाबों में मिलने वाली मलै, मुरे नामक मछली व केकड़े पकड़कर भी बेचने का कार्य करते हैं। कई लोग बकरी, मुर्गी, गाय, भैंस पालने का कार्य भी करते हैं। अईन पाड़ा के लोग अपने गाँव के आगे धान की खेती व सब्जी उगाने का काम भी करते हैं। कई पुरुष और युवा जंगल से ये चीजें तोड़ने व बेचने के काम में लगे रहते हैं और कुछ नीचे शहर के शहरी क्षेत्र के कई वर्कशॉप में रोजगार करते हैं कुछ मजदूरी भी करते हैं।

इनके घरों की कई स्त्रियाँ इन्हीं इलाकों के ऊँची इमारतों में लोगों के घरों में साफ - सफाई व घरेलू बाई का काम भी करती हैं। कुछ लोग जिनके पास कई मकान हैं, वे अपने छोटे-छोटे कमरे बाहर से आये हुए परिवारों को किराये पर भी देते हैं और इस प्रकार ये अपनी रोजी-रोटी जुटाते हैं।

मुख्य त्योहार व मनोरंजन - जरी मरी देवी का मेला इनका मुख्य व विशेष पर्व है। इसके अलावा पितृपक्ष में पित्रों के लिए विविध प्रकार के माँस का भोजन पका कर भेंट करते हैं। नवरात्रि में प्रत्येक रात्रि में महिलाएँ पारंपरिक रूप से एक दूसरे के कमर में हाथ डाल कर बड़े गोल में तारपा नृत्य करती हैं। गणेशोत्सव (महाराष्ट्र में मनाया जाने वाला मुख्य उत्सव) में हर रात्रि में सारे मिलकर पारंपरिक ढोलकी नृत्य करते हैं। इसमें एक व्यक्ति बीच में ढोल बजाता है। इस समय आदिवासी बोली (मराठी के निकट की बोली) में पारंपरिक गीत गाते हुए स्त्री - पुरुष, लड़के-लड़कियाँ सभी बड़ा गोल बना कर हाथों से ताली बजाते हुए नृत्य करते हैं। इसके अलावा होली-दीवाली का त्यौहार भी ये अपने पारंपरिक तरीके से मनाते हैं। होली में होलिका जलाते समय बीच में ऊँची बाँस पर मुर्गी का जीवित चूजा बाँध देते हैं। इसके बाद चावल के लड्डू, आम, नारियल चढ़ा कर पूजा करते हैं। होलिका जलने पर चूजा जलकर नीचे गिर जाता है। सबकी निगाह उस चूजे पर लगी रहती है। गिरा हुआ चूजा जिसे मिल जाए वो उसे ले कर भागता है। लोग उसे पकड़ने और चूजा झपटने की कोशिश करते हैं। अंत में चूजा जिसे मिलता है, उसी का हो जाता है। दीवाली में भी ये लोग पुरानी पद्धति से चावल की मुठ बनाते हैं। उसे देवी मानकर उसके आगे चवली की सब्जी और करंदा की भेंट चढ़ा कर दिए जलाते हैं।

जन्म-मृत्यु व विवाह - बच्चे के जन्म पर पांचवें दिन सबको घर बुला कर उबला हुआ काला चना व पेड़ा बाँटा जाता है। इनके यहाँ लड़की लड़के में कोई भेद नहीं माना जाता। किसी के भी जन्म पर यही प्रथा दुहराई जाती है। गाँव में यदि किसी की मृत्यु हो जाये तो उसके लिए भी उन्हें पारंपरिक तौर पर प्रत्येक घर से एक-एक लकड़ी माँगी जाती है। परंपरानुसार सबको अनिवार्य रूप से अपने घर से एक-एक लकड़ी देनी पड़ती है तब जा कर मृतक को गाँव के श्मशान भूमि में सबके बीच जलाया जाता है।

इनके यहाँ विवाह हिन्दू पद्धति से किया जाता है। ये विवाह गाँव के बीच या गाँव के बाहर भी किये जाते हैं। आजकल इनके यहाँ शहरी प्रभाव के कारण जातीय व अंतरजातीय विवाह को भी अनुमति प्राप्त है। ये लोग गाँव में ही मंडप बाँध कर हिन्दू रीति रिवाज के अनुसार हल्दी की रस्म के साथ विवाह करते हैं।

गाँव में दसवीं तक सरकारी स्कूल व प्राथमिक उपचार की व्यवस्था है, जहाँ प्रतिदिन एक घंटे के लिए ही डॉक्टर आते हैं। टी एम सी की बस सेवा प्रति आधे घंटे में सुबह पाँच से रात ग्यारह बजे तक उपलब्ध है। ये बसें उनके गाँव से ठाणे स्टेशन तक का प्रति आधे घंटे में चक्कर लगाती हैं। गाँव में एक सरकारी पानी की टंकी है। गाँवों में प्रत्येक गलियों में सार्वजनिक नल हैं। जिनमें दिन में एक बार पंद्रह मिनट से तीन घंटे तक पानी आता है। लड़कियाँ दिन भर पानी भरने में लगी रहती हैं। इनके यहाँ पानी की बहुत समस्या रहती है इसलिए इनमें से कई लोग कपड़े धोने व नहाने के लिए पहाड़ी के पीछे के तलावों में भी जाते हैं।

अब इनके यहाँ भी धीरे-धीरे शहरी सभ्यता का प्रभाव पड़ने लगा है। इनके घरों में टी वी, पंखे व मोबाइल पहुँच चुके हैं। गाँव के सारे बच्चे पढ़ने लगे है। लड़के-लड़कियाँ जीन्स भी पहनने लगी हैं। बच्चे गाँव से बाहर आ कर आगे की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। इन्हें किसी रिसॉर्ट में जाने की आवश्यकता नहीं होती ये लोग बरसात के समय जंगल में प्राकृतिक झरनों व छोटे - बड़े तलावों में खेलने-कूदने का आनंद पा जाते हैं। गाँव के प्रत्येक छोटे-बड़े व्यक्ति को तैरना आता है। उस ओर बोरीवली और इस ओर ठाणे शहर के बीचोंबीच पहाड़ी पर बसे होने पर ये आदिवासी लोग आधुनिकता व जंगल के साथ उचित तालमेल बैठा कर अपने ढंग से जी रहे हैं। ये लोग आज भी अपने पारंपरिक व्यवसाय, लोकगीत, लोकनृत्य, पारंपरिक भोजन, पूजा पाठ (जंगल और शेर की पूजा), पारंपरिक वाद्य ढोलकी इत्यादि संस्कारों को अपनी अगली पीढ़ी को सौंपते हुए गाँव में अन्य स्थानों से आये नए किरायेदारों के साथ मिलजुल कर जी रहे हैं।

संदर्भ विशेष : यह प्रपत्र येऊर गाँव में प्रत्यक्ष भेंट दे कर वहाँ की जनजातियों से चर्चा करके बनाया गया है। इसलिए संदर्भ ग्रंथ नहीं लगाए गए हैं।

एसोसिएट प्रोफेसर एवं शोधनिर्देशक (मुंबई विश्वविद्यालय),
हिन्दी विभाग, जोशी - बेडेकर महाविद्यालय (स्वायत्त) ठाणे - 400601
महाराष्ट्र

झारखंड की जनजातीय कलाओं में सोहराई और कोहबर चित्रकारी : गुफा से शहर की दीवारों तक की यात्रा

डॉ. इंद्राणी रॉय

सदियों से चित्रकला मानव अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती आ रही है। पूर्व ऐतिहासिक गुफा चित्रों से लेकर आधुनिक कला तक की यात्रा रचनात्मकता, नवीन विचारों और मानव मन की कलात्मक सोच और कौशल की अभिव्यक्ति का एक क्रम है। विचारों को व्यक्त करने के लिए दीवारों या कैनवस पर विभिन्न ज्यामितीय पैटर्न, रूपांकनों, प्रतीकों, आकृतियों को अंकित किया जाता है। विभिन्न तकनीकों और रंगों का उपयोग चित्रकारी की कला को और भी अधिक आकर्षक बनाता है। किसी काल विशेष या किसी स्थान विशेष में चित्रकला का विकास उस काल या उस स्थान की संस्कृति को प्रतिबिम्बित करता है। प्रारंभ में लोग चित्रकला के रूप में प्राकृतिक सम्पदाओं, जंगली जानवरों, पक्षियों और उनकी दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों को चित्रित करते थे। बाद में ज्यामितीय डिजाइन, विभिन्न रूपांकन, पौराणिक कहानियाँ, जातक कहानियाँ, देवी-देवताओं की आकृतियाँ, धार्मिक रूपांकनों को विषय के रूप में जोड़ा गया। भारत में, विभिन्न जनजातियों का समूह है। जनजातीय कला उनके जीवन और संस्कृति को व्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जनजातीय चित्रकला जनजातीय कबीलों के धार्मिक विश्वासों और जीवन को चित्रित करती है। इस तरह के चित्र प्रायः आनुष्ठानिक या धार्मिक प्रकृति के होते हैं। ये परंपरागत चित्रकारी पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही हैं।

झारखंड के हजारीबाग जिले की सोहराई और कोहबर चित्रकारी भी सदियों पुरानी कला हैं। रंगीन और जीवंत ये चित्रकारी हजारीबाग जिला के आदिवासी महिलाओं की रचनात्मक और कलात्मक अभिव्यक्ति को दर्शाती है। यह पारंपरिक चित्रकारी फसल कटाई के समय और विवाह समारोह के अवसर पर किया जाता है। घरों की दीवारों को विभिन्न प्रकार के पुष्प, ज्यामितीय डिजाइनों, जानवरों और पौधों के रूपांकनों से सजाया जाता है। यह अनूठी परंपरागत कला, ग्रामीण समुदाय के महिलाओं द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी सँजो कर रखी जाती रही है। दुर्भाग्य से, तेजी से औद्योगीकरण और वैश्वीकरण के कारण धीरे-धीरे ये पारंपरिक कलाएँ गायब हो रही हैं। चूँकि ये चित्रकारी अमूल्य पारंपरिक विरासत है, इसलिए इन्हें संरक्षित और पुनर्जीवित करना आवश्यक है। इसे पुनर्जीवित करने और बढ़ावा देने के लिए सरकार और गैर सरकारी संगठन द्वारा किए गए प्रयासों का पता लगाना है। कुछ पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार, इस्को की गुफा में सोहराई और कोहबर कला के प्राचीनतम होने के प्रमाण मौजूद हैं। इस्को रॉक कला स्थल, झारखंड के हजारीबाग जिले के पश्चिम में बरका गाँव ब्लॉक की साथी पहाड़ी श्रृंखला में स्थित है। पर्यावरणविद् बुलू इमाम ने 1991 में इन गुफाओं की खोज की और बिहार पुरातत्व विभाग को सूचित किया। इस्को की गुफा में कोहबर चित्रकला बनाई गयी है। कहा जाता है वहाँ के स्थानीय राजा ने अपनी शादी का मंडप वहीं बनवाया। सोहराई और कोहबर चित्रकारी कुर्मी, गंजू, संथाल और अन्य आदिवासी समूहों द्वारा की जाती

है। ये भित्ति चित्र, रंग और रूपकों के प्राचीन ज्ञान का सुंदर समिश्रण है। इस कला को बनाने की अनोखी पद्धति है। आज भी उसी परम्परगत तरीके से ये चित्र बनाये जाते हैं तथा इनमें प्राकृतिक रंगों का प्रयोग होता है। सोहराई कला में रंगों का विशेष महत्व होता है। विशेषतः चार प्रकार की मिटटी का प्रयोग होता है। काली मिट्टी, लाल मिटटी, पीली मिट्टी और दूधी मिट्टी। इस कला की सबसे बड़ी विशेषता है- यह अलग-अलग गाँव में अलग-अलग तरीके से बनाई जाती है। विरासत में मिली यह कला, आदिवासी महिलाओं द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी अभ्यास की जाती है। लड़कियाँ अपनी माँ से कला सीखती हैं और इस कौशल को अपने पति के घर ले जाती हैं जहाँ वे इस कला के द्वारा अपनी सास की मदद करती हैं। खराटी, इस्को, भेलवाड़ा, बरवाड़ी, पुनखरी जैसे जिलों के गाँव इस प्रकार की चित्रकला के लिए प्रसिद्ध हैं। सोहराई फसल कटाई के महत्व को दर्शाता है। इस त्योहार के दौरान सोहराई चित्रकारी को पारंपरिक तरीके से चित्रित किया जाता है। ये उत्सव संथाल, मुंडा, प्रजापति, कुर्मी और उरांव आदिवासियों द्वारा मनाया जाता है। यह अक्टूबर से नवंबर अर्थात दिवाली तक मनाया जाता है। इस उत्सव को संथाल जनवरी के महीने में पाँच दिनों तक मनाते हैं। इस त्योहार में मवेशी और पशुपति शिव की पूजा की जाती है।

शादी के समय कोहबर चित्रकारी की जाती है। कोह का अर्थ है कमरा और (बर) वर का अर्थ है दूल्हा। कोहबर का साहित्यिक अर्थ विवाह कक्ष है। ये चित्रकारी नवविवाहित जोड़े के कमरे में वैवाहिक जीवन में सुख-समृद्धि लाने के लिए की जाती है। कोहबर चित्र कला पाषाण काल से ही शुरू हुई जिसका प्रमाण हमें इस्को गुफा चित्र में मिलते हैं। इस्को गुफा के अंदर अनेकों भित्ति चित्र हैं जिसमे एक भित्ति चित्र में बच्चे का जन्म होते हुए दिखाया गया है। आज भी कोहबर कला विवाह तथा वंश वृद्धि के लिए शुभ माना जाता है। इस कला को बनाने की अनोखी पद्धति है। आज भी उसी परम्परगत तरीके से ये चित्र बनाये जाते हैं। प्राकृतिक रंगों का प्रयोग होता है। मिट्टी की दीवारों पर पहले गाय के गोबर और मिट्टी का लेप लगाया जाता है फिर उस पर काली मिट्टी का लेप और उसके बाद दूधी मिट्टी का लेप लगाया जाता है। सफेद लेप को ब्रश या कंघी के टुकड़े से काट कर तरह तरह के डिजाइन बनाये जाते हैं। दीवारों पर खूबसूरत खोवर पेंटिंग्स बनाकर वर-वधू का आह्वान किया जाता है।

सोहराई और कोहबर कला भारत की अमूल्य धरोहर है। इस कला को बचाए रखना और आने वाली पीढ़ी के लिए इसे जीवित रखना जरूरी है। हाल के वर्षों में, यह कला कई कारणों से धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है जैसे कि मिट्टी की दीवारों की जगह ईंट की दीवारें बनाना, गाँवों से शहरों की ओर पलायन में वृद्धि, औपचारिक शिक्षा का दबाव, वैकल्पिक व्यवसाय का बढ़ता विकल्प आदि। गैर सरकारी संस्था विरासत ट्रस्ट के संस्थापक जस्टिन इमाम का कहना है कि चूंकि इस काम से ज्यादा आमदनी नहीं होती, इनमें से ज्यादातर महिलाएं अपनी आजीविका कमाने के लिए खेती का काम करती हैं और सब्जी बेचती हैं। जस्टिन इमाम के पिता बुलु इमाम पर्यावरणविद् और INTACH के संयोजक इन पेंटिंग को प्रकाश में लाने वाले पहले व्यक्ति थे। उन्होंने 1990 के दशक के प्रारंभ से ही इन चित्रों के संरक्षण और परिक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका

निभाई। प्रधानमंत्री मोदी ने मन की बात में अपने भाषण के जरिए कला और कलाकारों को प्रोत्साहित किया।

कलाकारों को प्रोत्साहन देकर इस कला को संरक्षित करने का प्रयास किया जाना चाहिए। आजकल सरकार और एनजीओ के संयुक्त प्रयासों से इस पेंटिंग के कलाकारों को जबरदस्त प्रोत्साहन दिया जा रहा है गैर सरकारी संस्था विरासत ट्रस्ट इस कला के संरक्षण और आदिवासी महिला कलाकारों को इस पेंटिंग से कमाई कर आत्मनिर्भर बनाने में उल्लेखनीय भूमिका निभा रही है। इस ट्रस्ट की स्थापना जस्टिन इमाम और अलका इमाम ने 2008 में की थी। ग्रामीणों को और अधिक प्रोत्साहन देने के लिए यह ट्रस्ट ग्रामीणों को मुफ़्त लाल मिटटी, पिली मिटटी तथा गेरू रंग की आपूर्ति करता है। वे हर साल कलाकारों को प्रोत्साहित करने के लिए उपहार के रूप में कंबल, साड़ी, एलईडी बल्ब और दीवार घड़ियां देते हैं। ट्रस्ट अब 260 महिलाओं के साथ काम कर रहा है। विरासत ट्रस्ट आज बहुत सारी महिलाओं को विदेश जा कर अपनी कला का प्रदर्शन करने का मौका दिया है। 2015 में इंडिया इंटरनेशनल सेंटर नई दिल्ली में विरासत ट्रस्ट द्वारा एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था। इस प्रदर्शनी का उद्देश्य इस पेंटिंग शैली के बारे में जागरूकता पैदा करना था।

'माटी घर' एक दूसरी गैर सरकारी संस्था है जिसके संस्थापक, वीरेंद्र कुमार आदिवासी कलाकारों और कारीगरों को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों से जोड़ने में मदद करते हैं ताकि उन्हें उनकी कलात्मक प्रतिभा का उचित मूल्य मिल सके। 'माटी घर' सोहराई और कोहबर के कारीगरों को सशक्त बनाने के उद्देश्य से सक्रिय रूप से काम कर रहा है। विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से जैसे प्रदर्शनियों का आयोजन, ग्रामीण महिलाओं के लिए प्रशिक्षण सत्र आयोजित करना, आदिवासियों को वित्तीय सहायता देने के प्रयास करते हुए आदिवासियों की कलात्मक वस्तुओं को बेचने के लिए एक ऑनलाइन पोर्टल की स्थापना करना इत्यादि। फेसबुक और अमेजॉन से ग्राहकों को आकर्षित करने की कोशिश की जाती है। 'माटी घर' के सदस्य, सेंट जेवियर इंग्लिश हाई स्कूल, रांची के कैंपस में शहरी स्कूली बच्चों को इस आदिवासी कला का प्रशिक्षण देते हैं। झारखंड सरकार ने कौशल विकास और उद्यमिता के माध्यम से सोहराई कला को बढ़ावा देने का प्रयास किया है। इसके लिए सरकार ने महत्वपूर्ण भवनों की दीवारों पर रंग करने की पहल की है। महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए काम करने वाले और विभिन्न कला रूपों के अभ्यास से जुड़े एक गैर सरकारी संगठन स्तम्भ ने प्रमुख सरकारी भवनों पर सोहराई कला को चित्रित करने की जिम्मेदारी ली है। कार्य में शामिल सभी कलाकार महिलाएँ हैं। स्तंभ ट्रस्ट की अध्यक्ष जयश्री इंदवार ने बताया कि 10 महिलाएँ जो पेशेवर चित्रकार नहीं हैं, उन्हें भी इन भवनों को पेंट करने और कमाई करने का अवसर मिला है। हजारीबाग जिला अपने जिले की प्रमुख इमारतों में सोहराई कला को चित्रित करने और बढ़ावा देने के लिए पहल करने वाला पहला जिला बन गया है। सोहराई और कोहबर कला को संरक्षित करने और इन कलाओं के माध्यम से कौशल विकास करने में 'विरासत ट्रस्ट', 'माटी घर' और 'स्तंभ' जैसे एनजीओ अहम भूमिका निभा रहे हैं।

आधुनिकता और व्यावसायीकरण के दौर में, सोहराई और कोहबर जैसी अमूल्य जनजातीय कला धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। अतः इन कलाओं को संरक्षित करना और संजो कर रखने की काफी आवश्यकता है। झारखंड सरकार के साथ-साथ कुछ गैर सरकारी संगठन निस्संदेह इस कला को संरक्षित करने तथा गांवों की महिलाओं को प्रोत्साहित करने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। न केवल भारतीय बल्कि विदेशी बाजारों तक इस कला को पहुँचाने की कोशिश की जा रही है। राष्ट्रीय तथा अंतराष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शनियां तथा कार्यशालाओं का आयोजन कर गावों की महिलाओंको स्वाबलंबी तथा सशक्त बनाने का प्रयास किया जा रहा है। ये प्राचीन कला आज हमारे पास अमूल्य धरोहर है जिसे बचा कर रखना न सिर्फ सरकार का बल्कि हमारा भी कर्तव्य है।

संदर्भ :

- सोहराई खोवर (कोहबर) पेंटिंग्स की सुंदरता, चैत्र बालासुब्रह्मण्य द हिंदू 6 सितंबर 2018
- https://www.thehindu.com/entertainment/art/the-beauty-of-sohrai-and-khovar- paintings/article24881453.ece
- ट्राइबल आर्ट फॉर्म मीन बिजनेस, द टेलीग्राफ टाइम्स ऑनलाइन, 14 दिसंबर 2022
- सोहराई पेंटिंग के लिए झारखंड मंत्रालय कैनवास 1 अक्टूबर 2015
- https://www.dailypioneer.com/2015/state-editions/jharkhand-mantralaya-canvas-for-sohrai-painting.html
- सोहराई द ट्राइबल आर्ट, अरुणिम कुमार श्रीवास्तव, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च 2021
- सुभम रजक, सुषमा जी देव, सिद्धार्थ साहाः झारखंड में इस्को हजारीबाग जिले की रॉक कट कलाः मानवशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य 2020
- जनजातीय कला रूपों का मतलब व्यापार (बुधवार 14 दिसंबर 2022) द टेलीग्राफ ऑनलाइन
- झारखंड की सोहराई और खोवर (कोहबर) कला में समाया हुआ, द इंडियन एक्सप्रेस, 5 फरवरी 2020
- https://www.newindianexpress.com/cities/delhi/2020/feb/05/cocooned-in-jharkhand-s-sohrai-and-khovar-art--2099063.html
- एलिफेंट इन इंडीजिनस आर्ट एंड चेंजिंग सोसाइटी इन झारखंड, इंडिया, सुभा बनर्जी, एशियन एलिफेंट इन कल्चर
- प्रतिष्ठित सोहराई-खोवर (कोहबर) पेंटिंग को जीआई टैग मिला, 15 मई 2020
  https://www.dailypioneer.com/2020/state-editions/iconic-sohrai-khovar-paintings
  https://www.youtube.com/watch?v=3IwfnJY2VzU&t=460s सोहराई कला झारखंड की पहचान, डीडी झारखंड
- https://www.youtube.com/watch?v=i1Z2-NxOT24 पेंटेड मड हाउसेस ऑफ झारखण्ड सोहराई एंड खोवर

एसोसिएट प्रोफेसर
जोशी - बेडेकर महाविद्यालय (स्वायत्त), ठाणे

21वीं सदी में आदिवासी एवं दलित उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन (2001 से 2010)

ज्योति अजय सिंह

पिछले चार-पाँच दशकों से हिंदी साहित्य में मुख्य रूप से तीन विमर्श - स्त्री, दलित और आदिवासी पर आधारित कथा साहित्य देखा जा सकता है। उपन्यास पाठकों को प्रश्नाकुलता पैदा करता है कि क्या जाति की उपस्थिति के बावजूद जातिवाद से बचा जा सकता है? क्यों विभिन्न समुदाय एक दूसरे के साथ सह- अस्तित्व के सिद्धांत के तहत नहीं रह सकते? इक्कीसवीं सदी समाज, राजनीति और साहित्य आदि की दृष्टि से निश्चित ही महत्वपूर्ण रहेगी। इस सदी के आरंभ में ही चेतना ने समता, स्वातंत्र्य की पुरजोर मांग करना शुरू किया है। अब तक समाज- संस्कृति आदि की दृष्टि से हाशिए पर रहे जन समुदाय प्रवाह में आने के लिए जद्दोजहद कर रहे हैं। फिर भी वह आदिवासी हो या दलित, इनका पाथेय बना है साहित्य। आदिवासी और दलित साहित्य पर जब हम विचार करते हैं तो निश्चित रूप से आदिवासी जनजाति और दलित तबके के लोगों में जगा 'आत्माभिमान' हमारा ध्यान खींचते हैं। अनेक भारतीय भाषाओं में आदिवासियों और दलितों की जीवन संघर्ष और शोषण जल- जमीन- जंगल से खदेड़ने की त्रासदी को डंके की चोट पर व्यक्त कर रहा है।

यहाँ मैं आदिवासी उपन्यास और दलित उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन करने का एक प्रयास कर रही हूँ। हिंदी कथा-साहित्य में भगवानदास मोरवाल द्वारा रचित साहित्य अपनी देशज छवि के कारण विशेष रूप से जाना जाता है। इनका लिखा हुआ उपन्यास 'रेतः सन २००८ में प्रकाशित हुआ और हिंदी साहित्य समीक्षा जगत में पर्याप्त चर्चा में भी रहा है। इस उपन्यास के कथा के केंद्र में है हरियाणा राज्य का एक गाँव 'गाजूकी'। गाजूकी गाँव के कमला सदन के माध्यम से लेखक ने 'कंजर' जनजाति का रहन-सहन और संघर्षपूर्ण जीवन-यापन उपन्यास में प्रस्तुत किया है। 'कंजर' यानी काननचर अर्थात जंगल में घूमने वाला। यह वही कंजर है जो स्वयं को माना गुरु और माँ नलिन्या की संतान मानते हैं। 'कंजर' ऐसी जनजाति है, जो ब्रिटिश शासन काल के दौरान 'अपराधी जनजाति' करार दी गई थी।

उपन्यासकार ने 'कमला सदन' के माध्यम से अपने लोक विश्वासों व लोकाचारों की धूरी पर अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए संघर्ष करती विमुक्त जनजाति की कथा प्रस्तुत की है। इस उपेक्षित जनजाति के लोग वेश्यावृत्ति अपनाकर तथा शराब बनाने का व्यवसाय आदि कर किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह करते हैं। यह एक स्त्री-प्रधान जनजाति है- 'कंजर जनजाति की अधिकांश स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति अपनाकर अपना जीवन-यापन करती हैं। परिवार की वे सभी युवतियाँ जो वेश्यावृत्ति अपनाती हैं, वे बुआ कहलाती हैं, तथा इन बुआओं की चाकरी का कार्य करने वाली होती हैं 'भाभी'।[1]

रुक्मिणी द्वारा पिंकी से यह पूछे जाने पर कि वह डॉक्टर बनेगी या टीचर बनेगी या बुआ? पिंकी का उत्तर होता है- 'मैं तो बुआ बनूंगी।'[2] कंजरों का यह व्यवसाय सुचारु रूप से चलता रहे इसलिए पुलिस को समय-समय पर उनका हिस्सा पहुंचा दिया जाता

है। जब रुक्मिणी को यह पता चला कि मुरली बाबू के लिए औरतों की दलाली करने वाला और कोई नहीं यह तो औरतों के हक की ठेकेदार सावित्री जैसी औरतें ही होती हैं। स्वयं मुरली बाबू इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए रुक्मिणी से कहते हैं- 'आज तुम जैसी औरतों के हकों की सबसे बड़ी ठेकेदार यही सावित्रियाँ बनी हुई हैं। इतिहास में नाम भी इन्हीं का दर्ज होता है। औरतों की मुक्ति का शोर यही क्रांतिकारी पतिव्रताएँ सबसे ज्यादा मचाती है। तुझे क्या लगता है जिस बहाने से तुझे आज यहां लाया गया है, उसकी योजना मैंने बनाई है? ना, यह सारी योजना इसी की बनाई हुई है।'[3]

'कंजर' जनजाति में अच्छे नैन-नक्श वाली लड़कियों का ब्याह करके उनका घर नहीं बसाया जाता। और अगर किसी कारणवश ब्याह किया भी जाता है तो दहेज दिया नहीं जाता बल्कि वसूल किया जाता है। यह कहा जा सकता है कि 'रेत' उपन्यास के माध्यम से मोरवाल ने 'कंजर' समाज के विविध पक्षों को उजागर करने के साथ-साथ उनके शोषण एवं का विविध स्तरीय संघर्ष एवं शोषण गातार चलता रहता है। भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में ग्रामीण जनता के व्यवहार, ग्रामीण परिवेश और उनकी मानसिक स्थिति को लेकर समाज में जागरूकता पैदा करने का प्रयास किया जा रहा है- 'यह नितांत आवश्यक है कि हम ग्रामीण जनता को समझें उनकी आवश्यकता और मनःस्थिति का ज्ञान प्राप्त करें तथा ग्रामीण समाज की समस्याओं के निदान में समाजशास्त्री योग के मूल्य को स्वीकारें।'[4] भारत में इस प्रकार की कई जनजातियाँ हैं जिनका प्रशासन, समाज एवं राजनीतिक दलों द्वारा उनका शोषण निरंतर होता आ रहा है।

रणेन्द्र का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' सन् २००९ में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास झारखंड की असुर जनजाति के संघर्षों को बयान करता है। रणेन्द्र ने प्रस्तुत उपन्यास में झारखंड के असुरों की संघर्ष गाथा का बहुत ही स्पष्ट और निर्मम चित्र खींचा है जो अपनी नियति के खिलाफ लड़ रहे हैं। सूक्ष्म तौर पर यह उपन्यास उस पूरे समुदाय की संघर्ष गाथा है जिसे तथाकथित 'लोकतांत्रिक आधुनिकता' लील रही है। रणेन्द्र ने बहुत कौशल के साथ इस कथा की देशकालबद्धता को कायम रखते हुए इसे एक वैश्विक आयाम दिया है और जो क्रमशः पूरे इतिहास में संचारित दिखाई देता है। उपन्यासकार की बड़ी विशेषता यथार्थ को रोचक प्रभावोत्पादक और समृद्ध भाषा में रूपांतरित करने में हैं। जहां एक ओर रणेन्द्र ने असुर जनजाति की संघर्ष गाथा के माध्यम से दुनिया के अनेक भागों में फैले हुए आदिवासियों के संघर्ष की पड़ताल की है, मसलन अमेरिका महाद्वीप में 'इका', 'माया', 'एज्टेक' और सैकड़ों 'रेड इंडियंस' की मूक हत्याएं भी 'झारखंडी असुरों' के संघर्ष से अलग नहीं है क्योंकि इन्हें भी आधुनिकता के ठेकेदारों ने असहिष्णु और बर्बर कहकर इस तरह मौत के घाट उतारा था। लेखक शुरू में कहता है - 'अब जाकर ध्यान आया कि एतवारी में इस सुदर्शन व्यक्ति का नाम लालचंद असुर बताया था। सुना था कि यह इलाका असुरों का है, किंतु असुरों के बारे में धारणा यह थी कि खूब लंबे-चौड़े, काली-कलुटे, भयानक दांत-वांत निकले हुए, माथे पर सींग-विंग लगे होंगे। लेकिन लालचंद को देखकर सब उलट-पुलट हो रहा था। बचपन की सारी कहानियाँ उल्टी घूम रही थीं।'[5]

इक्कीसवीं सदी के ये उपन्यास स्वतंत्रता के बाद सामंतवादी, अर्थव्यवस्था,

समानतावादी, पूँजीवादी व्यवस्था में फँसे आदिवासी, आदिवासियों की त्रासदी को प्रमाणिकता के साथ उजागर करते हैं। आदिवासियों की शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद करने वाले उपन्यास इक्कीसवीं सदी में लिखे गए, लिखे जा रहे हैं। इक्कीसवीं सदी के उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता'(२००९) उद्योगपति, व्यापारी, पुलिस प्रशासन, राजनेता, पूँजीवादी के शोषण को बड़ी संवेदनशीलता के साथ उजागर करता हैं। इसी प्रकार से, 'अरण्य में सूरज' श्रीमती अजीत गुप्ता (२०००) 'पठार पर कोहरा' राकेश कुमार सिंह (२००३), -'काला पादरी' तेजेंद्र(२००५), 'धूणी तपे तीर'- हरिराम मीणा(२००८), 'आदिभूमि' - प्रतिभा राय (२००९), 'मरंग गौड़ा नीलकंठ हुआ' - महुआ माजी (२०१२) उपन्यास जो अपने हक के लिए आवाज उठाते हैं और आदिवासियों के जीवन-व्यवहार, हिंसा, प्रतिहिंसा, उनके शोषण का सिलसिला जारी होने के सत्य को उजागर करते हैं। इन उपन्यासों में जनजाति के जीवन की वास्तविकता को स्पष्ट किया गया है। उपन्यासकारों ने इन जनजातियों के परंपरागत जीवन को, उनकी रूढ़ियों को, अंधविश्वासों, दंत कथाओं के माध्यम से पाठकों के सामने उजागर किया है। इन रचनाकारों अपने उपन्यासों के माध्यम से वैश्वीकरण, बाजारवाद, शिक्षा, बाल विवाह, बेरोजगारी, अंधविश्वास, शोषण, व्यसन और विस्थापन आदि समस्याओं को भी उजागर किया है।

दलित उपन्यास 'वीरांगना झलकारी बाई' के उपन्यासकार ने हिंदी दलित उपन्यास में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में 'वीरांगना झलकारी बाई' का महत्वपूर्ण प्रसंग हमें स्वतंत्रता सेनानियों की याद दिलाता है जो इतिहास में भूले - बिसरे हैं। बहुत कम लोग जानते हैं कि झलकारी बाई झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की प्रिय सहेलियों में से एक थी। झलकारी बाई ने समर्पित रूप में न सिर्फ रानी लक्ष्मीबाई का साथ दिया बल्कि झांसी की रक्षा में अंग्रेजों का सामना भी किया। झलकारी बाई दलित पिछड़े समाज से थी और निस्वार्थ भाव से देश सेवा में रही।

झलकारी बाई ने चूड़ियाँ पहनना छोड़ देश रक्षा के लिए बंदूक हाथ में ले ली थी। उसे न महल चाहिए थे, न कीमती जेवर और न रेशमी कपड़े और न दुशाले। वह न तो रानी थी और ना ही पटरानी। वह किसी सामंत की बेटी भी नहीं थी तथा किसी जागीरदार की पत्नी भी न थी। वह तो गाँव भोजला के एक साधारण परिवार में पैदा हुई थी। पिता भी आम परिवार से थे और पति भी। दुःखद बात यह है कि जाति विशेष के चश्माधारी इतिहासकारों, साहित्यकारों और पत्रकारों में से किसी ने भी दलित समाज की उस वीरांगना झलकारी बाई की खबर नहीं ली थी।

दलित और पिछड़े समाज के लेखक पत्रकार तथा नाटककारों का जिन्होंने छोटी-छोटी पुस्तकें लिखकर इतिहास के इन महत्वपूर्ण तथ्यों को उजाले में लाने का प्रयास किया जो बरसों से अंधेरे में पड़े थे। देश और समाज के प्रति प्रेम, बलिदान से इतिहास में खास जगह प्राप्त कर चुकी दलित समाज की वीरांगना झलकारी बाई को वर्तमान समाज ने भले ही भुला दिया हो किंतु आज भी दलितों की नई पीढ़ी को प्रेरणादाई बन दलितों की नायिका के रूप में झलकारी बाई का स्थान शेष है।

'श्रवण नहीं चाहते थे कि पिछड़ी जाति के लोग दलितों से हिल मिलकर रहें। पिछड़ी

जाति के लोग सछूत तो दलित अछूत माने जाते थे।'[6]

कर्म से बढ़कर जाति हो जाती है। श्रद्धा, अंधश्रद्धा के चलते गुसाईयों की काफी आवभगत होती। मुफ्त में खाकर अनपढ़ लोगों को झूठे-सच्चे सपनों में भ्रमित करना, भाग्य-दुर्भाग्य, भूत-प्रेत, परियों-डाइनों के किस्सों और चमत्कारों से लोगों को वश में कर समाज पर दबाव डाल वे अपने आप को विराट संस्कृति के सूत्रधार मानते।

'मछलियाँ और नारायण शास्त्री अर्थात भंगी और ब्राम्हण में अंतरजातीय विवाह शायद पहली घटना थी। जिसके कारण झांसी के सवर्ण, रूढ़िवादी अवसर की तलाश में रहते कि कैसे उन्हें नीचा दिखाए। वही वर्ण व्यवस्था में बंधा राजा भी श्रेष्ठ ब्राम्हण को दंड देने में असमर्थ था।'[7] मछरिया के शब्दों में -'सात-आठ वर्ष की थी तब से लोग उसे औरत बनाने पर तुल गए थे।'[8]

जहां-जहां दलित और पिछड़े समाज के लोग रहते उन्हें सवाल-दर-सवालों का सामना करना पड़ता जैसे वे केवल जवाब देने के लिए पैदा हुए हो - ' झांसी शहर हिंदू परंपरा तथा रीति-रिवाजों के बीच था। अतः दलित अस्मिता की ना तो किसी को चिंता थी ना पहचान।'[9]

सामाजिक नियमों के बाहर कुछ मर्दानगी का काम करने वाली झलकारी जैसी औरत से ईर्ष्या व बदला लेने के लिए उसे गौ हत्या का आरोपी किया जाता है और पंचायत बिठाई जाती है, ताकि फिर कोई औरत ऐसा ना करें। दलित उपन्यास में दलित विमर्श जाति पर आधारित अस्मिता मूलक है एक भारतीय विमर्श है क्योंकि जाति भारतीय समाज की बुनियादी संरचनाओं में से एक है। इस विमर्श ने भारत की अधिकांश भाषाओं में दलित साहित्य को जन्म दिया है। हिंदी साहित्य में दलितों के जीवन को केंद्र में रखकर अनेक किताबें लिखी गई हैं। भारतीय समाज सदियों से वर्ण व्यवस्था की बेड़ियों में जकड़ा रहा तथा इस वर्ण व्यवस्था की कलुषित मानसिकता ने मनुष्य-मनुष्य के बीच अलगाव पैदा कर दिया। भारतीय समाज को ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन वर्गों में बांट दिया।

दूसरी ओर अजय नावरिया का उपन्यास 'उधर के लोग' में भारतीय संस्कृति की विशिष्टता, वैयक्तिक सत्ता के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय मुद्दों को रेखांकित किया गया है। इसके अलावा इस उपन्यास में बाजार की भयावहता, वेश्यावृत्ति, यौन विकार विचारधाराओं की प्रासंगिकता प्रेम-विवाह और तलाक पर भी खुलकर बात की गई है। उपन्यासकार की बड़ी विशेषता यथार्थ को रोचक, प्रभावोत्पादक और समृद्ध भाषा में रूपांतरित करने में है। इस उपन्यास में संस्कृति की विशिष्टता वैयक्तिक सत्ता के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय मुद्दों को रेखांकित किया गया है।

इस उपन्यास के नायक को पहला प्रेम हो जाता है। प्रेम भी वंदना झा (ब्राह्मण लड़की) से होता है और तमाम पारिवारिक विरोध और सामाजिक मान्यताओं को ताक पर रखकर एक ब्राह्मण लड़की एक दलित लड़के से शादी कर लेती है लेकिन कुछ ही दिनों बाद संस्कारों या यूं कहें कि दोनों की जीवन पद्धति का संघर्ष सामने आता है और नायक की मां और बंदना के बीच जमकर लड़ाई शुरू हो जाती है दोनों अपने मां-बाप से अलग रहना शुरू कर देते हैं। एक दिन जब नायक अपनी पत्नी को थप्पड़

मारता है तो नायिका भी पलट कर उसके गाल पर थप्पड़ जड़ देती है। यहीं से शुरू होता है प्रेम और नंगे यथार्थ में संघर्ष जिसकी परिणीति होती है वंदना के खुदकुशी से। कहानी यहीं खत्म नहीं होती है। कहानी कई मोड़ लेती है। नायक की फिर उसके ही बिरादरी की संगीता से शादी होती है। लेकिन मास्टर जी (नायक) की जिंदगी में एक और औरत है-आएशा, जो कि हाईप्रोफाइल वेश्या है। मास्टर जी की दूसरी पत्नी से भी नहीं निभती है और पत्नी पति अलग रहने लगते हैं। कहानी का अंत सुखद है संगीता और मास्टर जी की एक बेटी पैदा होती है और फिर दोनों पति पत्नी साथ में रहने लगते हैं। सामंतवादी, अर्थव्यवस्था, समानतावादी, पूंजीवादी व्यवस्था में फंसे दलित, दलितों की त्रासदी को प्रमाणिकता के साथ उजागर करते हैं। दलितों का शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद करने वाले उपन्यास इक्कीसवीं सदी में लिखे गए- मोहनदास नैमिशराय 'आज बाजार बंद है'(२००४) ,जख्म हमारे (२०११), रूपनारायण सोनकर 'डंक' (२००९), 'सूअरदान' (२०१०), 'गटर का आदमी' (२०१५), शरण कुमार लिंबाले 'नरवानर' (२००४), 'हिन्दू' (२००४), 'बहुजन'(२००४), शुशीला टाकभौरे 'नीला आकाश(२०१३) आदि उपन्यास हैं।

एक तरफ आदिवासी उपन्यास पर विचार करते हैं और दूसरी तरफ दलित उपन्यास पर विचार करते हैं तो हमें विशेष रूप से इक्कीसवीं सदी के आदिवासी उपन्यास और दलित उपन्यास आकर्षित करते हैं। इसकी खास वजह यह है कि यह उपन्यास केवल आदिवासियों और दलितों के सांस्कृतिक प्राकृतिक जीवन को व्यक्त नहीं करते। वरन ये वैश्वीकरण, बाजारीकरण की युग में आदिवासियों और दलितों के सामने आ रही नवीनीकरण की समस्याओं को सामने रखते हैं। वैश्वीकरण, बाजारवाद, शिक्षा, बाल विवाह, बेरोजगारी, अंधविश्वास, विस्थापन, वेश्यावृत्ति, प्रेम विवाह आदि जैसी समस्याओं को आदिवासी उपन्यास और दलित उपन्यास ने उजागर किया है और उनसे कैसे निपटा जा सकता है उनका भी सुझाव देते हैं।

संदर्भ :

1. रेत- भगवानदास मोरवाल, नई दिल्ली, पृष्ठ २०८
2. वही, पृष्ठ ११,
3. वही, पृष्ठ १९३
4. ग्रामीण एवं नगरीय समाजशास्त्र- डॉ. ओम प्रकाश जोशी, नई दिल्ली, पृष्ठ ७
5. ग्लोबल गाँव के देवता- रणेन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ ११
6. वीरांगना झलकारी बाई-मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ २४
7. वही, पृष्ठ ३६,
8. वही, पृष्ठ ४१,
9. वही, पृष्ठ ४२

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
सिद्धार्थ कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
मुंबई-४००००१

आदिवासी जीवन की प्रमाणिक अभिव्यक्तिः नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द

डॉ. मिथिलेश शर्मा

आधुनिक भारतीय आदिवासी समाज में एक जागरूक महिला के रूप में तमाम समस्याओं को अपनी कविताओं के माध्यम से उजागर करती हुई झारखंड के संथाल परगना की निर्मला पुतुल सामने आती हैं। निर्मला पुतुल आदिवासियों के ऊपर होने वाले अत्याचारों व निर्मम परम्पराओं द्वारा हो रहे शोषण के खिलाफ अपनी आवाज उठाती हैं। वे एक ऐसी शब्द चित्रकार हैं कि उनकी कविता में शब्द बोलते हैं। आदिवासी समाज के अस्तित्व व अस्मिता की रक्षा हेतु वे सदैव अपनी कविता को वाणी प्रदान करती हैं। निर्मला पुतुल के प्रतिरोधी स्वरों के बारे में डॉ. विजयलक्ष्मी सालोदिया कहती हैं - 'निर्मला पुतुल अपने सामाजिक सरोकारों का पूर्ण निष्ठा से निर्वाह करते हुए भारतीय संस्कृति का पदार्फाश करती हैं। उनकी भाषा का झारखंडीपन, नाचने के लिए खिलखिलाहट, रोने के लिए पहाड़ों की शांति, अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष की शक्ति उनकी कविताओं की विशेषताएँ हैं। अपनी कविताओं में, सरकारी संस्थाओं द्वारा किए जा रहे भ्रष्टाचारों का भांडा वह फोड़ती हैं। इंदिरा आवास का हवाला देते हुए वह फर्जी झूठा मस्टर रोल भरने वालों, कम तोलने और कम नापनेवालों के खिलाफ अपना रोष प्रकट करती हैं। वैश्वीकरण के नाम पर हो रही धोखाधड़ी का भी वह रेशा-रेशा उधेड़ती हैं। महिला आयोग से भी उन्हें शिकायत है। इतना ही नहीं, पिछड़ा, असभ्य, जंगली, मूर्ख, गंवार, समझकर जानबूझकर मुख्यधारा से आदिवासियों को दूर रखनेवालों को वह आड़े हाथों लेती हैं और उपभोक्तावादी संस्कृति के ऑक्टोपस की खूनी भुजाओं से आदिवासियों को पूर्णतः मुक्त करने-कराने का संकल्प भरा आवाहन भी करती है।'[1]

आदिवासी समाज के अस्तित्व व अस्मिता की रक्षा के अतिरिक्त उनकी कविता आदिवासी महिला के एकांतवास को भी टटोलती है, 'सुगिया', अपने घर की तलाश जैसी कविताओं में आदिवासी महिला के इस एकांत की मार्मिक अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। डॉ. सतीश पांडेय के शब्दों में' 'निर्मला पुतुल के लिए कविता करना कोई शगल नहीं बल्कि एक जरूरत है। यह उनके एकांत का प्रवेश द्वार है, जहाँ पहुँच वे जिंदगी की भाग-दौड़ से थक हार कर सुस्ताती हैं।'[2]

निर्मला पुतुल आदिम प्रतिरोध की सक्षम साहित्यकार हैं। आदिवासियों में परम्परागत चली आ रही कुप्रथाओं पर वे तीव्र प्रहार करती हैं और वे समाज के सभ्य स्वार्थी लोगों से भोले-भाली जनता को सदैव सजग करती रहती हैं। एक किलो सेव और सेरभर गुड़ के मोह में अपनी जान पर खेलने वाली निरीह जनता को अपनी कविताओं के माध्यम से फटकारती हुई लालच में न आने की प्रेरणा देती हैं। कई बार सभ्यता का मुखौटा पहन कर समाज में कुछ भेड़िये बड़ी शान से घूमते रहते हैं, इनको वे अपनी कविताओं

के माध्यम से बे-नकाब करती हैं। निर्मला पुतुल की रचनाएँ आज के समय में आदिम सभ्यता, शोषण तथा समस्याओं को दशार्ने वाली जीती जागती तस्वीर हैं। अपनी बात को स्पष्ट कहने वाली रचनाकार के रूप में पुतुल जी समकालीन साहित्यकारों में अपनी अलग पहचान बनाये हुए हैं, इनकी आदिवासी संथाली भाषा में लिखी गई कविताओं का अनुवाद अशोक सिंह ने बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है।

'नगाड़े की तरह बजते शब्द' कविता की प्रथम रचना ही इस तथ्य को उजागर कर देती है कि 'स्त्री मात्र एक देह नहीं है' बल्कि उसके पास एक मन भी है। जिसमें अनेक-अनेक भाव समाहित हैं। वह भी संवेदनाओं के तंतुओं से सदैव जुड़ने का प्रयास करती है किन्तु आज तक नहीं जुड़ पाई क्योंकि समाज के ठेकेदार उसे आज भी नेत्रों का विषय मानकर सिर्फ उसका पान करना चाहते हैं, उसके हृदय में स्थान पाना नहीं। जब तक मनुष्य की भोगवादी दृष्टि रहेगी तब तक स्त्री मात्र एक उपभोग की वस्तु बनकर ही रह जाएगी, वह कभी भी भावना का विषय न बन पाएगी और उसके दुःख का निवारण भी न हो सकेगा। स्त्री समानता की बातें केवल पुस्तकों तक सिमट कर रह जाएँगी। हर बार उनकी अस्मिता को कटघरे में खड़ा किया जाएगा। इस दर्द को उनकी रचना 'क्या तुम जानते हो' कविता में अनुभव किया जा सकता है -

तन के भूगोल से परे, एक स्त्री के, / मन की गाँठें खोल कर, कभी पढ़ा है तुमने, /
अगर नहीं! तो फिर जानते क्या हो तुम,/ रसोई और बिस्तर के गणित से परे, /
एक स्त्री के बारे में।'[3]

एक बड़े समुदाय का न जानना ही उसके दर्द का मुख्य कारण है जिसका दंश वह अनादिकाल से सह रही है और वह दर्द है - असमानता का, परतंत्रता का और मात्र वस्तु बने रहने का। वह जन्म तो एक मनुष्य के घर में एक मनुष्य की तरह लेती है पर उसके साथ व्यवहार वस्तु की भाँति होता है। पहले उसके सारे निर्णयों की बागडोर पिता के हाथों में होती है फिर पति के हाथों में स्थानांतरित कर दी जाती है। जीवन भर घर-परिवार के प्रति समर्पित होने के बावजूद भी उसका कोई स्वामित्व नहीं होता यही उपेक्षा उसके आक्रोश का कारण बनती है. पुतुल जी 'अपनी जमीन तलाशती बेचैन स्त्री' में कहती हैं -

'यह कैसी विडम्बना है कि हम सहज अभ्यस्त हैं,/
एक मानक पुरुष- दृष्टि से देखने स्वयं की दुनियां,
मैं स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखते,
मुक्त होना चाहती हूँ अपनी जाति से।'[4]

आधुनिक युग में आदिवासी साहित्य की सर्जना करने वाली निर्मला पुतुल पूर्णतः विरह-वेदना और विद्रोह की कवयित्री हैं। स्वतंत्र भारत के आदिवासियों के दुःख दर्दों का सूक्ष्म चित्रण पुतुल जी ने अपनी रचनाओं में बड़ी बारीकी से किया है। यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़ी ये कविताएँ स्वतंत्र भारत के विकास को झूठा ठहराती हुई

आदिवासियों के भयावह सत्य को उजागर करती हैं। निरीह व निरपराध आदिम जनों के शोषण, उत्पीडन तथा विद्रोह की आग को और अधिक बढ़ावा देने का काम उनकी रचनाओं ने बखूबी किया है। नारी को अबला, दासी, भोग्या समझने वाली मनुवादी प्रवृत्ति आज भी समाज में व्याप्त है। आदिम जनों की घनीभूत पीड़ा को कवयित्री ने अपने वाणी से अभिव्यक्त किया है तथा उपेक्षित आदिवासियों की स्त्रियों को सवर्णों द्वारा शोषित किए जाने का दर्द भी अपनी कविताओं में बड़ी सच्चाई से प्रस्तुत किया है। उच्चवर्गीय स्त्रियाँ भी शोषण से अछूती नहीं रही हैं, इसका उल्लेख भी वे धड़हल्ले से अपनी रचनाओं में करती हुई कामपिपासु सवर्ण समाज से सीधे प्रश्न करती हुए पूछती हैं -

पढ़ा है कभी, उसकी चुप्पी की देहलीज पर बैठ, / शब्दों की प्रतीक्षा में उसके चहरे को?/उसके अन्दर वंशबीज बोते, क्या तुमने कभी महसूसा है,/ उसकी फैलती जड़ों को अपने भीतर?'[5]

यथार्थ के धरातल पर वेदनाओं के भयावह और अंतर्मुख कराने वाले शब्दचित्रों की अनेकानेक फितियाँ निर्मला पुतुल ने अपनी रचनाओं प्रदर्शित की हैं। आदिवासियों का खुलेआम होने वाला शोषण और उस शोषण से उनके जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव व वेदनाओं के जख्म इनकी रचनाओं में जगह-जगह दर्शनीय हैं।

सम्पूर्ण आदिवासी समाज को वे सजग करती हुई उन्हें अपने अस्तित्व व अस्मिता का स्मरण कराती हैं। बाहरी लोगों के घर में घुसने के कारण जो दैहिक शोषण हो रहा है, उसका बखान करती हुई पुरुषों को ललकारती हैं। साथ ही, उन सामाजिक कुरीतियों की तरफ भी हमारा ध्यान अग्रसर करती हैं जो स्त्री शोषण के प्रमुख कारक हैं। जैसे - स्त्रियों द्वारा हल चलाने पर रोक, पिता की संपत्ति से वंचित रहना, समाज में बहुपत्नी विवाह की कुप्रथा, अंधविश्वास, मद्यपान आदि बुराइयों को अपनी रचनाओं के माध्यम से दर्शाती हैं। आदिम संस्कृति के प्रतिनिधि को अपने समुदाय में हो रही दुर्दशा को लेकर प्रश्न करते हुए 'चुड़का सोरेन से' वह पूछती है -

कैसा बिकाऊ है तुम्हारी बस्ती का प्रधान, जो सिर्फ,
एक बोतल विदेशी दारू में रख देता है, पूरे गॉव को गिरवी?
और ले जाता है कोई लकड़ियों के गटठर की तरह,
लादकर अपनी गाड़ियों में तुम्हारी बेटियों को,
हजार- पाँच सौ हथेलियों पर रखकर
पिछले साल, धनकटनी में खाली पेट बंगाल गयी
पड़ोस की बुधनी, किसका पेट सजाकर लौटी है गाँव?'[6]

आदिम समुदायों में शोषण की अधिकांशतः बलि भी स्त्री को ही देनी पड़ती है। जिस स्त्री को प्राचीन संस्कृति में सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता था उसी स्त्री जाति को हैवान सबल पुरुषों द्वारा नोंच-नोंच कर खाने का और उसको उसके अधिकारों से वंचित करने

का मानो बीड़ा उठाया लिया गया हो। आदिम स्त्री की वेदनाओं की कोई सीमा नहीं है। इतिहास गवाह है कि सवर्ण जातियों ने सदैव अपनी मनमानी का बिगुल बजाया है। आदिवासी स्त्रियों को घने जख्म देकर उन पर नमक छिड़कने का कार्य भी सवर्णों ने सदैव ही किया है। इस मानसिक आग में स्त्री का शरीर ही नहीं बल्कि मन भी जलकर राख हो जाता है। इस भयावह अग्नि में जली हुई स्त्री को मलहम लगाकर पुनः जीवित करना बड़ा ही असहनीय कार्य है। इस उत्पीड़न और दर्द को कवयित्री ने बड़ी वेदना के साथ अपनी कविता 'कुछ मत कहो सजोनी किस्कू !' में व्यक्त किया है -

'जब तुमने चलाया था हल, तब डोल उठा था,/ बस्ती की माँझी-थान में बैठे देवता का सिंहासन,/ गिर गयी थी पुश्तैनी प्रधान कुर्सी पर बैठे, / मगजहीन 'माँझी हाड़ाम' की पगड़ी,/पता है बस्ती की नाक बचाने खातिर / तब बैल बनाकर हल में जोता था, जालिमों ने तुम्हें,/ खूंटे में बाधकर खिलाया था भूसा। / हक की बात मत न करो मेरी बहिन,/ मत माँगो पिता की संपत्ति पर अधिकार।'[7]

अथाह वेदना के साथ असीम विद्रोह की भावाभिव्यक्ति निर्मला जी की पुस्तक 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' की रचनाओं में देखी जा सकती है। उनकी कविताओं में विद्रोह की आग ऐसी सुलगती है कि असहाय और कमजोरों में भी नवचेतना का संचार कर देती है। उनकी कविताओं में विषमतामयी स्थितियों को बदलने की अद्भुत क्षमता, परिवर्तन की चाह और शोषितों के प्रति नवक्रांति का संचार करने की अदम्य लालसा को देखा जा सकता है। परिणामतः ये कविताएँ शोषितों के संघर्ष का दस्तावेज हैं और पाखंडी सभ्य समाज का पदार्फाश भी करती हैं। 'मैं वो नहीं हूँ, जो तुम समझते हैं' कविता में कवयित्री कहती हैं -

'मैं चुप हूँ तो मत समझो की गूंगी हूँ या कि / रखा है मैने आजीवन मौन- व्रत,/
गहराती चुप्पी के अँधेरे में सुलग रही है, भीतर / जो आक्रोश की आग, उसकी रोशनी में पढ़ रही हूँ,/तुम्हारे खिलाफ अकेले लड़ने के खतरों का लेख, / पर याद रखो ...../
तुम्हारी मानसिकता की पेचीदी गलियों से गुजरती / मैं तलाश रही हूँ तुम्हारी कमजोर नसें,/ ताकि ठीक समय पर, ठीक तरह से कर सकूँ हमला,/
और बता सकूँ सरे आम गिरेबान पकड़, / कि मैं वो नहीं हूँ जो तुम समझते हो!!'[8]

आदिवासी जनों के शोषण, विस्थापन, रोजगार हेतु पलायन और संघर्ष को वाणी प्रदान करने वाली एक सशक्त रचनाकार के रूप में निर्मला पुतुल जानी जाती हैं। 'नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द' काव्य- संग्रह में आदिवासी समाज के ऐसे मार्मिक शब्द-चित्रों की अभिव्यक्ति हुई है कि पढ़कर रौंगटे खड़े हो जाते हैं। भूमंडलीकरण के कारण बाजार बनते देशों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया है। जनता हस्तकला की तुलना में मशीन से निर्मित वस्तुओं को श्रेयस्कर समझने लगी, जिसके परिणामस्वरूप आदिवासी गृहउद्योगों का सतत क्षरण होता चला गया। इस समस्या को रणेन्द्र के उपन्यास 'ग्लोबल गाँव का देवता' में भी चित्रित किया गया है जिसमें असुर

आदिवासी जनजाति का लोहा पिघलाकर यंत्र बनाने की हस्तकला के क्षरण का वर्णन किया गया है। 'शिंडाल्को' और 'वेदांग' जैसी विश्वविख्यात कम्पनियों ने न केवल असुरों की हस्त कला का विनाश किया बल्कि उनकी अजेय जिजीविषा को भी समाप्त कर दिया। 'जो लड़ाई वैदिक युग में शुरू हुई थी, हजार- हजार इंद्र जिसे अंजाम नहीं दे सके थे, ग्लोबल गाँव के देवताओं ने वह मुकाम पा लिया था।'[9] निर्मला पुतुल की कविता 'ढेपचा के बाबू' में भी कवयित्री इस प्रकार की समस्याओं की ओर ध्यान खींचती हैं इस कविता में बेरोजगारी, भुखमरी और गरीबी से त्रस्त ढेपचा के पिता कश्मीर, बहन 'सुगिया' बंगाल और ढेपचा असम को पलायन कर जाता है किंतु ढेपचा की माँ नहीं छोड़ पाती और अपनी पीड़ा बयान करती हुई ढेपचा के बाबू से कहती है कि -

'दोना-पत्तल भी नहीं बिकता / और न ही लेता है कोई चर - चटाई /
झाड़ू, पंखा, दातुन का भी बाजार नहीं रहा अब, /
भूले भटके गर कभी कोई पैकार आता भी है /
तो रुपए जोड़ा माँगता है पंखा / और सौ रुपए दर्जन चटाई /
एक तो सब छोड़- छाड़ दिन - भर लगे रहो /
उस पर भी गर पचास - साठ नहीं निकले / तो उसे करने से क्या फायदा?'[10]

आज भी समुचित शिक्षा के अभाव में आदिवासी जनता तमाम तरह के अंधविश्वासों से घिरी हुई है जिसका उल्लेख महुआ माजी द्वारा लिखा हुआ उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में सगेन की ताई नामक पात्र के माध्यम से देखा जा सकता है। मरंग गोड़ा में युरेनियम खनन के बाद निकलने वाले अवशिष्ट का निष्कासन नदियों में करने से स्केलिटन डिफॉरमिटिस, आबूर्द, माईक्रो कैथेली, मेगा कैथेली, थैलेसिमिया, डाउन सिंड्रम, बाँझपन जैसी बीमारियों की चपेट में मरंग गोड़ा क्षेत्र के निवासी आ जाते हैं और इन बीमारियों को वे डाइन का प्रकोप मानते हैं। बलि का बकरा बनती है सगेन की ताई जो कि उपन्यास में पूरे मरंग गोड़ा क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है।

आदिवासी संस्कृति में प्रकृति संवर्धन की भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है। पर, दुखद यह है कि जिस प्रकृति और पर्यावरण को बचाने के लिए आदिवासी समाज तत्पर है, आज वह स्वयं अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा हेतु जूझ रहा है। वैदिक काल से आदिवासियों को जो खदेड़ने का उपक्रम शुरू हुआ वह आज भी देखा जा सकता है। परन्तु, इस खदेड़पन के विरुद्ध सदैव आवाज उठी और आज भी निर्मला पुतुल जैसी कवयित्री के माध्यम से सामाजिक और साहित्यक धरातल पर आदिवासियों के स्थापन के लिए बिगुल बजाया जा रहा है। निर्मला पुतुल ने अपने अनुभवों को जिनमें स्वानुभूति के दर्द की गंध है अपने इस काव्य- संग्रह में संजोकर प्रस्तुत किया है जो यथार्थ की भूमि पर जन्मे हैं इसलिए इनमें सच्चाई व कर्मठता दृश्यमान है। स्त्री के प्रति गहरी संवेदना उनकी रचनाओं में झलकती है। इस प्रकार निष्कर्षतः कह सकते हैं कि अंग्रेजों के आगमन के उपरान्त विकास की अंधी आधुनिकता के परिणामस्वरूप, सदियों से अपने

जंगल, जमीन और नदी में सुखी जीवन व्यतीत कर रहा मुख्य धारा से कटा आदिवासी समाज पहली बार प्रभावित हुआ। विकास के नाम पर भूमि अधिग्रहण एवं विस्थापन के कारण ही आदिवासी अस्मिता का प्रश्न तथा आदिवासी आइडेंटिटी क्राइसिस जैसे ज्वलंत मुद्दे मुख्य धारा के गले की फाँस बन कर रह गए जिसका प्रतिकार आदिवासी जननायक, बुद्धिजीवियों ने बहुत ही तीखे तेवर में किया। अपनी कविताओं में निर्मला पुतुल ने आदिवासियों के इसी संघर्षगाथा के माध्यम से सत्ताधारियों के नाक में नकेल कसने की कोशिश की है। आधुनिकता, आदिवासी स्त्री शोषण, अधिग्रहण, डिजिटल इंडिया, मेक इन इंडिया, पर्यावरण दोहन, रेडियोधर्मी पदार्थों के उत्सर्जन से होने वाली गंभीर बीमारियाँ और इन सभी से बचने हेतु होने वाला विस्थापन आदिवासियों पर होनेवाले अत्याचारों का जीता-जागता दस्तावेज है जो इस अंधाधुंध विकास को कठघरे में खड़ा करता है। इन अत्याचारों के खिलाफ निर्मला पुतुल के शब्द नगाड़े की तरह बजते हैं क्योकि ये शब्द ही हैं जो गूंजते हैं तो बड़े परिवर्तन का कारण बनते हैं।

सन्दर्भ :

1. मीणा डॉ. रमेश चंद, आदिवासी समाजः दशा और दिशा, गुप्ता आफसेट प्रिंटर्स, बूंदी (राजस्थान),210, पृ.123
2. पाण्डेय डॉ. सतीश, समकालीन कविता सृजन सन्दर्भ, शैलजा प्रकाशन, कानपुर, 2016, पृ.160
3. पुतुल निर्मला (अनुवादक अशोक सिंह) नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नयीदिल्ली, 2012, पृ. 8
4. पुतुल निर्मला (अनुवादक अशोक सिंह) नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नयीदिल्ली, 2012, पृ. 9
5. पुतुल निर्मला (अनुवादक अशोक सिंह) नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नयीदिल्ली, 2012, पृ. 8
6. पुतुल निर्मला (अनुवादक अशोक सिंह) नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नयीदिल्ली, 2012, पृ. 20-21
7. पुतुल निर्मला (अनुवादक अशोक सिंह) नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नयीदिल्ली, 2012, पृ. 23-24
8. पुतुल निर्मला (अनुवादक अशोक सिंह) नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नयीदिल्ली, 2012, पृ. 56
9. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2013, पृ. 100
10. पुतुल निर्मला (अनुवादक अशोक सिंह) नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नयीदिल्ली, 2012, पृ. 44-45

हिन्दी विभागाध्यक्ष

रामनिरंजन झुनझुनवाला कॉलेज, घाटकोपर (प), मुंबई - ४०००८६

इक्कीसवीं सदी के आदिवासी साहित्य में विमर्श और चुनौतियाँ

डॉ. नवनाथ गाड़ेकर

वृक्ष से जल है, जल से अन्न है एवं अन्न ही जीवन है। मानव का अस्तित्व वनस्पति और जीव-जंतु के अस्तित्व पर निर्भर है। वन और आदिवासी एक दूसरे के पूरक हैं। वन, आदिवासियों के लिए दाता, अधिरक्षक है, जहाँ से उन्हें खाद्य पदार्थ, रोजगार, आर्थिक समृद्धि एवं उनकी संस्कृति के विकास को बल मिला। वनों से जहाँ उन्हें फल, फूल, ईंधन, चारा, घर बनाने की लकड़ी, जीवनदायिनी जड़ी - बूटी आदि मिलती है, वहीं उनके गहरे मनोभावों का पूर्ण संतोष मिलता है। विकास की बहुत- सी योजनाओं ने पहाड़ों का अहित किया। गरीबी, शोषण, बेकारी एवं विपन्नता के फलस्वरूप उत्तराखंड की माँग उठी। आदिवासियों की आकांक्षाओं के अनुरूप उनका विकास करने से ही अनेक आंदोलन शांत हो सकते हैं।

वन केवल वनस्पतियों, जड़ी-बूटियों, वन्य-जीवों एवं वनस्पतियों के आश्रय स्थल ही नहीं अपितु बाढ़ एवं सूखे की विभीषिका से बचने के सबसे अच्छे साधन है। संजीव, रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल, प्रतिभा राय, तेजिन्दर, रणेंद्र, हरिराम मीणा, गंगा सहाय मीणा, महादेव टोप्पो आदि आदिवासी लेखक हैं। इन सभी आदिवासी साहित्यकारों ने अपने साहित्य में समस्त आदिवासी समाज की पीड़ा, वेदना एवं उनकी संस्कृति का विस्तार से चित्रण किया है।

भारत सरकार की आर्थिक उदारीकरण की नीतियों के कारण समस्त आदिवासी समाज की शोषण प्रक्रिया शुरू हुई। इस प्रक्रिया के विरोध में आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक उर्जा को आदिवासी साहित्य कहा जाता है। बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में भारत में नए सामाजिक आंदोलनों का प्रारंभ हुआ। किसानों, महिलाओं दलितों और आदिवासियों पर हो रहे अन्याय - अत्याचार के विरोध में बड़े - बड़े आंदोलन होने लगे। अपने साथ होने वाले शोषण के लिए अपनी खास अस्मिता को कारण बनाया और उस शोषण तथा भेदभाव से संघर्ष के लिए उस संबंधित अस्मिता, पहचान को धारण करनेवाले समूह, समुदाय को अपने साथ लेकर अपनी मुक्ति के लिए सामूहिक अभियान चलाया। आदिवासी लोक में साहित्य के साथ-साथ विविध कला माध्यमों का विकास बहुत पहले हो चुका था लेकिन वहाँ साहित्य सृजन की परंपरा मूलतः मौखिक रही। जंगलों में खदेड़ दिए जाने के बाद भी आदिवासी समाज ने इस परंपरा को जारी रखा। जनभाषा में और सत्ता प्रतिष्ठानों से दूरी की वजह से यह साहित्य आदिवासी समाज की ही तरह उपेक्षा का शिकार हुआ। आज भी सैकडों देशज भाषाओं में आदिवासी साहित्य लिखा जा रहा है, जिसमें आदिवासियों का संवाद शेष है। इसके संदर्भ में डॉ. अभिषेक कुमार यादव ने लिखा है,

'किसी भी समाज के लिए साहित्य का सिर्फ इतना ही महत्व नहीं होता कि वह समाज और उसकी संस्कृति का चित्रण करता है बल्कि साहित्य उस समाज का ऐतिहासिक दस्तावेज भी होता है। साहित्य हमारी खुशियों, दुःखों, विजय- पराजयों, अकेलेपन और सामूहिकता का अमूल्य दस्तावेज होता है। अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समुदायों के पास लोकसाहित्य का अपूर्व भंडार है, जो एक ऐतिहासिक दस्तावेज ही है।'[1] दो दशकों पूर्व भारत की केंद्रीय सरकार द्वारा शुरू की गई आर्थिक उदारीकरण की नीति ने बाजारवादी का रास्ता खोला। मुक्त व्यापार और मुक्त बाजार के नाम पर मुनाफे और लूट का खेल आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन से भी आगे जाकर उनके जीवन को दाँव पर लगाकर खेला जा रहा है। आँकड़े यह बताते हैं कि पिछले एक या दो दशक में अकेले झारखंड राज्य के तकरीबन दस लाख से अधिक आदिवासी विस्थापित हो चुके हैं। इनमें से अधिकांश लोग दिल्ली जैसे महानगरों में घरेलू नौकर के रूप में काम कर रहे हैं।

भारत एक बहुभाषिक एवं बहुसांस्कृतिक देश रहा है। सदियों से भारतीय समाज में अनेक जाति, धर्म, वर्ग एवं संप्रदाय के लोग रहते आए हैं। इस देश में अनेक जनजातियाँ निवास करती है, इसमें आदिवासियों का विशिष्ट स्थान है। आदिवासी एक निश्चित भू-भाग में अपनी विशिष्ट बोली बोलते हैं तथा संगठित रहते हैं। आदिवासी समाज के लोग सभ्यता की दौड़ में पिछड़े हुए हैं। बहुत से आदिवासी जंगलों में, पहाड़ों में और दुर्गम प्रदेशों में रहकर कबीलाई जीवन शैली अपनाए हुए हैं। सदियों से सभ्यता एवं संस्कृति से दूर होने के कारण ये पिछड़े हुए हैं। आज हम जिस समाज में रहते हैं उस समाज में आज भी कुछ ऐसी आदिवासी जनजातियाँ है, जो मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित है। आदिवासी जनजातियों का जीवन पूरी तरह से जंगल पर निर्भर है उसे भी सभ्य समाज ने हड़प लिया है। वर्तमान साहित्यकर न केवल ग्राम एवं शहरी जीवन के यथार्थ को प्रत्यक्ष ला रहे हैं बल्कि दूर- दराज के क्षेत्रों में लुप्त हो रहे उन आदिवासियों के जीवन में भी झाँक रहे हैं और उस समाज की जीवन शैली की समस्या, संस्कृति, शोषण व जीवन के सत्य को हमारे समक्ष रख रहे हैं।

भारत जैसे विशाल एवं विविधताओं से भरे हुए देश में आदिवासी समाज का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी हमारी संस्कृति के परिचायक है, परंतु सभ्य समाज की नीति के करण पृथक हो गए जिसके कारण वे सभ्य समाज की तुलना में पिछड़े हुए दिखाई देते हैं। जल, जंगल और जमीन से जुड़े रहने के कारण उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। लोकसंस्कृति की समस्या, शिक्षा, स्वास्थ्य और स्त्रियों से जुड़ी समस्याएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। संसार में किसी भी भाषा के साहित्य सृजन की मूल प्रेरणा उस समूह की पीड़ा ही होती है। समस्त आदिवासी समुदाय को स्वातंत्र्योत्तर काल से ही यह एहसास हुआ कि हमारा कई सालों से शोषण होता आ रहा है। उनका शोषण, पीड़ा, उपेक्षा और प्रताड़ना के खिलाफ साहित्यिक-अभिव्यक्ति

में सहायक रहा है। वन आदिवासियों के लिए दाता और रक्षक है जहाँ से उन्हें खाने के पदार्थ, रोजगार अर्थ और सांस्कृतिक विकास को बल मिला है। देश के औद्योगिकीकरण की नीति के कारण उनका मूल निवास जंगल उनसे छिना जा रहा है परिणामस्वरूप उनका अस्तित्व तहस-नहस होता जा रहा है। आदिवासी समाज की जीवन संस्कृति अपनी धरती तथा प्रकृति से प्रेम के अभाव में कुछ भी नहीं है। आदिवासियों का जीवन फूल, प्रकृति के गोद में ही खिलता है। आदिवासी समाज के विकास की नींव में ही प्रेम बंधुत्व व स्त्री, पुरुष की समानता निहित है। साहित्य में इनकी हमको सामूहिकता, समानता की पूर्णतः अभिव्यक्ति होती है। साहित्य लेखन में लेखक के अपने व्यक्तित्व के साथ-साथ उसकी संवेदना तथा उसके गहनतम सामाजिक हित का चिंतन भी शामिल होता है क्योंकि साहित्य समाज का कलात्मक सृजन है। आदिवासी समाज की स्त्रियों पर हो रहे अन्याय-अत्याचार के संदर्भ में हरिराम मीणा कहते हैं, 'आदिवासी और दलित औरतों के साथ अधिकांशतः गैर दलित आदिवासी ही बलात्कारी साबित होते हैं, अन्यथा ऐसी घटनाएँ उनके समाज में न के बराबर होती हैं। इस अर्थ में मुख्यधारा और कथित सभ्य समाज में कई पायदान ऊपर उठती है आदिवासी सोच।'[2]

आदिवासी समाज जहाँ एक तरफ सुंदर जीवन दर्शन का प्रेरणास्त्रोत है वहीं दूसरी तरफ बाहरी वर्चस्व और कुछ अंधविश्वासी परंपरा आदिवासी समाज को भटकाव की दिशा में ले जाती है। इस प्रकार दोनों प्रकार की स्थिति को हिंदी कथा साहित्य में चित्रित किया है। आदिवासी महिलाएँ आदिवासी समाज की प्रत्यक्षदर्शी होती हैं। इसलिए वे अपने समाज के प्रति अपना दृष्टिकोण कथा साहित्य के माध्यम से मुखर रूप से रखती हैं। जो भी घटना, अंधविश्वास दीकू समाज के वर्चस्व के करण हो रहे बदलाव स्त्रियों के अंतःस्थल को छू जाता है या विचलित कर देता है, उसे आदिवासी स्त्रियाँ कभी उसकी सुंदरता को स्पष्ट करती हैं तो कभी अपनी लेखनी के माध्यम से विद्रोह कर उठती हैं। अतः यह कहा जाता है कि आदिवासी समाज के सुख-दुःख, हास्य-रुदन के संघर्ष और विद्रोह आदिवासी महिलाओं के लेखन में भी स्पष्ट होता है। आदिवासी लेखिकाओं की रचनाएँ न सिर्फ भारतीय समाज के अनदेखे बहुभाषायी और बहुसांस्कृतिक संसार को दर्ज करती हैं बल्कि पूर्वाग्रहों और गैर बराबरी से मुक्त एक स्वस्थ लोकतांत्रिक समाज की पुनर्रचना के लिए अपेक्षित भी हैं। कहा जाता है कि आदिवासी समाज में स्त्रियों की स्वच्छंदता होती है। यह कहाँ तक सत्य है, आदिवासी स्त्रियों की स्वच्छंदता के बारे में आदिवासी महिलाओं का कथा साहित्य किस रूप में देखता है, यह जरूरी है।

भारत में विकास के नाम पर आदिवासियों को अपनी भूमि और जंगलों से सवर्णों या सभ्य समाज के द्वारा बेदखल किया जा रहा है। निर्मला पुतुल विकास की मीनारों के नीचे दबे हुए आदिवासी कब्रिस्तानों की बात करती हैं। निर्मला पुतुल लिखित 'तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमें' कविता में विकास के आधुनिक पैरामीटर को

नकारते हुई कहती हैं -अगर हमारे विकास का मतलब / हमारी बस्तियों को उजाड़कर कर कारखाने बनाने हैं। / तालाबों को भोथकर राजमार्ग / जंगलों का सफाया कर ऑफिसर्स कॉलोनियाँ बसानी हैं।'[3]

औद्योगीकरण से आदिवासियों का विकास तो दूर बल्कि उनका शोषण ही होता आया है। औद्योगीकरण के बारे में सरकार की नीति की आलोचना करते हुए वह कहता है, 'पर अन्याय देखो, आदिवासियों को जिनकी जमीन पर ये कारखाने लग रहे हैं, उन्हें टोटली डिप्राइव किया जा रहा है। इस संपत्ति में उनकी भागीदारी तो खत्म की ही जा रही है, उन्हें जमीन से भी बेदखल किया जा रहा है, मुआवजा भी अफसरों के पेट में।'[4]

सुदीप्त आदिवासियों के सांस्कृतिक विस्थापन से चिंतित है। गैर आदिवासी मध्यवर्गीय समाज आदिवासियों में होनेवाले अंधविश्वास पर उँगली उठाता है। इसके बारे में सुदीप्त कहता है, 'ये साले साइन्स और टेक्नॉलाजी की उच्च शिक्षा प्राप्त कर आधुनिक होने का दंभ पाले हुए लोग हैं और करवा रहे मुंडन - छेदन। यू नो, ये जितने गलत संस्कार हैं न जातिवाद, पुरोहिती, कर्मकांड, अंधविश्वास, दहेज सब सालों में समाया हुआ है और मॉडर्न बंबइया कल्चर का काकटेल भी।'[5]

आदिवासी विस्थापन असुरक्षा से पीड़ित है, जंगल के सिपाही, ठेकेदार सुक्खू सिंह के आदमी आदिवासी औरतों का शोषण करते हैं। पुलिस भी उन पर अन्याय-अत्याचार करती है। सरकार और पूँजीपतियों की मिलीभगत यहाँ खुलेआम लूट करती है और आदिवासी मात्र फटेहाल जीवन जीते हैं। फिलिप और उसके साथी जंगल कटाई का विरोध करते हैं। कोई चीज बाहर न जाए इसलिए नाकाबंदी करते हैं। पुलिस दमन नीति अपनाकर उन्हें गिरफ्तारी करती है। फिलिप सुदीप्त से कहता है, 'यह पूरा झारखंड अभयारण्य है सर! अभयारण्य इन सालों का और हम इनकी खुराक!'[6]

झारखंड आंदोलन के नेता माधो हंसदा आदिवासियों का आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक सभी स्तरों पर विकास करना चाहते हैं। झारखंड एक शोषित राष्ट्रीयता का सवाल है। हंसदा इसके खिलाफ आवाज उठाते हैं परंतु सरकार उन्हें समय-समय पर चुप करती है। झारखंड आंदोलन औद्योगीकरण और जनजातीय जीवन प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित पहलू है। औद्योगीकरण से वहाँ के आदिवासियों का विकास तो दूर बल्कि उनका शोषण ही होता है। आदिवासियों के लिए लड़ाई लड़नेवाले को एक तो नक्सली करार देकर उन्हें जेल में बंद कर दिया जाता है तो कभी व्यवस्था से तंग आकर वह व्यक्ति आत्महत्या करता है। आदिवासियों के लिए लड़ाई लड़ने वाले सुदीप्त को आखिर आत्महत्या करनी पड़ती है क्योंकि व्यवस्था से हिसाब माँगकर वह थक जाता है। हारकर वह दुनिया छोड़कर जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि सुदीप्त की आत्महत्या नहीं है। वह तो इस व्यवस्था द्वारा की हुई हत्या है। 'फिलिप की अस्फुट - सी चीख उछली और देखते-देखते बजरी की सड़क के उस किनारे पर भी उस सिरे से इस सिरे तक आग की लहर दौड़ गई। अब उसके दोनों किनारों पर आग धधक रही थी, जिनके

बीच देव पुरुष - सा चला आ रहा था वह, मानो भीतर की आग के ही बाहर दो किनारे गए थे - दोस्तों के दुश्मनों के। मृत्यु का भी कैसा सम्मोहन होता है, आतंक का कैसा उन्माद - यह मैंने उसी दिन जाना। इस दहन - उत्सव में पेड़- मूँगे - मोतियों से लदे दिख रहे थे। आग के सहस्त्र झरने वह निकले थे। आकाश में रंगों की भरमार हो रही थी और बेशुमार फुलझड़ियों और फहराती वैजयंती के बीच पत्ते सोने के परिंदों - से उड़ रहे थे। कुछ देर तक फिलिप अकेला - अकेला शाल के भरे पूरे पेड़ - सा चरचरा कर जलता रहा। फिर दोनों जलते किनारों में एकमेक हो गए।'[7]

निष्कर्ष :

आदिवासी यहाँ के मूल निवासी होकर भी उन्हें उपेक्षितों का जीवन जीना पड़ रहा है। उन्हें औद्योगीकरण के नाम पर जल, जमीन - जंगलों से निर्वासित किया जा रहा है। २१वीं सदी के आदिवासी उराँव, मुंडा, असुर, भील, बोंडा, कंजर आदि जनजातियों को केंद्र में रखकर लिखे गए हैं। आदिवासी जनजातियों की विपन्नता, विस्थापन, शोषण, दारिद्य, बीमारियाँ, अन्याय, अत्याचार, पराधीनता, अभाव, भूख, अमानवीय जीवन, धर्मांतरण, प्राकृतिक हानि आदि को व्यक्त करते हैं। आदिवासी जन-जीवन, संस्कृति सभ्यता, विकास तथा उसके साथ हुए धोखेबाजी का चित्रण किया गया है।

संदर्भ :

1. सं. अनिता डगोरे (डॉ. अभिषेक कुमार यादव, सूर्य के प्रदेश के साथ शुरुआती संवाद), साहित्यमालाः पूर्वोत्तर भारतीय साहित्य, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2017, पृ. 443
2. हरिराम मीणा, आदिवासी विमर्श, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर प्रथम संस्करण, 2015, पृ. 65
3. सं. गंगा सहाय मीणा, आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एंड डि. प्रा. ली. दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014. पृ. 175,
4. संजीव, पाँव तले की दूब, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, संस्करण, 2013, पृ.17
5. वही, पृ. 41-42
6. वही, पृ. 98
7. सं. राजेंद्र यादव, हंस (पत्रिका) सितंबर, 1990, अक्षर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 78

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल)
तहसील-करमाळा, जिला-सोलापुर (महाराष्ट्र) 413202

चयन प्रतिमान के निकष पर ज्ञानेंद्रपति कृत 'एकचक्रानगरी' काव्य नाटक

प्रो सदानंद भोसले (शोध निर्देशक)
रेवनसिद्ध काशिनाथ चव्हाण (पीएच. डी - शोध छात्र)

भाषा एवं साहित्य संबंधी सभी कौशलों का मूल आधार है भाषाविज्ञान। साहित्य के अध्ययनार्थ कई अध्ययन पद्धतियों को आये दिन अपनाया जा रहा है। इसमें से ही एक शैलीवैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली भी है। इसी पद्धति का आविर्भाव बीसवीं शताब्दी में हुआ। शैलीवैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली ज्ञानानुशासन की नूतन प्रणाली है। यह भाषाविज्ञान और काव्यशास्त्र की समन्वित पीठिका पर आधृत है। यह प्रणाली किसी भी साहित्यिक विधा का अपने निश्चित प्रतिमान के आधार पर सुव्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ, वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करती है। भाषा के अंग-ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, अर्थ आदि का शैलीवैज्ञानिक प्रणाली अपने शैलीवैज्ञानिक प्रतिमान चयन, विचलन, समानांतरता आदि प्रतिमान के सहायता से अध्ययन कर लेखक का रचनात्मक, भावात्मक, कौशल उद्घाटित कर पाठक को रचना का रसास्वाद कराती है।

जनमन के सजग चितेरे कवि ज्ञानेंद्रपति ने आज के समय और समाज के संवेदनतंत्र को झकझोरने वाली कविताएँ लिख कर साहित्यिक तथा पाठकजगत का ध्यान अपनी ओर खींचा है। 'शब्द लिखने के लिए ही यह कागज बना है', 'गंगातट', 'संशयात्मा', 'गंगाबीती', 'कविता-भविता' इत्यादि कविता-संग्रह के साथ-साथ 'एकचक्रानगरी' नामक काव्यनाटक का भी वे सृजन कर चुके हैं। 'एकचक्रानगरी' काव्यनाटक में कुंती, भीम, बकासुर आदि पौराणिक पात्र तो आनंदी, दुखिया, नगरशेठ जैसे काल्पनिक पात्रविन्यास के माध्यम से महाभारत के बकासुरवध प्रसंग के आधार पर कवि ने अपने समय की जनता और शासनव्यवस्था की स्थिति की अभिव्यंजना की है। न्यायपालिका, विधायिका, कार्यपालिका जनहित का मुखौटा पहन कर जनशोषण में किस प्रकार से रत हैं, उसे यह नाटक दर्शाता है। शासनतंत्र की विसंगति को दिखाते हुए यह काव्यनाटक जनता को भी अपनी जिम्मेदारी का एहसास कराता है।

'एकचक्रानगरी' इस काव्यनाटक का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन पद्धति के 'चयन' इस प्रतिमान के आधार पर विश्लेषण करने के पूर्व हमें चयन को समझना आवश्यक है। चयन को समझे बिना 'एकचक्रानगरी' काव्यनाटक का चयन तत्व के माध्यम से विश्लेषण करना असंगत है। चयन शब्द का अर्थ है 'चुनना' अर्थात कई शब्दों में से अपनी भावाभिव्यक्ति के अनुकूल किसी एक शब्द का चयन करना, जिसके माध्यम से रचना में ध्वन्यात्मकता, माधुर्य, लयात्मकता, कलात्मकता, भावात्मकता आदि का उचित समन्वय हो। साहित्य अभिव्यंजना में चयन को अत्यधिक महत्त्व है। चयन के इसी महत्त्व को अधोरेखित करते हुए सुरेश कुमार चयन को ही शैली मानते हैं। उनके

अनुसार- 'अभिव्यक्ति के प्रसंग तथा उद्देश्य के अनुरूप उपलब्ध भाषागत विकल्पों में से उपयुक्त का चयन ही शैली का मूल पहलू है।'[1] चयन भाषा के ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, अर्थ आदि स्तर पर होता है। भाषा अभिव्यंजना के सौष्ठव के लिए रचनाकार शब्दों के चयन को अत्यंत महत्व देते हैं। शब्दों का प्रभावी चयन रचना को और सुंदर भाव एवं विचाराभिव्यक्ति पूर्ण बनाता है। रचनाकार का शब्द चयन स्वयं संप्रेषण के आधार पर किया जाता है और ऐसा चयन ही रचना को संप्रेषणीय बनाता है। रचना को संप्रेषणीय बनाने हेतु रचनाकार शब्द चयन पर अधिक ध्यान देता है, और यह उसके रचनाधर्म को प्रभावी बनाता है।

रचनाकार की शैली का मुख्य आधार भी उसके द्वारा चयनित शब्द सौष्ठव है। रचनाकार अपने चरित्र (शील) के अनुरूप शब्दों का चयन रचना द्वारा प्रस्तुत करता है और उसके इस विशिष्ट चयन से एक विशिष्ट रचना शैली का निर्माण होता है। शैलीविज्ञान में रचनाकार द्वारा अभिव्यक्त विशिष्ट भाषा का ही अध्ययन किया जाता है। तात्पर्य यह कि शब्द चयन में रचनाकार संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, शब्दशक्ति, कारक, मुहावरे, कहावतें, लोकोक्ति, बिंब, प्रतीक, मिथक आदि का चयन करता है। अभिव्यंजना के स्तर पर रचनाकार की भावानुभूति एवं भाषा ज्ञान के आधार पर होता है। 'एकचक्रानगरी' इस रचना में रचनाकार ने इसी चयन प्रतिमान का आधार अपनी अभिव्यंजना के लिए किया है।

ध्वनि चयन :

ध्वनि से तात्पर्य है साहित्यिक ध्वनि। प्रत्येक रचनाकार विशेष कर कवि अपनी कविता में नाद सौंदर्य की व्यंजना के लिए विशिष्ट ध्वनि संपन्न शब्दों का चयन करता है। ज्ञानेंद्रपति ने भी अपने काव्यनाटक में ध्वनि चयन किया है, जिसमें नादसौंदर्य अभिव्यंजित हुआ है। जैसे-

कुंतीः- 'वह आयुधागार / जो जब जलने लगा तो जिसके महाप्रकाश में /
पुरोचन और दुर्योधन के / लोलुप चेहरे ही नहीं दिखे / शांत- संयत
निर्वेद - तटस्थ चेहरे भी नंगे हो गये।'[2]

प्रस्तुत पद रचना के वाक्य में अल्पप्राण वाली 'ज' ध्वनि की सफल व्यजंना हुई है, जो अभिव्यंजना द्वारा व्यवस्था में व्याप्त धूर्त चेहरों को उजागर करती है।

शब्द चयन :

साहित्य सर्जना में शब्दों का महत्त्व असाधारण है। शब्द रचनात्मक भाषा की सर्वोत्तम इकाई है। प्रत्येक रचनाकार शब्द-चयन सोद्देश्य करता है। चयन में शब्द चयन को अत्यधिक महत्त्व है। शब्दों का संयोजन भावों को समर्थ एवं प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्ति देता है। शब्द चयन के कई आधार हैं। जैसे -

प्रसंगानुरूप शब्द चयनः

ज्ञानेंद्रपति ने प्रस्तुत रचना में प्रसंगानुरूप शब्द चयन किया है। परिणामतः रचना का

उद्देश्य वे सफलता से संप्रेषित करने में सिद्ध हुए हैं। इसको कई उदाहरणों से स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे -

ब्राम्हणः-'आतिथियों का स्वागत है / यह दीन नगरी /
यह दरिद्र घर / अपना बनाते हैं उन्हें।'[3]

यहाँ कवि द्वारा चयनित 'दीन व दरिद्र' शब्दों का प्रयोग 'एकचक्रानगरी' एवं उसी नगरी के नागरिकों की दशा दर्शाने हेतु कवि ने प्रसंगानुरूप सोद्देश्य चयन किया है। नगरी के समान ही नागरिकों की दयनीयता, निर्धनता लक्षित होती है।

स्त्रीः-'जो यह कह रहा है उसे वाणी नहीं कह सकती
जिसे शब्द नहीं कह सकते उसी कथा को
इसका गूँगापन, चीख-चीखकर कहता है / तुम सुनते नहीं।'[4]

प्रस्तुत वाक्य में 'गूँगापन', 'चीख-चीखकर कहना' आदि शब्द आज के विसंगत दौर के प्रसंगानुरूप चयनित हो गये हैं। अभिव्यंजना द्वारा प्रस्तुत पात्रों की मनोदशा की प्रस्तुति हेतु रचनाकार शब्दचयन करता है और उसका प्रभाव रचना के सौष्ठव एवं पाठकों पर दृष्टिगोचर होता है।

विरोधमूलक शब्द चयन :

कभी-कभी रचनाकार विरोधमूलक शब्द चयन कर अभीष्ट अर्थ को उद्घाटित करता है। इस तरह के शब्दचयन से अभिव्यंजना में चमत्कार भी उत्पन्न किया जाता है। पाठकों का ध्यान वस्तु उद्देश्य की ओर आकर्षित भी किया जाता है। जैसे -

ब्राम्हणः-'हाँ, देवि! एकचक्रानगरी के नागरिक भूल गये / यह /
अंधकार उनके बाहर ही नहीं / भीतर भी छा गया।'[5]

इस संवाद में 'बाहर-भीतर' विरोधमूलक शब्दों से नगरजनों की स्थिति ज्ञात होती है। 'एकचक्रानगरी' के समाजमन तथा लोगों के मन में भी यह अज्ञान है कि उनकी दशा में सुधार नहीं हो सकता है। मानो उनका आत्मविश्वास ही खोया है। इसी भावदशा की अभिव्यंजना हेतु कवि द्वारा 'बाहर-भीतर' शब्दों का चयन हुआ है।

अर्थ की व्यंजना के अनुरूप शब्द चयन :

रचनाकार द्वारा अभिव्यंजित शब्दों का अर्थ- दर्शन प्रभाव की दृष्टि महत्त्व रखता है। रचनाकार अपनी रचना द्वारा अपेक्षित उद्देश्य पाठकों तक सम्प्रेषित करने हेतु अर्थ-व्यंजना प्रस्तुत करता है। ज्ञानेंद्रपति ने प्रसंग के अनुरूप व्यंजना के अनुसार भी शब्द चयन इस काव्य नाटक में किया है। प्रसंग में देश-काल की स्थिति बहुत महत्त्व रखती है। इसी देश-काल को लक्षित करके शब्दों द्वारा लक्षित होने वाले अर्थ की व्यंजना रचनाकार को अपेक्षित होती है। उसकी सिद्धि हेतु रचनाकार अर्थ-व्यंजना के अनुरूप शब्द चयन करता है। जैसे-

कुंतीः-'चिंता न करें / मेरा पुत्र भोजन लेकर जायेगा / भोजन बनकर नहीं'[6]

इस वाक्यांश में 'भोजन' इस शब्द की अर्थ की दूरगामी व्यंजना हुई है। अब तक

नगरी में से जो भी व्यक्ति बकासुर का भोजन लेकर जाता था वह भी बकासुर का भोजन बन जाता था। परन्तु अब भीम के भोजन लेकर जाने से आगामी दिनों में कोई भी मनुष्य बकासुर का भोजन नहीं होगा क्योंकि इसी समस्या से मुक्ति दिलाने हेतु भीम का बकासुर का भोजन लेकर जाने का प्रयोजन है।

इसके अलावा 'एकचक्रानगरी' नाटक में तत्सम-तदभव शब्द, संज्ञा, क्रिया, विशेषण, सर्वनाम आदि का भी चयन हुआ है। प्रभावी काव्यसृजन हेतु रचनाकार ने उक्त चयन को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान की है। जैसे -

तत्सम शब्द :- आशीष, अन्न, जिह्वा, पुत्र, मनुष्य, धैर्य, बधिर, श्वास, स्वर्ण, हृदय आदि।

उदा :- सफल होओ। हमारे आशीष साथ हैं।

तदभव शब्द :- आग, आलस्य, दाँत, नींद, नंगा, भीख तिनका, नाखून, शाप आदि।

उदा :- जहाँ धुआँ होता है, वहाँ आग होती है भीम, इस नगरी में-

संज्ञा चयन :

किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान अथवा गुण के नाम को सूचित करने वाले शब्द संज्ञा कहलाते हैं। रचनागत भाव, विचार, संकेत, निर्देश आदि सूचक संज्ञाओं की अभिव्यक्ति संज्ञा चयन का मूल आधार होता है। जैसे -

भीमः-'किसी अमानुषिक अत्याचार से /

बिंधी हुई यह नगरी / हमारी ही तरह।'[7]

इस वाक्य में भाववाचक संज्ञा शब्द 'अमानुषिक' का चयन हुआ है।

सर्वनाम चयन : वे शब्द जो संज्ञा शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं, सर्वनाम कहलाते हैं। जैसे-

भीमः- 'मैं कुछ नहीं समझ पा रहा / तुम कौन हो? / यह गूँगा युवक कौन है?'[8]

इस वाक्य में पुरुषवाचक सर्वनाम 'मैं, तुम' तथा निश्चयवाचक सर्वनाम 'यह' का प्रयोजन हुआ है। और एक उदाहरण-

ब्राम्हणः- 'अपराधी हम भी हैं, देवि / जो योग्य शासक नहीं चुन सके।'[9]

इस वाक्य में उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम 'हम' के चयन द्वारा यह संकेत है, जो अन्यायी शासनव्यवस्था है, उसी के लिए हम यानी 'एकचक्रानगरी' के सभी नगरवासी जिम्मेदार हैं। तथा कवि पाठकों को भी संकेत रूप में सूचित करता है कि आप भी योग्य शासक को ही चुनें जो लोककल्याणकारी हो।

क्रिया चयन : कवि ने कहीं-कहीं क्रिया चयन की भी व्यंजना की है। जैसे-

बकासुरः-'आप के सेवक बकासुर ने / आपके आदेश से/
प्रजा के सुख के लिए कुछ उठा नहीं रखा है/ प्रजा खाती-पीती है निर्विघ्न सोती है/ नगरी

में एक ऊँची आवाज तक नहीं सुन पड़ती /
समय पर कर चुकाती है, संपन्न है / आपको धन्यवाद देती है प्रजा।'[10]

इस वाक्य में 'उठाना', 'खाना-पीना', 'सोना', 'चुकाना', 'सुनना', 'देना' आदि क्रियाओं की एक निरंतरता है, जो समस्त नगरजनों की दशा और दिशा की ओर इंगित है।

विशेषण चयन : संज्ञा एवं सर्वनाम की विशेषता बतलाने वाले शब्द को विशेषण कहा जाता है। विशेषण से रचनाकार की अभिव्यंजना में सौंदर्य की वृद्धि होती है। रचनाकार की इसी रचनात्मक भाषा का विश्लेषण विवेचन शैलीविज्ञान के अध्ययन का प्रमुख आधार है। 'एकचक्रानगरी' काव्यनाटक में कई विशेषण कवि ने चुने हैं।

ऐन्द्रिक अनुभव पर आधारित विशेषण :

जन्मना प्रकृति ने सभी जीवों को सर्वांग प्रदान किए हैं। मानवेतर जीव उसकी रचनात्मक अभिव्यक्ति करने में अक्षम हैं। चूँकि मानव को जो प्रज्ञा प्राप्त हुई है, वह विशेष है। इसी ऐन्द्रिक अनुभूति की अभिव्यक्ति हेतु रचनाकार विशेषणों का चयन रचना द्वारा प्रस्तुत करता है और यही अनुभूति भावक को संप्रेषित होती है। प्रस्तुत रचना में इसके कई उदाहरण दिखाई देते हैं। जैसे-

रंगवाची विशेषण :- मलिन मुख नगर

स्पर्शवाची विशेषण :- वाष्पाकुल हृदय, माता की सजल आँखें

आकारवाची विशेषण :- मोटी भैंस, गाढा अंधकार, असीम बल, गहरी उदासी

संज्ञासाधित विशेषण :- पुष्ट भैंसे, मनुष्यभक्षी बकासुर, सूनी सडकें

मुहावरा, लोकोक्ति, सूक्ति चयन :

लोकतत्व को प्रस्तुत करने हेतु रचनाकार इस चयन का आधार लेता है। शैली के अनुसार मुहावरा, लोकोक्ति, सूक्ति के चयन की विशेषता उनके संदभार्नुकूल होती है। 'एकचक्रानगरी' में कवि ज्ञानेंद्रपति द्वारा मुहावरा, सूक्तियों का चयन संदर्भ के अनुकूल हुआ है। जैसे-

मुहावरा चयन :- दम घुटना, सिर झुकना आदि।

नगरदेवीः-'अपने द्वार पर ठिठकी हुई, / नहीं जानती / तुमसे क्या कहूँ/

मेरी आँखों के सामने प्रत्येक दिन / मेरी एक संतान /

शीश झुकाये मृत्यु का आखेट होती है...[11]

यहाँ पर 'सिर झुकाना' मुहावरे का सुंदर प्रयोग इस वाक्य रचना में हुआ है। 'एकचक्रानगरी' में रोज एक व्यक्ति मनुष्यभक्षी बकासुर के आगे आत्मसमर्पण कर देता है। इस व्यथा को इस मुहावरे के माध्यम से व्यक्त किया है।

लोकोक्ति चयन : कवि ने भावभिव्यक्ति को प्रभावी बनाने के लिए लोकोक्ति का भी सफल चयन किया है। चयनित लोकोक्ति के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

'अंधे को क्या चाहिए दो आँखें।'[12]

'नाग का मित्र साँप।'[13]

'रक्त लगे दाँत।'[14]

'जीने की सुविधा के हाथों छला जाना।'[15]

जैसे -

नागरिक :- 'आज तो नगरशेठ के यहां की बारी थी न! /

लेकिन यहाँ तो शांति है कुछ हुआ ही न हो जैसे /

क्या होगा? नगरशेठ के घर से कोई थोड़ी जायेगा /

किसी को खरीद लेगा धन से /

और यह तो नगर-प्रमुख का मित्र भी है / नाग का मित्र साँप'

सूक्ति चयन :

कवि द्वारा सूक्ति चयन बहुतायत से हुआ है। बहुत थोड़े शब्दों में बहुत कहने हेतु रचनाकार सूक्तियों का आधार अपनी रचनाओं की अभिव्यक्ति के लिए लेता है। इससे रचनाधर्म भी विशिष्ट बन जाता है। जैसे-

बकासुर :-'चोरी एक दिन पकड़ी जाती है / अपराध का जीवन छोटा होता है/

विधानों के हाथ लम्बे होते हैं / न्याय से बचा नहीं जा सकता / मानते हो?'[16]

रूप चयन : प्रत्येक रचनाकार की रचनागत प्रस्तुत भाषा की रूप-संरचना पृथक होती है। रचना में मौलिकता लाने हेतु रूप-चयन का आधार रचनाकार का रचनात्मक स्वभाव होता है। शब्द जब वाक्य में प्रयुक्त होता है तो उसे रूप या पद की संज्ञा दी जाती है। कवि ज्ञानेंद्रपति द्वारा रूप चयन की सफल अभिव्यक्ति हुई है। जैसे-

कुंतीः-'बेटे मैं चाहती हूँ बकासुर के लिए भोजन लेकर

ब्राम्हण की जगह तुम जाओ।'[17]

इस वाक्य में आज्ञारूप में 'तुम' इस पद का चयन आत्मीयता के लिए हुआ है। आत्मीयता यह पद एक ऐसे माँ और बेटे के प्यार को दर्शाता है कि माँ को अपने बेटे पर पूरा विश्वास है।

बकासुरः-'लेकिन स्वामी../ उत्सव के दिन /

उस दुस्साहसी का-गण, हाँ गण का /

विद्रोह याद आ गया / दुर्जनता संक्रामक होती है।'[18]

इस वाक्य में भावात्मक संज्ञारूप में 'ता' प्रत्यय के योग बने दुर्जनता का चयन है।

वाक्य चयन : भाषा द्वारा प्रोक्ति के लिए वाक्यों का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक रचनाकार अपनी प्रोक्ति पूरक वाक्यों का मौलिक प्रयोग प्रस्तुत करता है। 'एकचक्रानगरी' काव्यनाटक में वाक्य चयन की योजना भी अत्यंत सार्थक हुई है। वाक्य चयन के प्रकार इस प्रकार से हैं -

रचना के आधार पर वाक्य चयन :

कुंती और भीमः- 'देवि! हमारे प्रणाम स्वीकार करो।'[19] यहाँ साभिप्राय सरल वाक्य

का चयन हुआ है।

आनंदीः-'वाचाल हूँ न / नगर का त्रास हूँ / जब-तब गा उठता हूँ'[20]

यहाँ मिश्र वाक्य चयन है।

अर्थ-भेद के आधार पर वाक्य चयन :

नगरशेठः-'अरे ! दुखिया बाबा को खिलाओ /

थाल ले आओ सारे व्यंजनों से भरकर/

दुखिया बाबा की सेवा करो, प्रसन्न करो इन्हें।'[21]

यह वाक्य आज्ञार्थक तथा विस्मयबोधक वाक्य है।

दुखियाः-'तो तुम मुझे मनुष्य मानते हो !

अरे वाह ! नगरशेठ मुझे मनुष्य मान रहा है ! जिसके कुत्ते मनुष्यों से अच्छा खाते है।'[22]

यहां विस्मयबोधक वाक्य का चयन है। विस्मयबोधक वाक्य से यह द्योतित होता है कि धनवान के यहाँ मनुष्य की नहीं पशुओं की कद्र ज्यादा होती है।

नागरिकः-'यह क्या है ? कौन है ?/ क्या कर रहे हो ? क्या कर रहे हो ?/

अरे आनंदी है ! मदिरा पीकर फिर ईश्वर बचाये !/ पता नहीं क्या होगा ?'[23]

यह वाक्य विस्मयबोधक, प्रश्नवाचक, संदेहसूचक है। इसमें कवि ने कई भावों को भर दिया है।

अर्थ चयन : अर्थ चयन में रचनाकार सामान्य अर्थ व्यक्त करने के लिए भी अभिव्यक्ति करता है तो गहरे स्तर को भी व्यक्त करने के लिए भी चयन करता है। अर्थ चयन में रचनाकार का रचनागत उद्देश्य महत्त्व रखता है। अर्थ चयन के कुछ उदाहरण इस प्रकार से -

अभिधार्थ अर्थ चयनः

अभिधा शब्द शक्ति में लोकप्रचलित, रूढ अर्थ विद्यमान रहता है। सीधे-सरल सपाट बयान द्वारा संप्रेषण के लिए रचनाकार अभिधार्थ अर्थ चयन करता है। जैसे-

भीमः-'अतिथि हैं हम / दूर से आये / एकचक्रानगरी में आश्रय चाहते हैं /

यहाँ का अन्न-जल / शोक-संताप / हमसे बाँटें'[24]

यहाँ पर बडे ही सीधे-सरल शब्दों में भीम ने अपना परिचय तथा एकचक्रानगरी में आने का प्रयोजन बता दिया है, जिसकी प्रतीति बिना किसी संकेत ग्रह में बाधा पहुँचे हो जाती है।

व्यंजनार्थ अर्थ चयन :

व्यंजना की सत्ता शब्द और अर्थ दोनों में संभव होती है। श्रेष्ठ काव्य रचना का मूलाधार है व्यंजनार्थ अर्थ चयन। व्यंजनार्थ अर्थ चयन द्वारा रचना की सर्वोत्तम प्रस्तुति की जाती है। इसे सर्वोत्तम साहित्यिक ध्वनि कहते हैं। यह शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना द्वारा प्रस्तुत होती है। व्यंजनार्थ अर्थ चयन के कुछ उदाहरण इस प्रकार से हैं-

भीमः-'किसी अमानुषिक अत्याचार से / बिंधी हुई है यह नगरी /
हमारी ही तरह / हमारी ही तरह यह नगरी / किसी लोलुप पशु का शिकार है।'[25]

यहाँ पर अर्थ की व्यंजना शब्द पर आधारित न होकर लोलुप पशु इस शब्द के अर्थ द्वारा ध्वनित होती है। यहाँ पर कवि द्वारा आर्थी व्यंजना का चयन है।

ब्राम्हणः-'नगरी के बाहर मंडराता गूँगा गण / हमसे अधिक अभिव्यक्तिक्षम /
हैं ! हमसे अधिक जीवित !'[26]

यहां शाब्दी व्यंजना चयन है। जिसमें व्यंजना का सौंदर्य मुख्य रूप से 'अभिव्यक्तिक्षम', 'जीवित' इन्हीं शब्दों पर आश्रित है।

निष्कर्ष रूप में यह स्पष्ट होता है कि उपरोक्त शैलीवैज्ञानिक चयन इस प्रतिमान के आधार पर विश्लेषित ज्ञानेंद्रपति कृत 'एकचक्रानगरी' इस काव्यनाटक में कवि ने अपनी भावभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त भाषिक अंगों का सार्थक चयन किया है, जो विषमताधारित शासनव्यवस्था को प्रखरता से उजागर कर पाठकीय मन को यह भी सूचित करता है कि आज लोकतंत्र के दौर में अयोग्य शासन का चुनाव करते हैं तो 'अंधेर नगरी चौपट राजा' की तरह हमारी स्थिति बन जायेगी। इसलिए लोककल्याणकारी, जनता का हित साधने वाली शासनव्यवस्था का चुनाव करने में किसी भी प्रकार की गलती न करें, किसी भी लोभ लालच में न पड़ कर लोकाभिमुख शासन को चुनें। रचनाकार ने अपनी अभिव्यंजना को चयन प्रतिमान के आधार से प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है, जिससे रचनाकार की रचनागत वस्तु का स्वाभाविक संप्रेषण होता है।

संदर्भ :

1. सुरेश कुमार, 'शैलीविज्ञान' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1977, पृष्ठ-70
2. ज्ञानेंद्रपति, 'एकचक्रानगरी' सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2021, पृष्ठ-12
3. वही, पृष्ठ-32, 4. वही, पृष्ठ-16, 5.वही, पृष्ठ-73, 6.वही, पृष्ठ-75, 7.वही, पृष्ठ-18, 8. वही, पृष्ठ 16, 9.वही, पृष्ठ-72, 10.वही, पृष्ठ-50,11.वही, पृष्ठ-18, 12.ज्ञानेंद्रपति, पृष्ठ-36, 13.वही, पृष्ठ-42, 14.वही, पृष्ठ-72, 15.वही, पृष्ठ-73, 16.वही, पृष्ठ-53, 17.वही, पृष्ठ-76, 18.वही, पृष्ठ-55, 19.वही, पृष्ठ-16, 20.वही, पृष्ठ-25, 21.वही, पृष्ठ-39-40, 22.वही, पृष्ठ-38, 23.वही, पृष्ठ-21, 24.वही, पृष्ठ-32, 25.वही, पृष्ठ-18-19, 26.वही, पृष्ठ-31

हिंदी विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे

आसमां में सुराख की एक कोशिश करता उपन्यास : उत्कोच

श्यामसुंदर पाण्डेय

'वेतन तो सूखी रोटी की तरह होता है, जिससे किसी तरह पेट भरा जा सकता है। जबकि रिश्वत घी है, जिससे खाने में स्वाद आ जाता है।'[1]

'राशन कार्ड, बिजली, पानी, आय, आवास, और जाति प्रमाण पत्र, परमिट, लाइसेंस, रजिस्ट्री से लेकर स्कॉलरशिप, वृद्धावस्था पेंशन आदि कार्यों के लिए, जिस दफ्तर में भी जाओ अधिकांश डीलिंग क्लर्क या अफसर उच्च जातियों के ही मिलते हैं।'[2]

'पैसे से वस्तुएँ खरीदी जा सकती हैं, सुख नहीं। सुख का स्रोत तो व्यक्ति के अन्दर ही होता है, उसे वहीं ढूँढना पड़ता है।'[3]

पिछले कुछ वर्षों से हर तरफ भ्रष्टाचार के विरुद्ध जिस प्रकार की चुप्पी छाई हुई है, उसे देखकर कई बार लगता है कि भ्रष्टाचार अब हमारे समाज में कोई मुद्दा ही नहीं रह गया है। या तो सभी सदाचारी हो गये हैं या सबने भ्रष्टाचार को अपनी व्यवस्था का एक अंग मानते हुए उसे स्वीकार कर लिया है। साहित्य की कौन कहे पिछले कुछ वर्षों से तो अब संसद और विधानसभाओं में भी शायद ही कभी इस पर बहस होने की बात अखबारों में मिलती है। यदि कभी कहीं से आवाज उठती भी है तो उसकी प्रतिक्रिया में शर्मिंदगी की जगह मेरे भ्रष्टाचार तुम्हारे भ्रष्टाचार से बहुत कम हैं अथवा तुम तो मेरे घोटाले से बड़े घोटाले किये हो, इसलिए तुम्हें बोलने का कोई अधिकार नहीं है, जैसी बातें ही सुनने को मिलती हैं। ऐसे समय में सरकारी कार्यालयों में व्याप्त रिश्वतखोरी का जोरदार विरोध करते हुए एक अति उत्साही, त्यागी, परम संतोषी और अपने सिद्धांतों पर किसी चट्टान की तरह अटल रहने वाले पात्र के नायकत्व में जयप्रकाश कर्दम ने जिस 'उत्कोच' उपन्यास की सर्जना की है, वह आसमां में सुराख करने की एक कोशिश कही जा सकती है। मात्र एक सौ पैतीस पृष्ठ का यह उपन्यास सरकारी कार्यालयों में व्याप्त रिश्वतखोरी और जातिवादी व्यवस्थाओं पर करारी चोट करता है। यद्यपि कि लेखक अपनी विचारधारा के अनुसार समाज में व्याप्त सम्पूर्ण रिश्वतखोरी और अव्यवस्थाओं का सम्बन्ध केवल सवर्ण कर्मचारियों से जोड़ने का प्रयास किया है लेकिन यही इस उपन्यास की सीमा भी बन जाती है और कथा नायक के साथ लेखक की विस्तृत सोच किसी निहायत संकरी गली में प्रवेश कर जाती जो लेखक की मानसिकता पर एक प्रश्नचिन्ह लगा देती है। उपन्यास के नायक मनोहर के अनुसार 'रिश्वत एक भ्रष्टाचार है, जो आर्थिक असमानता का पोषण करता है। उसी तरह जातिवाद भी सामाजिक भ्रष्टाचार है, जो सामाजिक असमानता,ऊँच-नीच और अस्पृश्यता का पोषण करता है। रिश्वत और जातिवाद के बीच गहरा सम्बन्ध है। यहाँ लेखक का मानना है कि 'सभी बड़े सरकारी पदों पर सवर्ण बैठे हैं। इसलिए जनता के संपर्क वाले पदों पर या कहें कि रिश्वत

लेने वाले पदों पर वे सवर्णों की ही नियुक्तियाँ करते हैं। 'ऐसे सीटों पर प्रायः गैर दलित लोग मिलेंगे और उनमें भी अधिकांश उच्चजातीय ही।' मजे की बात यह है कि इसी बात को लेकर यहाँ लेखक विरोधाभासों का शिकार होता है। एक तरफ उपन्यास का नायक मनोहर भ्रष्टाचार का विरोध करता है, वहीं उसकी पत्नी उसकी इमानदारी को अपनी गरीबी का कारण मानती है और रिश्वत न लेने को उसका निकम्मापन साबित करती है। मनोहर की पत्नी श्यामा केवल उससे इसलिए दूर हो जाती है कि उसका पति रिश्वत के पैसे लेकर उसे अनंत सुख नही दे पाता। श्यामा को शान-शौकत की जिन्दगी जीने की आदत है क्योंकि वह एक अधिकारी की बेटी है, जो रिश्वत लेकर ही अपनी संतानों को अतिरिक्त सुख - सुविधायें उपलब्ध कराता था। शादी के पहले ही श्यामा के पिता उससे कहते हैं-'लड़का शिक्षित, समझदार, और अम्बेडकराइट है। बिक्रीकर विभाग में नौकरी करता है।...बिक्रीकर विभाग राज्य का सबसे महत्त्वपूर्ण मलाईदार विभाग है।' कहने का अर्थ स्पष्ट है कि वह दलित वर्ग से सम्बद्ध होकर भी मलाई का समर्थन करता है। उसके लिए रिश्वतखोरी कोई बुराई नहीं बल्कि एक अच्छाई है और उसी के चलते वह अपनी बेटी का विवाह मनोहर से करता है। ऐसे में लेखक द्वारा अपने एक नेक और उत्साही पात्र मनोहर को, जो रिश्वतखोरी के विरुद्ध सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधित्त्व कर सकता था, उसे जातिवाद के वितंडे में डालकर उसके व्यक्तित्त्व को एक निश्चित सीमा में बाँध दिया गया है। यद्यपि कि लेखक द्वारा रिश्वत का कारण सवर्ण कर्मचारियों को सिद्ध करने के लिए अनेकानेक तर्क दिए गये हैं। संभव है कि उनमें से कुछ सही भी हों, कुछ लेखक के अपने अनुभव हों लेकिन सच्चाई तो यह है कि रिश्वतखोरी से त्रस्त पूरा समाज है, कोई वर्ग विशेष नहीं। भ्रष्टाचार से सवर्णों का लाभ है और केवल गैर सवर्णों का ही नुकसान है, यह कहना कम से कम २१ वीं सदी के पाठक के गले उतरने वाली बात नहीं है क्योंकि भ्रष्टाचार में संलिप्तता के कारण ही आज दलित वर्ग के भी तमाम कर्मचारी और राजनेता जेल की सलाखों के पीछे हैं। भ्रष्टाचारी अधिकारी उस आतंकवादी की तरह ही है जो अपने बम विस्फोट से उन सबकी हत्या करता है, जो उसके घेरे में आ जाते हैं। उसका उद्देश्य सिर्फ समाज में एक दहशत उत्पन्न करना है। ठीक उसी तरह कोई भी भ्रष्ट अधिकारी रिश्वत लेते समय धर्म और जाति पर ध्यान नहीं देता। उसे पैसा प्यारा होता है, उसके लिए कोई सवर्ण या गैर सवर्ण नहीं होता है।

जातिवाद, आरक्षण और इस प्रकार के मुद्दों को लेकर हमारे सरकारी कार्यालयों में कर्मचारी अपना काम बंद कर जिस प्रकार की निरर्थक बहस किया करते हैं, लेखक ने उसका यथार्थ दृश्य उपस्थित किया है। भ्रष्टाचारियों के समूह में एक ईमानदार कर्मचारी को कितने व्यंग्य बाणों से बिंधना पड़ता है और उसे किन-किन दबावों से गुजरना पड़ता है, किन-किन स्तरों पर उसके साहस की परीक्षा ली जाती है, इन सबसे गुजरता हुआ मनोहर का चरित्र कुंदन की तरह दीप्तिमान हो उठता है। वह जिस दृढ़ता के साथ घर और बाहर, आंतरिक और वा' दोनों स्तरों पर इन सबसे जूझता हुआ एक अटल चट्टान

की तरह अपने सिद्धांतों पर कायम रहता है, संभवतः वह लेखक के दृढ़ निश्चय का परिचायक है। स्वाभाविक है कि आज के परिवेश में ऐसे व्यक्ति को घर और बाहर दोनों स्तरों पर जूझना पड़ता है। जो कर्मचारी ईमानदारी से काम करता है, उसे पिछड़ा हुआ माना जाने लगा है। इसलिए हर तरफ 'स्मार्ट' व्यक्ति का सम्मान अधिक है और आज सर्वाधिक 'स्मार्ट' वही है जो दूसरों को आसानी से ठग सके। ऐसे में मनोहर अपने सहयोगियों के बीच बुद्धू समझा जाने लगा है। एक तरफ उसका सहकर्मी सुन्दरलाल उससे कहता है 'आदर्श की दुनिया से बाहर आ जाओ तुम भी और जिन्दगी की सच्चाई को अपना लो।' तो दूसरी तरफ उसकी पत्नी उससे कहती है-'जब पूरे देश में रिश्वत लेना-देना संस्कृति सी बन गई है और सभी लोग बिना किसी संकोच के रिश्वत ले-दे रहे हैं, तब तुम क्यों आदर्शवादी बन बैठे हो?' इतना ही नहीं जब वह अपने पति के ही सहकर्मियों के घरों में अकूत संपत्ति देखती है तो उसे अपने पति पर कोफ़्त होती है। उसे लगता है ये 'कौन सी दुनिया का जीव है।' उसके कार्यालय में भी 'नियम विरुद्ध कार्य करा पाने वाले लोग उसे पसंद नहीं करते थे। अधिकारियों के लिए भी वह सुविधाजनक नहीं था।' स्पष्ट है कि मनोहर को उसकी पत्नी से लेकर उसके साथ काम करने वाले कर्मचारी तक सभी हिकारत की नजरों से देखते हैं फिर भी उसमें तनिक बदलाव नहीं आता और सबको माकूल जवाब देता हुआ वह अपने मिशन 'रिश्वत बंदी' में लगा हुआ है। उसे लगता है कि 'भ्रष्टाचार का विरोध करके, उसे रोककर ही हम अपने बच्चों के भविष्य की सुरक्षा कर सकेंगे।' उसके माध्यम से लेखक ने समाज को यह सन्देश देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है कि एक स्वस्थ समाज की निर्मिति के लिए इस भ्रष्टाचार रूपी कोढ़ को हर स्तर पर समाप्त करना होगा और कल के भविष्य की तैयारी आज से ही करनी होगी।

उपन्यास का प्रारंभ अकेलेपन की आग में सुलग रहे मनोहर की चिंता और उसकी पत्नी श्यामा की मृत्यु की सूचना के साथ दुखद वातावरण में होता है। सामान्य रूप से छोटे कस्बों या गाँवों में किसी की मृत्यु पर न केवल परिवार बल्कि आस-पास के लोग भी दुखी होते हैं। उस दुःख में सब शामिल होते हैं और हर संभव मदद करते हैं। इस प्रकार की सभी बातें यहाँ यथार्थता के साथ चित्रित की गई हैं। माँ के शरीर को कपड़े में लिपटा देखकर और 'माँ दवा कराने जा रही है' के बहाने सुन कर अबोध बेटी सुजाता का पूछना कि 'वहाँ से कब आयेगी मम्मी?' जैसे दृश्य अत्यंत कारुणिक बन पड़े हैं। लेखक द्वारा यहाँ मृत्यु के बाद की सामाजिक परम्पराओं को भी यथावत वर्णित किया गया है। जो क्षेत्रीय परम्पराओं से भी पाठक का परिचय कराती हैं।

उपन्यास की कथाभूमि हमारे सरकारी कार्यालय एवं वहाँ के कर्मचारियों की कार्यपद्धति है। एक सरकारी कार्यालय का सम्पूर्ण परिवेश दृश्यमान हो उठा है इस उपन्यास में। कार्यालय में किसी सामान्य और जिम्मेदार कर्मचारी को छुट्टी लेने में किन-किन बाधाओं से गुजरना पड़ता है इस तरफ भी लेखक की दृष्टि गई है। उपन्यास

का मध्य इन कर्मचारियों की दैनिक बातचीत और उनकी मानसिकता पर केन्द्रित है। यहाँ अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक कुछ कर्मचारी और अधिकारी भी मिलते हैं तो वहीं अपने कर्तव्यों से दूर सिर्फ अधिकारों और लाभों की बात करते कर्मचारियों की कार्यशैली और संवाद शैली का भी जीवंत चित्रण किया गया है। सच्चाई और इमानदारी के मार्ग पर चलते हुए व्यक्ति को कितनी परेशानियों से गुजरना पड़ता है, कितने लोगों द्वारा यह मार्ग छोड़ कर भ्रष्टाचार का मार्ग अपनाने की सलाह दी जाती है, इन सभी पक्षों को लेखक ने बड़ी इमानदारी के साथ अभिव्यक्त किया है। वहीं लेखक द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया है कि 'पैसे से वस्तुएं खरीदी जा सकती हैं, सुख नहीं। सुख का स्रोत तो व्यक्ति के अन्दर ही होता है, उसे वह वहीं ढूँढना पड़ता है। अपने अन्दर खुशी ढूँढने वाला व्यक्ति बिना पैसों के भी सुखी रह सकता है।'

सामान्यतः लगभग सभी कार्यालयों में कर्मचारियों के दो वर्ग होते हैं। एक, वह जो अपने बड़े अधिकारियों के डर से कुछ काम तो करते हैं लेकिन दूसरा वर्ग वह, जो बिलकुल निश्चिंत होता है। न तो उन्हें काम की चिंता होती है और न ही बड़े अधिकारियों के नाराजगी की। 'जो होगा देखा जाएगा। हमने बहुत सारे कमिश्नर देखे हैं।' ऐसे लोग दुराग्रहियों को ही अपना आदर्श मानते हैं। नौकरी से सस्पेंड होना भी इनके लिए बहादुरी की बात होती है। 'जो लोग सस्पेंड हुए थे, वे सभी कोर्ट चले गये। वहाँ से जीतकर बहाल हो गये और मजे से नौकरी कर रहे हैं। ऊपर से उन्हें सस्पेंशन अवधि का मोटा एरियर मिला सो अलग।' ऐसी बातों के माध्यम से लेखक हमारी सरकार की लचर व्यवस्था की तरफ भी संकेत करता है जहाँ अधिकतर मुकदमों में सरकार ही हारती है और कर्मचारी की जीत होती है। इसे कर्मचारी या किसी गरीब की जीत भले कहा जाए लेकिन इसका एक दूसरा पक्ष भी है जिसे कामचोरों और कानूनबाजों की जीत भी कहा जा सकता है। निश्चित ही ऐसी घटनाएं समाज में एक वर्ग विशेष को बढ़ावा देती हैं जो अपने उत्तरदायित्वों की जगह केवल अपने लाभ की पतली गलियाँ देखते हैं। इन सबके माध्यम से लेखक द्वारा इस प्रकार के अनेकानेक दृश्य इस उपन्यास में चित्रित किये गये हैं जो हमारी आँखों के समक्ष दृश्यमान हो उठते हैं। श्यामा और मनोहर के बीच भ्रष्टाचार और घरेलू आवश्यकताओं को लेकर चलने वाली बहस में अनेक सामाजिक मुद्दे उभर कर आते हैं। यद्यपि कि पति-पत्नी के बीच चलने वाली यह बहस कहीं-कहीं कुछ अधिक लम्बी अवश्य हो गई है। कुछ अवसर तो ऐसे भी आते हैं जहाँ श्यामा की तर्कों के समक्ष मनोहर निरुत्तर होता जान पड़ता है लेकिन, ऐसे अवसरों पर केवल एक पत्नी श्यामा नहीं बल्कि आज का हमारा परिवेश बोलता दिखाई देता है जिसके लिए सम्पत्ति और सुख - सुविधाओं की ही प्राथमिकता है।

लेखक द्वारा इस उपन्यास में शिक्षा की बढ़ती महंगाई और सरकारी विद्यालयों की गिरती दशा एवं समाज द्वारा उनकी अनदेखी पर भी प्रकाश डाला गया है। हमारी शिक्षा व्यवस्था की सच्चाई भी यही है कि एक तरफ प्राइवेट विद्यालयों में फीस के नाम पर

मोटी रकम वसूली जा रही फिर भी हर व्यक्ति अपने बच्चों को ऐसे ही विद्यालयों में भेजना चाहता है। तो, वहीं दूसरी तरफ जिन विद्यालयों में सरकारी अध्यापकों को सरकार द्वारा मोटी तनख्वाह दी जाती है वहाँ बच्चों का टोटा पड़ा हुआ है। हर आदमी अपने बच्चों को अधिक फीस वाले विद्यालयों में इसलिए भेजना चाहता है क्योंकि उसे अपने बच्चे को अच्छी शिक्षा देनी होती है। उस मोटी शुल्क के लिए जब वेतन पूरा नहीं पड़ता तो वह रिश्वतखोरी का रास्ता अपनाता है। उपन्यास का एक प्रमुख पात्र सुंदरलाल और उसकी पत्नी के संवादों के माध्यम से लेखक नें इस समस्या को बड़े ही जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। अंत में सुंदर लाल प्रतिज्ञा करता है कि 'अब मैं आगे से कभी रिश्वत नहीं लूँगा। अपने वेतन से ही अपनी गृहस्थी चलाऊँगा।' ठीक इसी प्रकार मनोहर अपने अध्यापक मित्र सुधीर राजौरा से भी रिश्वतखोरी और जातिवाद के विरुद्ध विद्यार्थियों को प्रेरित करने की बात कहता है और इस बात को सुधीर एक मिशन के रूप में स्वीकार करता है। अपने इन पात्रों के माध्यम से लेखक एक आदर्श प्रस्तुत करता है। निश्चित ही इसप्रकार के आदर्श और सिद्धांत आज किताबी बातें बन कर रह गए हैं लेकिन कर्दम जी इस उपन्यास के माध्यम से यह सिद्ध करते हैं कि 'सिद्धांत और आदर्श किताबी इसलिए हैं और व्यावहारिक जीवन में वे महत्त्वहीन और मूल्यहीन इसीलिये लगते हैं क्योंकि हम उन्हें नहीं अपनाते। सिद्धांतों की बातें तो करते हैं किन्तु उन पर अमल नहीं करते।'

उपन्यास का अंत आते-आते लेखक एक बार पुनः समाज में फैले भ्रष्टाचार के लिए सवर्णों को जिम्मेदार घोषित करते हुए उनकी पूँछ मरोड़ता है-'नौकरी में ऊपर की कमाई के मामले में भी वे हमसे बहुत आगे हैं। वे खुलकर पैसे माँग लेते हैं लोगों से, क्योंकि ऊपर उनके अपने अधिकारी हैं, उनको संरक्षण देने के लिए। हम खुलकर नहीं माँग पाते, क्योंकि हमारा कोई गॉड फादर नहीं है। 'और, यहाँ उपन्यास का त्यागी पात्र नायक मनोहर असक्के परम साधु' की भूमिका में पहुँचता दिखाई देता है। ब्राह्मणों को मंदिरों से अतिरिक्त कमाई, प्राइवेट क्षेत्रों में आरक्षण न होने के कारण वहाँ दलितों की संख्या में कमी, प्राइवेट संस्थाओं पर सवर्णों का ही अधिकार, सवर्णों द्वारा ही निजीकरण का समर्थन आदि प्रारंभिक जातिगत मुद्दों को ही उठाकर लेखक ने एक बार पुनः नई बोतल में पुरानी शराब भरने का सफल प्रयास किया है और सम्पूर्ण भारतीय समाज का नायक बनने के योग्य पात्र को जातिवाद के कुँए में गिरा दिया है।

निश्चित ही भ्रष्टाचार आज भारतीय समाज में जिस प्रकार फैल रहा है और सामान्य जन द्वारा भी, चाहे जिस कारण से भी हो, उसे स्वीकृति मिलती जा रही है, यह सुखद भविष्य का संकेतक नहीं कहा जा सकता। भ्रष्टाचार के समूल उन्मूलन के बिना किसी स्वस्थ समाज की परिकल्पना ही नहीं की जा सकती। ऐसे में कर्दम जी नें 'उत्कोच' उपन्यास के माध्यम से चतुर्दिक व्याप्त इस सन्नाटे में एक हाँक लगाने का श्रेयष्कर कार्य किया है। मनोहर जैसे दृढ निश्चयी व्यक्तित्त्व ही भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज बन सकते हैं

लेकिन उन्हें सभी वादों और दीवारों के घेरे से बाहर निकलकर सबकी आवाज बननी होगी, उन्हें संपूर्ण समाज का प्रतिनिधित्त्व करना होगा।

उपन्यास की भाषा पात्रों और परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल है। कहीं-कहीं दो पात्रों के बीच ही संवाद लम्बे चलते हैं, तर्क-वितर्क भी दोनों तरफ से प्रस्तुत किये जाते हैं लेकिन रोचकता लगभग सर्वत्र बनी रहती है। वर्तमान के अति आवश्यक मुद्दे को आधार बनाकर सृजित इस सफल उपन्यास के लिए कर्दम जी को हार्दिक बधाई। आशा है, आप भविष्य में भी इस प्रकार की समस्याओं को अपने साहित्य के माध्यम से उठाते रहेंगे।

सन्दर्भ : उत्कोच - जयप्रकाश कर्दम, राधाकृष्ण पेपर बैक्स, दिल्ली, वर्ष-2019

असोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
बी. के. बिड़ला महाविद्यालय, कल्याण - मुंबई

अनुवाद के परिप्रेक्ष्य में 'मेरी रूस-यात्रा' का मूल्यांकन

प्रो. डॉ. बाळासाहेब सोनवणे

अण्णा भाऊ साठे द्वारा लिखित 'माझा रशियाचा प्रवास' (मराठी) रचना का अनुवाद प्रो. डॉ. सदानंद भोसले ने 'मेरी रूस यात्रा' शीर्षक से किया है। अनुवाद के परिप्रेक्ष्य में इस रचना का मूल्यांकन करते समय महान दार्शनिक प्लेटो और अरस्तू की याद आती है। प्लेटो ने कला और काव्य को सत्य से तिहरी दूरी पर कहकर उसका महत्त्व बहुत कम कर दिया था। उनके शिष्य अरस्तू ने अनुकरण में पुनर्रचना का समावेश किया। अरस्तू के अनुसार अनुकरण हूबहू नकल नहीं है बल्कि पुनः प्रस्तुतीकरण है। इसी पुनः प्रस्तुतीकरण ने सारे विश्व को एक ग्लोबल व्हिलेज के रूप में बदल दिया है। अतः अनुवाद ही है जिसने विश्व को सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक रूप में नजदीक लाया है। अनुवाद देश-विदेश, मनुष्य-मनुष्य के बीच की दूरी को कम करता है।

'माझा रशियाचा प्रवास' याने हिन्दी में अनूदित 'मेरी रूस यात्रा' इसी ग्लोबल विलेज (Globl village) का उत्तम उदाहरण है। अण्णा भाऊ ने बड़ी ईमानदारी से स्वीकार किया है कि 'उन्हें' रूस-यात्रा का अवसर उनके साहित्य के कारण प्राप्त हुआ। उनका 'चित्रा' उपन्यास, 'सुलतान' कहानी, 'स्टालिन ग्राड' का पोवाड़ा रूसी भाषा में बहुत लोकप्रिय हुआ था और मैं इस समग्र पुण्य की बदौलत रूस की घुमक्कड़ी कर रहा था। मतलब यह कि अण्णा भाऊ के रूस पहुँचने से पहले उनका साहित्य अनुवाद के जरिए रूस की जनता तक पहुँच चुका था। अनुवाद के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो उक्त सारी रूस यात्रा असंभव थी। अतः मेरी रूस यात्रा यह अनूदित रचना अनुवाद का दस्तावेज ही है।

अण्णा भाऊ साठे ने रूस जाने से पहले ही सन् 1934 ई. के दौरान 'रूसी क्रांति का इतिहास' (रशियन क्रांतिचा इतिहास), कॉ. लेनिन का चरित्र जैसी पुस्तकों का अध्ययन किया था। ये सारी पुस्तकें अनुवाद के कारण ही अण्णा भाऊ साठे ने पढ़ी थीं। सन् 1934 ई. के दौरान ये पुस्तकें अण्णा भाऊ ने पढ़ी थीं इसका मतलब यह है कि उस काल में अनुवाद के जरिए विश्व का इतिहास या साहित्य पढ़ा जा रहा था। दूसरे विश्वयुद्ध में सोवियत जनता ने जो पराक्रम दिखाया था, उससे प्रभावित होकर अण्णा भाऊ साठे ने 'स्टालिनग्राड' की लडाई पर पोवाड़ा लिखा था। इस संदर्भ में अण्णा भाऊ लिखते हैं, 'मेरी प्रतिभा लाल सेना के साथ बर्लिन तक पहुँच चुकी थी और अब मैं स्वयं मास्को जानेवाला था।' अनुवाद के माध्यम से अण्णा भाऊ की प्रतिभा अण्णा से पहले बर्लिन तक पहुँच चुकी थी। इतना ही नहीं तो अण्णा भाऊ रूस पहुँचने से पहले समाचार-पत्रों में 'सुलतान' फेम अण्णा भाऊ साठे' वृत्तांकन छापा गया था। रूसी भाषा में अनूदित साहित्य के पुण्य की बदौलत ही रूस की घुमक्कड़ी अण्णा भाऊ ने की है।

अण्णा भाऊ साठे रूस पहुँचे, उनकी ठहरने की व्यवस्था सोवियत स्काई होटल में की थी। दुभाषिये के रूप में कॉ. बारनिकोव महोदय नियुक्त थे। दुभाषिया अनुवाद के जरिए दो व्यक्ति, समूह के बीच संवाद स्थापित करता है, जिससे वहाँ की संस्कृति, लोग, रहन-सहन की जानकारी मिलती है। उसी विकसित रूप के प्रभाव स्वरूप अपने-अपने देश, साहित्य में विकास प्रक्रिया आरंभ होती है और विश्व विकास में अनुवाद का महत्त्व साबित होता नजर आता है। अण्णा भाऊ से बारनिकोव दुभाषिये के रूप में परिचित हुए। उन्होंने 'तुलसीरामायण' का गद्य अनुवाद रूसी में किया था। प्रोफेसर ततियाना ने अण्णा के 'चित्रा' उपन्यास का रूसी में अनुवाद किया है। मास्को में अण्णा भाऊ साठे ने पहला भाषण मराठी में दिया। दुभाषिये पीछे खड़े थे। मराठी का अंग्रेजी में और अंग्रेजी का रशियन भाषा में अनुवाद होकर श्रोताओं के कानों में जा रहा था। प्रोफेसर एबोनीचेलीषेव शिवाजी महाराज का चरित्र रशियन भाषा में लिख रहे थे। पुणे शहर की सदाशिव पेठ, शनिवार पेठ, शिवाजी नगर का जिक्र उसमें मिलता है। लोकमान्य तिलक, पंडित जवाहरलाल नेहरू का चरित्र रशियन नागरिकों ने प्रकाशित किए हैं। उपरोक्त सारे उदाहरण अनुवाद के महत्त्व को रेखांकित करते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि अण्णा भाऊ साठे सन् 1960 ई. में रशिया गए थे। 1960 में ही महाराष्ट्र राज्य की निर्मिति हुई है। 1960 में ही अनुवाद को लेकर रशिया में इतना बड़ा काम हो रहा था। कहना गलत नहीं होगा कि अनुवाद के द्वारा ही भारत और रशिया की नजदीकियाँ बढ़ रही थी।

मॉस्को में 'सोवियत स्काई' होटल में लौटते समय अण्णा भाऊ से एक परिचित मिला, उसने पूछा- 'आप रशियन जानते हैं?'

'नहीं, उन्होंने जवाब दिया।'

'तो फिर भाषा की समस्या है।', ऐसा कहते हुए उसने अण्णा पर रहम किया, तब अण्णा ने जवाब में कहा- 'मुझे भाषा की बिलकुल समस्या नहीं है।' उन्होंने चौंकते हुए कहा, 'आप रशियन समझते नहीं और भाषा की समस्या नहीं, इसका मतलब?' तब अण्णा भाऊ साठे ने कहा, 'मेरे पास दो जिह्वा है, उसमें एक हिन्दी और दूसरी रशियन। हिन्दी जिह्वा मेरे पास है और रशियन जिह्वा बारनिकोव को दे रखी है।' यह दूसरी जिह्वा ही अनुवाद है। अण्णा भाऊ साठे ने बहुत सुंदर ढंग से अनुवाद का वर्णन किया है। मूल भाषा की एक जिह्वा और जिस भाषा में अनुवाद हो रहा है वह दूसरी जिह्वा। दो जबानें मिलकर विचार, संस्कृति तथा रीति-रिवाजों का अनुवाद करती हैं। दोनों मिलकर लेन-देन करते हैं। यही अनुवाद है। अण्णा भाऊ साठे ने अपनी पुस्तक में अनुवाद का बढ़िया समर्थन किया है। यही वर्तमान विश्व की भाषा या जुबान है।

अण्णा भाऊ साठे टैक्सी से बारनिकोव के साथ लेखक संघ पहुंचे। उनके खिलौने और कैमेरा टैक्सी में रहा। सोवियत देश में टैक्सी का स्वतंत्र रेडियो स्टेशन है, लगभग हर टैक्सी में रेडियो फोन होता है। रेडियो से फोन लगाते ही जवाब मिला। आपका साहित्य रात नौ बजे होटल 'सोवियत स्काई' पहुँच जाएगा। रशियन टैक्सी रेडियो फोन

की योजना देश-विदेश में अनुवाद के जरिए पहुँच गयी। जिसका लाभ पूरी दुनिया को हो सकता है। देश-विदेश के प्रतिनिधि मण्डल ऐसी ही योजनाओं को देखने यात्रा करते हैं। इसी यात्रा का पर्याय आज-कल अनुवाद है। अण्णा भाऊ साठे ने रशियन जनता का देशप्रेम, शांतिप्रियता, साफ-सफाई का जो चित्रण किया है, वह मराठी भाषा के जरिए महाराष्ट्र में पहुंचा है और डॉ. सदानंद भोसले ने उसी यात्रा का अनुवाद हिन्दी में करने से यह सारी बातें पूरे भारत भर पहुँच जाएँगी। इतना ही नहीं तो यह सारी बातें हिन्दी भाषा-भाषी देशों में पहुँच जाएँगी, यही अनुवाद का अनोखा योगदान है।

अण्णा भाऊ साठे ने 'ताशकन्द में 'स्तालिन समुदायिक खेती' देखी। वहाँ के किसानों के लिए पाठशाला, हाईस्कूल, दवाखाना, जानवरों का दवाखाना, प्रसूतिगृह, गायों के दूध निकालने के औजार, दूध केंद्र, ट्रैक्टर जैसी कई सुविधाएँ उपलब्ध कराई गई हैं। भारत कृषिप्रधान देश है। डॉ. आंबेडकर ने कहा था कि, 'खेती की ओर एक व्यवसाय के रूप में देखना चाहिए। खेती के लिए पर्याप्त पानी, बिजली और खाद उपलब्ध कराना चाहिए, जिससे कृषि का विकास होगा और अपने आप देश का विकास होगा। अण्णा भाऊ साठे ने रशियन खेती का चित्रण मराठी यात्रा वर्णन में किया और वही बात आज 'मेरी रूस यात्रा' इस हिन्दी अनुवाद के कारण देश-विदेश के लिए प्रेरणादायी सिद्ध होगी। अण्णा भाऊ साठे द्वारा लिखित 'माझा रशियाचा प्रवास' को डॉ. सदानंद भोसले ने अरस्तू के अनुसार पुनः प्रस्तुतीकरण करके विश्वभर के लिए यह विचार, योजना प्रस्तुत की है।

अण्णा भाऊ साठे ने देखा कि रूस के बच्चे, युवा और बूढ़े सब दौड़ रहे हैं। उनसे पूछने पर पता चला कि उन्हें देश की सप्तवार्षिक योजना जल्द पूरी करनी थी। मतलब यह कि किसी भी देश के सत्ताधीश देश के विकास हेतु अनेक योजनाएँ बनाते हैं, उन्हें कार्यान्वित भी करते हैं, किन्तु उन्हें समय से पहले और पूर्ण क्षमता के साथ पूरा करना हो तो देश के बच्चे, युवा और बूढ़ों तक को दौड़ना चाहिए। यह कितनी बड़ी बात अनुवाद के जरिए देश-विदेश पहुँच रही है। आज-कल प्रतिनिधि मण्डलों द्वारा विदेशों में विकास अध्ययन यात्रा करके देश का अनावश्यक खर्च बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। वह काम अनुवाद करता है। यह सारा खर्च, समय बचाने का सारा श्रेय अनुवाद और अनुवादक को जाता है। उस अर्थ में अण्णा भाऊ साठे के साथ ही प्रो. डॉ. सदानंद भोसले को भी देश के विकास का श्रेय जाना चाहिए।

ताशकन्द विद्यालय में एक सुंदर लड़की अण्णा भाऊ साठे को लाल गुलाब देते हुए कहती है, 'यह हमारे देश का फूल आप भारत ले जाइए और भारत की आजादी के लिए जिन वीरों ने आत्मबलिदान किया है, उनके समाधि-स्थल पर अर्पण कीजिए।' यह प्रसंग दर्शाता है कि रूसी लोगों को 'स्वतन्त्रता' और 'स्वतन्त्रता शब्द' बहुत प्रिय है। इतना ही नहीं तो वे दूसरों की स्वतन्त्रता का भी उतना ही सम्मान करते हैं। जो लोग गुलामी की बेड़ियों से जकड़े हुए हैं, उनके प्रति अत्यंत आदर एवं आस्था है। अण्णा भाऊ साठे

ने अपनी रूस यात्रा के समय यह अनुभव लिखा था। उन्होंने यह यात्रा 1960 में की थी। आज लग-भग साठ-बासठ वर्षों बाद डॉ. सदानंद भोसले ने अनुवाद करके उन्हीं विचारों को विश्व के सम्मुख रखा है किन्तु तत्कालीन अण्णा भाऊ साठे का अनुभव और आज 2022 की स्थिति अलग नजर आ रही है। वर्तमान में रूस और यूक्रेन के बीच युद्ध जारी है यूक्रेन की स्वतन्त्रता धोखे में है। आज रूस दूसरों की स्वतन्त्रता का सम्मान करते नजर नहीं आ रहा है। उक्त अनुभव आज पुनः रूसी जनता तथा सत्ताधीशों को पढ़ने के लिए बाधित करना होगा।

दूसरे एक प्रसंग में खेती के अध्यक्ष अण्णा भाऊ साठे तथा प्रतिनिधि मंडल का स्वागत करते हुए कहते हैं कि 'आप हमारे पड़ोसी हैं, शांतिदूत हैं। आपके प्रधानमंत्री पंडित नेहरू आज शांति प्रस्थापित करने के लिए बेहद प्रयास कर रहे हैं। तात्पर्य यह कि आपका और हमारा लक्ष्य एक ही है। यदि आपसे मित्रता चिरकाल रहेगी तो विश्व में कभी भी युद्ध नहीं होगा, ऐसी हमारी आस्था है। इसलिए भारत-रूस दोनों चिरायु हों।' डॉ. सदानंद भोसले द्वारा 'मेरी रूस यात्रा' का अनुवाद करना और उसी समय उसमें अभिव्यक्त विचारों पर अमल करने की जरूरत रूस को है। भारत और रूस की मित्रता तो चिरकाल अबाधित है परंतु रूस और यूक्रेन के बीच युद्ध जारी है। आज शांति प्रस्थापित करने से रूस ने मुँह मोड़ लिया है। इतना ही नहीं तो वह स्वयं युद्ध पर कायम है। अण्णा भाऊ लिखते हैं वहाँ की वृद्ध माताएँ सोचती हैं कि अपने बच्चे अकारण युद्ध में नहीं मरने चाहिए और किसी को मारना भी नहीं चाहिए। वे अपना जीवन जिएँ और इस देश को समृद्ध करें। अतः यह तत्कालीन विचार अनुवाद के जरिए देश-विदेश में पहुँच कर सारे विश्व को और रूस को 1960 के अपने ही विचारों की याद दिलाते हुए उस पर अमल करने को मजबूर करना चाहिए। अनुवाद के द्वारा यह काम भी भली-भाँति हो सकता है। सारे लोग सहयोग करें परिणाम आपके सामने होगा।

सदानंद भोसले ने 'मेरी रूस यात्रा' शीर्षक से 'माझा रशियाचा प्रवास' (मराठी) इस रचना का हिन्दी में अनुवाद किया है। असल में देखा जाए तो उक्त अनुवाद अत्यावश्यक समय पर प्रकाशित हुआ है। रूस का रवैया और 1960 की स्थिति दोनों वर्तमान जनता के सम्मुख हैं। पढ़ने वालों को इशारा काफी है। वे अपनी स्वतन्त्रता के साथ ही दूसरों की स्वतन्त्रता का भी सम्मान करें, यही अनुवाद, अनुवादक और पाठकों की भूमिका होगी। अनुवादक ने ताशकन्द, उज्बेकिस्तान, खारकीव तथा बाकुशहर का वर्णन अण्णा भाऊ साठे द्वारा लिखित 'माझा रशियाचा प्रवास' रचना के अनुसार किया है किन्तु अनुवादक ने कोष्ठक में या तल टिप में इन शहरों या देशों की वर्तमान स्थिति का जिक्र करना आवश्यक था। ताशकंद उज्बेकिस्तान का शहर है और खारकीव यूक्रेन देश का शहर है तथा बाकू अजरबैजान देश का शहर है। यह सारे पूर्व रूस का हिस्सा थे पर आज वे स्वतंत्र देश के रूप में अस्तित्व में हैं।

अण्णा भाऊ साठे ने 'माझा रशियाचा प्रवास' इस यात्रा वर्णन में पूर्वदीप्ति शैली का

प्रयोग किया है। वे ताशकन्द से दिल्ली के विमान की यात्रा के दौरान पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग कर अपने गाँव से की गई बंबई यात्रा को याद करते हैं। उन्होंने पूर्वदीप्ति शैली में भूत और वर्तमान को अभिव्यक्ति दी है। अण्णा भाऊ साठे की सहज, सरल, कुशल और व्यंग्यपूर्ण भाषा का डॉ. भोसले ने बखूबी अनुवाद किया है। 'मेरी रूस-यात्रा' को पढ़ते समय कहीं भी कुछ घटाया है या कहीं भी कुछ बढ़ाया है, ऐसा लगता नहीं है। इसका सारा श्रेय अनुवादक डॉ. सदानंद भोसले को जाता है। डॉ. सदानंद भोसले ने इससे पहले कई रचनाओं का अनुवाद किया है, जिससे उक्त अनुवाद इतना सटीक बन पड़ा है। डॉ. भोसले द्वारा प्रस्तुत पुस्तक का इकसट, बासठ वर्षों बाद अनुवाद करना यानी लेखक को पुनः जीवित करना है। अण्णा भाऊ साठे उक्त पुस्तक में लिखते हैं, 'रूस में साहित्यकारों, कलाकारों का बड़ा सम्मान किया जाता है। टॉलस्टाय, पुस्किन, गोर्की मायकोवस्की जिंदा हो उठे हैं। रूस के साहित्यकारों, कलाकारों को रूस की जनता ने अजरामर कर दिया है। कहना गलत नहीं होगा कि उक्त अनुवाद के जरिए डॉ. सदानंद भोसले ने साहित्यकार साठे को सम्मानित किया है। प्रो. भोसले जी के अनुवाद ने उन्हें अजरामर कर दिया है। प्रो. रामनाथ चव्हाण कहते थे कि मुझे अनुवादक मिले नहीं इसलिए मैं सारे विश्व में पहुँच नहीं सका। अण्णा भाऊ साठे से पहले उनका साहित्य रूस पहुँचा था। आज अण्णा भाऊ साठे के पश्चात अनुवादक डॉ. सदानंद भोसले ने उन्हें पुनः विश्वभर में पहुँचाने की व्यवस्था की है।

'माझा रशियाचा प्रवास' पुस्तक का मुखपृष्ठ रेड स्क्वायर, मास्को के चित्र पर आधारित है परंतु हिन्दी में अनूदित 'मेरी रूस-यात्रा' का मुखपृष्ठ मॉस्को शहर के चित्र पर आधारित है। दोनों चित्र उक्त पुस्तक में संग्रहीत हैं परंतु अनुवादक ने यह बदलाव क्यों किया इसकी जानकारी अपनी भूमिका में दी होती तो पाठक संभ्रमित न होते। 'मेरी रूस यात्रा' यह अनुवाद अनुवाद के महत्त्व को विशद तो करता ही है, साथ ही वह अनुवाद का पूरा दस्तावेज भी है, इसलिए उक्त अनूदित रचना का अनुवाद के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन होना बड़ी आवश्यकता थी जो उक्त आलेख द्वारा पूरी करने की कोशिश है।

संदर्भ :

1. माझा रशियाचा प्रवास -अण्णा भाऊ साठे
2. मेरी रूस यात्रा -प्रो.डॉ. सदानंद भोसले

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
डॉ. अरविंद तेलंग महाविद्यालय, निगड़ी, पुणे

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता में दलित विमर्श'
('बस्स! बहुत हो चुका कविता के विशेष संदर्भ में)

डॉ. ईश्वर पवार

आधुनिक हिंदी साहित्य में दलित विमर्श एक महत्वपूर्ण विमर्श है। इस विमर्श ने भारतीय साहित्य संस्कृति में अपनी अलग पहचान बनाई है। हिंदी साहित्य संस्कृति में दलित साहित्य की सभी विधाओं में सृजन हुआ है। ओमप्रकाश वाल्मीकि का हिंदी साहित्य के विकास में अतुलनीय योगदान रहा है। उनके प्रारंभिक साहित्यक जीवन में अभिव्यक्ति का माध्यम कविता रही है। एक सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका में सक्रिय रहने के साथ-साथ कविता की ओर उनका झुकाव बढ़ता गया। उनके संदर्भ में कहा जाता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता स्याह रात्रि में पूर्णिमा का चाँद है, गुफा में जलती मशाल है, मन के भीतर प्रज्वलित एक आत्मविश्वास की आस है। उनकी कविता सिर्फ कविता न होकर यथार्थ के धरातल पर सत्य की खोज है, असत्य पर सत्य की विजय का उद्घोष है। उनकी कविता मानवता का प्रतिनिधित्व करती है. सामाजिक क्रांति की मशाल है। सामाजिक भेदभाव के खिलाफ का न्यायिक आवाज है। वे कहते हैं कि 'कविता की चुप्पी / बहुत सर्द होती है / आधी रात में भी गूंजती है/ चौकीदार की सीटी की तरह / जो हमारी नींद में भी/ देती है पहरा / हमारे ख्वाबों का!'[1]

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के 'सदियों का संताप, 'बस्स! बहुत हो चुका', 'अब और नहीं', 'शब्द झूठ नहीं बोलते' चयनित कविताएँ (कविता संग्रह), जूठन (आत्मकथा) सलाम, घुसपैठिए अम्मा अँड अदर स्टोरीज, छतरी (कहानी-संग्रह), दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, मुख्यधारा और दलित साहित्य, दलित साहित्यःअनुभव, संघर्ष और यथार्थ (आलोचना), सफाई देवता (सामाजिक अध्ययन) आदि साहित्य प्रकाशित है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को अनेकानेक पुरस्कार एवं सम्मान से सम्मानित किया गया है।

साहित्य समाज का प्रतिबिंब होता है, इसी नाते समाज सामाजिक, सांस्कृतिक परिदृश्य को पोषित भी करता है। जिस समाज की वैचारिक स्थिति सुदृढ़ होती है, संभवतः वहाँ का समाज सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक दृष्टि से मजबूत होता है। भारतीय समाज जिन तत्वों के ताने-बाने से निर्मित हुआ है, उनमें वर्गों और जातियों का विशिष्ट स्थान है। आज भी समाज में विद्यमान सामाजिक कुरीतियों को लेकर अनेक अव्यवस्थित परम्पराओं का निर्वाह किया जा रहा है।

दलित साहित्य वर्णव्यवस्था, जातिव्यवस्था और छूआछूत के विरोध में निर्माण हुआ है। ओमप्रकाश वाल्मीकि व्यवस्था के बीच पैदा हुए सामाजिक परिवर्तनवादी कवि, लेखक और साहित्यकार है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी स्वयं दलित है। उन्होंने

दलितों का संघर्ष, दुःख, दर्द, पीड़ा यातनाओं को महसूस किया है और अपने जीवन को साहित्यिक युग में एक पर्व के रूप में समृध्द किया है। इसीलिए उनके साहित्य में आपबीती दिखाई देती है। उनकी कविता में यथार्थ बोध स्पष्ट रूप में दिखाई देता है- 'बस्स! बहुत हो चुका' कविता में ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित समाज का यथार्थ चित्रण करते हैं -

जब भी देखता हूँ मैं / झाड़ू या गन्दगी से भरी बाल्टी / कनस्तर / किसी हाथ में मेरे रंगों में दहकने लगते हैं / यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ / जो फैले हैं इस धरती पर / ठंडे रेत कणों की तरह।

ओमप्रकाश जी की कविता में दलित समाज का संघर्ष दिखाई देता है। दलित को दैनंदिन जीवन जीने का अधिकार नहीं था। उन्हें हर दिन घोर अपमान, अन्याय सहना पड़ता था। मनुष्य होकर भी उनके साथ पशु समान व्यवहार किया जाता था। दलितों को गाँव में रहने, खाने-पीने, या काम करने की भी इजाजत नहीं थी। इस राक्षसी प्रवृत्ति को समाज के उच्च जाति के लोगों ने बढ़ावा देकर अपनी सेवा करवा लेने की असामाजिक समाज रचना का निर्माण किया था और वह आज भी असामाजिक, कलंकित कर व्यवस्था से जूझता हुआ दिखाई देता है। वे अपनी कविता के बारे में लिखते हैं - 'कविता मेरे लिए आनन्द रस मनोरंजन के लिए नहीं है। न ही कविता का ऐसा - उद्देश्य रहा होगा। कविता हमें मनुष्यता के निकट ले जाने का काम करती है। उम्मीदों के साथ जीवन में बदलाव की आकांक्षा उत्पन्न करती है।[2] इसीलिए कविता में दलितों पर होने वाले अन्याय-अत्याचार और षडयंत्रों का यथार्थ वर्णन किया है। कवि ओमप्रकाश आगे लिखते हैं--

मेरी हथेलियाँ भीग - भीग जाती हैं / पसीने से / आँख में उतर आता है /
इतिहास का स्याहपन / अपनी आत्मघाती कुटिलताओं के साथ'[3]

ओमप्रकाश जी ने डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर जी से प्रेरित होकर दलितों के हक्क, अधिकार, स्वाभिमान के लिए वास्तविकता का चित्रण किया है। उन्होंने दलित समाज को शोषित, पीड़ित करनेवाली व्यवस्था के विरोध में झाड़ू उठाने की बात की है। मनुष्य के मन की गंदगी को साफ करने की बात की है। ओमप्रकाश जी लिखते हैं -

'झाड़ू थामे हाथों की सरसराहट / साफ सुनाई पड़ती है /
भीड़ के बीच बियाबान / जंगल में सनसनाती हवा की तरह'[4]

कवि ओमप्रकाश जी ने जातिवादी व्यवस्था, वर्णव्यवस्था का समर्थन करने वाले समाज द्रोहियों को करारा जवाब दिया है। इस विकृत व्यवस्था का समर्थन करनेवाले व्यक्तियों पर कवि लिखते हैं -

वे तमाम वर्ष / वृत्ताकार होकर घूमते हैं / करते हैं छलनी लगातर /
उंगलियों और हथेलियों को / नस-नस में समा जाता है ठंडा ताप।'[5]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि कहते हैं जो सबको समान मानने की बोली बोलता है, पर

कोई समान नहीं है। अपने हाथों की उँगलियाँ क्या समान हैं? इससे स्पष्ट होता है कि अपने मन में बैठे जाति व्यवस्था, वर्णव्यवस्था को छोड़ने के लिए हम तैयार नहीं हैं। इसीलिए कवि दलित समाज को जागृत करता है।

बस! / बहुत हो चुका / चुप रहना /
निरर्थक पड़े पत्थर / अब काम आएँगे संतप्त जनों के!

एक बार दलित लेखिका सुशीला टाकभोरे जी ने पूछा कि वे वाल्मीकि टाइटल क्यों लगाते हैं? तो इस पर वाल्मीकि ने कहा था कि आजकल सब जानते हैं कि वाल्मीकि कौन होते हैं। वाल्मीकि एक जाति की पहचान हो गया है और पूरे देश में वाल्मीकि जाति को लोग जानते हैं। मुझसे कोई मेरी जाति न पूछे इसलिए मैंने अपने नाम के साथ ही अपनी जाति लगा ली है।

साहित्य चेतना मंच द्वारा 17 नवम्बर 2021 के दिन ओमप्रकाश वाल्मीकि स्मृति साहित्य सम्मान समारोह वेबिनार का आयोजन किया गया था। इस दौरान सभी वरिष्ठ रचनाकारों का यही कहना था कि वाल्मीकि को सिर्फ दलित लेखक कहा जाए तो यह उनके साथ अन्याय होगा। उनको कमतर आँकना होगा। वे राष्ट्रीय स्तर के हिंदी साहित्यकार थे। उनका समग्र साहित्य प्रकाशित होकर सामने आना चाहिए। उनकी आत्मकथा 'जूठन' दलित समाज के कटु यथार्थ को हमारे सामने रखती है और उनके साथ होने वाले भेदभाव और छुआछूत से समस्त विश्व को रूबरू कराती है -

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की कविता में जातीय व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था को प्रखर विरोध करने की बात कही गई है। साथ ही इनका साहित्य समाज को परिवर्तन की दिशा में ले जाने को प्रेरित भी करता है। इस प्रकार उनके काव्य में दलितों के प्रति करुणा और प्रेम भरा हुआ दिखाई देता है और संघर्ष करने की मानसिकता भी दिखाई देती है।

संदर्भ :

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि 'बस्स बहुत हो चुका' प्रथम संस्करण- 1997, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ-12
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित चेतना और हिंदी कथा साहित्य लेख, समकालीन जनमत, पृष्ठ-529-530
3. सं. डॉ नगेन्द्र तथा डॉ. हरदयाल हिंदी साहित्य का इतिहास परिवर्द्धित संस्करण-2000, मयूर पेपरबैक्स नोएडा -88.
4. वही, पृष्ठ-50. वही - पृष्ठ-42
5. दीपक प्रकाश त्यागी, 'पुस्तकालय शब्द की तपिश' जनसत्ता, नई दिल्ली, 4 नवंबर, 2012. पृष्ठ-06
6. गंगा सहाय मीणा, स्मृति शेष समता के सरोकार जनसत्ता, नई दिल्ली, 24 नवंबर 2013. www.m.satykunj.net

-हिंदी विभागाध्यक्ष चांदमल ताराचंद बोरा महाविद्यालय, शिरूर, जि. पुणे

शिवमूर्ति के तर्पण उपन्यास में दलित चेतना

डॉ. गीता संतोष यादव

शिवमूर्ति समकालीन कथा साहित्य में ग्रामीण वास्तविकता के सर्वाधिक समर्थ और विश्वसनीय लेखकों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उत्तर भारत के ग्रामीण जन-जीवन, किसानों, मजदूरों, स्त्रियों तथा दलितों की दयनीय स्थिति, शोषण एवं दमन के अनंत हथकंडों तथा उसके प्रतिकार स्वरूप उपजी विरोध तथा विद्रोह की आग और जातिवादी विमर्श को प्रभावी व प्रामाणिक ढंग से चित्रित करने वाले कथाकार हैं, जो जमीनी रूप से दलितों के साथ जुड़े हुए हैं। कथा-लेखन के क्षेत्र में प्रारंभ से ही प्रभावी उपस्थिति दर्ज कराने वाले शिवमूर्ति की कथाओं से हिंदी कहानी में एक बार पुनः कथा-रस की वापसी हुई है। इन कथाओं के दृष्टि-बिंब एवं संवादों की अतुलनीय पकड़ ने दृश्य माध्यम को भी प्रभावित किया है। तर्पण उनकी क्षमताओं का शिखर है। राजपत्ती, भाईजी, धरमू पंडित जैसे अनेक चरित्रों के साथ अवध का एक गाँव अपनी पूरी सामाजिक, भौगोलिक, रचना के साथ यहाँ उपस्थित होता है। गाँव के लोग, प्रकृति रचना, रीति-रिवाज, बोली-बानी सब कुछ लेखक के कलम की ताकत से जीवित जागृत हो चुके हैं। युगों से अवरुध्द शापित चेतना जब अपने प्रतिरोध और प्रतिशोध पर परवान चढ़ती है तो उसकी नजर वर्तमान तक ही महदूद नहीं रहती, बल्कि वह अतीत के सारे अभिशप्त पुरखों तक का तर्पण करती है और यही वैयक्तिकता सामूहिकता में ढलकर क्रांति का पाठ पढ़ाती है।

कथा का प्रारंभ चंदर द्वारा रजपतिया को खेत में पकड़े जाने के प्रसंग से होता है। चूँकि राजपतिया दलित वर्ग की बालिका है, जिसकी उम्र गौने जाने की हो गई है। चंदर कई दिनों से उस पर अपनी दृष्टि जमाए हुए था। वह कब से उसे अकेले में पकड़ना चाहता था किंतु ऐसा मौका साल भर में उसे कभी नहीं मिला और आज भी यह होता है कि राजपतिया जब चंदर के खेत के बगल से गुजर रही थी तब चंदर घात लगाए वहीं बैठा था। वह रजपतिया को पकड़ लेता है मटर का साग खाने के जुर्म में किंतु चंदर की मंशा कुछ और ही थी। चंदर अपने मनसूबे में कामयाब नहीं होता। राजपति को भी यह बात पता है कि, वहाँ चोरी तो एक बहाना है। दरअसल चंदर उसकी इज्जत पर हाथ डालना चाहता है। वह स्वयं सतर्क है और तलाशी लेने पर चंदर को कहती है कि खबरदार जो मुझे छुआ तो दूर ही रहना मैं खुद दिखाती हूं। 'खबरदार! कब से बोलना सीख गई इन नान्हों की लड़कियाँ इतनी हिम्मत?[1] खबरदार के अलावा रजपतिया चंदर के लिए 'हरामजादे' शब्द का भी प्रयोग करती है। चंदर इस पर क्रोधित हो उसे खेत में गिराता है और जबरजस्ती करने की कोशिश करता है तब उसके गुहार लगाए जाने के पर आसपास की औरतें खड़ी हो जाती हैं, जिनमें 'परेमा की माई' और 'मिस्त्री बहू' प्रमुख हैं। इन दलित स्त्रियों की उपस्थिति के कारण चंदर अपना मनचाहा नहीं कर पाता।

उल्टे उसे अपने मुंह की खानी पड़ती है। खुद ही मां-बहन की गाली सुनता है। मिस्त्री की बहू का आत्मविश्वास तो और ही देखने योग्य है। वह हाथ में खुरपा लिए दौड़ती हुई सबसे आगे पहुँचती है और चंदर को देखकर बिना बताए सारा माजरा समझ जाती है। चंदन को ललकारती है- 'पकड़-पकड़! भागने ना पावै। पोतवा पकड़ के ऐंठ दे। हमेशा-हमेशा का 'गरह' कट जाए।'[2] पूरे उपन्यास का संघर्ष बिंदु यहीं से प्रारंभ होता है। इस घटना के इर्द-गिर्द उपन्यास की सारी कथावस्तु चक्कर लगाती है। यही संघर्ष, वर्ग-संघर्ष और वर्ण-संघर्ष के रूप में उदित होता है।

राजपतिया के पिता पियारे को जब यह पता चलता है तो वह धरमू पंडित के दरवाजे शिकायत लेकर पहुँच जाता है। धरमू पंडित को इस बात का मलाल होता है कि पियारे ने पहले की तरह पायलगी-प्रणाम कुछ भी नहीं किया बल्कि सीधे दनदनाता ही उसके सामने पहुँचा और कहने लगा- 'महाराज आप ही के पास आए हैं बता दीजिए कि इस गाँव में रहें कि निकल जाएँ?' आप लोगों की नजर में गरीब गुरबा की कोई इज्जत नहीं है।'[3] दलित समाज में इस प्रकार का व्यवहार करना भी अपने आप में काबिले तारीफ है कि कम से कम आज दलित वर्ग विरोध करना सीख गया है। वह अपने ऊपर होने वाले अत्याचार पर अब चुप नहीं बैठ सकता बल्कि, उसका बदला लेने पर उतारू है। उसकी यह क्षमता नई पीढ़ी के लिए पथप्रदर्शक बन रही है। वहीं पर सवर्ण वर्ग का करतब उनके घर की औरतों से भी नहीं छिपा है। उच्च वर्ग की पत्नियाँ जानती हैं कि उनके पति और पुत्र समाज में क्या करते हैं। भले ही वे सामाजिक तौर पर पति और पुत्र का बखान करती हैं किंतु अकेले में उन्हें बराबर आड़े हाथों लेती हैं। यहाँ उनकी विवशता और दयनीयता दोनों के दर्शन होते हैं। चंदर की माँ जहाँ प्यारे को डाँटते हुए कहती हैं कि 'जवान बेटी को विदा कर देगा तो उसकी कमाई कैसे खाएगा? उतान होकर गली-गली घूमती है। गाँव भर के लड़कों को बर्बाद कर रही है, वह तुमको नजर नहीं आता? जहाँ गुड़ रहेगा वहां चिऊँटा जाबै करेंगे। एक बार चमाइन का राज क्या आया, सारे चमार पासी खोपड़ी पर मूतने लगे। इतनी हिम्मत कि लाठी लेकर घर पर ओरहन देने चले आये।[4] वहीं पर अकेले में जब धरमू पत्नी को डाँटते हुए समझाते हैं, तब वह कहती हैं कि- 'कुलो कलंकी हुआ है तुम्हारे लक्षण लेकर। जैसे बाप अभी तक दुआर-दुआर छुछुवाते घूमता है, वही तो बेटा भी सीखेगा।'[5]

पियारे की अनुपस्थिति में गाँव के सभी नौजवान उसके दरवाजे पर इकट्ठा हो जाते हैं और थाने में जाकर रिपोर्ट लिखाने की बात करते हैं। किंतु पियारे जानता है कि थाना पुलिस में जाकर कोई मतलब नहीं इसके बदले में दस गाली और १००-२०० का खर्चा जरूर हो जाएगा। ऊपर से दस दिन का अकाज। गाँव के दलपत बाबा, गनेशी बाबा और अन्य बुजुर्गों से सलाह मशविरा करने पर सभी रिपोर्ट न लिखाने की राय देते हैं। किंतु, विक्रम जो कि नवयुवक है वह रिपोर्ट लिखाने के लिए बहुत जोर देता है तब रजपतिया की मां भड़क जाती है और कहती है- 'थाना पुलिस के बिना ठीक नहीं हो

सकते? इतना ज्ञान है तो क्यों नहीं दिया यह ज्ञान अपने बाप को, जब नत्थूसिंह के दोनों बेटे तेरी बुआ को चार औरतों के बीच से दिनदहाड़े गन्ने के खेत में घसीट ले गए थे। किसको नहीं पता कि किस-किस घर में क्या क्या हुआ? कोई तो नहीं आया आज तक थाना पुलिस करने।'[6] रजपतिया की मां का यह कथन स्पष्ट करता है कि अभी भी दलित स्त्री (जिसके घर में वारदात होती है)भीरू स्वभाव की होती है। मिस्त्री की बहू जो कि अपनी ननद पर हुए अत्याचार का विरोध उस समय नहीं कर पाती है आज चंदर के लिए हँसिया लेकर तैयार है। वस्तुतः देखा जाए तो वारदात वाले घर के लोग अक्सर अपनी इज्जत बचाने के चक्कर में अपने ऊपर हो रहे अन्याय अत्याचार का बदला नहीं ले पाते हैं। वहीं पर यदि घटना किसी अन्य लोगों के साथ होती है तो यह लोग उसे सही मार्ग दिखाने के लिए तैयार रहते हैं। नीति कानून की बात करते हैं। इसके पीछे कहीं ना कहीं उनकी मंसा उनके ऊपर हुए अत्याचारों से बदला लेने की भी होती है। इसी कारण राजपतिया की मां के वाक्य सुनकर विक्रम रात भर सो नहीं पाता और मन ही मन चाहता है कि यह मुकदमा थाने तक जरूर जाए। पंचायत तक जाने की बात होती है जुर्माना भरने की बात होती है रिपोर्ट लिखाने की बात होती है। दलित वर्गों में भी कुछ लोग ऐसे हैं जो अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए सवर्णों की गुलामी और चाकरी करते हैं। इस उपन्यास की लवंगी इसी प्रकार की एक पात्र हैं जो कि धरमू के घर में हलवाही का काम करती हैं। वह और उसका पति धरमू के खेती बाड़ी का काम संभालते हैं। वह दलित वर्ग में हो रही गतिविधियों का समाचार पंडिताइन तक पहुंचाती है। कभी-कभी तो वह मालकिन की दुखती रग पर हाथ रख देती है क्योंकि चंदर का ब्याह भी नहीं हो रहा है। चूँकि वह सवर्ण कहे जाने वाले समाज में एकदम निचले पायदान की उपजाति के हैं। इसलिए कोई अपनी कन्या उन्हें नहीं देता। लवंगी मालकिन से कहती है कि-' का हमें मालूम नहीं है। अपने चंदर महाराज साल भर से ओकरे पीछे घूम रहे हैं बाग -बगीचा, खेत खेतारी, नदी- नारे पीछे पीछे। सारे गाँव को मालूम है। हम तो कहते हैं अगर कोई बाभन अपनी बिटिया नहीं देता त कौनो बंगालिन कहे नाही मंगवा लेती कलकत्ता बांग्लादेश से।[7] आज देखा जाए तो वर्ण संघर्ष दलितों में ही नहीं बल्कि उच्च वर्गों में भी व्याप्त है।

धरमू पंडित का यह मानना भी ठीक है कि, निम्न वर्ग के लोगों को थोड़ा डरा धमकाकर रखना ही चाहिए नहीं तो इन लोगों के चलते फसल का एक दाना भी घर आना मुहाल हो जाएगा। इन दुष्ट के मारे कोई चीज बच नहीं पाती। कितना रखाएगा कोई? वे इस बात में कोई तुक नहीं देखते कि सारे लड़के पढ़ लिख कर नौकरियां करें और गाँव थर-थर कांपता रहे। शूद्रों,चमारों का राज आ गया इसलिए पहले जैसा दबदबा तो अब क्या रहेगा? लेकिन पैलगी आशीष तक बंद कर दिया सालों ने। बिना कोई तवज्जो दिए मुंह उठाए सामने से चले जाते हैं। वे यह जरूर मानते हैं कि, लड़की पर हाथ नहीं उठाना चाहिए था पर इसकी मूर्खता है। पर अब डाँटने-डपटने से लड़के का मनोबल गिरेगा। इस प्रकार अपने बेटे के मनोबल बढ़ाने के चक्कर में उसे जेल तक

पहुंचा देते हैं क्योंकि अब बारी मान मयार्दा की हो जाती हैं। वहीं हरिजन टोली में भी चंदर को अधिक से अधिक दिन जेल में सडाने की रणनीति बनाई जाती है। मुकदमा चलाने की बात की जाती है। जिसमें भाई जी की मुख्य भूमिका है। भाई जी दलित वर्ग के हिमायती हैं। उनका कहना है कि अगर हम 376 बटा 511 के भरोसे रह गए तो इंक्वायरी अफसर उसे गिरा का 354 पर लटका देगा, 376 लगाए बिना सारी मेहनत बेकार जाएगी। भाई जी बताते हैं कि,एक वर्ग संघर्ष है रोटी के लिए संघर्ष और यह वर्ण संघर्ष है इज्जत के लिए। इज्जत की लड़ाई रोटी की लड़ाई से ज्यादा जरूरी है इसीलिए, इस लड़ाई के लिए सरकार ने हमें अलग से कानून दिया है हरिजन एक्ट, हम इस कानून से इस नाग को नाथेंगे।

बड़ी मुश्किल से कठिनाइयों का सामना करते हुए थाने में हुए अभद्र व्यवहार के कारण भाई जी का मन बहुत नाखुश हो जाता है क्योंकि थाने में पहले ही धरमू ने चढ़ावा चढ़ा दिया था। अर्थात धरमू पंडित ने अपने तिकड़म से मामले को दबाने की पूरी कोशिश की थी। इसलिए प्यारे की रिपोर्ट लिखाने में बहुत विलंब लगा लेकिन भाई जी के चलते यह रिपोर्ट दूसरे दिन लिखी गई। चंदर पकड़कर हवालात में ले जाया जाता है किंतु शाम तक वह छोड़ दिया जाता है। रिहाई के बाद वह एकदम शेर हो जाता है। वह स्वयं को नेता समझने लगता है। सबेरे मोटरसाइकिल पर फट-फट करते हुए चंदर चमरौटी की गली में तीन चक्कर लगाता है। माथे पर चुनरी वाले अंगोछे को बांधकर और कंधे पर बंदूक टांगकर। देखकर पूरे टोले में सन्नाटा छा जाता है। लोग झोपड़ियों के अंदर घुस जाते हैं। थाने से छूट गया लगता है कौन सामने पड़े मामले को रफा-दफा करवा आया। सुनते हैं, इसके मामा का कोई रिश्तेदार है पुलिस में, तो क्या सिर्फ दिन भर की गिरफ्तारी के लिए इतनी कोशिश पैरवी की गई? थाने से तो यह और सांड बनकर लौटा है। खाली कोशिश पैरवी नहीं काम आती थाना पुलिस में ले जाकर मोटी थैली कूरै दिया होगा रुपए की माई पहाड़ चलती हैं। घूस की गंगा में खून कतल तक धुल जाता है। गनेशी बाबा बताते हैं। लवंगी के हवाले से टोले की औरतों को खबर मिलती है कि सारा पंडित आना बहुत गुस्से में है कह रहे हैं कि,जब झूठ-मूठ इज्जत लूटने की रिपोर्ट लिखा दिए हैं तो सचमुच इज्जत लूट ली जाए। थाने पर तो इतना खर्च हो ही गया है।

पुलिस और सवर्ण वर्गों की मिलीभगत यहां पर दिखाई देती है किंतु, भाई जी के विधायक से शिकायत करने पर चंदर को फिर से उठाकर जेल में डाल दिया जाता है। आज की राजनीति इतनी निम्न कोटि की हो गई है कि सच का पक्ष कोई नहीं लेना चाहता। सब स्वार्थी और अवसरवादी हो चुके हैं। कोई भी व्यक्ति अपने स्वार्थ सिद्धि का कोई भी मौका हाथ से नहीं जाने देना चाहते। इसीलिए तो चंदर को पूजा पूरी कराने के लिए पंडिताइन को पांच सौ का घूस देना पड़ता है। राजनीति मात्र समाज में नहीं तो घर- घर में भी व्याप्त है क्योंकि पंडिताइन ने अपने सगे भाई को चंदर की रिहाई के इतने पैसे दे दिए हैं कि अब उसका हिसाब उससे नहीं मांग सकतीं और भाई भी अपने

भांजे को छुड़ाने के लिए बहन से जो पैसे लेता है उसमें कुछ पैसे दबा लेता है। लेकिन पंडिताइन सब कुछ जान कर भी कुछ नहीं बोलती क्योंकि उनके हिस्से में ही खोट है तो वह क्या करें। यहां पंडिताइन पैसे का इंतजाम कर करके पति और भाई का मनोबल बढ़ाएं रखना चाहती है। चमरटोले वाले भी रेप का झूठा मुकदमा लगाकर चंदन को अधिक से अधिक दिनों तक जेल की हवा खिलाना चाहते हैं। इसके लिए वे बस्ती में चंदा भी इकट्ठा करते हैं। पंचायत से भी पैसा दिया जाता है और मुन्ना जो कि, रजपतिया का भाई है वह भी अपने कमाई के पैसे खर्च करता है। भाई का बहन के लिये यहां तक खर्च करना तो बात समझ में आती है किंतु, जब चंदर की डेढ महीने की सजा पर मुन्ना एक बडा सा घेंटा (जवान नर सुअर कटवाता है) तो हजार रुपए का कर्जा हो जाता है। जिस पर उसका पिता 'पियारे' नाराज हो जाता है। इस पर मुन्ना कहता है आपको चिंता करने की क्या जरूरत? रुपए का इंतजाम करना मेरी जिम्मेदारी है।'[8] चमरटोले में भी सभी को पता है कि, राजपति के साथ रेप नहीं हुआ किंतु, यह दलित कानून एक्ट का ही मनोबल है कि प्रेमा की मां और मिस्त्री बहू दोनों सी.ओ. के सामने जोर-जबरदस्ती वाली घटना का ऐसा बयान देती हैं जिसका अर्थ यह लगाया जाता है की रेप हुआ है। वहीं पर लवंगी भी चमरटोली से पंडिताइन के लिए गवाह खरीदने का प्रयास कर अपनी वफादारी निभाती है किंतु चमरटोले में एकता होने के कारण कोई उन्हें खरीद नहीं पाता। उल्टे पंडिताइन को इस बात को छुपाने के लिए उन्हें बीस रुपये घूस देना पड़ता है, जो अंततः पकड़ी जाती है। अंततः लवंगी अपनी बहन के साथ जब गवाही देने पहुँचती है तो उन पर आरोप लगाया जाता है कि यह तो घर के ही गवाह हैं। गाँव भर से कोई दो गवाह भी तैयार नहीं हुए उनके लिए। हरिजन टोला और धरमू पंडित दोनों ही अपनी आन -बान और शान के लिए धक्का खाते हैं और पैसा फूकते हैं। चमरटोला जहाँ इस बात से खुश है कि चंदर को अधिक से अधिक दिन जेल में रहना पड़ रहा है, दूसरी तरफ पंडित जी अपने बेटे को छुड़ाने के लिए एड़ी चोटी का जोर लगा देते हैं। यहाँ तक कि वे ठकुराने से भी मदद माँगते हैं और उनकी मदद लेते समय किसी भी प्रकार की हीन भावना का विचार अपने मन में नहीं लाते। जहाँ पर दलित वर्ग का यह कहना है कि ब्राह्मण वर्ग सदैव से ही हमसे झूठ बोलते आ रहा है कि उनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से हुई है और सदियों से हमसे अपने पैर पुजा रहा है तो यदि हम भी छेड़छाड़ के मामले को रेप का मामला दर्ज कराते हैं तो कोई गुनाह नहीं करते। आज नहीं तो कल चंदर को छोड़ना ही है, अधिक से अधिक दिन उसे जेल में रखा जाए, इसके लिए पैसा बहाया जाए तो कोई नुकसान नहीं है। ऐसे मौके बार-बार हाथ नहीं आते हैं।

पंडिताइन बिचारी तो इसी बात से आश्चर्यचकित हैं कि जेल में अपने घर का खाना खिलाने के लिए भी पैसे घूस देने पड़ते हैं! यह कैसी कानून व्यवस्था है कि अपने घर का ही खाना खाने के लिए पैसे लगते हैं। समझ में नहीं आता कि यही सिपाही तो अभी हम से पाँच सौ ले चुका है और अभी ही उसका बर्ताव कैसे बदल गया। वह यह भी

नहीं समझ पाती कि पानी के जैसा पैसा बहाया जाने पर भी चंदर इतने दिनों तक जेल में कैसे है? उसे अपने पति और भाई दोनों पर क्रोध आता है लेकिन वह करे तो क्या करे? धरमू पंडित जी जहाँ अपने बेटे को जल्द से जल्द जेल से रिहा करा लेना चाहते हैं। इसके लिए वे दूर के रिश्तेदार अर्थात बुआ की ननद की बेटी के पति सी.ओ. साहब से दरख्वास्त करते हैं कि वह इस मामले में व्यक्तिगत रूप से अपना ध्यान दें किंतु जब इस काम के लिये वे ठाकुरों के साथ गए तो उनकी बात नहीं बनी। अंततः स्वयं अपने दूर की रिश्तेदार के घर जाकर बुआ से उनकी ननद के घर का पता लेकर सी.ओ. साहब की पत्नी के नाम का पत्र लेकर और तीन किलो देसी घी लेकर जब सी.ओ. साहब के कोठरी पर पहुंचते हैं तो सी.ओ. की पत्नी उनकी दूर की रिश्तेदारी समझ जाती है और चंदर की रिहाई हो जाती है। इस रिहाई के बाद वह स्वयं को नेता मानने लगता है। कई दिनों तक कारावास में रहने के बाद उसका परिचय कई गुंडों, चोर-उचक्कों से भी हो जाता है। भाई जी से चंदर बदला लेने की सोचता है और एक दिन मौका पाकर जब वह भाई जी पर हवाई फायर कर डराना-धमकाना चाहता है तो गलतफहमी में मुन्ना (राजपतिया का भाई) चंदर पर प्रहार कर देता है, जिससे वह बेहोश हो जाता है। इसी बेहोशी में भाई जी के उकसाने से मुन्ना चंदर की नाक काट देता है।

मुन्ना के पिता पियारे को जब इस घटना का पता चलता है तो वह प्रसन्न होता है। वह अपने बेटे के द्वारा किये गये जुर्म को अपने सिर ले लेता है और जेल जाने में गौरव का अनुभव करता है क्योंकि पियारे की इच्छा कब से धरमू और चंदर से बदला लेने की थी। वह मुन्ना (अपने बेटे) को खबरदार करता है कि वह किसी भी हाल में उसकी जमानत न कराये। वकील के समझाने पर पियारे अपने वकील से कहता भी है कि 'नहीं वकील साहब सही है कि मैंने नहीं मारा लेकिन यह भी सही है कि मन ही मन जाने कितनी बार मारा है। बोटी-बोटी काट डाली है और आज जब 'जस' लेने का मौका आया है, कहते हैं इनकार कर दूँ?[9] जेल जाकर पियारे अपनी बड़ी बेटी सरस्वती पर जो कि इसी प्रकार के हादसे का शिकार हुई थी और आत्महत्या कर ली थी और सदियों से अपने पुरखों पर हो रहे अन्याय-अत्याचार का प्रायश्चित करना चाहता है कि उसने यह काम इतनी देरी से क्यों किया। सच्चे मायने में उन सभी का तर्पण करना चाहता है।

तर्पण भारतीय समाज में सहस्त्र सदियों से शोषित दलित और उत्पीड़ित समुदाय के प्रतिरोधों के परिवर्तन की कथा है। इसमें एक तरफ कई - कई हजार वर्षों के दुख अभाव और अत्याचार का सनातन यथार्थ है तो दूसरी तरफ दलितों के स्वप्नों-संघर्षों और मुक्ति चेतना की नई वास्तविकता। इस नई वास्तविकता के मानदंड भी नए हैं, पैंतरे भी नए और अवक्षेपण भी नये। जनता के समस्त जरूरी उपकरणों से समन्वय तर्पण दलित यथार्थ को अचूक दृष्टि सम्पन्नता एवं सरोकार के साथ अभिव्यक्त करता है।

संदर्भ :

१. तर्पण, शिवमूर्ति, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पटना-इलाहाबाद, संस्करण २०१०, पृ.९
२. वही, पृ.११
३. वही, पृ.१३
४. वही, पृ.१४
५. वही, पृ.१५
६. वही, पृ.१७
७. वही, पृ.२१
८. वही, पृ.८७
९. वही, पृ.९

सहायक प्राध्यापिका
एस.एम.आर.के.महिला महाविद्यालय
नाशिक

समकालीन हिन्दी कहानी में आदिवासी स्त्री

गुप्ता अशोक कुमार कृपानाथ

हजारों वर्षों की दासता और शोषण भोगकर भारतीय स्त्री की सामाजिक स्थिति में काफी सुधार आया है। आज समाज में उसकी स्थिति पहले की तरह दोयम दर्जे की नहीं रह गई है। अब स्त्रियाँ अपने अधिकारों को पहचानती हैं और अपने हक के लिए संघर्ष करती हैं तथा प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। ये सब एक दिन में नहीं हुआ और न ही किसी एक व्यक्ति के प्रयासों से हुआ। इसमें सावित्रीबाई फुले से लेकर महात्मा गाँधी और नवनिर्मित भारत से लेकर भारतीय संविधान तक का बराबर का योगदान है। इसके अतिरिक्त बहुत से सरकारी और गैर सरकारी संगठन स्त्रियों के अधिकारों, सुरक्षा, स्वास्थ्य आदि के लिए कार्यरत हैं। समय झ समय पर बनने वाले विभिन्न कानूनों और अधिनियमों, धारा ४९८, १६०, २२८ (ए), राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, सती प्रथा (निवारण) अधिनियम, दहेज प्रतिषेध नियमावली और दहेज प्रतिषेध अधिनियम, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न अधिनियम, राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति, महिला आरोग्य समिति से लेकर सन् २०१२ में निर्भया गैंगरेप के प्रतिरोध में हुए राष्ट्रव्यापी विरोध प्रदर्शन के उपरांत गठित जस्टिस वर्मा समिति तक के रिपोर्ट में महिलाओं के हक और अधिकारों के लिए निरंतर लड़ाई लड़ी गई है, तब जाकर उत्तरोत्तर उनके सामाजिक अस्तित्व और जीवन स्तर को ऊपर उठाया जा सका। किन्तु ठीक इसके विपरीत इसी देश में एक वर्ग आदिवासी स्त्रियों का भी है, उपरोक्त सारे अधिनयम और कानून इन पर भी लागू होते हैं। बावजूद इसके आदिवासी स्त्रियों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है।

भारत में आदिवासी महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों में सतत वृद्धि हो रही है। इस मामले में मध्य प्रदेश, झारखण्ड और उड़ीसा सबसे आगे हैं। 'राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो 2020 के आंकड़े के अनुसार इस तरह के मामले लगातार बढ़ते ही जा रहे हैं। देश में अनुसूचित जनजाति के लोगों के साथ अत्याचार के 8,272 मामले दर्ज किए गए, जो 2019 की तुलना में 9.3 प्रतिशत ज्यादा है। इस मामले में सबसे आगे मध्य प्रदेश है जहाँ कुल 29 प्रतिशत केस दर्ज किए गए। 'एनसीआरबी' के मुताबिक अदालत में आदिवासियों के खिलाफ अत्याचार के कम से कम 10,302 केस दर्ज हैं, जिन पर सुनवाई पूरी हुई लेकिन सजा होने की दर महज 36 प्रतिशत है।'[1] उपरोक्त आँकड़े बताते हैं कि आदिवासी स्त्रियाँ भी सदियों से शोषित होती रही हैं। यह अलग बात है कि भारतीय समाज और संस्कृति की तुलना में आदिवासी स्त्रियाँ आरम्भ से ही स्वतन्त्र, स्वच्छन्द और आत्मनिर्भर रही हैं लेकिन इसके बावजूद उनके अपने आदिवासी समाज में कुछ ऐसे नियम और कानून हैं जो स्त्री को पुरुष से कमतर आँकने के लिए बनाये

गये हैं, जिसकी मार्मिक अभिव्यक्ति समकालीन हिन्दी कहानी में हुई है। राकेश वत्स, मनीष राय, मेहरून्निसा परवेज, राजेन्द्र अवस्थी, संजीव जैसे प्रमुख कहानीकारों ने अपनी कहानियों में आदिवासी स्त्री के दुख-दर्द, तनाव, अस्तित्व के प्रश्न को, उनके संघर्ष को व्यक्त किया है।

मुख्यधारा का समाज आदिवासी स्त्री को मात्र मनोरंजन और भोग का साधन मानता है। उनकी नजर में आदिवासी स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं है। वह सामाजिक, आर्थिक और शारीरिक रूप से कमजोर और असहाय होती हैं, जिसकी पुष्टि यूनिसेफ (UNICEF) आदिवासी पोषण से संबंधित अपने एक सर्वे में करती है- '50 लाख गंभीर रूप से कुपोषित आदिवासी बच्चों के लगभग 80 प्रतिशत सिर्फ आठ राज्यों कर्नाटक, छत्तीसगढ़, गुजरात, झारखंड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और ओडिशा में रहते हैं।'[2] कुपोषण से उपजी उनकी शारीरिक कमजोरी, भोलापन और मासूमियत का मुख्यधारा का समाज गलत फायदा उठाता है। राकेश वत्स की कहानी 'अवशेष' में आदिवासी युवती जंगल में पिकनिक मनाने आये चार सम्पन्न व्यक्तियों को सूचित करने आती है कि उनका ड्राइवर दुर्घटनाग्रस्त हो गया है लेकिन उन्हें अपने ड्राइवर की चिन्ता नहीं है। वह सब शराब के नशे में मस्त हैं। शराब के नशे में खड़े गुप्ता जी ने उसे रोक लिया 'अ हु हु हु इस तरह से नहीं, अब आई है तो कुछ औरत जाति होने का फर्ज निभाती जाओ।'[3]

वे आदिवासी स्त्री को शराब पीने के लिए कहते हैं। इन सब बातों से स्त्री को उन लोगों की धूर्तता का पता चलता है। शर्मा जी की नजर में आदिवासियों की अहमियत शून्य थी। उनका मानना था कि आजादी से पहले ये आदिवासी स्त्रियाँ अपनी अस्मिता सस्ते में लुटा देती थीं और अब केवल कुछ सिक्कों के लिए। कहानी में तथाकथित सभ्य लोगों का मकसद पूरा नहीं हो पाता क्योंकि उसकी सोच के विपरीत आदिवासी स्त्री अपनी आत्मचेतना और अस्तित्व बोध के प्रति सजग एवं सर्तक है। औरत बिफरकर चीखी, 'नाहि हमारा मंगेतर को भान होगा ताँ वो तुम लोगन को कच्चा चबा डालेगा और उसने लम्बे-लम्बे काले नाखूनों वाले पंजे सांप के फनों की तरह फैला लिये।'[4] प्रस्तुत कहानी में राकेश वत्स ने मुख्यधारा के समाज की आदिवासी समाज के प्रति गलत धारणा को तोड़ा है और आदिवासी स्त्री की मान-सम्मान के साथ जीने की इच्छा को प्रकट किया है।

कहानीकार मेहरून्निसा परवेज का जन्म और बचपन आदिवासियों के बीच ही हुआ और गुजरा। उन्होंने आदिवासी समाज को बहुत करीब से देखा ही नहीं बल्कि उसे जिया भी है। इसलिए उनके साहित्य में आदिवासी समाज मौजूद है। उनकी पहली कहानी 'जंगली हिरनी' आदिवासी स्त्री पर आधारित है। मेंगन को जंगलों में लकड़ी तोड़ते समय एक अंग्रेज शिकारी उसकी इज्जत का शिकार करता है। उसे जब बेटी लच्छो पैदा होती है तो हूबहू वह अंग्रेज शिकारी की तरह होती है। मेंगन के पति को

भी शक होता है। बुधु बड़बड़ाता है, 'न जाने कहाँ से आ मरते हैं खुले साँड की तरह हमारी इज्जत लूटने! मैं देखता उसे तो टँगिया से एक बार में ही काट देता।'[5] लेकिन वह लाचार है। लाचार इसलिए है क्योंकि सरकारी रिपोर्ट के मुताबिक आदिवासियों पर होने वाले बलात्कार केस में ८३% आरोपी बरी हो जाते हैं- 'एनसीआरबी की हालिया रिपोर्ट साल 2015 - 2017 के आंकड़ें पुलिस की जांच पर सवाल खड़े कर रहे हैं। इस रिपोर्ट के मुताबिक मध्यप्रदेश में आदिवासी महिलाओं से बलात्कार करने वाले 83 फीसदी अपराधी बाइज्ज्त बरी हो जाते हैं।'[6] प्रेम भी आदिवासी स्त्री के हिस्से में ठग बन कर आता है, जिसके द्वारा आदिवासी स्त्री का दोहरा शोषण हो रहा है। इसी कहानी में लच्छो जब बड़ी होती है तो उसे बस्ती में स्कूल चलाने आये मास्टर से प्यार हो जाता है। लच्छो सपने देखती है। अपने भविष्य को लेकर मास्टर से खूब बातें करती हैं। मास्टर भी उससे शादी करने का वादा करता है लेकिन स्कूल बंद होने के कारण मास्टर भी शहर चला जाता है और लच्छो अकेली रह जाती है। जो पीड़ा मेंगन भोग चुकी है, वही पीड़ा उसकी बेटी के भाग्य में भी आ जाती है। वहीं मेहरून्निसा परवेज की दूसरी कहानी 'कानीबाट' में दुसेला नामक आदिवासी स्त्री अपने ही समाज के एक लड़के से प्यार करती है लेकिन वह उसे छोड़कर किसी दूसरी युवती से शादी कर लेता है। मेहरून्निसा परवेज ने जहाँ पहली कहानी में मुख्यधारा के पुरुष द्वारा भोली भाली आदिवासी स्त्री को प्यार में फंसा कर झूठे वादे करते हुए चित्रित किया है वहीं दूसरी कहानी में आदिवासी स्त्री का अपने ही समाज में शोषण होते हुए दिखाया है। इस प्रकार स्त्रियाँ दोहरी शोषण की मार झेलती हैं।

मनीष राय की कहानी 'शिलान्यास' जिसमें एक सीधी साधी आदिवासी युवती के दोहरे शोषण की मार्मिक कथा है। प्रस्तुत कहानी में एक जज आदिवासी स्त्री से शादी कर पहले तो उसका शोषण करता है फिर यह कहकर चला जाता है कि वह लौटकर आयेगा लेकिन वह फिर कभी वापस नहीं आता। स्त्री इन्तजार करती रहती है। उसे एक बेटा भी होता है, जिसके कारण गांव के लोग और पंचायत उसे कुलटा कहकर गांव से निकाल देते हैं। एक दिन जज उसी इलाके में किसी मंदिर का उद्घाटन करने आता है और आदिवासी स्त्री अपने लड़के सोमू के साथ जज को मिलने जाती है तो वह पहचानने से इन्कार कर देता है। अपनी माँ के अपमान को सोमू भूलता नहीं है और वह जज की हत्या कर देता है। पुलिस और प्रशासन उस पर नक्सली होने का आरोप लगा कर मौत की सजा दिलाते हैं। अतः आदिवासी स्त्रियाँ मुख्यधारा के पुरुषों पर विश्वास कर अपना सब कुछ गंवा देती हैं।

अरुण प्रकाश की कहानी 'बेला एक्का लौट रही है' में आदिवासी युवती के संघर्ष का चित्रण है। बेला कड़ी मेहनत से उच्च शिक्षा प्राप्त करती है और उसकी एकमात्र इच्छा है एक अच्छी नौकरी प्राप्त करना जिससे वह अपना और अपने परिवार की स्थिति को सुधार सके। उसे आदिवासी इलाके से दूर बेगूसराय के पास एक स्कूल में नौकरी

मिलती है तो वह बहुत खुश हो जाती है लेकिन बेला की यह खुशी ज्यादा दिन की नहीं होती क्योंकि उसे नौकरी ज्वाइन करते ही पता चलता है कि कम्पनी के जन कल्याण अधिकारी जगदीश सिंह वहाँ की सारी अध्यापिकाओं के साथ असामान्य बर्ताव करता है। यही व्यवहार बेला के साथ होता है। वहाँ का चपरासी तक बेला से भद्दे मजाक करता है। वह चीफ कमिश्नर आफ शिड्यूल्ड कास्ट एण्ड ट्राइब्स से शिकायत करती है, पर जांच कमेटी के सामने सारी अध्यापिकाएँ कल्याण अधिकारी के डर से अपना मुंह नहीं खोल पाती हैं। बेला एक्का इन विषम परिस्थितियों का सामना नहीं कर पाती हैं और नौकरी छोड़ने का फैसला कर लेती है। कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न से परेशान होकर आत्महत्या करने वाली या नौकरी छोड़ने वाली बेला अकेली नहीं है। वह पूरे भारत का प्रतिनिधित्व कर रही है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की रिपोर्ट बताती है कि हर वर्ष भारत में कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न के करीब एक लाख मामले आते हैं, जिसमें ३० फीसदी आदिवासी महिलाओं के साथ होते हैं और उत्पीड़क 93.1 फीसदी आरोपी करीबी ही होते हैं। बेला एक्का की यह विवशता, पूरे आदिवासी समाज की स्त्री की विवशता बन कर लक्षित हुई है। विकास की प्रक्रिया और मुख्यधारा में शामिल होने की चाह में आदिवासी समाज और विशेषकर आदिवासी स्त्री को कई प्रकार की मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। अनुसूचित जनजाति के नाम पर जो आरक्षण आदिवासी समाज को मिल रहा है। वह मुख्यधारा के समाज को मंजूर नहीं है। यह समाज नहीं चाहता है कि कोई भी पिछडा.वर्ग मुख्यधारा में शामिल हो इसलिए आदिवासी लोग मुख्यधारा में आने के बाद भी उपेक्षित, तिरस्कृत और शोषण की प्रक्रिया से गुजरते रहते हैं।

ठीक इसी प्रकार से संजीव की कहानी 'दुनिया की सबसे हसीन औरत' में आदिवासी स्त्री के जीवन-संघर्ष को दशार्ती है। जो सब्जियां बेचकर अपना गुजारा करती है। उसकी सबसे बड़ी समस्या उसका आदिवासी होना है क्योंकि ट्रेन में सब्जियां ले जाने के दौरान टी.टी., पुलिस और अन्य यात्री उसे परेशान करते हैं और मुफ्त में उसकी सब्जियां उठा लेते हैं। वह चुपचाप बिना कुछ कहे-सुने अपने सारे दुःखों को पी जाती है- 'रो रहा है हम अपन नसीब पे। आज हमरा साथ कोई मरद होता, पैसा होता, रोब होता तो पांच-दस थमा के हमहू इज्जतदार बनल रहता। ऐसे का इज्जत है हमरा? हम बजारू है।'[7] वहीं शंकरलाल मीणा 'कहानी के बाहर की औरत' नामक कहानी में एक ऐसी आदिवासी युवती के यथार्थ को चित्रित करते हैं जो मुख्यधारा के समाज में शामिल होने के बाद भी अपनी परम्परा, संस्कृति को भुला नहीं पाती और मुख्यधारा में अपने को अनफिट महसूस करती है।

जहाँ मुख्यधारा का समाज आदिवासी स्त्री को वस्तु समझता है, उसका शोषण करता है, वहीं आदिवासी समाज में बहुपत्नी प्रथा और डायन प्रथा जैसे कारणों से आदिवासी स्त्रियों का शोषण होता है। आदिवासी समाज में बहुपत्नी प्रथा आरम्भ से ही

रही है जहाँ पुरुषों को एक से अधिक शादी करने की छूट है और आज भी कई जगहों पर यह प्रथा कायम है। मेहरून्निसा परवेज की कहानी 'टोना' में आदिवासी स्त्री अपनी बेटी खोड़ी की शादी ऐसे पुरुष से करती है जिसकी पहले से दो पत्नियाँ हैं और खोड़ी से उसकी यह तीसरी शादी है। बहुपत्नी प्रथा के अलावा आदिवासी समाज में डायन प्रथा भी प्रचलित है जिसमें आदिवासी स्त्री को डायन बताकर उसकी हत्या, सम्पत्ति हड़पना और बलात्कार जैसे कार्यों को अंजाम दिया जाता है। रोज केरकेट्टा की कहानी 'भंवर' में औरत को सम्पत्ति से अलग रखने के लिए डायन प्रथा को एक हथियार के रुप में प्रयोग किया गया है। डायन बताकर मार डालना या प्रताड़ित करना, उनकी सम्पत्ति छीन लेना आदिवासी समाज में आम है। वर्तमान में जिस देश की राष्ट्रपति आदिवासी स्त्री हो, उसी आदिवासी समाज में अन्धविश्वास की जड़ इतनी गहरी है कि झारखण्ड पुलिस के आंकड़ों के अनुसार 'वर्ष २०१५ से २०२२ के अप्रैल महीने तक डायन - बिसाही के नाम पर २७५ लोगों की हत्या कर दी गई। इस अवधि में डायन - बिसाही से जुड़े कुल ४६९० मामले राज्य के विभिन्न थानों में दर्ज किये गए।'[8] सबसे त्रासद बात ये है कि ये हत्याएँ गाँव वालों ने एकमत और एकजुट होकर किये। यह सब आदिवासी स्त्रियाँ को भुगतना पड़ रहा है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि स्त्री चाहे मुख्यधारा की हो या आदिवासी हो उसकी यही नियति है कि वो जियेगी पुरुष के जूते के नीचे और मरेगी भी पुरुष के जूते के नीचे ही। रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि, 'आदिवासी स्त्रियाँ अन्याय के प्रति सदियों से जूझती आ रही हैं और आज भी लड़ रही हैं। बातें कहने को तो बहुत हैं। आदिवासी स्त्रियों की व्यथा की, जो आज तक अनकही रही हैं, पर अब वे खुद बोलने लगी हैं। आदिवासी समाज भी जग रहा है। वह संगठित होकर इस भेदभाव के खिलाफ आवाज भी उठा रहा है। इसके लिए जरूरी है सरकार और समाज का सक्रिय सहयोग।'[9] एक पूर्वाग्रह बना हुआ है कि आदिवासी समाज भले ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान में मुख्यधारा से पिछड़ा हो किंतु आदिवासी स्त्रियाँ आरम्भ से ही स्वतन्त्र और स्वच्छन्द रही हैं। चाहे प्रेम एवं वर चयन की स्वतंत्रता हो या फिर उत्सवों आदि में स्त्री की प्रमुखता, आदिवासी स्त्रियाँ आरम्भ से ही आत्मनिर्भर रही हैं। वह पुरुष के बराबर मेहनत कर अपने परिवार का भरण पोषण करने में सक्षम हैं, फिर भी शोषण के मामले में वो एक आम भारतीय स्त्री की ही तरह ही अभिशप्त हैं।

संदर्भ :

1. प्लेसमेंट-एजेंसी पर बड़ी कार्रवाई, 10 को बचाया, ऐसे केस में उम्रकैद तक की सजा Placement-agencyls human traf cking racket busted, 10 saved, life imprison - ment in such a case - Dainik Bhaskar
2. आदिवासी पोषण, डूपल India (unicef.org)
3. वत्स राकेश, इन हालात में, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, २००५, पृ.९६.

4. वत्स राकेश, इन हालात में, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, २००५, पृ.९८.
5. परवेज मेहरुन्निसा, मेरी बस्तर की कहानियां, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, २००६, पृ.२३०.
6. 83 percent acquitted in rape case आदिवासी महिलाओं से बलात्कार के मामले में छूट जाते हैं 83 फीसदी लोग Patrika News
7. संजीव, दुनिया की सबसे हसीन औरत, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, १९९३, पृ.१४७.
8. https://www.etvbharat.com/hindi/jharkhand/city/ranchi/witch-evil-practice-is-hindrance-in-development-of-tribal-society/jh20220630124142844844749
9. गुप्ता रमणिका, आदिवासी अस्मिता का संकट, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, २०१३ पृ.८२.

-सहायक प्राध्यापक
रामनिरंजन झुनझुनवाला महाविद्यालय (स्वायत्त)
घाटकोपर (पश्चिम)

आदिवासी जीवन की संघर्ष गाथा 'जंगल जहां से शुरू होता है'

डॉ. चंपा शिवदत्त मासीवाल

समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन को केंद्र में रखकर लिखे गए उपन्यासों की भरमार हैक शिवप्रसाद सिंह का शैलूष, संजीव का पांव तले की दूब, सावधान नीचे आग है, जंगल जहां शुरू होता है, धार, राजेंद्र अवस्थी का जंगल के फूल, जाने कितनी आंखें, सूरज की छांव मैत्री पुष्पा का अल्मा कबूतरी, राकेश वत्स का जंगल के आसपास, हिमांशु जोशी का कगार की आग, मृणाल पांडे का देवी, चंद्रकांता का कथा सतीसर और श्रीप्रकाश मिश्र का जहां बांस फूलते हैं, मनमोहन पाठक का गगन घटा घहरानी, तथा तेजिंदर का काला पादरी जैसे कई उपन्यास हैं जो आदिवासियों के जीवन को विषय बनाकर लिखे गए हैं। इनमें आदिवासियों के जीवन का आचार-विचार, व्यवहार, संस्कृति और उनके अभावपूर्ण जीवन पर लिखे गए हैं। संजीव हिंदी कथा साहित्य के सातवें-आठवें दशक के ऐसे कथाकार हैं, जिन्होंने कथा जगत को नया मोड़ प्रदान करके साहित्य में अपनी अलग पहचान बनाई है। विचारों से प्रगतिशील जनवादी होने के नाते उनकी हमेशा से शोषितों, पीड़ितों और उपेक्षितों के प्रति रही है। उनके उपन्यासों में 'जंगल जहां शुरू होता है' उपन्यास में उपन्यासकार ने आदिवासी समाज की विभिन्न समस्याओं तथा आर्थिक अभाव द्वारा शोषण ठेकेदारों एवं पुलिस द्वारा शोषण, अंधविश्वास, नारी-शोषण आदि के माध्यम से आदिवासी समाज की विभिन्न समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने अपनी रचनाधर्मिता के साथ-साथ सामाजिक प्रतिबद्धता का निर्वाह करते हुए आदिवासी समाज का यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यासकार का आदिवासियों के प्रति गहरी संवेदनशीलता पाठक के मन मस्तिष्क को गहरे तक स्पर्श करती है। शोषण के चक्रों में फँसे इन आदिवासियों के मन में चेतना का स्वर प्रस्फुटित करना ही संजीव जी का मुख्य उद्देश्य रहा है।

संजीव रचित उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें भारत-नेपाल सीमा पर स्थित घने वनों में रहने वाले थारू आदिवासियों का वर्णन किया गया है। थारुओं ने अंग्रेजों की गुलामी को कभी स्वीकार नहीं किया था। इसलिए अंग्रेजों ने इन्हें चोर डाकू आदिवासी बना दिया है। इस उपन्यास में एक ईमानदार पुलिस अधिकारी कुमार का साला थारू आदिवासियों से रूबरू होता है, तो उससे इनके अनैतिक कामों का पता चलता है। ईमानदारी के साथ कुमार लोगों को पकड़ना चाहता है किंतु भ्रष्ट शासन तंत्र में सभी के सामने मुख्यमंत्री द्वारा उसका अपमान किया जाता है। कुमार को ऑपरेशन ब्लैक पाइथन के अंतर्गत पश्चिमी चंपारण में पुलिस उप अधीक्षक नियुक्त किया जाता है, जिसका सामना काली और परशुराम जैसे डाकुओं से होता है

जो महिलाओं को बेचने का काम करते-करते हथियार बेचने लगते हैं। इस उपन्यास में पुलिस व्यवस्था पर करारा प्रहार किया गया हैकपुलिस थारुओं- आदिवासियों को मार-मार कर उन्हें डाकू बना देती है, तथा उन्हें विद्रोही बताकर उनका एनकाउंटर करवा देती है। पुलिस वालों के लिए काली के मन में जो गुस्सा भरा है, वह कुमार इस प्रकार व्यक्त करता है - 'अव्वल तो मुकदमा चलेगा ही नहीं। एनकाउंटर के नाम पर मार कर फोटो खिंचवाने का शौक हो तो अलग बात है। दूजे मुकदमे और सजा के बाद मेरी जाति नहीं बदल जाएगी हालात नहीं बदल जाएँगे। मैं फिर उसी दलदल में सड़ूंगा।'[1]

आदिवासियों में अशिक्षा के कारण अंधविश्वास इस कदर फैला हुआ है कि उन्हें उनकी बात ही सही लगती है। उससे अलग हटकर वह हमेशा नहीं सोचना चाहते हैं। जंगल से आवाजें आने पर कुमार का नौकर पार्वती कहता है कि -'हजूर वनस्पति देवी हैं, भटक रही हैं। डाकुओं की देवी हैं। कभी कोई रूप धर लेती हैं, कभी कोई और ऊ दिन भी ऊ लड़की -लड़की थोड़े ही थे, उन्हीं की माया थी। आंखों पर पर्दा में डाल देती हैं मैया।'[2]

वैसे तो आदिवासियों में सामान्यतः छुआछूत को नहीं माना जाता है लेकिन इस उपन्यास में धर्मों में छुआछूत को बताया गया है। जब इस्लाम सबके साथ बैठकर चाय पी रहा होता है तब परेमा कहता है - 'एक पेड़ की छांव में इस्लाम बैठकर दोनों में चाय छिड़क रहे थे। मियां हैं। बर्तन छुआ जाएगा तो फेंकना पड़ेगा। एक पल को ठिठकता है, परेमा, अरे तिवारी, अब से चाचा के लिए एक ठो परमानेंट बर्तन का जुगाड़ रखवाओ'।[3]

इसमें थारू आदिवासी महिलाओं की स्थिति को दयनीय बताया गया है, जो अपने पतियों की वजह से देह व्यापार में लिप्त हो जाती हैं। उन्हें एक वस्तु समझा जाता है। कोई भी उनसे अपना मन बहला सकता है। महिलाओं को बेचने के लिए यह किसी भी हद तक जा सकते हैं। पुरुषों के लिए रिश्तों का कोई मोल नहीं होता। इस उपन्यास में महिलाओं की स्थिति का मार्मिक चित्रण किया गया है। दुख की बात तो यह है कि एक औरत ही दूसरी औरत के शोषण के लिए जिम्मेदार होती है। ये महिलाएँ झाड़-फूँक करने वाली या चुड़ैल हरण बनकर गाँव में जाती हैं और औरतों को बहला-फुसलाकर ले आती हैं बेचने के लिए। संजीव दिखाते हैं कि आदिवासी स्त्री की इज्जत इस कदर जार-जार हो गयी है कि एक सवर्ण जाति की महिला एक निम्न जाति की महिला की इज्जत के साथ खेल सकती है। संजीव ने यहाँ इसका चित्रण कर समाज के कटु सत्य को प्रमाणित किया है। 'पांड़े और पंड़ाइन ने उस औरत को हाथों से पकड़ रखा था और पांड़े का साला उसे दबोचे हुए था। बाप रे ! क्या एक औरत खुद अपने सामने एक दूसरी औरत का बलात्कार करा सकती है ?'[4]

संजीव ने इस उपन्यास में थारू जनजाति के वात्सल्य प्रेम का सजीव चित्रण किया है। थारू जनजाति वात्सल्य-प्रेम में किसी भी दृष्टि से अपने को उन मजबूत, बड़ी

जातियों से कमजोर नहीं पाती। अपने बच्चों से वह उतना ही प्यार करती है, उनके मर जाने पर परिवार वालों को उतना ही दुःख होता है जितना कि अन्य लोगों को। बिसराम बहू की बड़ी लड़की दुलारी के मर जाने पर जब गाँव के लोग उसे गंडक नदी में प्रवाहित करने के लिए ले जाते हैं तो वह करुण क्रंदन करते हुए अपने आप को रोक नहीं पाती। सामान्यतः भारतीय परम्परा में स्त्रियाँ घाटों पर नहीं जाया करतीं, पर यह उसका वात्सल्य प्रेम ही था जो उसको गंडक नदी ले जाता है, जो यह दिखाता है कि जनजातियों में वात्सल्य-प्रेम पराकाष्ठा पर होता है।

राजनीति का अपराधीकरण और उसमें पुलिस की भूमिका एक तरह से इस उपन्यास का केन्द्रीय मुद्दा है। इस जंगल में राजनीति करने वाले भी अछूते नहीं हैं। वे इस जंगल के ऊपर अपना राजनीतिक साम्राज्य फैलाए हुए हैं। डाकू का उनके घर आना-जाना ही नहीं होता बल्कि वे उनके समारोह में भी शरीक होते हैं। इस क्षेत्र के सांसद दुबे जी केन्द्र में मंत्री हैं। उनकी बेटी के विवाह में चारों जोन के पुलिस अधिकारी तो वहाँ हैं ही, बिन्द्रा, गोकुल और परसा-परशुराम जैसे नामी-गरामी डाकू भी दुबे जी के राजनीतिक संरक्षण के कारण वहाँ पहुँचते हैं। चुनाव में उनके सक्रिय सहयोग से ही अन्य राजनीतिकों की तरह दुबे जी भी संसद और मंत्रिमंडल तक पहुँचते रहे हैं। पिछले चुनाव में इन लोगों ने एक लाख रुपया इकट्ठा कर के पार्टी फण्ड में दिया था। दुबे जी की पत्नी भी इन डाकुओं की आवभगत और देख-भाल में लगी हैं। ये बेटी की शादी में ढेर सारी सौगात लाए हैं। अब दुबे दम्पति के सामने मुख्य समस्या है कि पुलिस अधिकारियों से इन डाकुओं को बचा कर कैसे सब कुछ किया जाय। दुबे जी गुस्सा हो कर कहते हैं कि ये सब यहाँ क्या करने आए हैं? तब दुबे जी की पत्नी कहती हैं - 'का करने? अरे बिटिया का बियाह है, बोले पाँव पूजने आए हैं, पाँव पूज कर चले जाएँगे। चार बोरा बासमती चावल, दू कनस्टर घी, दू कनस्टर सरसों का तेल, चार कुंटल चीनी, पचीस-पचीस हजार रुपैया, दस-दस थान सोने का गहना! बोले मलिकाइन घबराइएगा तनिको नहीं, जो भी लगेगा, सिरिफ बता-भर दीजिए.. चिरई का दूध भी कहें तो..!'[5] डाकू जिनसे नेता जी सहयोग लेते हैं पर उनके साथ अपना नाम जुड़ने से डरते हैं।

जनजातियों के प्रति सामाजिक भेद-भाव जात-पात, धर्म सम्प्रदाय के नाम पर भोली-भाली जनजातियों के बीच आपस में जहर घोला जा रहा है। संजीव ने इस पर कटाक्ष किया और दिखाया कि किस प्रकार हमारे सामाजिक जीवन की विषमताएँ ही इस समस्या का सबसे बड़ा बीज हैं, जो आज एक वृहद-वृक्ष का आकार ले चुकी हैं और इस वृक्ष को सींचने का काम गरीब एवं मजबूर जनता के खून से किया जा रहा है जिस पर लगने वाले फल को ये पूँजीपति एवं गंदी राजनीति करने वाले राजनेता खाते हैं। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास इन्हीं समस्याओं के बीच आकार लेता है।

शोषकों के फैलते अत्याचार ने जनजातीय लोगों से उनके श्रम का उचित मूल्य माँगने का अधिकार तक भी छीन लिया है। इस उपन्यास का दूसरा व गौण नायक काली

है जिसकी मेहनत की कमाई देने में ठेकेदार कतराता है। दूसरी तरफ ये लोग डाकुओं की आव-भगत में उनको नोटों का बंडल दिया करते हैं जिससे वे अपने को सुरक्षित रख सकें। ऐसी दशा देख कर काली के मन मे डाकू बनने की इच्छा होती है-'सुन्नर पांड़े के यहाँ बेगार खटा, मुफ्त में! भलमनसाहत बनी इनकी! पैसा माँगा तो टके-सा जवाब, इतनी जल्दी-जल्दी माँगने लगे तब तो हम दे चुके! कुछ भी मिल जाता तो..! पैसा है कहाँ काली को सब कुछ याद आया..! हक की कमाई माँगने पर ठेकेदार के पास पैसे नहीं है और हराम की कमाई डकारने वाले दुराचारी लुटेरे परशुराम के लिए पन्द्रह हजार! आग घुल रही है काली के मन में..'[6] शोषकों के अत्याचार ने जनजातीय समुदाय के व्यवहार एवं चरित्र को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस प्रकार जनजातियों के मन मे डाकू बनने की इच्छा होती है। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास का एक पात्र काली इसी तथ्य को चरितार्थ करता है।

थारू जनजाति के प्रति प्रचलित अनेक पूर्वाग्रहों को संजीव रचनात्मक स्तर पर तोड़ते हैं। उनकी स्त्रियों के बारे में आम धारणा है कि वे अधिक निर्बन्ध और कामुक होती हैं और मर्द अधिकतर जनाना। यही कारण है कि ये औरतें अपने लिए पूरा मर्द खोजती हैं जो उन्हें प्रायः अपने समुदाय के बाहर ही मिलता है। इसलिए दूसरे समाजों के पुरुषों के लिए वे न सिर्फ बेध्य होती हैं, उनसे मिलकर एक संकर समाज की रचना भी करती हैं। बिसराम बहू और मलारी के आधार पर संजीव इस प्रचलित धारणा को तोड़ते हैं। संजीव बेशक उस समाज का हिस्सा नहीं थे लेकिन अपने सुदीर्घ प्रवास या फिर लम्बे समय तक उनके बीच अपने सांस्कृतिक-राजनीतिक कार्य के आधार पर लगभग उस समय का हिस्सा जैसा बनकर उसकी जीवन शैली, लोक-पर्वों एंव रीति-व्यवहार का सघन अंकन करते हैं। आदिवासी लोकगीत की छटा भी इस उपन्यास में दिखाई पड़ती है

'के अनिहे सुहानारी, के अनिहे कंगना, / कि के अनिहे कंगना,/
हो के अनिहे कंगना,/ से के अनिहे... हिरदिया दरपनवा/ के अनिहे..../
हमर बलमवा अनिहे हिरदियां दरपनवा.....'[7]

इस प्रकार इस उपन्यास में थारू आदिवासियों के जीवन को चित्रित किया गया है। साथ ही साथ उनके लोकगीत अंधविश्वासों, छुआछूत, महिलाओं की स्थिति, पुलिस प्रशासन का रवैया आदि बातों की भी जानकारी मिलती है। संजीव इस समाज को सहानभूति एवं हार्दिक संवेदना से देखते और अंकित करते हैं। राजनीति एवं प्रशासनिक स्तर पर सक्रिय गंठजोड़ किस तरह इस समय के जीवन को भयावह और बोझिल बनाता है, संजीव की केन्द्रीय चिन्ता यही है। संजीव रचनात्मक स्तर पर उनकी संघर्ष-चेतना को वाणी देते हैं और उनके संघर्ष में वहीं उनके साथ खड़े दिखाई देते हैं।

सन्दर्भ :

१. संजीव : जंगल जहाँ शुरू होता है, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. सं. १३९
२. वही पृ. सं.२१
३. वही पृ. सं. ७९
४. वही.पृ. सं 92
५. वही, पृ. सं.34.
६. वही, पृ. सं. 93.
७. वही पृ. सं. १७

सहायक प्राध्यापिका (पी. जी. विभाग)
श्री एम.डी.शाह महिला कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड कॉमर्स, मलाड, मुंबई

हिंदी साहित्य : दलित नारी की स्थिति

डॉ. उर्मिला सिंह

दलित साहित्य का अर्थ दलितों को केंद्र में रखकर लिखित साहित्य है। दलित शब्द एक जन समुदाय के लिए है, जो सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्तर पर दबाया एवं कुचला गया है और इस शब्द का साहित्य से जुड़ना, इस पूरे वर्ग का साहित्य से जुड़ना है। यह साहित्य उन तमाम लोगों की खुले तौर पर वकालत करता है, जो दलित हैं। इस वर्ग की नारी और सामान्य वर्ग की नारी में काफी अंतर होता है। सामान्य नारी कुछ भावनाओं के आधार पर सुख भोग सकती है, परंतु दलित स्त्री सदा समस्याओं का शिकार बनी रहती है। विवाहित दलित नारी की बात करें तो उसके जीवन की कहानी कुछ अलग ही है। वह अपने घर के सारे काम निपटा कर मजदूरी करने जाती है। वहाँ कई बार उसके साथ शोषण होता रहता है और न चाह कर भी उसे काम पर सिर्फ इसलिए टिके रहना पड़ता है क्योंकि पति पियक्कड़, कामचोर है और यदि वह काम छोड़ कर चली जाएगी तो रात का चूल्हा नहीं जलेगा। बच्चे भूख से तड़पेगें। इसलिए वह शोषण सहती रहती है।

शोषित वर्ग को जान-बूझ कर शक्तिहीन, अर्थहीन एवं मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है। यह वर्ग सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़ा हुआ है। इसे स्वाभिमान और चेतना से जर्जर करके रखा गया है। यह शोषण की परंपरा प्राचीन काल में आरंभ होकर समय के साथ-साथ अपना रूप बदलती हुई आज भी किसी न किसी रूप में मौजूद है। हमारे दलितों को आशा थी कि देश के स्वतंत्र हो जाने के बाद वे आप खुली हवा में सांस ले सकेंगे। सुख का जीवन यापन करेंगे और समाज उन्हें आर्थिक अधिकारों से वंचित नहीं रखेगा। लेकिन उनका यह सपना आजादी के 75 वर्ष बाद भी पूरा नहीं हो सका। दलितों में भी महिला दलित की स्थिति और भी सोचनीय है। हिंदू समाज व्यवस्था ने दलित नारी को बहुत वेदना पहुंचाई है। काम करने वाली दलित नारी की स्थिति साधारण दृष्टिगत होती है। दलित नारी कितनी भी पढ़ी-लिखी रहे, उसके साथ सदा जातिगत भेदभाव होता आया है। वह कितनी भी कर्मठ रहे, कितनी भी होशियार रहे, अपने कामों में कितनी भी कुशल बनी रहे, लेकिन उसे सामान्यतः सम्मान की नजरों से नहीं देखा जाता है।

हिंदी दलित साहित्य में अभिव्यक्त नारी की समस्या :

हिंदी में 1980 के बाद दलित लेखको द्वारा रचित अनेक आत्मकथानक प्रकाश में आए। 1999 में दलित पत्रिका का प्रकाशन हुआ, इसके बाद दलित उपन्यासों की रचना हुई। इतना ही नहीं हिंदी साहित्य का दलित विमर्श की दृष्टि से पुनर्पाठ भी आरंभ हुआ। सरस्वती में प्रकाशित (1914 में) हीरा डोम की कविता, 'अछूत की शिकायत' को दलित हिंदी साहित्य की प्रथम रचना के रूप में स्वीकृति मिली। दलित स्त्री आन्दोलन

और उसके मुद्दों को लेकर जो सशक्त और क्रांतिकारी लेखन किया जा रहा है, उसमें अनिता भारती का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। अभी हाल में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'समकालीन नारीवाद और दलित स्त्री का प्रतिरोध' सवर्ण स्त्री और पुरुष लेखन के साथ-साथ सामान्य दलित लेखन का एक जोरदार और क्रांतिकारी प्रतिकार है, यह उस साहित्य और लेखन की तरफ भी हमारा ध्यान आकर्षित करती है, जिसमें अभी तक दलित स्त्री के प्रश्न, मुद्दे और उसकी अस्मिता तथा अस्तित्व एक सिरे से नदारद था।

'एक टुकड़ा इतिहास' उपन्यास की नायिका चनुली दलित वर्ग से संबंधित डोम जाति की है। आठवीं कक्षा तक पढ़ी हुई सुंदर सुशील कन्या के रूप और यौवन पर मुग्ध होकर एक ब्राह्मण युवक कांतमणि उसे अपने घर ले जाता है। इसके साथ ही उसकी ओर चनुली की सामाजिक प्रताड़ना का अध्याय आरंभ हो जाता है। इसी प्रकार 'एक अकेला' उपन्यास में एक दलित युवती सरस्वती जब जिलाधीश बनकर आती है तो गांव के ठाकुर जो स्वयं जाहिल एवं गवार हैं, एक उच्च शिक्षित एवं प्रशासनिक सेवक महिला के प्रति भी अपमानजनक शब्द का व्यवहार करते हैं- 'सुना है चिमट्टी है।' '... चिमट्टी भले ही हो, है तो कलेक्टर' यूं समझो कि सूअरनी के शरीर पर सुरसती की फोटो चिपकी है।'

दोहरा अभिशाप की लेखिका कौशल्या ने लिखा है कि 'जीवन भर जो दुख मिला है उसमें कोई सवर्ण जाति नहीं बल्कि अपने ही थे जो उन्हें दुख देते रहे थे। दलितों के अंतर्विरोध पर लेखिका लिखती हैं- 'मांग जाति के लोगों से महार लोग छुआछूत बरतते थे। उनके हाथ का छुआ पानी और खाना फेंक देते थे।' सुशीला टाकभौरे जी नीला आकाश के मनोगत में लिखती हैं -'नीला आकाश मेरे मन का आकाश है- जहां मेरे विचार, मेरी भावनाएं और मेरी अपेक्षाएं मुखरित हैं। 'नीला आकाश' की कथावस्तु दलित जीवन का यथार्थ है। यहां सवर्णों के षड्यंत्र के साथ दलितों के शोषण, उत्पीड़न और अभाव पूर्ण जीवन का चित्रण है। अभी भी दलितों को शिक्षा से वंचित रखे जाने के षड्यंत्र चलते रहते हैं, तब बीसवीं शताब्दी के 60 और 70 के दशक की स्थिति को प्रमाणित रूप में समझा जा सकता है।'

इस उपन्यास के माध्यम से वे समस्त दलित जातियों में एकता लाना चाहती हैं। इस उपन्यास में कुछ दलित जातियों का उदाहरण देते हुए लेखिका बताती है-' यहां मातंग और वाल्मीकि जाति की एकता का उदाहरण दिया है। इसी प्रकार चमार, महार, खटीक सभी दलित जातियां एकता और प्रेम के साथ संगठित होंगी तो बड़ी ताकत बनेगी। महार और चमार दलित जातियों का कर्तव्य है कि वह अन्य पिछड़े दलित जातियों को अपना सहयोग देकर, उन्हें भी समकक्ष आने के अवसर प्राप्त करने दें।' इस उपन्यास के मुख्य पात्र नीलिमा और आकाश हैं। इनके इर्द-गिर्द ही कहानी घूमती है। यह कहानी महाराष्ट्र के देहात की कहानी है। एक बार गांव में दलित जाति के लोग अंबेडकर जयंती मनाने की तैयारी करते हैं। कुछ लोगों की ओर से बाधा आती है, तब मातंग समाज के लोग

इनका साथ देते हैं। सभी मिलकर 'भीम जयंती, मनाते हैं। भीकुजी मोरे शादी ब्याह में बाजा बजाते हैं। महंगाई बढ़ गई है, खर्च चलाना मुश्किल हो रहा है। तब पत्नी चंद्री कहती है-' बेटा पढ़ लिख कर कमाएगा तब भीकुजी बोले वह अभी से कहां नौकरी करेगा, अभी तो वह बच्चा है। मैट्रिक के बाद कॉलेज पढ़ेगा। अपने समाज के नेता बनसोडे जी कह रहे थे, हमारे बच्चों की फीस माफ रहती है। एडमिशन में भी अधिक खर्चा नहीं होता। बाद में स्कॉलरशिप भी मिलेगी।' इस तरह आशावादी बनकर बच्चों का भविष्य बनाने में लगे रहते हैं।

बाला दुबे का उपन्यास 'मकान दर मकान, भारतीय समाज में व्याप्त अलगाव, अन्याय, तथा पाखंड के चित्र प्रस्तुत करता है। 'रतनगढ़ हाउस' के नाम से प्रसिद्ध भूतों वाले विशाल बंगले के राजा का प्रेम बिजना नामक डोमिन से हो जाता है। डोमिन जब अपने गर्भ में पल रहे राजा के पुत्र के लिए आधे राज्य की मांग करती है तो राजा उसे जलविहार के बहाने पानी में डुबोकर मार देते हैं और मुस्कुरा कर कहते हैं -'आखिर थी तो डोमिन।'

उपन्यास 'छोटी बहू' में उपन्यासकार दलित नारी पात्र सिंघाड़ो द्वारा उन लोगों का भांडा फोड़ देता है जो जाति के माया जाल में फंसे हुए हैं। सिंघाड़ो कहती है-'जो लोग हमें अछूत कह कर अपने घर में नहीं आने देते, हमें छूकर स्नान करते हैं, जहां हमारा पैर पड़ जाता है, उस जगह पर पानी छिड़ककर पवित्र कर लेते हैं सो यहां वहीं आकर मेरे होठों पर होठ कैसे रख देते हैं? तब उनकी जाति क्यों नहीं बिगड़ती?'

'अपने अपने पिंजरे' उपन्यास में मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं- उनकी बस्ती के किनारे भी एक मंदिर था, पर उसमें दलितों को जाने का कोई अधिकार नहीं था। मंदिर भी उनकी जर खरीद संपत्ति थी। जिसके जर्रे जर्रे पर उनका अधिकार था। हमारी बस्ती के लोग मंदिर को आते- जाते दूर से देखकर संतोष कर लिया करते थे। यहां तक कि सार्वजनिक स्थानों पर भी दलितों का कोई अधिकार नहीं था। धर्मशाला सभी वर्ग के लिए होने के पश्चात भी दलितों को वहां ठहरने का या नल पर पानी पीने का अधिकार नहीं था। जब तक जाति मालूम नहीं होती सब ठीक चलता है। जैसे ही जाति का पता चलता है तब संदर्भ बदल जाते हैं। ऐसे ही प्रसंग का उल्लेख सूरजपाल चौहान ने अपनी आत्मकथा 'तिरस्कृत' में किया है। अपनी बहन की शादी में जब गांव का रास्ता पैदल चलकर जा रहे थे कि उनकी पत्नी विमला को प्यास लगती है। धर्मशाला पर पहुंचने पर वह एक कुएं से पानी पीने के लिए बाल्टी उठाती है तभी जमींदार जो वहां बैठा है, उसे कुछ याद आता है। वह लेखक से उनके गांव का नाम पूछता है। पूछते ही जमींदार की रंगत ही बदल जाती है। लेखक लिखते हैं कि- 'मैं तुरंत भाँप गया कि बूढ़ा जमींदार उठकर आया। उसने झटके के साथ मेरे हाथों से बाल्टी छीनी और उसे रेत में मांज कर साफ करने लगा। साथ ही साथ वह कुछ बड़बड़ा भी रहा था। जिसे थ्रेसर की आवाज में ठीक से सुन नहीं सका। उसने बड़ी ठसक के साथ पानी खींचा। विमला ओक बनाकर

जैसे ही पानी पीने के लिए झुकी और एक कदम आगे रखा तो वह बूढ़ा जमींदार दांत पीसता हुआ बोला- 'अरे भंगइनिया नेकु पीछे को हट के पानी पी। यह शहर ना है यह गांव है। मारे लठिया के कमर तोड़ दी जाएगी।'

हिंदी में दलित साहित्य, दलित समुदाय के संघर्षों और अनुभवों को आवाज देने का एक सशक्त माध्यम रहा है। दलित साहित्य में अनेक स्वरों में दलित महिलाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। दलित महिलाओं ने न केवल अपनी जाति के आधार पर बल्कि अपने लिंग के आधार पर भी उत्पीड़न और भेदभाव का सामना किया है। उनके अनुभव अद्वितीय और अंतर्विरोधी हैं, और उन्होंने लिखित शब्द के माध्यम से अपने संघर्षों को व्यक्त करने का एक तरीका खोज लिया है। दलित साहित्य में दलित महिलाओं का चित्रण ऐसा है जो जाति आधारित भेदभाव, लिंग आधारित हिंसा और शोषण के उनके अनुभवों को दर्शाता है। उनकी कहानियाँ समाज के पितृसत्तात्मक और जातिवादी ढाँचों को चुनौती देती हैं और समान अधिकारों और अवसरों की माँग करती हैं। दलित साहित्य में दलित महिलाओं का प्रतिनिधित्व न केवल उनके शिकार होने का आख्यान है बल्कि उनकी ताकत, लचीलापन और प्रतिरोध का भी है।

बेबी कांबले प्रमुख दलित महिला लेखिकाओं में से एक हैं। उनकी आत्मकथा, 'जीना अमुचा' (अवर लाइव्स), एक दलित महिला के रूप में उनके जीवन का एक शक्तिशाली लेखा-जोखा है। पुस्तक में, वह एक बच्चे के रूप में हुए उत्पीड़न और भेदभाव का वर्णन करती है और खुद को शिक्षित करने के लिए उसे जिन संघर्षों को पार करना पड़ा, वह एक दलित और एक महिला होने के दोहरे बोझ और उस लगातार लड़ाई के बारे में लिखती हैं, जो उन्हें देखने और सुनने के लिए लड़नी पड़ती थी। एक अन्य महत्वपूर्ण दलित लेखिका शांताबाई कांबले हैं। उनकी पुस्तक, 'माज्य जलमाची चित्रकथा' (द पिक्चर ऑफ माई वॉटर) कविताओं का एक संग्रह है जो ग्रामीण महाराष्ट्र में दलित महिलाओं के जीवन का विशद वर्णन करती है। उनकी कविता दलित महिलाओं के सामूहिक अनुभवों और जाति और लिंग आधारित उत्पीड़न के खिलाफ उनके संघर्षों का प्रतिबिंब है।

हिंदी साहित्य में दलित महिलाओं का प्रतिनिधित्व आत्मकथाओं और कविता तक ही सीमित नहीं है। कई कथा साहित्य भी है जो दलित महिलाओं के जीवन को चित्रित करते हैं। उर्मिला पवार का 'आयदान' (द वीव ऑफ माई लाइफ) एक अर्ध-आत्मकथात्मक उपन्यास है, जो मुंबई में दलित महिलाओं के अनुभवों की पड़ताल करता है। उपन्यास उच्च-जाति और उच्च-वर्गीय समाज के पाखंड को उजागर करता है और दलित महिलाओं के लचीलेपन पर प्रकाश डालता है।

दलित साहित्य के विकास में, विशेषकर दलित उपन्यासों की विधा में, दलित महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दलित उपन्यास दलित समुदाय के अनुभवों का प्रतिबिंब हैं और उनके संघर्षों और आकांक्षाओं को आवाज देने के लिए एक मंच प्रदान

करते हैं। इन उपन्यासों में दलित महिलाओं का चित्रण अद्वितीय और अन्तर्विभाजक है, जो जाति और लिंग आधारित भेदभाव के दोहरे बोझ को दर्शाता है। दलित उपन्यासों में दलित महिलाओं के सबसे महत्वपूर्ण योगदानों में से एक दलित महिलाओं के जीवन का प्रतिनिधित्व है। दलित महिला लेखिकाओं ने दलित महिलाओं के उन अनुभवों को सामने रखा है, जिन्हें अक्सर मुख्यधारा के साहित्य में उपेक्षित या हाशिए पर रखा गया है। उन्होंने शिक्षा, रोजगार और विवाह सहित अपने दैनिक जीवन में दलित महिलाओं द्वारा सामना किए जाने वाले जाति और लिंग आधारित भेदभाव की जटिलताओं को चित्रित किया है।

'बामा' दलित उपन्यास विधा की सबसे प्रमुख दलित महिला लेखिकाओं में से एक हैं। उनका उपन्यास, 'संगति' (चौराहे), तमिलनाडु में दलित महिलाओं के जीवन का एक शक्तिशाली लेखा-जोखा है। उपन्यास में जाति और लिंग आधारित भेदभाव के प्रतिच्छेदन और दलित महिलाओं के अपनी एजेंसी और पहचान पर जोर देने के संघर्ष को दर्शाया गया है। शरण कुमार लिंबाले दलित उपन्यास शैली के एक अन्य महत्वपूर्ण दलित कथाकार हैं। उनका उपन्यास, 'हिंदू' ग्रामीण महाराष्ट्र में एक दलित महिला के जीवन का एक शक्तिशाली चित्रण है। उपन्यास में जाति और लिंग आधारित भेदभाव की जटिलता और दलित महिलाओं के उत्पीड़न की बेड़ियों से मुक्त होने के संघर्ष को दर्शाया गया है।

अंत में, दलित उपन्यासों में दलित महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। उन्होंने दलित महिलाओं के उन अनुभवों को सामने रखा है, जिन्हें मुख्यधारा के साहित्य में अक्सर अनदेखा या हाशिये पर रखा गया है। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से दलित समुदाय के भीतर पितृसत्तात्मक मानदंडों और संरचनाओं को चुनौती दी है और दलित महिलाओं को सशक्त बनाने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला है। उनके उपन्यास दलित समुदाय के संघर्षों और आकांक्षाओं को आवाज देने और समान अधिकारों और अवसरों की मांग करने का एक शक्तिशाली साधन हैं।

संदर्भ :

1. दलित साहित्य में अभिव्यक्त समस्याएं: डॉ. अमरा सूर्य चंद्र रावु, शुभम पब्लिकेशन प्रथम संस्करण 2019
2. उपन्यासकार सुशीला टाकभौरे एवं नारी अस्मिताः संध्या दत्ता कदम, विनय प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण 2017
3. हिंदी काव्य में दलित काव्य धाराः संपादक -डॉक्टर माता प्रसाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी- प्रथम संस्करण 1993
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में सामाजिक लोकतांत्रिक चेतना -जवाहर पुस्तकालय मथुरा संस्करण 2008

के.ई. एस. श्रॉफ कॉलेज, कांदिवली (पश्चिम), मुंबई

21वीं सदी में हिन्दी आदिवासी कविता : दशा, दिशा एवं सम्भावनाएँ

निलेश शिवाजी देशमुख
शोधार्थी

21वीं सदी के हिन्दी आदिवासी कविता की पृष्ठभूमि 20वीं सदी के 8वें दशक से प्रारम्भ हो जाती है, जब हिन्दी साहित्य में दलित और स्त्री विमर्श जैसे विषयों पर चर्चा एवं संगोष्ठियाँ होने लगी थीं। हिन्दी साहित्य में दलित और स्त्री विमर्श के बाद जिस विमर्श पर सबसे अधिक लिखा गया और लिखा जा रहा है, वह आदिवासी विमर्श है। आदिवासी साहित्य में दलित और स्त्री साहित्य की तरह व्यक्ति अथवा स्त्री को ही केंद्र में नहीं रखता बल्कि विश्वदृष्टिकोण, प्रकृतिपरक सौन्दर्यबोध को केंद्र में रखा जाता है। आदिवासी कवि इन्हें ही आदिवासी साहित्य का मूल मानता है। हिन्दी आदिवासी साहित्य में सबसे अधिक कविता विधा में लिखा जा रहा है। कविता में अधिकतर जल-जंगल-जमीन-जानवर से आगे बढ़कर सम्पूर्ण प्रकृति के संरक्षण की बातें हो रही हैं। हिन्दी आदिवासी साहित्य की प्रमुख विधा कविता की शुरुआत आदिवासी रचनाकार सुशीला सामद से ही शुरू हो गई थी। उन्होंने तीस के दशक में हिन्दी कविताएँ लिखी हैं। वह साहित्यिक पत्रिका 'चाँदनी' की प्रकाशक और संपादक भी थीं। उनके दो काव्य संग्रह प्रकाशित हुए है- 'प्रलाप' (1934) और 'सपने का संसार' (1948) तब से लेकर अनगिनत कविताएँ हिन्दी में आदिवासी साहित्यकारों ने लिखी हैं। 21वीं सदी में जब देखते हैं तो आदिवासी कवि पिछले सदियों से संस्कृति, प्रकृति, रचाव-बचाव के अंतहीन प्रयास कर रहा है और यही उसकी रचना में परिलक्षित होता है।

हिन्दी साहित्य में आदिवासी साहित्य ने अपनी स्वतंत्र पहचान बनाई है। आदिवासी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रहा है तथा अपने समाज के ऊपर हुए जुल्मों की बेड़ियाँ तोड़ने के लिए कविता का सहारा लेता है। अमूमन आदिवासी अधिक बोलता नहीं है लेकिन समय आने पर किसी की परवाह न करते हुए तीर-कमान उठा लेता है। 21वीं सदी की कविता इन सभी पक्षों को अभिव्यक्त करती है। मूलतः आदिवासी और प्रकृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह अपने को कभी भी प्रकृति के सानिध्य से अलग नहीं करता है। महादेव टोप्पो लिखते हैं कि 'आदिवासी का जीवन प्रकृति की निकटता में गुजरता है। वह प्रकृति से जरूरत भर लेता है। वह प्रकृति, धरती का सम्मान करता है और इसे उपभोग की वस्तु नहीं मानता है। वह मुनाफे के लिए अति-अनावश्यक उत्पादन नहीं करता है। वह प्रकृति से सामंजस्य स्थापित कर सामूहिक जीवन जीता है। आदिवासी समाज में नौकर-मालिक का भेद नहीं है। वह मुनाफे पर बल नहीं देता। वह हर किसी का सम्मान करता है और परस्पर सहयोग की सामाजिक व्यवस्था पर विश्वास करता है। प्रकृति के जीव-जन्तुओं, पेड़-पौधों, नदी, झील, झरनों, पहाड़ों को

भी सहजीवी मानता है।'[1] आदिवासी कभी किसी व्यष्टि की बात नहीं करता। वह हमेशा समष्टि को सहेजना चाहता है।

आज हिंदी में आदिवासी कविताएँ बड़ी संख्या में लिखी जा रही हैं। हिन्दी आदिवासी कविता में विश्वदृष्टिकोण और जीवन सौन्दर्य तो होता है, साथ में उनके जीवन के विविध राग भी परिलक्षित होते हैं। आदिवासी कविता कभी स्वान्तः सुखाय के रूप में नहीं लिखी गई बल्कि सहजीविता, सहभागिता, सामूहिकता, अस्तित्व एवं अस्मिता के प्रतिउत्तर में लिखी गई है, लिखी जा रही है, लिखी जायेगी। आदिवासी कविता लिखने का एक और उद्देश्य रहा है कि उन्हें हमेशा से विस्थापित होना पड़ा है। जंगल में जहाँ रहते हैं वहाँ के वनों पर बंदी लगाना एवं विकास के नाम पर उन्हें बेदखल करना इस तरह की नीतियाँ वर्तमान में देखने को मिलती हैं। विकास के नाम पर उन्हें बेदखल करना पौराणिक समय से चलता आ रहा है। उन सभी विषयों को आदिवासी कविता कहीं न कहीं उत्तर देती है। आदिवासी कविता लोगों को जागृत करने का कार्य करती है। साथ में शासन से सीधा प्रश्न पूछती है कि हम किसी विकास के विरोधी नहीं बल्कि हमारी, संस्कृति, भाषा, अस्मिता एवं अस्तित्व के लिए हम लड़ रहे हैं।

औपनिवेशिक मानसिकता की देन है कि जो लिखित है, वही साहित्य है, इतिहास है। लिखित दुनिया ही प्रामाणिक है जबकि आदिवासी का सौन्दर्यबोध, विश्वदृष्टिकोण और इतिहास पुरखा साहित्य सभी वाचिक परम्परा में है और यही उनका साहित्य है। हिंदी में जितनी आदिवासी कविताएँ लिखी गई हैं, उतनी अन्यत्र किसी भाषा में नहीं लिखी गई हैं। आदिवासी कविता का मतलब उनके गीत, कथा-गीत आदि भी हो सकते हैं। यही आदिवासी का साहित्य है, जो बार-बार उसकी बात कर रहा है। आदिवासी मौखिक साहित्य की रचना प्रारम्भ से होती रही है।

किसी कवि का आदिवासी कवि होना किसी सीमा में बंध जाना नहीं होता। यह उसकी ताकत होती है- 'हिन्दी आदिवासी कविताओं में कवि सिर्फ आदिवासी का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता बल्कि समृद्ध और व्यापक विकास का प्रतिनिधि कवि है। किसी कवि का आदिवासी होना उसकी सीमा नहीं ताकत है जैसे किसी लेखक का दलित होना या स्त्री होना। कारण कि उसके पास अन्य लोगों से अलग एक विशिष्ट समुदाय की निजी स्मृतियाँ और यथार्थ अनुभव होता है। वे स्मृतियों और वे अनुभव जब रचनात्मक रूप में हमारे सामने आते हैं तो हिन्दी का लोकवृत्त और विस्तार पाता है।'[2]

हिंदी आदिवासी कविता की शुरूआत बीसवीं सदी में ही हो जाती है लेकिन प्रचार-प्रसार एवं प्रकाशन की कमी से वे बहुत बाद में प्रकाशित हुई हैं। हिंदी आदिवासी साहित्य में जिन प्रमुख कवियों का योगदान रहा, उनमें रामदयाल मुंडा, ग्रेस कुजूर, महादेव टोप्पो, हरिराम मीणा, वाहरु सोनवने, केशव मेश्राम, दीनानाथ मनोहर, निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, सरिता बड़ाईक, डॉ. मंजू ज्योत्स्ना, डॉ.रोज केरकेट्टा, सुषमा असुर, वंदना टेटे, जसिंता केरकेट्टा, अनुज लुगुन, पूनम वासम आदि ने आदिवासी

जीवन के विभिन्न पहलुओं, सामाजिक विद्रोह, नारी का जीवन संघर्ष, सामाजिक संघर्ष, आदिवासी न्याय व्यवस्था, विस्थापन, अस्तित्व की समस्या, अशिक्षा, रोजगार की समस्या तथा व्यवस्था के शोषण दमन को शब्दबद्ध किया है। आदिवासी कविता जीवन के अनुभव को अभिव्यक्त करती है। शिष्ट समाज की व्यवस्था को वाहरु सोनवने की 'स्टेज' कविता में देख सकते हैं-

'हम स्टेज (मंच) पर गए ही नहीं / और हमें बुलाया भी नहीं /
ऊँगली के इशारे से / हमारी जगह / हमें दिखाई गई / हम वहीं बैठे /
हमें शाबाशी मिली / और 'वे' स्टेज पर खड़े हो /
हमारा दुःख हमें ही बताते रहें/ हमारा दुःख अपना ही रहा /
कभी उनका हुआ ही नहीं../ हमने अपनी शंका फुसफुसाई/
कान देकर 'वे' सुनते रहे / और निश्वास छोड़ा /
और हमारे कान पकड़कर/ हमें ही धमकाया / माफी माँगो नहीं तो...। '[3]

आदिवासी कविता में प्रकृति और स्त्री स्वर अधिक आक्रोशित लगता है उनके जीवन के बहुत दिन जंगलों के अँधेरे में बीते हैं और अब कोयला खदानों की भट्टी में इससे निकलने की कोशिश एक स्त्री कविताओं के माध्यम से करती है। आदिवासी स्त्री को प्रतिदिन के जीवन की चिंता नहीं है। उन्हें चिंता इस बात की है कि यह जंगल नहीं रहेगा तो हम रहेंगे कहाँ? हमारे जानवर खायेंगे क्या? इन सभी को कविता के माध्यम से परिलक्षित कर सकते हैं। जसिंता केरकेट्टा 'प्रकृति और स्त्री' कविता में लिखती हैं -

'तुमने धरती को खोद डाला / उसके गर्भ से निकालने को /
आर्थिक वर्चस्व के लिए सम्पदा अपार / पीढ़ियों पर करने को अपना अधिकार/
तुमने अनसुनी कर दी स्त्री की चीत्कार / फिर आज कौन सी ताकत तुम्हें /
खींच लाई है देवियों के दर? / वह है सिर्फ और सिर्फ /
प्रकृति और स्त्री से तुम्हारा डर।'[4]

21वीं सदी में देश की सभ्यता और विकास में आमूलाग्र परिवर्तन हुए हैं लेकिन मुख्यधारा अब भी आदिवासी को आदमी मानने से इनकार करती रही है, यह एक त्रासद स्थिति आदिवासी समाज के सामने उपस्थित होती है। आदिवासी को सदियों से दुःख, पीड़ा, अत्याचार को सहना पड़ा, यह चिंता का विषय है। उन्हें वनवासी, जंगली कहते हैं। उनके जीवन का चित्रण महादेव टोप्पो ने 'त्रासदी' शीर्षक कविता में बहुत सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है-

'इस देश में पैदा होने का / मतलब क्या है / जानते हो भाई?/
नहीं?/ देश में पैदा होने का मतलब है / आदमी का जातियों में बंट जाना /
और गलती से अगर तुम हो गए पैदा जंगल में / तो तुम कहलाओगे /
आदिवासी-वनवासी-गिरिजन वगैरह-वगैरह /
आदमी तो कम से कम कहालाओगे नहीं।[5]

आदिवासी की सहजीविता और स्वायत्तता को कुचलने की शासन की साजिश बहुत पुरानी है। आदिवासी जीवन हमारी परम्परा और संस्कृति का संवाहक है। आदिवासी प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हुए जंगल में रहकर प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करते वाले आदिवासी आज भी अपने गीत-संगीत-नृत्य, कला-कौशल्य, रहन-सहन, वेशभूषा, अलंकार, बोली-भाषा और लिपि की विशेषताओं को सँजोने की कोशिश कर रहे हैं। आदिवासी समाज जल-जंगल-जमीन-जानवर पर आधारित आदिम समाज है। उनकी अपनी संस्कृति है, साहित्य है, भाषा है। उसकी जड़ें पुरातन हैं, लेकिन जिसे आज खदेड़ दिया जा रहा है। इसलिए आदिवासी कवि भगवान गव्हाडे 'वैश्वीकरण की असली शक्ल' कविता में लिखते हैं-

'धरती माँ का यह लाडला / हो गया है जड़ों से आज विस्थापित /
कर दिया है उसे बेदखल / अपनी धरती से / अपने जंगल से /
अपने जल और अपने जीवन से/ हथियार से लैंस सिपाहियों द्वारा डर दिखा कर/
उसे खदेड़ दिया जा रहा है / महानगर की ओर'[6]

21वीं सदी में भी भारतीय पुरुष-सत्तात्मक समाज में हमेशा स्त्री को दुय्यम दर्जे का माना जाता रहा है लेकिन आदिवासी स्त्रियाँ अपने हक की लड़ाई बहुत पहले से लड़ रही हैं। वे खुद आगे बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रही हैं। आज आदिवासी समाज शिक्षित हो रहा है। उन्होंने पढ़ा कि झाँसी की रानी जैसे 'सिनगी देई' भी विदेशियों से टक्कर लेती रही हैं। आज सिनगी देई आदिवासी स्त्री के शौर्य की प्रतीक बन गई हैं। आज आदिवासी स्त्रियाँ उनसे प्रेरणा ले रही हैं। 'एक और जनी शिकार' कविता में ग्रेस कुजूर लिखती है-

अब भी तुम्हारे हाथों की / अंगुलियाँ थरथराईं! / तो जान लो /
मैं बनूंगी एक बार और / 'सिनगी दई'/ बाँधूँगी फेंटा / और कसेगी फिर से /
बेतरा की गांठ / और होगा / झारखंड में / फिर एक बार /
एक जबरदस्त जनी-शिकार।'[7]

आदिवासी स्त्री ने बहुत जुल्म सहे हैं। वह अब जागृत हो गई है और अपने हक के लिए प्रतिरोध करती है। उसकी वीरता का चित्रण कहीं न कहीं कवि अनुज लुगुन की कविता 'उलगुलान की औरतें' में परिलक्षित होता है। वे लिखते हैं-

'उलगुलान की औरतें / उतनी ही लड़ाकू थीं / जितना कि उनका सेनापति /
वे अपनी खूबसूरती से कहीं / ज्यादा खतरनाक थीं / . ./
उन्होंने अपने जूड़े में... साहस का फूल खोंसा था / उम्मीद को उन्होंने /
कानों में बालियों की तरह पिरोया था / ...हक की लड़ाई में
उन्होंने बोया था आत्मसम्मान का बीज।'[8]

आदिवासी कवि वर्तमान में आदिवासी विस्थापन तथा प्रकृति के विनाश को देखकर आहत होता है और पीड़ा को कविता के माध्यम से व्यक्त करता है। मुख्यधारा के रवैया

को आदिवासी कवयित्री जसिंता केरकेट्टा 'क्यों काटे जाते पेड़?' के माध्यम से व्यक्त करती है-

'वे पेड़ों को मुख्यधारा में लाना चाहते हैं / पर अपनी जमीन से उखड़कर पेड़ /
क्या मुख्यधारा में कभी आते हैं? / बस इसलिए काट दिए जाते हैं।'[9]

21वीं सदी में आदिवासी को राजनीति के कारण बंधुआ मजदूर के रूप में कार्य करना पड़ता है। यह हम सब के लिए शर्म का विषय है। इतनी आधुनिकता के बावजूद आज आदिवासी का विकास नहीं हो पाया है। आदिवासियों का जिस जंगल और जमीन पर सदियों से हक रहा है, वहाँ से उन्हें पलायन करना पड़ रहा है। बदले में न मुआवजा दिया गया और न ही रहने के लिए जमीन दी गई। इसका यथार्थ चित्रण जसिन्ता केरकेट्टा अपनी कविता 'राजनीति अपने हिस्से के लिए' कविता में करती हैं -

'जल, जंगल, जमीन चिल्लाते-चिल्लाते /
थककर मेरे भाई गाँव छोड़कर मजदूरी करने / चले गये एक दिन गुजरात /
लोहा काटती मशीन में / कटते-कटते छोटा भाई बचा / और बड़ा भाई /
ऊँची बिल्डिंग बनाते वक्त / गिरते-गिरते बचा / .../
वे न उन्हें जमीन का मुआवजा दिला सके / न ही जमीन के इस्तेमाल पर /
मुनाफे का आधा हिस्सा / मगर राजनीति में अपने हिस्से के लिए /
जल, जंगल, जमीन के साथ / जो हमेशा कर आए / अपने जमीर का सौदा।'[10]

आदिवासी कविता में आदिवासी कवियों ने कम शब्दों के बावजूद प्रकृति, संस्कृति और पुरखे इतिहास को नये बिम्ब, नये प्रतीक और नये शब्द से समृद्ध किया है। आदिवासी कविता संवेदनात्मक मूल्य, सहजीविता, सामूहिकता, प्रकृति चित्रण जैसी विशेषता के कारण मुख्यधारा से बिलकुल भिन्न ज्ञात होती है। आदिवासी कविताओं ने वैयक्तिकवादी वैचारिक के बरक्स सामूहिक जीवन शैली और वैचारिकी की अपनी परम्परा को अभिव्यक्ति दी है। आदिवासी कविता में पारिवारिक सम्बन्ध, प्रकृति और स्त्री, संस्कृति, भाषा, साहित्य संरक्षित करने की कोशिश की जा रही है। आधुनिक समय की इतनी चकाचौंध में भी उन्होंने अपनी संस्कृति और प्रकृति का संरक्षण किया था। आदिवासी जीवन प्रकृति के साहचर्य का जीवन है। आदिवासी साहित्य रचाव-बचाव का साहित्य है। आदिवासी समुदाय सहअस्तित्व के दर्शन को स्वीकार करता है। इसलिए आज भी प्रकृति के साथ जीवन जीता है लेकिन अफसोस इस बात का है कि अब भी मुख्यधारा के लोग विभिन्न षड्यंत्रों तथा नीतियों से उन्हें बेदखल करने में लगे हुए हैं।

सन्दर्भ :

1. आदिवासी विश्व चेतना, महादेव टोप्पो, अनुज्ञा बुक्स नई दिल्ली, प्रथम सं.2022 पृ.197
2. बनास जन, पल्लव, जून-जुलाई-2022 जगन्नाथ दुबे का आलेख, पृ.278
3. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं.रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

पृ.101
4. कलम को तीर होने दो (झारखण्ड के आदिवासी कवि) सं.रमणिका गुप्ता, पृ.192
5. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं.रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली पृ.49
6. आदिवासी मोर्चा, भगवान गव्हाडे, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृ.10
7. कवी मन जनी मन, वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली सं. 2019, पृ.64
8. कलम को तीर होने दो, सं.रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.56
9. ईश्वर और बाजार, जंसिता केरकेट्टा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.188
10. ईश्वर और बाजार, जंसिता केरकेट्टा, पृ.107

- शोधार्थी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी
सिद्धेश्वर कॉम्पलेक्स रेलवे स्टेशन
टिटवाला (पश्चिम), कल्याण- 421605

पूर्वोत्तर भारत का आदिवासी : लोकजीवन और संस्कृति

डॉ. पंडित बन्ने
डी.लिट्

असम, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम इन आठ राज्यों का समूह पूर्वोत्तर भारत अपनी भौगोलिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। संस्कृति, भाषा परंपरा, रहन-सहन, पर्व-त्योहार आदि की दृष्टि से यह क्षेत्र इतना वैविध्यपूर्ण है कि इस क्षेत्र को भारत की सांस्कृतिक प्रयोगशाला कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा। पूर्वोत्तर भारत अनेक धर्मों, जातियों, सभ्यताओं का सांस्कृतिक संगम है। विशेषकर आदिवासी समुदाय सूर्य, चंद्रमा, नदी, पर्वत, पृथ्वी, झील, जलप्रपात, तारे, वन आदि की पारंपारिक विधि से पूजा करते हैं। आदिवासी समाज मूलतः प्रकृति पूजक रहा है।

पूर्वोत्तर भारत एक सांस्कृतिक संगम-भूमि होने के साथ-साथ जनजाति बहुल क्षेत्र है। यहाँ लगभग 150 जनजातीय समुदाय के लोग निवास करते हैं। इनमें बोडो, संथाली, कछारी, जयंतिया, कोच, त्रिपुरी, गारो, राभा, देवरी, दिमासा, रियांग, लालुंग आदि प्रमुख हैं। सभी जातियाँ और जनजातियाँ अपने-अपने साहित्य और संस्कृति में अत्यंत समृद्ध हैं। पूर्वोत्तर के आदिवासी समाज ने व्यापक स्तर पर अपनी भाषा-बोली और संस्कृति, जीवन शैली बचाकर रखी है। धर्म परिवर्तन भी हुआ है तो वहाँ की जनताति समूहों ने अपनी संस्कृति, जीवन शैली या भाषा पर असर नहीं पड़ने दिया है।

असम के 'बडो' जनजाति असम का एक ऐसी जनजाति है, जो अपनी भाषा, संस्कृति और साहित्य में अत्यंत समृद्ध है। पूर्वोत्तर के असम राज्य में भाषा, संस्कृति और जीवन शैली पर प्राचीन काल से आज तक सांस्कृतिक हमलों का काफी प्रभाव बोड़ो जनजाति पर पड़ा। अरुणाचल प्रदेश में हिलमीरी जनजाति है। हिलमीरी लोग कमला नदी के दोनों ओर बसे हैं। इनके गाँव पहाडों की ढलान पर बसे हुए हैं। हिलमीरी समाज कई वर्गों में विभक्त है। समुदाय में तारबोतीया, पानीबोतीया, सरक, घासी और घाईघासी पाँच मुख्य वर्ग हैं। घाइघासी लोगों का निवास दोपोरिजो के पश्चिम और असम के नार्थ लखीमपुर जिले के सीसी अनुमंडल के दक्षिण में है। सरक लोग सुबनसिरी और रंगा नदी के मध्य में एवं पानीबोतिया कमला नदी के उत्तर में बसे हैं। तारबोतिया की आबादी कमला नदी के दक्षिण तारबोतिया की आबादी कमला नदी के दक्षिण में है। इस परिवार में माता-पिता के अतिरिक्त उनके अविवाहित बच्चे रहते हैं। विवाह के बाद पुत्र अपने लिए अलग आवास की व्यवस्था करता है। सबसे छोटा पुत्र अपने माँ-पिता की देखभाल के लिए उनके साथ ही रहता है। इस समाज में बहुपत्नीत्व विवाह सामान्य है। लड़कियाँ घर और खेतों में काम करती हैं।

मेघालय का गारो हिल्स जिला गारो समुदाय का प्रमुख निवास क्षेत्र है। गारो समुदाय अनेक गोत्रों में विभक्त है। मुख्य रूप से तीन गोत्र हैं। मराक, मोमीन और संगमा। खासी और गारो दोनों जनजातियों में पिता को बाहरी व्यक्ति माना जाता है। यह एक मातृसत्ताक समाज है। बच्चे अपनी माता के नाम से जाने जाते हैं। परिवार की पूर्ण सत्ता माँ के हाथों में होती है। माँ की मृत्यु के बाद माता की संपति पर उसकी सबसे छोटी बेटी का अधिकार हो जाता है।

लाखेर मिजोरम की प्रमुख जनजाति है। इस समुदाय के लोग स्वयं को मारा कहते हैं परंतु लुशाई समुदाय के लोग इन्हें लाखेर कहते हैं। आदिवासियों के एक समूह को मिरांग कहा जाता है। 'होजोंग जनसंख्या की दृष्टि से एक छोटा-सा समुदाय है। इनकी अधिकांश आबादी मेघालय में निवास करती है। इसके अतिरिक्त असम के कार्यों आंगलोंग तथा नार्थ कछार हिल्स जिलों में भी हाजोंग जनजाति के लोग रहते हैं। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि हाजोंग लोग महाभारत काल के क्षत्रिय राजा किरातार्जुन के वंशज है। हाजोंग समुदाय तीन गोत्र जानता है- चंडी, केंदागईया और बलियाती। यह पितृसत्ताक समाज है। पिता ही परिवार का मुखिया होता है पुत्र पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है। पैतृक संपत्ति पर पुत्री का कोई अधिकार नहीं होता है।

अरुणाचल प्रदेश में आदी, न्यिशी, आपातानी, हिलमीरी, तागिन, सुलंग, मौम्पा, खाम्ती, सिंहफों, मेम्बा, खम्बा, आका, निजी आदि प्रमुख जनजातियाँ निवास करती हैं। मोपिन, सोलुंग, लोस्सार, डी. सी दोन्यी, रेह, न्योकुम आदि अरूणाचल के प्रमुख पर्व-त्यौहार हैं। अधिकांश जनजातियाँ दोन्यी-पोलो के प्रति अटूट आस्था रखती हैं। लोकसाहित्य की दृष्टि से यह प्रदेश अत्यंत समृद्ध है। लोकसाहित्य में भी अरुणाचली समाज लोकगीतों से अधिक अनुराग रखता है। इस प्रदेश का अधिकांश लोकसाहित्य गीतात्मक है। इन गीतों में पूर्वजों से संबंधित आख्यान, मिथक, सृष्टि की उत्पति विषयक दंतकथाएँ, जनजातियाँ का उद्भव एवं देशांतरगमन, विभिन्न प्राणियों की उत्पत्ति संबंधी कथाएँ वर्णित होती हैं।

नागालैंड में अनेक आदिवासी समूहों एवं उपजातियों में विभक्त है। नागालैंड की प्रमुख जनजातियाँ हैं - चाकेसांग, अंगामी, जेजियांग आओ, संगमत, यिमंगचुर, चांग, सेमा, लोथा, खेमुन, रंगमा, कोन्यक आदि। प्रत्येक समुदाय की वेशभूषा, भाषाबोली, रीति-रिवाज और अपनी जीवन शैली की दृष्टि से पृथक है। भिन्नता के बावजूद नागा समाज में परस्पर भाईचारे और एकता की सुदृढ़ भावना है। नागालैंड में लगभग तीस भाषाएँ बोली जाती हैं। नागालैंड के निवासियों ने एक संपर्क भाषा विकासित कर ली है जिसका नाम है नागामीज।

नागालैंड के युवागृह को मोरंग कहा जाता है। यहाँ अविवाहित युवक-युवतियाँ पारंपारिक नृत्य-गीत का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। नागा लोकसाहित्य मौखिक परंपरा में आगे बढ़ता है। अधिकांश लोकगीत लोककथाएँ मिथकों पर आधारित हैं। प्रदेश में लोक

नृत्यों व गीतों की समृद्ध परंपरा है। यहाँ के नृत्य गीत उत्साह, ऊर्जा, मस्ती और यौवन से भरपूर होते हैं। नृत्य प्रायः पुरुषों द्वारा ही प्रस्तुत किए जाते हैं। नृत्य की प्रस्तुति सामूहिक रूप में होती है। कोई भी नृत्य संगीत रहित नहीं है। संगीत नागा नृत्य संगीत रहित नहीं है। संगीत नागा नृत्य का अभिन्न अंग है। झांझ, ढोलक, पेतु आदि पारंपारिक वाद्य यंत्रों के उपयोग से नृत्य का प्रभाव दुगुना हो जाता है।

'नागालैंड में मुर्गा नृत्य, झिंगुर नृत्य, भालू नृत्य आदि खूब लोकप्रिय है। इन नृत्यों में पशु-पक्षियों जैसा हाव-भाव और अंग संचालन होता है। नृत्यों में नागा समाज की जीवन शैली, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास और सांस्कृतिक बोध प्रतिबिंबित होता है।'[1] नागलैंड के विभिन्न आदिवासी समूहों जैसे अंगामी, लोथा, चाकेसांग, सुमी, संगमत, आओ, जेजियांग आदि की संस्कृति की झलक दिपुपहार में देखने को मिलती है।

लाहो नृत्य मेघालय की प्रमुख नृत्य शैली है। इसमें महिला-पुरुष सभी शामिल होते हैं। खाशी समुदाय के लिए नृत्य-गीत जीवन का विभिन्न अंग है। मेघालय के अन्य नृत्य हैं- दोरे राता, पोमेलो नृत्य आदि मेघालय के गारो समुदाय द्वारा अंत्येष्टि के बाद मंगोना या चुगना नाम नृत्य उत्सव आयोजित किया जाता है। गोरो समुदाय में वीर रसात्मक लोकगीतों की समृद्ध परंपरा है। इस समाज में मुख्य रूप से तीन प्रकार के लोकगीत प्रचलित हैं - संस्कार गीत, त्योहार अथवा उत्साह और प्रणय गीत इन लोकगीतों में नदियों, पहाड़ों, वन्य प्राणियों, देवी-देवताओं का बार-बार उल्लेख मिलता है। लोकगीतों में प्रदेश का सांस्कृतिक परिदृश्य प्रतिबिंब होता है। मेघालय में लोककथाओं और मिथकों की समृद्ध परंपरा है। मेघालय के मिथकों में सृष्टि, पेड़, पर्वत, जल, मानव, पशु-पक्षी, जीव-जंतु आदि की उत्पति की कथा का उल्लेख मिलता है।

'पूर्वोत्तर के सात राज्यों असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, नागालैंड, माणिपुर, मिजोरम एवं त्रिपुरा को सात बहनों कहते हैं। यह एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ पर सैकड़ों जगजातियाँ अलग बोलियाँ और भाषाएँ बोलती है। पूर्वोत्तर की भौगोलिक परिस्थितियों, वनस्पतियाँ, जीव एवं पक्षी जगत मठ नदियाँ, प्राचीन परंपराएँ, जीवनशैली, त्यौहार और शिल्प इसे अद्भुत बनाते हैं। समृद्ध सांस्कृतिक और जातीय विरासत के कारण पूर्वोत्तर पर्यटन के लिए अदभुत एवं अविस्मरणीय बन सकता है।'[2] पूर्वोत्तर क्षेत्र हिंदू, इसाई, मुस्लिम और बौद्ध धर्म के अनुयायिओं का अनूठा संगम है। इन राज्यों के हर आदिवासी समूह की अपनी विशिष्ट संस्कृति, लोकनृत्य, मेले, त्यौहार भोजन और शिल्प है। मेले, त्यौहार, पारम्परिक नृत्य और लोक संगीत जनजातीय समूहों के जीवन का अभिन्न अंग है।

त्रिपुरा पूर्वोत्तर भारत का पर्वतों, घने जंगलों से घिरा एक रमणीय प्रदेश है। त्रिपुरा की प्रमुख जनजातियों एवं उपजातियों में त्रिपुरी, रियांग, जमातिया, नोयातिया, मग, चाकमा, हालाम, उचई आदि है। त्रिपुरी जनजातियों के जीवन में संगीत का विशेष स्थान है। इनके लोकसाहित्य की विभिन्न विधाओं में दैनिक जीवन के हानि - लाभ, उत्साह-हताशा,

प्रेम-घृणा, स्नेह ईर्ष्या, आशा-निराशा आदि सभी के चित्रण प्राप्त होते हैं। त्रिपुरा के लोक साहित्य में लोककथा, लोकगीत, पहेली पर्याप्त उपलब्ध है। त्रिपुरा के लोगों में पहेली का काफी प्रचलन है। जैसे

'जल कुम कुम जले भासे
अस्ति नाई ता मांस आछे।'[3] (जोक)

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि पूर्वोत्तर भारत अनेक धर्मों, जातियों, सभ्यताओं और संस्कृतियों का संगम स्थल है। संस्कृति, भाषा, परंपरा, रहन-सहन, खाना-पीना, रीति- रिवाज, पर्व -त्यौहार, वेशभूषा की दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यंत वैविध्यपूर्ण, रंगीन, उस्तवधर्मो है। पूर्वोत्तर राज्यों के लोगों ने प्रकृति, संस्कृति, कला, जीवन, मानसिक एवं आध्यात्मिक शांति एवं सांस्कृतिक विविधता है। जन-जातियों में संगीत कला, स्थापत्य, ज्ञान प्रणाली, जीवन के आधारभूत रीति-रिवाज से लेकर अपने कार्यों, मौसम और प्रकृति में संजोए रखा है। पूर्वोत्तर भारत में जितनी भी जनजातियाँ आदि समुदाय हैं, सबके पास अपनी लोककथा, लोकगीत, लोकोक्ति और लोक देवी-देवता हैं। पूर्वोत्तर भारतीय जनजातीय समाज में कृषि तथा सामाजिक रीति-रिवाजों से जुड़े लोक-नृत्य, त्यौहार हैं। पूर्वोत्तर में आदिवासियों का घनत्व सर्वाधिक है, इस क्षेत्र में सर्वाधिक वन व वन-प्राणी हैं। विशेषकर आदिवासी समुदाय सूर्य, चंद्रमा, नदी, पर्वत, पृथ्वी, झील, जलप्रताप, तारे, वन आदि की परंपरा विविध से पूजा करते हैं।

संदर्भ :

1. पूर्वोत्तर भारत अतुल्य भारत - वीरेंद्र परमार, पृ. 129-130, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, प्र.सं. 2018.
2. पूर्वोत्तर भारत और हिंदी, सं. डॉ. दिलीप कुमार अवस्था, डॉ. रघुनाथ पाण्डेय, पृ. 34, निखिल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा, प्र. सं. 2019.
3. सम्मेलन पत्रिका - सं. विभूति मिश्र, पृ. 119, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाण, इलाहाबाद, अंक- 16, 2008

शोध-निर्देशक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल)
तह. करमाला, जि. सोलापुर (महाराष्ट्र)

समकालीन व्यंग्य साहित्य

डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट

एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना में व्यंग के संबंध में कहा गया है- 'सटायर गद्य या पद्य रूप में वह साहित्य कृति है जो प्रायः हास्यपूर्ण होती है, जिसमें दुष्टता और मूर्खता की आलोचना करते हुए उसे उपहास्यास्पद बना दिया जाता है।

हम देखते हैं कि व्यंग्य का सीधा संबंध परिवेशगत विद्रूपताओं एवं विषमताओं के बोध से होता है और ये विषमताएँ एवं विद्रूपताएँ जितनी ही जटिल एवं उद्वेलित करने वाली होती हैं, व्यंग्य भी उतना ही तीखा एवं आक्रोशपूर्ण होता है। व्यंग्यकार जब इन विसंगतिजन्य आक्रोश को रचनात्मक अभिव्यक्ति देने का प्रयास करता है तो उसमें व्यंगात्मक प्रवृत्ति सहज ही उभर आती है। यदि व्यंग्यकार के पास अपने मानसिक दबाव को दूर करने के लिए व्यंग्य-लेखन जैसी विधा न होती तो उसका मानसिक असंतुलन होने तक का भय बन जाता। इस संबंध में केशवचंद्र वर्मा कहते हैं-'सामाजिक विद्रूप के प्रति यदि कोई प्रतिक्रिया व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त न की जा सकी तो व्यंग्यकार के पास शायद यही विकल्प रह जाएगा कि वह 'एंग्रीमैन' होकर जेलखाने तथा पागलखाने के बीच घूमता रह जाए।' (धर्मयुग, मार्च-6, 1969, पृष्ठ -61) हरिशंकर परसाई जी के शब्दों में कहा जा सकता है कि- 'व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों-मिथ्याचारों और पाखंडों का पदार्फाश करता है।' (सदाचार का ताबीज, हरिशंकर परसाई, पृष्ठ-10)

प्रत्येक नई वस्तु में एक प्रकार का विशेष आकर्षण और सौंदर्य होता है। व्यक्ति का उसके साथ जुड़ना जीवन को एक नया अर्थ दे जाता है किंतु नए के साथ जुड़ने के अपने खतरे भी होते हैं। इन्हीं चुनौतीपूर्ण खतरों से जूझना मनुष्य को आनंद प्रदान करता है। साहित्य की व्यंग्य विधा भी साहित्यकारों के लिए एक नया और चुनौतीपूर्ण अनुभव था। इस विधा में सामाजिक विद्रूपताओं व विसंगतियों पर व्यंग्य पूर्ण शैली में प्रहार किया जाता है। इसके तहत सामाजिक आडंबर, जाति-भेद, गरीबी-अमीरी, रूढ़िवादी परंपराओं और राजनीति आदि का चित्रण सीधे-सीधे अर्थात् अभिधा में न होकर परोक्षतः अर्थात व्यंजना में होता है। इसीलिए इस विधा में मारक क्षमता अधिक होती है। हमारे यहाँ व्यंग्य की एक लंबी परंपरा रही है।

कबीरदास जी ने सामाजिक जिम्मेदारी को बखूबी निभाया। उन्होंने जहाँ एक ओर हिन्दुओं को लताड़ा तो वहीं दूसरी तरफ मुसलमानों को भी फटकारने से नहीं चूके। वे हिन्दुओं से कहते थे-

पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पूँजू पहाड़। / ताते वह चाकी भली, पीस खाय संसार॥

और मुसलमानों को भी ससझया -

कंकड़ पत्थर जोड़कर, मस्जिद लिया बनाय /

ता चढ़ि मुल्ला बाँग दें, क्या बहरा हुआ खुदाय।

लेकिन कबीरदास जी के व्यंग्य से हरिशंकर परसाई व उनके बाद के व्यंग्यकारों के व्यंग्य एकदम भिन्न हैं। इसका श्रेय समय-समय पर बदलती सामाजिक स्थितियों को जाता है। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल व लतीफ घोंघी आदि के यहाँ व्यंग्य में जहाँ एक तरफ सत्ता के प्रति आक्रोश है तो वहीं दूसरी तरफ सामान्य जन के प्रति करुणा। इनके यहाँ आम आदमी की दैनिक परेशानियाँ व एक अलग तरह के भाषायी तेवर आदि एक साथ झलकते दिखाई देते हैं।

समकालीन व्यंग्यकारों ने समाज में लगातार आ रहे विघटन को अपनी लेखनी का स्रोत बनाया। ऐसे व्यंग्यकारों में नरेन्द्र कोहली, प्रेम जनमेजय, ज्ञान चतुर्वेदी, अशोक शुक्ल और शंकर पुणतांबेकर आदि रहे हैं। आज व्यंग्य को सामाज के हथियार के रूप में देखा जा रहा है। अद्यतन व्यंग्यकारों में पंकज सुबीर, अनुराग वाजपेयी, आशीष दशोत्तर, अजय अनुरागी, अनुज खरे, अर्चना चतुर्वेदी, ललित शर्मा, रामनारायण मीणा, कृष्णकुमार, अशोक गौतम, अकबर महफूज आलम रिजवी, अनूप मणि त्रिपाठी सीताराम गुप्त और ओम नागर आदि प्रमुख हैं। आजादी के पूर्व व्यंग्य लेखन के मुद्दे सीमित थे। इनमें अशिक्षा, अंधविश्वास और रूढ़ियों आदि का ही बोलबाला अधिक था। स्वतंत्रता के पश्चात व्यंग्यकारों को राजनीतिक विरोध की स्वतंत्रता प्राप्त हुई। इसी के साथ व्यंग्य के विषय भी बदलने लगे।

सीताराम गुप्त का व्यंग्य 'गधों के हाथों में महफूज है मुस्तकबिल हमारा' में गुप्तजी हमारी ज्योतिष विद्या के दुष्प्रचारकों से परेशान हैं। वे बताते हैं कि ज्योतिष जैसा चिंतन करने वाले विषय को चंद लोगों ने जन सामान्य की भावना का शोषण कर अपनी रोजी-रोटी का आधार बना लिया है। ऐसे लोग समाज को तो भ्रमित करते ही हैं, साथ ही ज्योतिष जैसे विषय से भी लोगों का विश्वास समाप्त कर देते हैं - 'इसे दद्दू भैया के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। दद्दू भैया एक ऐसे व्यक्तित्व हैं जिनके पास हर मर्ज की दवा है, जैसे सैकड़ों की भीड़ में फँसे किसी एक आदमी का नाम लेने भर की जरूरत है और दद्दू भैया फौरन इस आदमी को भीड़ से बाहर निकाल लाते हैं। लोग दद्दू भैया की जय-जयकार कर रहे हैं। सब की समस्याओं का हल है दद्दू भैया के पास। विद्यार्थी पास-फेल होने की बात पूछ रहे हैं तो नौजवान रोजगार की और शादी की। कोई मुकदमे की हार-जीत के बारे में जानने का ख्वाहिशमंद है तो कोई आगामी चुनाव में टिकट मिलने के बारे में जानने को बेचैन है और दद्दू भैया हैं कि किसी को भी निराश नहीं करते।

आगे इसी व्यंग्य के माध्यम से वह बता रहे हैं कि एक चरवाहा समझदार होने के नाते वर्तमान घटनाक्रम को समझ कर उसके परिणामों के बारे में सही-सही जानकारी पहले ही दे देता है। जब इस बात की सूचना राजा को मिलती है तो वह उसकी परीक्षा लेने के लिए उसे बुलाते हैं। राजा अपनी मुट्ठी में एक टिड्डा बंद कर लेता है और चरवाहे से बताने को कहता है। साथ ही यह शर्त रख देता है कि यदि उसने गलत बताया तो

मृत्युदंड मिलेगा और सही बताने पर इनाम। चरवाहा सुन काँपने लगा संयोग से चरवाहे का नाम भी 'टिड्डी था और उसके मुँह से निकल गया-- राजा तेरी मुट्ठी में बस टिड्डी की नन्हीं सी जान है और कुछ नहीं? चरवाहे ने तो बस इतना ही कहा था कि राजा की मुट्ठी में चरवाहे की नन्हीं सी जान है लेकिन राजा ने समझा कि चरवाहे ने सही भविष्यवाणी की है और उस चरवाहे को अपने राज्य का प्रमुख ज्योतिषी नियुक्त कर दिया। इसी आधार पर व्यंग्यकार घोषणा करता है कि दद्दू भैया अब आपको भी राज ज्योतिषी बनाने से कोई नहीं रोक सकता इस बात की भविष्यवाणी स्वयं मैं करता हूँ। '(समीचीन पत्रिका, अंक जनवरी-जून 2012) इस प्रकार गुप्तजी ने देश की यथार्थ स्थिति को इस व्यंग्य के मध्यम से रखने का प्रयास किया है। ऐसी स्थिति में देश का विकास कैसे हो सकता है।

लोगों को लगता था लोकतंत्र आने से समाज के सभी वर्गों को समानता का अधिकार मिलेगा। इस देश में रहने वाला कोई भी व्यक्ति भूखा नहीं सोएगा। कोई भी गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करने के लिए विवश नहीं रहेगा। किसी के जीवन में किसी प्रकार का अभाव नहीं दिखाई देगा। लेकिन आज 'अकबर महफूज आलम रिजवी' जी की चिंता जायज लगती है। वे कहते हैं यह कैसा लोकतंत्र है जहाँ--कहने को तो सब कुछ है लेकिन पता नहीं क्यों, अक्सर कमी ही महसूस होती रही है। दोस्तों का आरोप कि बात-बात में मीन-मेख निकालने वाले पेशे का आदमी भला अच्छाई देखे तो देखे कैसे ! सोहबत भी रही तो शब्दों से, संवेदनाओं से और रही-सही कसर विचारधारा ने पूरी कर दी। बाजार फैलने लगा तो सांस्कृतिक विचलन का खौफ। औद्योगीकरण की बात उठी तो जमीन छिन जाने का भय। आबादी बढ़ी तो रोजगार का संकट। स्कूलों की खस्ता हालत। बच्चों में कुपोषण। महिलाओं में एनीमिया। पुरुषों में हाइपरटेंशन और ब्लड प्रेशर की शिकायत। कल-कारखाने खुलने लगे। गाड़ियाँ बढ़ने लगी। सड़कें चौड़ी होने लगीं तो प्रदूषण का डर, बिचौलियों की धमक, सरकारी खजाने की लूट-खसोट, कमीशन, रिश्वत, रोटी, रोना और न जाने क्या-क्या....। मानो जिंदगी, जिंदगी न रही, खराब हो गई। (व्यंग यात्रा, जनवरी-मार्च 2013, पृष्ठ- ६९, वर्ष -७, अंक -३४)

मीडिया जो हमारा चौथा स्तम्भ है। आज व्यक्ति उसे लेकर भी तरह-तरह की बातें करने लगा है। यह सही है कि मीडिया ने तो अरसा पहले से ही चीखना शुरू कर दिया था और चीख-चीख कर यह कह दिया था कि हमारे यहाँ वही चलेगा जो लोग देखेंगे। आज समाज के लोग भले ही मीडिया को लेकर तरह-तरह की बातें करें लेकिन वह भी उन्हीं चीजों को दिखाना पसंद करते हैं जिसे चटकारा ले-लेकर दर्शक देखना चाहता है। आज दृश्य ही शब्द बन चुके हैं। दृश्य ही भाव हैं। एंकर तो बस गूंगेपन को दूर करने के लिए है, चीखने के लिए। आज मीडिया वही कर रहा है, जो करने की जिम्मेदारी उसे सौंपी गई है, फिर चाहे वह लक्स कोजी, नैपकीन, टॉयलेट सॉप हो अथवा नेताओं पर लोगों की चप्पल, बलात्कार अथवा अवैध संबंधों की वजह से हत्या। इसीलिए अकबर

महफूज जी कहते हैं अब मीडिया जैसे चौथे स्तंभ से अपेक्षा रखना और उसे दोषारोपण करने का वक्त भी नहीं रहा। अतः वह कहते हैं-- 'मीडिया जो कर सकता है, कर तो रहा है। टीवी को देखने-समझने के लिए नजर से ज्यादा नजरिया बदलने की जरूरत है। माध्यम कोई भी गलत नहीं होता, चुनाव सही-गलत हो सकता है। लिहाजा चुनने में सावधानी बरतें। रिमोट तो आप ही के हाथ में है। कंटेंट पर नाक भौं मत सिकोड़िए, चैनल बदलिए।' (व्यंग यात्रा, जनवरी-मार्च 2013, पृष्ठ - ७०, वर्ष -७, अंक -३४)

हम सदियों से देखते आ रहे हैं कि शक्तिशाली व्यक्ति हमेशा से कमजोर व्यक्ति का शोषण करता आ रहा है। इस बात को लेकर समय-समय पर तरह-तरह की बहसें होती आ रही हैं। इन बहसों से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि जो व्यक्ति शारीरिक और सामाजिक बल को संरक्षित किए हुए है, वह सम्माननीय है क्योंकि उसकी इसी ताकत को लेकर समृद्ध वर्ग भयभीत रहता है। और जो व्यक्ति बुद्धि और विवेक को लेकर सक्षम है, उसको उसका प्रतिसाद नहीं मिल पाता। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे पत्थर को हम इसलिए तो बेवजह चिपकाए रखते है कि यह चोट देने की ताकत रखता है। शायद इसीलिए पाषाणी प्रवृत्तियों को हमने अपने दिलों में स्थापित कर रखा है। जो कुछ पशुवत या पाषाणवत् है, संसार उसके सामने नतमस्तक हो जाता है। जो कुछ भी मृदु और कोमल है वह सदा ही उपेक्षा या दलन का शिकार बनता है। इस संदर्भ में अकबर महफूज जी अपनी व्यंग्य रचना 'कुछ न खुदा समझ खुदा करे कोई' में कहते हैं-'क्या हम पाषाण युग से वाकई बाहर निकल चुके हैं ? हालात से तो ऐसा नहीं लगता ! माटी पर चलते, माटी से बनते, माटी से जीते, माटी में मिलते, हम मनुष्य- पाषाण की पूजा में तब से अब तक लगे ही हैं। पाषाणों का मनोबल बढ़ता ही जाता है। पहाड़ अड़े और खड़े तो रहेंगे ही, जब तक मिट्टी है।' (व्यंग यात्रा, जनवरी-मार्च 2013, पृष्ठ - ७१, वर्ष -७, अंक -३४)

आज हम देखते हैं कि समाज में छल छद्म बढ़ता ही जा रहा है। किसी का किसी के प्रति आदर भाव शेष नहीं रह गया है। यदि कोई आदर करता हुआ दिखाई भी देता है तो उसके पीछे अदृश्य में कहीं न कहीं उसका स्वार्थ छिपा होता है। अतः ऐसे सम्मान को पाना कहाँ तक उचित माना जाए। लेकिन आज चारों तरफ इसी तरह के सम्मानों का बोलबाला दिखाई दे रहा है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को इसलिए सम्मान दे रहा है कि कल वह अपने द्वारा किए जाने वाले आयोजन में उसे भी सम्मानित करेगा। आज जो व्यक्ति किसी को भी सम्मानित कर रहा है उसमें कहीं भी श्रद्धा नहीं दिखाई देती। वह केवल समाज में अपना सम्मान बनाए रखने के लिए इस तरह की प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। वह कम से कम पैसा खर्च कर इस सम्मान समारोह को संपन्न करना चाहता है इसीलिए कुछ ऐसे लोगों ने शमशान भूमि से अपने आपको इसलिए जोड़ कर रखा है कि मुर्दे को ओढ़ाए हुए शालों को 15 रुपए के हिसाब से खरीदा जा सके और मंदिर के पुजारी से दो रुपये नग के हिसाब से नारियल और एक रुपये नग के हिसाब से भगवान

पर चढ़ाई हुई माला ली जा सके। इसी भावना को केंद्र में रखकर पंकज सुबीर जी अपने व्यंग्य 'सम्मानित होते-होते बाल-बाल बचना' में समाज में व्याप्त सम्मानों को लेकर चिंतित दिखाई देते। वे अपने व्यंग्य के पात्र के माध्यम से कहलवाते हैं--अपना तो ऐसा ही है भाई बीस रुपये से ज्यादा किसी के सम्मान में नहीं खर्चते चाहे कोई कित्ती बड़ी ही भेलसे की तोप क्यों न हो। 15 का शाल, दो का श्रीफल, एक की माला, और 1 रुपये की ड्राइंग शीट पर 1 रुपये नग के हिसाब से कल्लू पेंटर के लड़के से सम्मान पत्र लिखवा लेते हैं हो गए बीस रुपये। (व्यंग यात्रा, जनवरी-मार्च 2013, पृष्ठ - १६, वर्ष -७, अंक -३४)

आज अनेक तरह की विषम परिस्थितियाँ जन सामान्य को प्रभावित कर रही हैं। एक तरफ मानव द्वारा निर्मित समस्याएँ अपना मुँह बाए खड़ी हैं, तो दूसरी तरफ प्राकृतिक आपदाएँ तरह-तरह से सामान्य जन व किसानों के लिए बहुत बड़ी समस्या खड़ी कर देते हैं। अनुराग बाजपेयी जी अपने व्यंग्य 'अकाल पर्व' के माध्यम से सरकारी अफसरों की पोल खोल कर रख देते हैं। वे बताते हैं अकाल घोषित हो जाने पर किस तरह केंद्रीय दल आता है और टिड्डी की तरह आपदाग्रस्त राज्य के विविध जिलों में पहुँचता है। वहाँ के अधिकारी इनके पहुँचने तक इनकी खातिरदारी की पूरी तैयार कर लेते हैं। तत्पश्चात सभी इस अकाल के लिए घोषित फंड में से अपना-अपना हिस्सा तयकर अंत में भविष्य के लिए आरती करते हैं- 'खरीफ के बाद रबी की फसल भी सूख जाए इस कामना में अफसर गीत गाते हैं। इसके बाद पटवारी तहसीलदार को, बी. डी. ओ. कलेक्टर को और खाद्य-विभाग का अफसर सरपंच या विधायक को तिलक लगाते हैं। इस पूरे अकाल पर्व में किसान हाथ में बकरी या गाय की रस्सी लिए यज्ञशाला के बाहर बैठा आसमान पर नजरें गड़ाए रहता है। बारिश की आस में उसकी आँखों से जो द्रव गिरता है उसे चरणामृत मानकर सारे अफसर सिर से छुआते हैं और फिर पी जाते हैं। इस प्रकार हमारे देश में हर वर्ष 'अकाल पर्व' मनाया जाता है।' (व्यंग यात्रा, जनवरी-मार्च 2013, पृष्ठ - 23, वर्ष -७, अंक -३४)

इस प्रकार व्यंग्यकार समाज की उस व्यवस्था की पोलखोलकर रख देता है जिनके हाथों में जन-सामान्य की स्थिति में सुधार लाने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। यदि इसके बाद भी हमारी सरकार और समाज के जिम्मेदार लोगों में जागृति नहीं आती है तो किसान और जन-सामान्य की स्थिति में सुधार संभव नहीं हो सकता है और जब तक इस वर्ग की स्थिति में सुधार नहीं होता तब तक हमारे देश का विकसित देशों की कतार में खड़ा होना भी संभव नहीं है।

अध्यक्ष व शोध-निर्देशक, हिन्दी विभाग,
रामनारायण रुइया स्वायत्त महाविद्यालय,
माटुंगा, मुम्बई -400019.

हिमांशु जोशी के उपन्यासों में व्यक्त समकालीन राजनीति

डॉ. ममता पंत

आधुनिक हिंदी साहित्य के विकास में कुमाऊँ अंचल से संबद्ध हिंदी साहित्यकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है जिनमें से एक नाम है- हिमांशु जोशी, जिन्होंने हिंदी साहित्य की विविध विधाओं से संबद्ध पर्याप्त समृद्ध एवं उपयोगी साहित्य का सृजन किया है। उनके उपन्यासों में 'अरण्य' (1965), 'महासागर' (1971), 'छाया मत वालाछूना मन' (1974), 'कगार की आग' (1975), 'समय साक्षी है' (1976), 'तुम्हारे लिए' (1978), एवं 'सु-राज' (1980) हैं। एक सजग उपन्यासकार होने के नाते उन्होंने समकालीन समाज, राजनीति, धर्म एवं संस्कृति की विसंगतियों को व्यापक रूप में उजागर किया है।

साहित्य को समाज का दृष्टा कहा गया है क्योंकि साहित्यकार खुद को सामाजिक जीवन से विलग नहीं कर सकता : 'साहित्य में समाज की प्रतिच्छाया मिलती है। किसी समाज की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक गतिविधियों का अंकन उसके साहित्य में स्पष्ट रूप से मिल जाता है।'[1] ब्रजभूषण सिंह आदर्श के अनुसार : 'साहित्य और राजनीति एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों एक दूसरे से तरंगित और प्रभावित होते हैं।'[2] अज्ञेय का भी मानना है कि : 'साहित्यिक और राजनैतिक को दो पृथक और विरोधी तत्त्व मान लेना किसी प्राचीन युग में भी उचित न होता, आज के से संघर्ष - युग में तो वह मूर्खतापूर्ण सा ही है।'[3] राजनीति की जड़ों का मानवीय भावनाओं से सम्बंध होने के कारण आज - जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राजनीति व्याप्त है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय राजनीति में जो व्यापक परिवर्तन हुए, राजनेताओं का जो चरित्र उभरकर सामने आया उससे अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, एवं भ्रष्ट नेतृत्व को ही प्रश्रय मिला जिससे देश में जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाई-भतीजावाद एवं भाषावाद के नाम पर ही राजनीति होने लगी। हिमांशु जोशी अपने समय के जीवंत उपन्यासकार थे। उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की सभी समस्याओं को अपनी पैनी नजर में रखा और समकालीन राजनीति का यथार्थ अपने उपन्यासों में उजागर किया। यूँ तो उनके प्रायः सभी उपन्यासों में समकालीन राजनीति किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होती है लेकिन भारतीय राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं प्रशासकीय अव्यवस्था को 'समय साक्षी है', 'कगार की आग' एवं 'सु-राज' में व्यापक रूप में उघाड़ा गया है। 'सु-राज' उपन्यास के संदर्भ में कृष्ण कुमार बिस्सा ने लिखा है : 'इसमें लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था के सच्चे मगर कड़वे यथार्थ को चित्रित किया गया है।.... निश्चय ही हिमांशु जोशी की यह कृति भ्रष्ट राजनीति द्वारा गरीबों के सूखते आंसुओं का यथार्थ दस्तावेज है।'[4] लोकतंत्र में न्यायिक व्यवस्था की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। न्यायालयों का जब गठन हुआ था तो इस बात पर सर्वाधिक जोर दिया गया था कि भले ही सौ गुनहगार बच जाएं पर किसी निर्दोष को

सजा नहीं मिलनी चाहिए। पर ये हमारा दुर्भाग्य है कि वस्तुस्थिति ठीक इसके विपरीत है। किसी निर्दोष को जबरन अपराधी घोषित कर दिया जाता है और अपराधी खुले आम स्वतंत्र विचरण करता है : 'जिन लोगों का हत्याकांड में हाथ था, वे निर्द्वन्द होकर घूम रहे थे ....। लोगों का कहना था - हत्या तल्ला चाराल के देवा ने की थी, पर पुलिस ने इस देवा को लाग के कारण फंसा दिया है।'[5]

पुलिस तत्कालीन सरकार की शक्ति होती है। अतः राजनीतिक शक्ति ही मानी जायेगी। उसके द्वारा निरपराध जनता का शोषण या उत्पीड़न भी राजनीतिक शोषण ही होता है। 'समय साक्षी है', 'सु-राज', 'कगार की आग' एवं 'अरण्य' उपन्यासों में हिमांशु जोशी ने शासन व्यवस्था एवं राजनैतिक इशारों पर किये जाने वाले पुलिसिया अत्याचार का यथार्थ चित्रण किया है : 'हारकर थाने गए, तो वहाँ थानेदार ने रपट दर्ज करने से इनकार कर दिया था और' डरा धमकाकर वापस भेज दिया।.... जुबान खोलने का अर्थ था, घोर अनर्थ।.... ऊपर से कुछ ऐसे सम्भ्रान्त, सुप्रतिष्ठित लोगों का भी आशीर्वाद उन्हें प्राप्त है, राजनीति की दुनिया में जिनकी गहरी पैठ है 'तो पुलिस घर में ही घुसकर उन्हें निर्ममता से पीट गई थी।'[6] इतना ही नहीं पुलिस के सामने यदि कोई अपराध हो रहा हो तो वह उसे रोकने के बजाय मूकदर्शक बनी खड़ी रहती है : 'देखा नहीं, पुनय्या बेचारे को जिन्दा जला दिया था, मिट्टी का तेल छिड़ककर और पुलिस सामने खड़ी देखती रही थी। कहते हैं, उसे खत्म कराने में बड़े- बड़े मिनिस्टरों का हाथ था।'[7] पुलिस द्वारा फैलाये जाने वाले आतंक, निरीह एवं भोली-भाली जनता पर ढाये जाने वाले जुल्म; उनके राजनीतिक स्वामियों के ही संरक्षण का परिणाम होते हैं। हिमांशु जोशी के उपन्यासों में नौकरशाही एवं पुलिसिया अत्याचार के अनेक घृणित चित्र दिखायी देते हैं। 'कगार की आग', एवं 'सु-राज' उपन्यास में पेशकार एवं पटवारी की दहशत का जीवंत चित्रण हुआ है, जिसमें वे अपनी निरंकुशता एवं तानाशाही के बल पर गाँव की भोली-भाली एवं असहाय जनता पर अपना जोर अजमाते हैं।[8] 'अरण्य' उपन्यास का पटवारी पेड़ों की चोरी के तहत पकड़े जाने की डर से निर्दोष माधव प्रधान को डरा-धमकाकर पेड़ों को काटने के अपराध को कबूल करवाना चाहता है।[9] लोक-लाज की डर से या फिर अपनी आर्थिक स्थितियों से तंग आकर कोई आत्महत्या करता है तो उसे हत्या बताकर पेशकार व पटवारी भोले - भाले एवं सहमे ग्रामीणों को तंग करते हैं।[10] 'कगार की आग' उपन्यास में पटवारी भरे ग्रामीणों के बीच महिला को घसीट लाने को कहता है और उसे नंगा करना चाहता है, : 'उतार कपड़े !..... आंगड़ी उतारने तेरा बाप आएगा यहाँ?'[11]

मंत्री, जमींदार, राजनेता, पुलिस, पटवारी तथा पेशकार अपने धन बल एवं अधिकारों का गलत फायदा उठाकर निर्धन एवं असहाय जनता का मानसिक, शारीरिक, आर्थिक एवं यौन उत्पीड़न करते हैं; जिससे अराजकता के माहौल को प्रश्रय मिलता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था खतरे में पड़ जाती है और राजनेताओं को भी सोचने को

विवश कर देती है : 'आज देश की जो स्थिति हुई , क्या उसके लिए हम भी जिम्मेदार नहीं?..... काले धन के सहारे जीतने वाली सरकार क्या न्याय करेगी? इतने वर्षों तक हमने क्या किया? अराजकता इसी तरह बढ़ती चली गई तो जनतंत्र कितने दिन टिक पाएगा?'[12] भ्रष्टाचार इस देश में अपनी लम्बी-लम्बी जड़ें फैला चुका है; जिसे समूल नष्ट कर पाना अब सहज नहीं है। हिमांशु जोशी ने समकालीन राजनीति में व्याप्त इन भ्रष्टाचार रूपी जड़ों का व्यापक चित्रण किया है। 'समय साक्षी है' की भूमिका में उन्होंने स्वयं स्वीकारा है कि : 'भ्रष्टाचार, सदाचार के आवरण में किस तरह प्रस्तुत किया जाता है, उसी आदर्शोन्मुख समाज का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किया गया है।'[13] शीर्ष नेताओं से लेकर छोटे- छोटे कर्मचारी, सरकारी अफसर, आम आदमी की लाचारी का फायदा उठाकर घूस या रिश्वत लेते हैं या तब तक प्रताड़ित करते रहते हैं जब तक उनकी जेब गरम न हो जाए।[14] प्रजातंत्र के संरक्षक कहे जाने वाले मंत्री जनता के पैसों को दोनों हाथों से बटोरते हैं। विकास कार्यों के नाम पर की जा रही लापरवाही एवं लीपापोती में भी वे पीछे नहीं रहते : 'स्वयं उनके चुनाव क्षेत्र में बना बांध धंस गया था। केवल औपचारिकता निभाने के लिए कुछ लीपापोती कर दी गई थी।.... जांच-कमीशन बिठाने का आश्वासन दिला दिया था।'[15] हिमांशु जोशी ने आपदाग्रस्त क्षेत्रों में नेताओं द्वारा जायजा लेने को की जाने वाली हवाई यात्राओं के दौरों की पोल भी खोली है : 'हेलीकाप्टर से ही, ऊपर से निरीक्षण कर वह लौट आए थे; पर लोगों का कहना था कि हेलीकाप्टर पर बैठे उनके चित्र राजधानी में ही खींचकर समाचार पत्रों को बांट दिए गए थे। सुबह के धुंधलके में जो हेलीकाप्टर बाँध के ऊपर खड़ा था, उसमें उनके बदले कोई और बैठा था।'[16]

ब्रिटिश शासन काल से ही भारतीय शासन व्यवस्था में प्रशासनिक अधिकारियों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अतः भ्रष्टाचार संबंधी मामलों में राजनेता इन अधिकारियों का भी सहयोग लेते व देते हैं। कभी बाढ़ आने पर या बांध टूटने पर मिलने वाली सरकारी सहायता भी या तो अधिकारी डकार जाते हैं या फिर मंडियों में बेच दी जाती है : 'गाँव के गाँव बह गये थे.... सरकार की ओर से जो कम्बल मुफ्त में बाँटने के लिए भेजे गए थे , वे मंडियों में खुलेआम बिक रहे थे।'[17] जब कभी कोई आपदा आती है तो सत्तारूढ दल हमेशा वस्तुस्थिति को छिपाता ही नहीं अपितु सहायता के आंकड़ों को खूब बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करता है। लेकिन आपदा पीढ़ितों तक कोई भी राहत सामग्री नहीं पहुंचती। बस उन्हें उनकी दुर्दशा पर ही मरने को छोड़ दिया जाता है : 'विस्थापितों के लिए जो अस्थायी कैम्प राज्य सरकार की ओर से बने थे, वहाँ महामारी फैल गयी थी.... सरकार की ओर से सहायता के आंकड़े खूब बढ़ा-चढ़ाकर दिए जा रहे थे। सरकारी अफसर यों ही जीपों में घूम -फिरकर अपना भत्ता बना रहे थे।'[18]

समकालीन राजनीति में सत्तालोलुपता इस कदर अपने पैर पसार चुकी है कि कोई भी सत्तारूढ़ व्यक्ति अपना पद छोड़ना नहीं चाहता। सत्तारूढ़ दलों के नेता चुनाव अभियान

के दौरान जनता को धमकी भी दे जाते हैं : 'चुनाव अभियान में उन्होंने स्पष्ट रूप से चेतावनी दे दी थी कि सत्तारूढ़ दल के उम्मीदवार की पराजय का स्पष्ट परिणाम होगा, सरकारी सहायता में वंचित होना।'[19] सत्तालोलुपता की यह स्थिति पूरे राष्ट्र को खोखला बनाती चली जाती है। फलस्वरूप जन आंदोलन होते हैं, जनता मंत्रियों से इस्तीफे की मांग करने लगती है, जिनका ज्वलंत चित्र 'समय साक्षी है' उपन्यास है। जनप्रतिनिधियों की पद-लोलुपता की चरम स्थिति यह है कि बड़े- बड़े धार्मिक अखाड़े राजनीतिक षडयंत्रों के अड्डे बन रहे हैं। संत, महात्मा एवं बाबा कहे जाने वाले तथाकथित धर्म के ठेकेदारों का राजनीति में काफी बोलबाला है : 'शेषगिरि सन्त ही नहीं, राजनीतिज्ञों के महन्त भी थे'..बहुत से राजनीतिज्ञों के भाग्य का यहाँ निर्णय होता, बहुत से विधायक 'बेचे' और 'खरीदे' जाते, बड़े बड़े लाइसेंसों की सौदेबाजी होती...।'[20] धर्म की आड़ में आश्रमों में होने वाले अनैतिक आचार-व्यवहारों एवं राजनीतिक षडयंत्रों का पदार्फाश भी हिमांशु जोशी ने शेषगिरि के माध्यम से किया है : 'तिमिर वरन के विरोधियों को आश्रम में आमंत्रण देकर हर तरह से भ्रष्ट किया। सुकुमारी कन्याओं के साथ उनके विलास के फोटो गुप्त रूप से खींचे।....ताकि मौके पर उनके पेश कर देने की धमकी देकर अनुचित लाभ उठाया जा सके।'[21]

अवसरवादिता मानव की आदिम प्रवृत्ति है। उचित एवं अनुचित अवसरों का लाभ उठाकर स्वार्थपूर्ति की प्रवृत्ति का यथार्थ चित्रण हिमांशु जोशी के उपन्यासों में हुआ है। सत्ता प्राप्ति हेतु किसी भी स्तर तक गिर जाने वाले नेता; पद- प्राप्ति का कोई भी अवसर छोड़ना नहीं चाहते। इसके लिए चाहे उन्हें विधायकों की चापलूसी करनी पड़े या मुख्यमंत्री की।[22] हिमांशु जोशी ने अपने राजनीतिक चरित्रों के माध्यम से समकालीन राजनीति की उस अवसरवादिता की ओर भी संकेत किया है कि वे मंत्रियों का समर्थन भी उनकी अनुकम्पा पाने हेतु ही करते हैं। 'समय साक्षी है' उपन्यास में पी. पी. का चरित्र तो ऐसा है कि : 'सत्ता की बागडोर जब जिसके हाथ में रहने की सम्भावना होती, पी.पी. उसी ओर ढुलक जाते।'[23] हिमांशु जोशी के उपन्यासों में व्यवस्थाओं से उपजे जीवन की यथार्थताओं के मार्मिक चित्र भी दिखायी देते हैं : 'परमानंद पंडित ने मृत्यु से कुछ महीने पहले कहा था - लड़ाई खतम हो गई गंगा! अंग्रेज हार गए।.... किंतु लड़ाई खतम कहाँ हुई? तारा के घर में एक जून भी चूल्हा नहीं जलता। भवानी का होनहार बेटा दिग्गू पाठशाला नहीं जा पाता, क्योंकि किताबों के लिए पैसे की व्यवस्था नहीं हो पाती 'पटवारी किसी निरपराधी को हथकड़ी लगाकर हौलात में ठूंस देता है।'[24] राजनेताओं एवं समाज के ठेकेदारों के तानाशाह रवैये के कारण आम-जन-मानस व्यथित है। जिसकी ओर हिमांशु जोशी ने 'सु-राज' के 'गाँगि का' के माध्यम से संकेत किया है जो समकालीन राजनीति का यथार्थ है : 'अब तक मैं समझा था, सुराज आ गया! पर अब लगने लगा है, सुराज नहीं आया, और न फिलहाल आने ही वाला है।'[25]

'समय साक्षी है' उपन्यास में राजनेताओं के दोहरे व्यक्तित्व एवं उससे उपजी

तुष्टिकरण की राजनीति के रंग यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। नेताओं की कथनी और करनी में पर्याप्त अंतर होता है। उनके द्वारा मंचों से की गई लुभावनी घोषणाएं और उन घोषणाओं के अनुरूप कार्य न होना उनके दोहरे व्यक्तित्व की ओर ही संकेत करता है। गरीब व असहाय जनता की भावनाओं से खिलवाड़ करना, लच्छेदार भाषणों से सब्जबाग दिखाना इन नेताओं का शगल है : 'खादी के साधारण से कपड़े.... ! जब वह समाजवाद या गरीबी दूर करने के नारे लगाते थे, तब लगता था, वाकई कोई भुक्तभोगी किसान अपने ही दुःख-दर्द की बातें कर रहा है।'[26] वर्तमान में हर नेता साम, दाम, दंड, भेद किसी भी प्रसार से अपने प्रतिद्वंदी को पछाड़कर ऊपर उठना चाहता है, अपनी पार्टी की सरकार बनाने, दूसरे की गिराने और इन सबके लिए वे सदस्यों की खरीद-फरोख्त करने से भी नहीं चूकता; जिससे राजनीतिक कालाबाजारी को प्रश्रय मिलता है : 'थैली के मुख विधुशेखर के समर्थकों ने भी खोल दिए थे.... मोल तोल चल रहा था। बिकने में किसी को कोई एतराज न था, सौदा पट जाए तो !'[27]

पुराकाल से ही शासक वर्ग और सामान्य जनता के बीच असीमित भेद चला आ रहा है। विकास और समय के साथ यह भेद अधिक विद्रूपता के साथ बढ़ते रहा है। सामान्य जनता जहाँ अपने सीमित साधनों में संतुष्टि खोजने का प्रयास करती है वहीं शासक वर्ग सुख की असीमित तृष्णा में भटकता है। अधिक ऊँचाइयों को पाने की जिजीविषा में सत्ता प्राप्त वर्ग; निम्न वर्ग या फिर सामान्य जनता से दूर होता चला जाता है। जिसे हिमांशु जोशी ने 'सु-राज' उपन्यास की 'पूर्वा' में स्वीकार किया है : 'निरंतर निकट आने के बाद भी आदमी और आदमी के बीच दूरियां बढ़ रही हैं।.... दिन प्रतिदिन अर्थ की बढ़ती महत्ता ने अनर्थ के कई आयाम खोल दिए हैं। लगता है राजनीतिक भ्रष्टाचार सामाजिक शिष्टाचार का पर्याय बन गया है।'[28] जिसे उपन्यासकार नागार्जुन ने खाते-पीते सयानों की चौपड़ कहा है। 'समय साक्षी है' उपन्यास तो इन सयानों की चौपड़ों से भरा पड़ा है : 'वरिष्ठ मंत्री द्वारा पाँच करोड़ रुपये की धांधली।'[29] इतना ही नहीं : 'अपने दामाद के नाम से उन्होंने निर्यात के लाइसेन्स लिए हैं। राजधानी में बासठ लाख की तीन आलीशान कोठियाँ बनवाई हैं। विदेशी बैंकों में लाखों रुपये जमा है। रिश्तेदारी के नाम से कारखाने चल रहे हैं। कई सिनेमाघरों में उनके हिस्से हैं।'[30] स्पष्ट है कि सत्ता तो कुछ ही गिने- चुने व्यक्तियों के हाथों की कठपुतली है जिसका मनचाहा उपयोग ये लोग करते हैं। यही कारण है कि स्वराज कभी भी गरीब व निरीह जनता के लिए नहीं आया। हिमांशु जोशी ने इस मर्म की अभिव्यक्ति इन शब्दों में की है : '....इन्हीं भेड़ियों के हाथ में राज सौंपने के लिए हम जेल गए थे! अपना सब कुछ गंवाया था.... ओह ! काश, यह दुनिया कुछ भी जीने लायक हो पाती।'[31]

साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल की परिस्थितियों से प्रभावित रहता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है।[32] हिमांशु जोशी भी समकालीन राजनीतिक उठा-पटक एवं उससे उपजे नैराश्य से

अछूते न रह पाये। इसीलिए उनके उपन्यासों में समकालीन राजनीति की विसंगतियों, दिन-प्रतिदिन गिरती स्थितियों, जनता की दीन-हीन दशाओं का यथार्थपरक अंकन हुआ है।

संदर्भ :

(1.) शुक्ला, इन्दु (सं), भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में चित्रित देशकाल और भारतीय समाज; हिंदी बुक सेन्टर, दिल्ली, संस्करण, 19921, पृ.1, (2.) आदर्श, सिंह, ब्रजभूषण, हिंदी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन, रचना प्रकाशन, खुल्दाबाद, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1970, पृ.38, (3.) वात्स्यायन, हीरानन्द, सच्चिदानन्द, त्रिशंकु, (संघर्ष युग में साहित्य), सरस्वती प्रेस बनारस, 1945, पृ. 73, (4.) 'चन्द्र', बिस्सा, कुमार, कृष्ण, साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना, दिनमान प्रकाशन, चर्खेवालान, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1984, पृ. 25-26, (5.) जोशी, हिमांशु, सु-राज, भारतीय प्रकाशन संस्थान,अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली, संस्करण 2010,पृ. 52, (6.) जोशी, हिमांशु, समय साक्षी है, हिंद पॉकेट बुक्स, गुड़गांव, हरियाणा, संस्करण 2019, पृ. 61-62, (7.) वही; पृ.64, (8.) सु-राज, पृ. 46, (9.) दर्पण,महेश, (सं.), संपूर्ण उपन्यास हिमांशु जोशी, भाग-1, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2019, पृ.74 (10.) सु- राज ; पृ.39-40 , (11.) दर्पण, महेश (सं.), संपूर्ण उपन्यास हिमांशु जोशी, भाग-2, पृ. 383 , (12.) समय साक्षी है ; पृ. 103 , (13.) https://www.pustak,org.bookdetails, (14.) सु-राज : पृ० 43, (15.) समय साक्षी है, पृ.42, (16.) वही; पृ. 42, (17.) समय साक्षी है पृ. 42, (18.) वही; पृ.86, (19.) वहीं; पृ. 87, (20.) समय साक्षी है; पृ. 26-27, (21.) वही; पृ.30, (22.)वही; पृ. 28, (23.) वही ; पृ. 43, (24.) सु-राज ,पृ.17-18, (25.) वही; पृ.26, (26.) समय साक्षी है; पृ.7, (27.) वही; पृ. 44, (28.) सु-राज;पृ.7-8, (29.) समय साक्षी है; पृ. 8, (30.) वही; पृ. 12-13, (31.) सु-राज; पृ.44-45, (32.) राज,सेन,अपूर्व, (डॉ.), हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना; पृ. 20-21

सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय
एस.एस.जे.परिसर, अल्मोड़ा

'परशुराम शुक्ल के बाल काव्य में राष्ट्रीय भावना'

डॉ. वर्षाराणी निवृतीराव सहदेव, शोध
श्रीमती सुरेखा संदीप जाधव, निर्देशक

राष्ट्रीयता की भावना से तात्पर्य है कि अपने राष्ट्र के प्रति तन मन एवं धन से समर्पित होना। भारत में राष्ट्रीयता एवं देशप्रेम पूर्ण कविताओं का सृजन आजादी से पूर्व कुछ साहित्यकारों और क्रांतिकारियों ने किया था किंतु आजादी के बाद राष्ट्रीयता की भावना से युक्त बाल कविताओं का अकाल-सा पड़ गया है। शुक्ल जी ने इस रिक्तता को भरने का प्रयास किया है। राष्ट्र और राष्ट्रीयता सर्वोपरि है। राष्ट्र के समर्पण की भावना प्रत्येक नागरिक के हृदय में होनी चाहिए। इस बात की याद कवि साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से दिलाते रहते हैं। बच्चों के हदय में राष्ट्रीयता और मानवता की भावना को जागृत करने और पुष्ट करने के लिए अनेक बाल साहित्यकारों ने बाल साहित्य लिखा है। नवजागरण काल में जब राष्ट्रीय विचारधारा की लहर चल रही थी, अधिकांश कवियों ने राष्ट्रीय रचनाएं लिखकर बच्चों और बड़ों के हृदय में राष्ट्र-रक्षा तथा राष्ट्रीयता के भाव जागृत करने का प्रयास किया है।

इस संबंध में डॉ. उदय सिंह उदय जी का कथन द्दष्टव्य है, 'देश प्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना की बाल कविताओं का सृजन अनेक बाल साहित्यकारों ने किया जिनमें मैथिलीशरण गुप्त से लेकर डॉ परशुराम शुक्ल, अजय जनमेजय, डॉ. गणेश दत्त सारस्वत, डॉ.चक्रधर नलिन, भानु दत्त त्रिपाठी, भगवती प्रसाद गौतम, डॉ. श्री प्रसाद, डॉ. हरीश निगम, सोहनलाल द्विवेदी, कृष्णा शलभ, डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, डॉ. प्रकाश मनु, डॉ. गोपाल सिंह, शेष बलवीर सिंह, रंग रामनिरंजन, डॉ. निरंकार देव सेवक एवं घमंडी लाल अग्रवाल के साथ-साथ अवध किशोर सक्सेना डॉ राज गोस्वामी आदि हैं। जहां बाल साहित्यकारों ने प्रचुर मात्रा में बाल गीतों को संजोया वहीं भारतीय कवयित्रियों ने भी देश प्रेम और राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण बाल गीतों का सृजन किया है, जिनमें प्रमुखता से सुमित्रा कुमारी चौहान, पद्मा गांवकर, उषा यादव, डॉ मधु भारतीय, डॉ शकुंतला कालरा एवं डॉ अनामिका रिछारिया आदि हैं। सुप्रसिद्ध बाल साहित्यकारों ने देश प्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना के बाल गीतों का सृजन कर बचपन से ही बालकों में राष्ट्रीय चेतना का संचार करने तथा उनमें जोश एवं उत्साह भरने का प्रयास किया है; जिससे बालकों के अंदर देश के प्रति सच्ची श्रद्धा उत्पन्न हो सके और उनमें ऐसी भावना पैदा हो सके कि राष्ट्र के हित के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर करने में भी न हिचकिचाएँ और हंसते-हंसते देश की खातिर प्राणों का बलिदान कर शहीद हो जाएँ'[1]

परशुराम शुक्ल ने बालकों में राष्ट्र रक्षा के क्षेत्र में प्रेरणा और प्रोत्साहन देने के लिए इस प्रकार के वर्णन पर्याप्त मात्रा में किए हैं-

सूरज जैसे काम करो तुम / जग में अपना नाम करो तुम / शूरवीर बलवान बनो तुम /

सभी गुणों की खान बनो तुम / दुखियों के वरदान बनो तुम /
एक भले इन्सान बनो तुम / सच्चे और महान बनो तुम / भारत माँ की शान बनो तुम।[2]

महात्मा गांधी की जीवन शैली राष्ट्रीयता का प्रतीक बन गई है। भारत देश के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने देश की स्वतंत्रता के लिए नई दिशाएं दी हैं। उन्होंने अहिंसा, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन का नेतृत्व किया था तथा अन्य स्वतंत्रता सेनानियों के साथ मिलकर अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए मजबूर किया था। भारत देश के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पंचशील का सिद्धांत प्रतिपादित किया था। लोकतांत्रिक परंपराओं को मजबूत करना, धर्मनिरपेक्ष चरित्रों का निर्माण करना, राष्ट्र और संविधान के माध्यम से देश की अर्थव्यवस्था सुचारु करना उनके मुख्य उद्देश्य रहे। इस संदर्भ में शुक्ल जी ने बच्चों को राष्ट्रीय प्रबोधन करते हुए लिखा है-

खेतों में पानी पहुंचाकार, / हरे भरे पेड़ लगाकर / दुखी और निर्धन कृषकों के,/
ओठों पर मुस्कान बिछाकर / पीडित मानवता के दुख का, /
हम मिलकर उपचार करेंगे।
गौतम, गांधी और नेहरू के, / सपने हम सरकार करेंगे।'[3]

राष्ट्रभक्ति की भावना सबसे श्रेष्ठ है। हर एक नागरिक के मन में यह होना चाहिए। बच्चों के मन में राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने हेतु शुक्ल जी ने अपनी अनेक बाल कविताओं के माध्यम से गांधी जी की विचारधारा के मूल्य सत्य, अहिंसा के महत्व को बताया है। इस प्रकार की कविताओं के माध्यम से बच्चों के मन में बापू के प्रति जिज्ञासा के भाव दिखाई देते हैं। साथ ही उनके व्यक्तित्व की छाप उन पर दिखाई देती है-

दी तुमने आजादी हमको, बिन हथियार उठाए /
गर्व सभी को उस दिन पर, जिस दिन तुम बापू आए।।
अंग्रेजी निर्मम शासन से, तुमने हमें बचाया।
सत्य, अहिंसा और धर्म का, हमको पाठ पढ़ाया।।'[4]

शुक्ल जी ने बालमन को एक नई प्रेरणा देते हुए भारतवर्ष को महान बनाने की राह बालकों को दिखाई है, जिस पर चलकर वे भविष्य में अपने राष्ट्र के प्रति सदैव प्रयत्न कर सकेंगे; राष्ट्रीयता और देशप्रेम से लबालब होंगे। उन्होंने 'फौजी कहलाते हैं' कविता के माध्यम से भारत माता का गुणगान किया है। साथ ही प्रेरणा दी है कि कितनी भी विकट परिस्थिति सामने आ जाए परंतु हमें निडर होकर अपने देश के स्वाभिमान की रक्षा करनी चाहिए एवं समस्त देशवासियों में भाईचारे को अपनाना चाहिए, यही प्रेरणा देते हुए शुक्ल अपने बाल कविता में लिखते हैं-

भारत मां का सच्चा सेवक, फौजी कहलाता है। / पर्वत नदियां आओ समंदर, /
देख नहीं घबराते हैं / जब तक मंजिल हाथ न आए, / आगे बढ़ता जाता है। /
शाम सवेरे देश प्रेम के, सबको गीत सुनाता है। / बर्फीला चट्टानों में भी, /

सजग हमेशा रहता है।/ आधी पानी सर्दी गर्मी, / दम पर अपने जाता है।'[5]

राष्ट्रधर्म की भावना को बाल साहित्य में सर्वोपरि महत्व दिया गया है क्योंकि बालकों का मन मस्तिष्क स्थायी रूप से प्रभाव ग्रहण करता है। इस अवस्था के संस्कार बालक को जीवन भर मार्गदर्शन देते हैं। शुक्लजी वर्तमान युग के श्रेष्ठ बाल साहित्यकार हैं। इन्होंने बाल साहित्य की सभी विधाओं के माध्यम से राष्ट्रीयता और मानवता का संदेश दिया है। राष्ट्रीयता और मानवता के पोषण की चेतना जागृत की है। राष्ट्रीय एकता की चेतना जागृत करते हुए उन्होंने लिखा है -

'हम बच्चे छोटे-छोटे हैं, हम साहस हिम्मत वाले हैं।
है गर्व हमें भारत मां पर, हम भारत के रखवाले हैं।
हम करते गर्व अहिंसा पर, बापू के पुत्र निराले हैं।
सीमा के दुश्मन सावधान, हम भारत के रखवाले हैं।[6]

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई स्वाभिमानी, आत्मविश्वासी और धर्मनिष्ठुर रानी है। रानी कभी किसीसे डरती नहीं थी। प्रलोभन उसे कर्तव्य पालन से विमुख नहीं कर सकते। यह उद्गार लक्ष्मीबाई के हैं। 'मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी' यह वाक्य रानी के मुख से प्रस्फुटित हो गया। अंग्रेजों से लड़ते समय रानी जमीनदोस्त पड़ गई। झांसी की रानी के कर्तव्य से बच्चों को राष्ट्रीयता की प्रेरणा देने के लिये कवि लिखते हैं -

आओ बच्चों! तुम्हें सुनाएँ, गाथा एक पुरानी
जिसने गौरव को ललकारा, वह झांसी की रानी।
सन अट्ठारह सौ पैंतिस में, उसने जन्म लिया था
कर न सका जो कोई अब तक, ऐसा काम किया था।
मुँह बोली बहना नाना की, साहस, हिम्मतवाली
वह तलवार चलाती ऐसे, वार न जाता खाली।
तेरह वर्षों में बन बैठी, गंगाधर की रानी।
झांसी नगरी में आ पहुंची, गढने एक कहानी।'[7]

परशुराम शुक्ल जी की अधिकतम बाल कविताएं राष्ट्रीय भावना से भरी हई हैं; प्रणोती पाटील जी लिखती हैं- 'परशुराम शुक्ल की बाल साहित्य की मूल भावना राष्ट्र निर्माण की है। बालक आगे चलकर अच्छा नागरिक बने और राष्ट्र निर्माण में, शांति व्यवस्था में, समृद्धि के कार्यों में पूर्ण योगदान प्रदान करे, इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर शुक्ल जी ने काव्य रचना की है।'[8]

'कर्तव्य' बाल कविता में परिवार और समाज में मिल जुलकर रहते समय नैतिकता का पालन करना जरूरी है। परिवार एवं समाज में नाता जोड़ने का काम नैतिकता कर सकती है। बच्चों को पुण्य और पाप का महत्व समझाने के लिए उन्होंने प्रबोधन किया है। बच्चों को देशप्रेम की प्रेरणा देने के साथ-साथ दीपक बनकर भारत मां की सेवा करने का शुक्ल ने अपने काव्य में सुंदर ढंग से चित्रण किया है-

नैतिकता ने नाता तोड़ा, पुण्य पाप से बाजी हारा।
मानवता भी बाँझ हो गई, पशुता ने वह पाँव पसारा।।
ऐसे में कुछ कर दिखलाना, बनता है कर्तव्य तुम्हारा।
दीपक बनकर भारत मां के, दूर करो जग का अंधियारा।।'[9]

'बच्चों की सरकार' कविता में वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर गहरा प्रहार करते हुए बालकों की शिक्षा में आने वाली रुकावटों को दूर करने का प्रयास किया है ताकि शिक्षा प्रणाली छात्र-प्रधान हो न कि शिक्षक प्रधान। परशुराम शुक्ल जी ने 'बच्चों की सरकार' कविता के माध्यम से बालकों को राष्ट्रीय प्रेरणा दी है-

भारत के नन्हें-मुन्ने, छाई खुशी अपार। /
आज शपथ लेने वाली है, बच्चों की सरकार।/
पहले दिन संसद में आए, मुद्दे केवल चार। /
नव निर्वाचित सब बच्चों ने, रखे नए विचार।
भारी बस्ता कठिन पढ़ाई, मार डांट फटकार।
सबने मिलकर सिद्ध कर दिया, यह चारों बेकार।।[10]

'सौराष्ट्र' कविता संग्रह की कविताओं में शुक्ल ने भ्रष्टाचार न करने का प्रबोधन बच्चों से किया है। अफसर अपने पद का दुरुपयोग करके देश की संपत्ति का शोषण करता है। देश के भष्ट नेताओं द्वारा किया गया घोटाला या एक ग्वाले द्वारा दूध में पानी मिलाना भी भ्रष्टाचार का स्वरूप है। देश का लचीला कानून भ्रष्टाचार होने का प्रमुख कारण है। भ्रष्टाचारी लोग मस्तिष्क में सदैव अपने धन को बढ़ाने की प्रबल इच्छा रखते हैं। नेता और अफसर अपना काम जल्दी कराने के लिए उन्हें पैसे देते हैं। आज के यथार्थ परिवेश से कवि बच्चों को परिचित कराते हैं। अच्छाई की होली जलाकर भ्रष्टाचारी कैसे दिवाली मना रहे हैं तथा नेतागण सामान्य लोगो का शोषण कर टैक्स के नाम पर केवल अपनी मोटी जेबें भर रहे हैं। अतः यह भ्रष्टाचार होता है। इस भष्टाचार को रोकने के लिए उन्होंने लिखा है-

सत्य, अहिंसा, सदाचार की, होली जलती आज देश में।
और दिवाली मना रहे हैं, भष्टाचारी कुटिल वेश में।।
नेता, अफसर भष्ट हो गये, जीवन भर यह शोषण करते।
टैक्स, टैक्स और टैक्स लगाकर अपनी मोटी जेबें भरते।।'[11]

'अधिकार और कर्तव्य' कविता में शुक्ल ने बच्चों को देश के संविधान के विषय में प्रबोधन किया है। भारत देश का संविधान दुनिया का सबसे लम्बा लिखित संविधान है। संविधान को धर्म- शास्त्र, विधि-शास्त्र आदि नामों से भी जाना जाता है। दुनिया का सबसे अच्छा संविधान भारत देश का माना जाता है। संविधान की नजर में सब एक समान हैं। सबको अधिकार और कर्तव्य एक समान है। संविधान में बड़ा- छोटा, अमीर-गरीब सबके लिए एक जैसे पुरस्कार दिये हैं। कवि ने अपने संविधान का सुंदर

ढंग से चित्रण किया है-

संविधान आजादी वाला, बच्चों! इस दिन आया। /
इसने दुनिया में भारत को, नव गणतंत्र बनाया।।
क्या करना है और नहीं क्या संविधान बतलाता। /
भारत में रहने वालों का, इससे गहरा नाता ।।
यह अधिकार हमें देता है, उन्नति करने वाला। /
ऊंच-नीच का भेद न करता, पंडित हो या लाला।।
हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, सब हैं भाई भाई। /
सबसे पहले संविधान ने, बातें यही बतलाई।।[12]

बच्चों को राष्ट्र-प्रेम और देशभक्ति की शिक्षा दिए जाने पर शुक्ल जी ने बाल सतसई में देश-भक्ति और देश-प्रेम के नाम पर व्यापार करने वाले राजनेताओं की भी निंदा की है। बच्चों को अगर बाल्यकाल से ही देशभक्ति का मूल्य समझाएंगे तो देश की सारी समस्याएं अपने आप समाप्त होंगी और बच्चे बापू-नेहरू तथा बोस की तरह सब कुछ भुला के देश सेवा में रत हो जाएंगे।-

बचपन से ही दीजिए, देशभक्ति का ज्ञान। / देशभक्त बच्चे अगर, होगा देश महान।।
बच्चों के आदर्श है, बापू, नेहरू, बोस। /
देश प्रेम सम्मुख जिन्हें, रहा न कुछ भी होश।।
जहां राष्ट्रभाषा नहीं, गूंगा है वह देश। / डूब मरो सब शर्म से, बच्चों का आदेश।।'[13]

'तिरंगा' बाल कविता में बच्चों को अपने दूषित प्रजातंत्र तथा अन्याय के प्रति जागरूक व्यवस्था को बदलते हुए अपना राष्ट्रीय दायित्व पूर्ण करने की बात की है। बच्चों में देश के प्रति दायित्व बोध का ज्ञान कराने का सुंदर प्रयास किया है। सभी में एक नई चेतना लाने की बात कवि करते हैं। ज्ञान से अज्ञान को दूर कर देश को स्वर्ग बनाने का संदेश कवि देते हैं। आपस में कभी न लड़ने की सौगंध उठाने को कहते हैं। राष्ट्रीयता की प्रेरणा देते हुए इन्होंने लिखा है-

अखिल विश्व में सबसे ऊंचा / अपना ध्वज फहराओगे।
बच्चों ! तुम यह करो प्रतिज्ञा भारत स्वर्ग बनाओगे।।
बड़े बड़े उद्योग लगाकर, खेतों में पानी पहुंचाओ।
नये ज्ञान का दीप जला कर, सबमें नयी चेतना लाओ।।'[14]

समग्र विवेचन के आधारपर हम कह सकते है कि, हिंदी बाल काव्य में राष्ट्रीयता की भावना प्रमुख रही है। हिंदी बाल साहित्यकार परशुराम शुक्ल ने बच्चों में राष्ट्रीय भावना जागृत करने के उद्‌शेय से राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण काव्य लिखा हैं। 'तिरंगा' काव्य संग्रह नवजागरण का अग्रदूत है। इसमें देश के अतीत गौरवगान से लेकर देश प्रेम की भावना का वर्णन मिलता है। शुक्ल जी ने अपनी बाल कविताओं में बच्चों की राष्ट्रीय भावना, राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीयता की प्रेरणा जगाने का प्रयास किया है। उनकी अनेक

कविताओं में भारतमाता का गुणगान किया गया है। साथ ही अपने देश के स्वाभिमान की रक्षा का संदेश, नैतिकता का पालन, राष्ट्रप्रेम, राष्टीय एकता की चेतना उनकी अनेक कविताओं में दृष्टिगत होती है।

संदर्भ :

1. हिंदी बाल कविता की प्रवृत्तियां डॉक्टर उदय सिंह उदय, आशा प्रकाशन कानपुर, पृ. स. 90
2. परशुराम शुक्ल, 'नदनवन', पृ.16
3. परशुराम शुक्ल,'कामना', पृ.14
4. परशुराम शुक्ल, 'तिरंगा', पृ.37
5. परशुराम शुक्ल, 'सूरज पाना है', पृ.19
6. परशुराम शुक्ल,मोटूराम, पृष्ठ 12
7. परशुराम शुक्ल, 'विजय पर्व', पृ.62
8. हिंदी बाल साहित्य का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, डॉ प्रणोती पाटिल, आशा प्रकाशन कानपुर पृष्ठ 53
9. परशुराम शुक्ल, 'तिरंगा', पृ.11
10. वही..... पृ.11
11. परशुराम शुक्ल, 'तिरंगा', पृ.15
12. परशुराम शुक्ल, 'विजय पर्व', पृ.12
13. परशुराम शुक्ल,'बाल सतसई', पृ.89
14. परशुराम शुक्ल, 'तिरंगा', पृ.79

श्री विजयसिह यादव महाविदयालय, शिवाजी विश्वविद्यालय,
पेठ, वडगाव, कोल्हापुर

२१ वीं सदी के हिंदी फिल्मी गीतों में राष्ट्रीय भावना

डॉ. गोरखनाथ किर्दत

राष्ट्रीय गीत देश का गौरव होते हैं। उनसे देश के प्रति लगाव और प्रेम का सृजन होता है। अदम्य साहस और शौर्य को जगाने में राष्ट्रीय गीतों का बहुत महत्व होता है। अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध भावना जगाने में भी इन गीतों का पूरा योगदान रहता है। राष्ट्रीय एकता को कायम रखने में फिल्मों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ब्रिटिश साम्राज्य के दिनों से फिल्मों में साम्प्रदायिक सद्भावना और देश प्रेम की भावना से सम्बन्धित पटकथा और गीतों को स्थान दिया जाता रहा है। देश प्रेम पर बनने वाली फिल्मों का सिलसिला भारतीय स्वतंतत्रा के पश्चात् भी अबाध गति से चलता रहा और आज भी फिल्मों के माध्यम से उसे बड़े सशक्त रूप में उभारा जाता है। ऐसी फिल्मों में कथा के साथ साथ उसमें निहित गीत और पार्श्व संगीत का विशेष महत्व रहता है। ये गीत समाज के मानसपटल पर अंकित होकर नई पीढ़ी की प्रेरणा बनते हैं। पिछले ७५ वर्षों में बॉलीवुड की अनेक फिल्मों ने देशवासियों में देशभक्ति का भाव, शौर्य और देश के लिए बलिदान का भाव भरा है।

२१वीं सदी की फिल्मों में राष्ट्रीय भावना को उजागर करने वाले जो गीत प्रयुक्त किए जा चुके हैं, उनमें प्रमुख फिल्मी राष्ट्रीय गीतों की चर्चा यहाँ की गयी है। आमतौर पर फिल्में मनोरंजन के लिए बनायीं जाती हैं किंतु इसके साथ ही स्वतंत्रता, समता, जाति भेद, प्रेम कहानी, युद्ध एवं खेल आदि विषयों पर भी फिल्में बनती हैं। यह बात सही है कि आजकल बॉलीवुड में देशभक्ति परक फिल्में कम बन रही हैं। बावजूद इसके जितनी भी फिल्में बनी हैं, उनके गीतों ने राष्ट्रीय भावना को जगाने का प्रयास जरूर किया है। २१वीं शताब्दी में अपने समय के मुताबिक बनी फिल्मों में एल.ओ.सी. कारगिल (२००३), टैंगो चार्ली (२००५), शौर्य (२००८), गदर, बॉर्डर, मंगल पांडेः द राइजिंग, टॉयलेट, रंग दे बसंती, फना, लगान (२००१), चक दे इंडिया (२००७), द लिजेंड ऑफ भगत सिंह (२००२), खेले हम जी जान से (२०१०), भाग मिल्खा भाग (२०१३) उरीः द सर्जिकल स्ट्राइक आदि महत्वपूर्ण फिल्में हैं। इनमें से कुछ फिल्मों ने साधारण भारतीय लोगों के मन में अपनी सेना के प्रति सम्मान बढ़ाया है, तो कुछ फिल्मों ने खेलों के माध्यम से देशभक्ति को जगाया है। हमारे शहीद स्वतंत्रता सेनानी एवं युवा वर्ग के आदर्श भगत सिंह के जीवन पर लगातार बनी तीन फिल्मों में से राजकुमार संतोषी जी की 'द लिजेंड ऑफ भगत सिंह', गुड्डू धनोवा के निर्देशन में बनी '२३ मार्च शहीद' और सुकुमार नायर की 'शहीद-ए-आजम', विख्यात निर्देशक श्याम बेनेगल की फिल्म 'नेताजी सुभाष चंद्र बोसः द फॉरगॉटन हीरो' ऐसी ही फिल्में हैं। इन फिल्मों ने सुनहले पर्दे पर कामयाबी हासिल करते हुए देश के इतिहास को तारो ताजा किया है।

मनोरंजन के साथ ही स्वतंत्रा की रक्षा, युद्ध, आक्रमण, खेल आदि के साथ ही

ऐतिहासिक परिपार्श्व के कथानकों को आधार बनाकर निर्माता-दिग्दर्शकों ने भारतवासियों के मन में भारतीयता का भाव एवं देश के प्रति कर्तव्यभाव को जगाने का कार्य किया है। स्वतंत्र भारत के इतिहास में कारगिल युद्ध अब तक की सबसे मुश्किल लड़ाई थी। सत्रह हजार फिट की ऊँचाई पर लड़े गए इस युद्ध में देश ने बहुत कुछ दांव पर लगाया था। पाकिस्तानी सैनिकों ने कश्मीरी आतंकवादियों के वेश में नियंत्रण रेखा पर भारतीय मुल्क में घुसपैठ की थी लेकिन हमारे जांबाज सैनिकों ने जान की बजी लगायी और पाकिस्तानियों को पीछे खदेड़ दियाकफिल्म में ऐसे ही एक बहादुर जवान कैप्टन विक्रम बत्रा की कहानी है। संदीप श्रीवास्तव द्वारा लिखी इस कहानी को दिग्दर्शक विष्णु वर्धन ने कारगिल युद्ध की ऐतिहासिक जीत को देशभक्ति के जज्बे के साथ सिनेमाई परदे पर रखने का कार्य किया है। अभिनेता सिद्धार्थ मल्होत्रा ने कैप्टन बत्रा के किरदार को लार्जर दैन लाइफ वाले अंदाज में पेश करने का प्रयास किया है। इसी क्रम में आने वाली २०२१ की फिल्म 'शेरशाह' को 'ब्लॉक बस्टर' फिल्म के रूप में सम्मनित किया गया। प्रस्तुत फिल्म का यह गीत -

सूरज की तरह जलता जा तू / आँधी की तरह बढ़ता जा तू .../
ये कर्म है तेरा बढ़ता जा तू, / कदम ये तेरे कभी रुके ना, जय हिंद की सेना तू /
बंकरों पे बम गिरा के बढ़ता जा तू / बंकरों पे बम गिरा के बोल जिंदाबाद तू .../
शेरशाह हर दम रहेगा सरहदों को याद तू /
फूँकता जा, फूँकता जा, जालिमों की बस्तियाँ...

गीत के ये भाव देशवासियों के दिल को देश भक्ति और गर्व से भर देते हैं जो निर्देशक विष्णु वर्धन की दूरदृष्टि, सटीकता एवं बारीकी का द्योतक है। फिल्म में सिद्धार्थ मल्होत्रा और कियारा अडवाणी की मुख्य भूमिका के साथ शिव पंडित, राज अर्जन, प्रणय पचौरी, हिमांशु, अशोक मल्होत्रा, निकितिन धीर, अनिल चरणजीत, साहिल वैध, शताफ फिर और पवन चोपड़ा आदि सहायक कलाकारों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सन् २००१ में प्रदर्शित फिल्म 'लगान ' रानी विक्टोरिया काल में सूखाग्रस्त गाँव में लगाए लगान की त्रासदी को प्रस्तुत करती है। सूखे के कारण किसान लगान कम करने की माँग करते हैं। इस पर ब्रिटिश अफसर एक शर्त लगाते हैं कि अगर क्रिकेट के खेल में गाँववालों ने उन्हें हराया तो लगान माफ कर दिया जायेगा। चूँकि अंग्रेज अफसर यह बखूबी जानते थे कि क्रिकेट के खेल से अनजान गाँव के लोगों के लिए यह असंभव था किंतु भुवन (अमिर खान) जैसा गाँव का हौसलामंद नवजवान इस चुनौती को स्वीकार करता है। शर्त के अनुसार अगर गाँववाले जीत जाते हैं तो एक साल के लिए लगान माफ कर दिया जाएगा और हारे तो तिगुना वसूल किया जाएगा। भुवन के इस निर्णय से गाँव के लोग भयभीत हो जाते हैं लेकिन अनेकों चुनौतियों का सामना करते हुए अंत में गाँव के लोग जीत जाते हैं। प्रस्तुत फिल्म का प्रसिद्ध गीतकार जावेद अख्तर द्वारा

लिखित गीत -

'बार-बार हाँ, बोलो यार हाँ / अपनी जीत हो, उनकी हार हाँ .../
कोई हमसे जीत न पावे / चले चलो, चले चलो /
मिट जावे जो टकरावे, चले चलो /
टूट गयी जो ऊँगली उठी / पाँचो मिली तो बन गयी मुठ्ठी'

आशुतोष गोवारीकर द्वारा दिग्दर्शित एवं आमिर खान द्वार निर्मित इस फिल्म में ऐतिहासिक संदर्भ के माध्यम से राष्ट्रप्रेम, आत्मविश्वास, जाति-पाँति का विरोध एवं राष्ट्रीय एकता का प्रदर्शन करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि लगान बॉलीवुड की वह तीसरी फिल्म है, जिसे ऑस्कर जैसे सर्वोत्तम अंतर्राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार के लिए नामांकित किया गया था। वर्ष २००१ में भारत की यह फिल्म चर्चित एवं लोकप्रिय फिल्म रही।

'लगे रहो मुन्ना भाई' २००६ में प्रदर्शित फिल्म गांधीवादी विचारधारा पर आधारित है। 'गांधीगिरी' यह नया शब्द इस फिल्म ने दिया। निर्माता विधु विनोद चोपड़ा तथा राजकुमार हिरानी द्वारा दिग्दर्शित प्रस्तुत फिल्म में अभिनेता संजय दत्त, अरशद वारसी, विद्या बालन, दिया मिर्जा, बोमन ईरानी आदि कलाकारों ने मुख्य किरदार निभाएँ हैं। फिल्म का प्रसिद्ध गीत -

'चश्मा पहने लाठी पकड़े चलते थे वो शान से
जालिम काँपे थर-थर, थर-थर, सुनकर उनका नाम रे,
कद था उनका छोटा-सा और सरपट उनकी चाल रे,
दुबले से पतले से थे वो चलते सीना तान के
बंदे में था दम.... वंदे मातरम ... वंदे मातरम '

गीतकार ने गाँधी के बहाने राष्ट्रीय भावना का संदर्भ लिया है।

यशराज फिल्म की 'फना' एक आतंकवादी की कहानी है, जो अपने विश्वास और जेहाद के लिए बीबी बेटे की परवाह नहीं करता। यश चोपड़ा की देख-रेख में बनी इस फिल्म में भारत में सक्रिय पाकिस्तानी हरकतों को इंटरनेशनल स्वरूप देने का प्रयास किया है। मणि रत्नम की फिल्म रोजा, बॉम्बे और दिल-से में राष्ट्रप्रेम, साम्प्रदायिकता और आतंकवाद की पृष्ठभूमि में प्रेम कहानियों की रचना की गयी है।

'द लीजेंड ऑफ भगत सिंह' देश प्रेम पर बनी यादगार फिल्मों में से एक है। यूँ तो भगत सिंह पर कई फिल्में बन चुकी हैं लेकिन इस फिल्म को लोगों ने ज्यादा पसंद किया है। फिल्म में दिखाया गया है कि कैसे देश का एक छोटा-सा बच्चा देश की आजादी का एक बहुत बड़ा परवाना बन जाता है और महज २३ साल की उम्र में देश के लिए हँसते-हँसते फाँसी पर लटक जाता है-

'दिन आज तो बड़ा सुहाना, / मौसम भी बड़ा सुनहरा, /
हम सर पे बाँध के आये / बलिदानों का ये सेहरा /

बेताब हमारे दिल में इक मस्ती सी छायी है /
ऐ देश अलविदा तुझको कहने की घडी आयी है .../
महकेंगे तेरी फिजा में हम बन के हवा का झोंका /
किस्मत वालों को मिलता ऐसे मरने का मौका /
निकली है बारात सजा है इंकलाब का डोला /
मेरा रंग दे बसंती चोला, माये रंग दे ...'

उक्त गीत आजादी के लिए हँसते-हँसते फाँसी पर जाने वाले जांबाज युवक का देश प्रेम हमारे मन में भी देश के लिए समर्पण की भावना जगाता है।

सन् २०१३ में राकेश ओमप्रकाश मेहरा द्वारा निर्मित एवं दिग्दर्शित फिल्म 'भाग मिल्खा भाग 'मिल्खा सिंह के जीवन पर आधारित फिल्म है। १९४७ में भारत-पाकिस्तान के विभाजन के समय देश में चारों ओर कत्ले आम मचा था। मिल्खा और उसकी बहन को छोड़कर परिवार के सारे लोगों को मौत के घाट उतर दिया था। मिल्खा अपनी बहन के साथ भारत आ जाते हैं। बहन ही उनका पालन-पोषण करती है। गलत संगत में आकर मिल्खा का बिगड़ना, किसी लड़की के साथ प्रेम होना, उसके कहने पर कुछ बनके दिखने का जज्बा, सेना में भर्ती होना और दूध पीने के लालच में सबसे तेज भागना और आगे चलकर 'द फ्लाइंग सिक्ख' की उपाधि हासिल करना आदि प्रमुख घटनाएँ कथानक में हैं। फिल्म का यह गीत -

'ओ मिल्खा भाग मिल्खा / तू जाग अब तू जाग मिल्खा /
तू है आग-आग, तू है आग मिल्खा / तू भाग बस तू भाग मिल्खा /
तेरा तो बिस्तर है मैदान / ओढ़ना धरती के निशान / तेरे सिरहाने है जत्थान /
पहन ले पूरा आसमान / तू पगड़ी बांध मिल्खा'

इस गीत में मिल्खा सिंह की कड़ी मेहनत, लगन, निष्ठा एवं देशप्रेम का परिचय मिलता है। इसी प्रकार की फिल्म 'मंगल पांडे :द राइजिंग' २००५ में बनी जो स्वतंत्रता संग्राम के वीर सिपाही मंगल पांडे की जीवन गाथा और १८५७ के भारतीय विद्रोह पर आधरित है। फिल्म 'उरी :द सर्जिकल स्ट्राइक' २०१९ में रिलीज इस फिल्म ने बॉक्स ऑफिस पर खूब धूम मचाई। यह २०१६ में भारत की तरफ से किए गए सर्जिकल स्ट्राइक पर आधारित है। विकी कौशल ने मेजर विहान सिंह शेरगिल का किरदार निभाया है, सह कलाकारों में परेश रावल, यामी गौतम, मोहित रैना और कीर्ति कुल्हारी आदि कलाकारों ने भी अहम् भूमिका की है। फिल्म देखनेवाला हर भारतीय अपनी सेना पर गर्व महसूस करता है। फिल्म के सारे गाने देश प्रेम जागते हैं -

'जिंदगी हाँ, / थोड़े-थोड़े फासले थे, / कुछ तेरे, कुछ मेरे क्यूँ दरमियाँ /
जिंदगी हाँ, थी जो शिकायतों को / कुछ तूने कुछ मैंने सुलझा लिया /
मैं लड़ जाना, मैं लड़ जाना'

भारतीय सेना ने एल. ओ.सी. पार दुश्मन की सरजमीं पर उतर कर उरी हामले का

बदला लिया था। फिल्म की कहानी जितनी रोचक है उतने गीत भी प्रभावशाली हैं।

चूँकि ज्यादातर बॉलीवुड की फिल्में प्रेम कथाओं पर आधारित होती हैं, बावजूद इसके ऐतिहासिक पार्श्वभूमि में राष्ट्रीय भाव-बोध की फिल्में भी लोकप्रिय बन चुकी हैं। परतन्त्र भारत में यातनाओं को सहते हुए जिन राष्ट्रगीतों ने समाज में जागृति का बिगुल बजाया, उन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता। अनेक लोकगीत, साहित्यिक काव्य और फिल्मी गीतों के माध्यम से भारत की जनता में राष्ट्र प्रेम की जो धारा बही, वह आज भी हमारा प्रेरणास्त्रोत है। फिल्मों ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी और समय-समय पर निर्माताओं ने फिल्म कहानी तथा फिल्मी गीतों के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को जगाए रखा।

संदर्भ :

1. www.hindi.webduhia.com
2. www.hindi. lmibate.com
3. www.hindi.trackes.in

हिंदी विभागाध्यक्ष,
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, इस्लामपुर

'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास में चित्रित राष्ट्रीय भावना

प्रो. डॉ. सविता शिवलिंग मेनकुदळे

राष्ट्र एक ऐसी आत्मा है जिसकी जड़ मनुष्य के हृदय की गहराइयों में है। देश, जाति, भाषा, संस्कृति और धर्म इन पाँचों तत्वों में एकता रहने से ही राष्ट्रीय एकता प्रस्थापित हो सकती है। राष्ट्र के प्रति तीव्र अपनत्व तथा ममत्व की भावना में राष्ट्रीयता का जन्म हुआ है। राष्ट्रीयता की भावना व्यक्ति को अपने राष्ट्र के लिए उच्च कोटि के शौर्य तथा बलिदान की प्रेरणा देने वाली सामूहिक भावना की एक उच्चतम अभिव्यक्ति है। लेखिका ममता कालिया जी ने 'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास में पात्रों के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को उजागर किया है। पति वर्चस्व के तले दबी 'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास की विद्यावती (दादी) राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के वक्त महात्मा गाँधीजी के विचारों से इतनी प्रभावित हो जाती हैं कि सारे बंधनों को तोड़कर अपने मन में स्थित राष्ट्रीयता की भावना सक्रियता से अभिव्यक्त करती हैं। अलबेली स्वाधीनता सेनानी विद्यावती (दादी) कभी देश की आजादी के लिए लड़ती हैं तो कभी भगवती (विद्यावती की बेटी) स्वाधीनता आंदोलन की सभाओं में जाती है और 'गाँधी बाबा की जय' के नारे लगाती है। 'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास का कविमोहन (विद्यावती की बेटा) भी गाँधीवादी विचारों से प्रभावित है। प्रस्तुत उपन्यास द्वारा गाँधीजी के स्वतंत्रता आंदोलन से प्रभावित जनजीवन, आजादी के बाद का जनजीवन, आजादी की लड़ाई में महिलाओं की सहभागिता, अपनी आजादी को लेकर सजग नारी का चित्रण, नए जीवन मूल्यों की तलाश करता मध्यमवर्गीय परिवार आदि का यथार्थ अंकन लेखिका ममता कालिया जी ने किया है।

राष्ट्र का विश्व में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राष्ट्र के निवासियों में परस्पर एकता की भावना उत्पन्न होने से ही राष्ट्र का अस्तित्व रहता है। राष्ट्र निर्माण के लिए केवल सांस्कृतिक एकता पर्याप्त नहीं होती तो बहुत से मानव क्रियाकलाप, महत्वाकांक्षाएँ और भाव स्वाभाविक या कृत्रिम रूप में परस्पर मिलकर जब बृहद् सहयोग की सृष्टि करते हैं तब हम उसे राष्ट्र कह सकते हैं। राष्ट्रीयता एक प्रबल शक्ति एवं प्रभावशाली प्रेरणा है। राष्ट्रीय भावना की पराकाष्ठा तब होती है जब किसी राष्ट्र पर कोई बलपूर्वक आक्रमण करता है। उस समय उस देश के सदस्यों में एकत्व की भावना सुदृढ़ हो जाती है। वे भेदभाव मिटाकर परकीयों के साथ संघर्ष करने के लिए उद्युक्त हो जाते हैं और विरोधियों से लोहा लेने के लिए बड़े से बड़ा त्याग और बलिदान करना अपना कर्तव्य मानते हैं। अंग्रेजों के संपर्क में आने पर उनकी अन्यायकारी नीति से भारतीयों में राष्ट्रीय भावना जागृत हुई। पराधीनता के काल में धर्म, जाति, वंश के जन समुदाय एकत्र होकर स्वाधीनता प्राप्ति के लिए लड़े। अनेक हिंदी साहित्यकारों ने अपने साहित्य में इस राष्ट्रीयता भावना का चित्रण किया है।

हिंदी की ख्यातकीर्त रचनाकार ममता कालिया का सन् 2009 में प्रकाशित 'दुक्खम

सुक्खम' ऐसा ही महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें लेखिका ममता कालिया ने परंपराओं तथा रूढ़ियों में जकड़े मध्यमवर्गीय परिवार के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों को तीन पीढ़ियों के माध्यम से दर्शाया है। साथ ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के समय का जनजीवन, गाँधीजी से प्रभावित स्त्रियों की भागीदारी, स्वदेशी के नारों से समाज का बढ़ता आत्मबल, देशविभाजन की त्रासदी और आजादी के बाद के भारत का परिदृश्य आदि उपन्यास की कथा में विवेचित किया है। 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य के 'आधुनिक-काल' में राजनीतिक दृष्टि से इस युग में महात्मा गांधीजी का नेतृत्व जनता को सत्य, अहिंसा, और असहयोग के माध्यम से स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए निरंतर प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान करता है, जिसका उल्लेख हिन्दी-साहित्य के विभिन्न साहित्यकारों के द्वारा अपनी राष्ट्रीय भक्ति-भावना, देशप्रेम की विभिन्न रचनाओं एवं साहित्यिक कृतियों में किया गया है।'[1] पारिवारिकता और आपस में उपजा संघर्ष भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के आखिरी दौर से प्रारंभ होकर नए जमाने तक हमें लेकर चलता है। इस लंबी अवधि की अनुगूँज 'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास में हमें लगातार महसूस होती है। उपन्यास की कथावस्तु की यदि हम बात करें तो वृंदावन, मथुरा, दिल्ली और मुंबई तक के शहरों को अपने में समेटे हुए है। उपन्यास में आजादी के पूर्व की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों को ममता जी द्वारा इस उपन्यास में चित्रित किया गया है। राजनीतिक यथार्थ के अंतर्गत उपन्यास में स्वार्थलोलुप राजनीति, गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव, स्वाधीनता संग्राम का चित्रण, राजनेताओं के निजी स्वार्थ, देश विभाजन की त्रासदी, सत्याग्रह आंदोलन का यथार्थ, युद्ध की त्रासदी आदि का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

उपन्यास की कथावस्तु कृष्ण जन्म की पावन नगरी मथुरा के परिवेश को आधार बनाकर लिखी गई है। बीसवीं शताब्दी में भारत में उठी परिवर्तन की लहर से बदलती हुई मथुरा का चित्रण इसमें किया गया है। उपन्यास के फ्लैप पर लिखा है, 'उपन्यास में बीसवीं शताब्दी की बदलती हुई मथुरा है। लेखिका ने स्वतंत्रता का संघर्ष, गाँधीजी का प्रभाव, चरखा-खादी-स्वदेशी से उभरा आत्मबल, देश विभाजन की त्रासदी और आजादी के बाद के भारत का परिदृश्य इन सबको कथा की आंतरिकता में शामिल किया है।'[2] वह समय गाँधीजी के आदर्शों का समय था। उस वक्त अंग्रेजी राज के विरुद्ध हमारे राष्ट्रीय आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य स्वाधीनता प्राप्त करना था। समाज का हर व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में स्वाधीन होना चाहता था। अन्यायकारी शासकों के खिलाफ आवाज उठाकर आजादी, चिंतन, धर्म और जीवन व्यवस्था को पुनः संवारना था। विदेशी शासन के भीतर भ्रष्ट और दूषित हो चुकी जातीय मर्यादाओं को पुनः जोड़ना था। 'राष्ट्रीयता एक उच्च भाव है, जो राष्ट्र की रक्षा और उन्नति के लिए आवश्यक है। राष्ट्रीय भावना उत्तरोत्तर बढ़ाई जा सकती है, और इसे बढ़ाने की आवश्यकता भी है। इस भाव को जरूर बनाने से राष्ट्र की संस्थाओं के प्रति प्रेम और गर्व की भावनाएँ बढ़ती हैं और उनको उन्नत बनाने की प्रेरणा मिलती है। राष्ट्रीय गर्व की भावना रखनेवाला

व्यक्ति आपसी फूट तथा उन सब कार्यों से बचेगा जिनसे राष्ट्र का सिर नीचा हो। हमारे देश में जो भ्रष्टाचार है, ब्लैक मार्केटिंग है और नैतिक पतन है, वह राष्ट्रीय भावना की कमी के कारण ही है।'[3] गाँधीवादी विचारधारा से पूर्णतया प्रभावित स्वतंत्रता आंदोलन के वक्त की स्थिति का जायजा प्रस्तुत उपन्यास में लिया गया है। आजादी की अभिलाषा की चेतना बच्चों से लेकर बूढ़ों तक को आंदोलित करती है। गाँधीवादी विचारधारा का समाज पर कितना गहरा प्रभाव है, इसका यथार्थ वर्णन उपन्यास में हुआ है। लोगों में स्वदेशी पहनने और स्वदेशी वस्तुएँ इस्तेमाल करने की होड़ लग जाती है।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के समय महात्मा गाँधीजी के विचारों से प्रभावित होकर स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़नेवाली 'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास की विद्यावती समूचे भारत में फैली परिवर्तन की लहर में गाँधीजी तथा स्वदेशी के विचारों से प्रभावित होकर अपने मोहल्ले की महिलाओं को इकट्ठा करके स्वाधीनता आंदोलन में हिस्सा लेती है। 'अपने देश के अगाध प्रेम में अपनी संस्कृति, सभ्यता एवं धर्म के प्रति गौरव में अपने देश की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक भाषाओं में सुधार लाने के प्रयत्न आदि में यह राष्ट्रीय भावना प्रस्फुटित होती है। राष्ट्रीयता का कार्य व्यापक समाज में चलता है जिसकी उपेक्षा अथवा महत्ता अमान्य नहीं की जा सकती। राष्ट्रीयता एक सामूहिक भाव है। राष्ट्रीयता की भावना कभी-कभी इतनी वेगवती हो जाती है कि वह लाख बंधन बाँधने पर भी बाधाओं को लाँघती हुई अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती रहती है।'[4] राष्ट्राभिमानी विद्यावती का गाँधीजी की अंग्रेजी विरोधी नीति में अपने देश की स्वतंत्रता के लिए सक्रिय सहयोग रहता है। पति के विरोध के बावजूद वह मोहल्ले की औरतों से तथा अपने घर से चून इकट्ठा करके सुराजियों की सभाओं में देती है।

विद्यावती का स्वतंत्रता संग्राम का चस्का उपन्यास में स्पष्ट है। दोपहर के वक्त ठाकुर जी के दर्शनों के बहाने विद्यावती घर से खिसक लेती और कमला बहन की सभा में शामिल हो जाती है। वह अखबार में हमेशा स्वतंत्रता संग्राम की खबरें पढ़ती है। एक दिन अखबार में गाँधीजी के गिरफ्तार होने की खबर पढ़कर बहुत दुखी होती है और दिनभर भूखी रहती है। उपन्यास के अनुसार 'सुबह के वक्त आँगन में तख्त फैलाकर अखबार बड़े ध्यान से पढ़ती। खासकर महात्मा गाँधी और काँग्रेस की खबरें। अगर अखबार में महात्मा जी के गिरफ्तार होने की खबर होती, विद्यावती दुखी हो जाती सारे दिन रह-रहकर दुख उनकी बातों से व्यक्त होता, 'बताओ इत्ती जालिम है सरकार, डेढ़ पसली का गाँधी बाबा इनका क्या बिगाड़े है जो मार उसे जेल में ठूँस दे।'[5] 'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास की विद्यावती के मन में राष्ट्रीय भावना इतनी है कि वह मंत्रमुग्ध होकर सभा के आदेशों का पालन करती है। वह चरखा समिति में जाती है, सूत कातती है। समिति की तरफ से उसे चरखा भी भेंट में मिलता है।

विद्यावती दिल्ली काँग्रेस सभा से रोज नई जानकारियाँ हासिल करती है। स्वाधीनता

आंदोलन में काम करने वाले स्वयंसेवकों के लिए वह आटा इकट्ठा करती है। अपने घर की रसोई में एक कनस्तर रखती है और बहू-बेटी से बोलती है, 'अब से रोटी बनाने के बाद बचा हुआ पलोथन इसमें डारा करो, अच्छा। 'मोहल्ले की सभी औरतों को भी ऐसे ही आटा इकट्ठा करने को कहती है। विद्यावती का पति गली-गली जाकर चून माँगने के विरोध में रहता है। घर में रखा कनस्तर खोलकर देखता है इतने में विद्यावती वहाँ आती है और कहती है, 'इसे हाथ न लगाना। जे आजादी की लड़ाई में काम आएगा।'[6] विद्यापति द्वारा इकट्ठा किया गया आटा गाँधीजी की विशाल सभा में आए हुए स्वयंसेवकों के काम आता है। गाँधी हत्या की खबर सुनते ही विद्यावती को दिल का दौरा आता है फिर भी वह महात्मा गाँधी की पवित्र भस्मी विसर्जन विधि में सम्मिलित होने के लिए जिद करके चली जाती है। विद्यावती के जेहन में राष्ट्रीय भावना इतनी ओत-प्रोत भरी हुई है कि वह कहती है, 'आज मुझे रोको मत, नहीं तो मैं बावली हो जाऊँगी ।'[7] राष्ट्राभिमान से ओत-प्रोत विद्यावती आजादी की लड़ाई में अंत तक गाँधीजी के सिद्धांतों पर चलती है। लेखिका ममता कालिया ने देश के प्रति निष्ठा रखने वाली तथा स्वाधीनता आंदोलन में झोंककर काम करनेवाली अलबेली स्वाधीनता सेनानी विद्यावती का चित्रण 'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास में किया है।

उपन्यास में चित्रित वर्णन के अनुसार आजादी की लहर तथा गाँधीवादी विचारों का प्रभाव इतना था कि बहुत से नौजवान सरकारी नौकरी का त्यागकर स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़े थे। महात्मा गाँधीजी के एक संदेश पर सभी जन मंत्रमुग्ध होकर उसका पालन करने के लिए दौड़ पड़ते थे। 'सुबह-सुबह सड़कों पर प्रभात फेरियाँ निकाली जाती। बड़े सुर में गाते हुए सुराजियों का जत्था निकल पड़ता, 'नई रखनी सरकार जालिम नई रखनी।' कभी जनता के ऊपर नमक बनाने का जुनून सवार हो जाता सत्याग्रही नौजवान जत्थे बना लेते।'[8] स्वतंत्रता का चस्का समाज में इतना फैल जाता है की विदेशी कपड़ों की होली की जाती है। कभी हड़ताल का आदेश ना होता तब भी दुकानें बंद रखी जाती है।

'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास की भगवती (भग्गो) विद्यावती की बेटी भी स्वाधीनता के अभियान में विद्यावती के साथ शामिल रहती है। भगवती राष्ट्रीय निष्ठा से, हृदय से स्वाधीनता आंदोलन की सभाओं में जाती है। सभा के अंत में जब नारे लगाए जाते हैं तब भगवती की आवाज सबसे तेज रहती है। देशप्रेम का सबूत देने के लिए मथुरा की सभी महिलाओं की सभा का आयोजन किया जाता है। टाउन हॉल पर तिरंगा फहराने का निर्णय लिया जाता है। विद्यावती एक टाँग से लाचार होकर भी महिला-जुलूस में जाती है और 'गांधी बाबा की जय' के नारे लगाती है। तब भगवतीभी विद्यावती के साथ जाती है। टाउन हॉल की चहारदीवारी के ऊपर से कूदकर अंदर जा पहुँचती है और वहाँ 'गाँधी बाबा की जय' के नारे लगाती है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोधी देश के सर्वमान्य नेता महात्मा गांधी को आजादी के लिए संघर्ष करने के जुर्म में कैद किया गया था तब अंग्रेजी

शासन के खिलाफ टाउन हॉल के रास्ते पर जुटी भीड़ को संबोधित करते हुए कमला बहन ललकारती है, 'प्यारी बहनों ! हमारे पूजनीय बापू इस वक्त जेल में हैं। हम सबको बापू जी की कसम है, हम यहाँ तिरंगा फहराकर जाएँगी। यह देश हमारा है, इसकी सब इमारतें हमारी हैं। आप सब तैयार हैं?'[9] स्वाभाविक ही आजादी के भाव से भरी जनता पर गांधीजी के विचारों का गंभीर प्रभाव दिखाई देता है। सत्य और अहिंसा इन प्रेरक मूल्यों के साथ स्वाधीनता संग्राम में सामान्य जनता की सामूहिक शक्ति के उपयोग का प्रयास दिखाई देता है। आंदोलन में नारे लगाने के जुल्म में अंग्रेज सिपाही सुराजियों को गिरफ्तार करने वाले थे तब विद्यावती अपनी टाँग का बहाना बनाकर भग्गो को वापस बुलाती है और गिरफ्तारी से बचाती है।

'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास का कविमोहन भी गाँधीवादी विचारों से प्रभावित है। उपन्यास के अनुसार, 'वह समय गाँधीजी के आदर्शों का भी समय था। मथुरा के नौजवानों में गाँधीवादी विचारों का गहरा आदर था। देश की आजादी के लिए मर मिटने का एक सीधा साधा नक्शा था जो हर एक की समझ में आता- खादी पहनो, ब्रम्हचर्य से रहो, नमक बनाओ, सरकारी नौकरियों का बहिष्कार करो। कवि के अंदर ये सभी आदर्श हिलोरें लेते।'[10] गाँधीवादी विचारों से प्रभावित कविमोहन भाषा और साहित्य का अध्ययन करते वक्त भी उन्हीं विचारों में खोया रहता है। कल्पना की उड़ानों में भी वह गाँधीजी के बारे में ही सोचता है कि विवाह की रात वह अपनी पत्नी को गाँधीजी की आत्मकथा भेंट में देगा और कहेगा, 'देखो जब तक अपना देश स्वाधीन नहीं होता, हम दोनों भाई बहन की तरह रहेंगे। 'कविमोहन ने सचमुच ही महात्मा गाँधी की 'सत्य के प्रयोग' एवं पुस्तक अपनी पत्नी इंदुमती को दी थी। इस बात का संदर्भ उपन्यास में दादी (विद्यावती) और पौत्री मनीषा के बीच के वातार्लाप में मिलता है। गाँधीजी के विचारों से प्रभावित दादी अपनी पौत्री मनीषा को कहती है, 'चल तू मेरे कमरे में बैठकर मोय गाँधीजी की किताब सुनाया कर। 'तब मनीषा को घर में ही ढूँढने पर महात्मा गाँधी की 'सत्य के प्रयोग' किताब मिलती है। उपन्यास के अनुसार, 'मनीषा ने एक रात किताबों का अनुसंधान करते हुए उन्नाव की किरमिच में बंदी महात्मा गाँधी की सत्य के प्रयोग पुस्तक ढूँढ निकाली थी जिसके पहले पृष्ठ पर पापा की लेखनी में लिखा हुआ था - 'जीवनसंगिनी प्रिया इंदुमती को उपहार स्वरूप भेंट। 'वह उसके कई अध्याय पढ़ गई।'[11] कविमोहन को अपनी माँ विद्यावती का सुराजियों की सभाओं में जाना अखरता नहीं है। स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़ी विद्यावती को दरवाजे पर विदेशी वस्त्रों की होली जलाने जाने पर बेहोश हो जाती है तब कविमोहन ही उसकी मदद के लिए जाता है। राष्ट्रीयता की भावना हृदयों की वह एकता है जो एक बार बनने के बाद कभी खंडित नहीं होती है।

निष्कर्ष-

हिंदी उपन्यासों में राष्ट्रवादी स्वर लगभग आजादी से पहले ही देखा जा सकता

है। राष्ट्रीयचिंतन की दृष्टि से गहराई से उपन्यास लेखन करने वाले प्रेमचंद ही हिंदी के पहले बड़े उपन्यासकार है। गांधीवाद का प्रभाव, राजनीति की उथल-पुथल, विभाजन की त्रासदी, वोट बैंक की राजनीति इन सभी का लेखा-जोखा हिंदी उपन्यासों में देखने को मिलता है। लेखिका ममता कालिया ने 'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास में परंपराओं तथा रूढ़ियों में जकड़े मध्यमवर्गीय परिवार के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों को तीन पीढ़ियों के माध्यम से दर्शाया है। देश के प्रति निष्ठा रखनेवाली तथा स्वाधीनता आंदोलन में झोंककर काम करनेवाली अलबेली स्वाधीनता सेनानी विद्यावती का चित्रण 'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास में प्रस्तुत है। साथ ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के समय का जनजीवन, गाँधीजी से प्रभावित स्त्रियों की भागीदारी, स्वदेशी के नारों से समाज का बढ़ता आत्मबल, देशविभाजन की त्रासदी और आजादी के बाद के भारत का परिदृश्य आदि उपन्यास की कथा में विवेचित किया है।

संदर्भ :

1. http://www.ig ted.if/I/O/200763
2. कालिया ममता - दुक्खम सुक्खम, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, फ्लैप से
3. बाबू गुलाबराय - राष्ट्रीयता, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996,पृ. 12
4. कलवडे सुधाकर - आधुनिक हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1973 पृ. 22
5. कालिया ममता - दुक्खम सुक्खम, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009,पृ. 64
6. वही,पृ. 55
7. वही,पृ. 158
8. वही,पृ. 53
9. वही,पृ. 56
10. वही,पृ. 32
11. वही,पृ. 227

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, छत्रपति शिवाजी कॉलेज,
सातारा (स्वायत्त) महाराष्ट्र

राजी सेठ कृत 'रुको, इंतजार हुसैन' कहानी में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना

डॉ. संदीप जोतिराम किर्दत

राष्ट्रीय भावना का अर्थ राष्ट्र के कल्याण हेतु व्यक्ति के मन में निर्माण होने वाले मंगल भाव हैं। राष्ट्रीय भावना ही राष्ट्र को मजबूत एवं विकसित करने में अहं भूमिका निभाती है। कथाकार राजी सेठ कृत 'रुको, इंतजार हुसैन' कहानी निर्वासितों के देशप्रेम और विभाजन के परिणामों का संकेत देती है। विवेच्य कहानी अखंड भारत की स्मृतियाँ न भूलने वाले व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करनेवाला रुदन है। यह रुदन पाठकों को एक ओर विभाजन की त्रासदी भोगे परिवार की दशा से तो दूसरी ओर परिणाम की अग्नि में झुलसे आदमी के देशप्रेम से रू-ब-रू कराता है। खुद पर विपरीत परिस्थिति आने पर भी अपने राष्ट्र का सम्मान करने की नायक दादा की मनोभूमि नई पीढी के लिए प्रेरक है। दादा का व्यवहार स्वकेंद्रित व्यक्तियों के लिए दिशादर्शक है। कहानीकार ने राष्ट्रीय एकता को बाधा पहुँचने पर होनेवाले परिणामों का चित्रण किया है। कहानीकार राजी सेठ जी ने विवेच्य कहानी में विभाजन का दर्द भोगे मुख्य पात्र दादा के माध्यम से आम निरीह नागरिकों की मनोदशा का चित्रण किया है। मातृभूमि के प्रति लगाव, देश विभाजन की त्रासदी, मातृभूमि से टूटने का दर्द, स्वतंत्रता दिवस का महत्व एवं जश्न, राष्ट्रीय एकता आवश्यकता, आदर्श देशप्रेम, हिंसा की निंदा और व्यक्तिगत सुख की कुर्बानी आदि जैसे राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के पहलुओं का चित्रण मिलता है।

मनुष्य के जीवन में सुख-दुःख तथा हास-परिहास के क्षण कभी अपेक्षित तो कभी अनपेक्षित रूप से आते हैं। यह क्षण व्यक्ति को कभी मजबूर तो कभी मजबूत बनाते हैं। कहना सही होगा कि कई प्रसंग व्यक्ति को निराश करते हैं तो कई घटनाएँ डटकर संघर्ष करने की प्रेरणा देती हैं। व्यक्ति अनौपचारिक रूप से समाज में घटित घटना, प्रसंग एवं व्यवहार से जीवन-मूल्य पकड़ने की कोशिश करता है। राष्ट्रप्रेम भी एक मूल्य है जो औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा से व्यक्ति सीखता है। मनुष्य के जीवन में अपने देश का स्थान सर्वोपरि होता है। एक जिम्मेदार व्यक्ति जितना स्व की खुशी के लिए प्रयास करता है, उतना ही अपने देश तथा देशवासियों के जीवन के सुजलाम् सुफलाम् होने की मंशा रखता है। यह सत्य है कि देशप्रेमी व्यक्ति किसी भी हालत में देश का विचार प्रथम करता है। वह अपनी जन्मभूमि के मान-सम्मान तथा सुरक्षा का विचार करता है। इस कार्य में साहित्य ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। आजादी के पूर्व के हिंदी साहित्य ने स्वतंत्रता आंदोलन के लिए देशवासियों की पूरक मनोभूमि तैयार करने में योगदान दिया है। आजादी के बाद देश के सामने जो-जो समस्याएँ रही हैं, उनका चित्रण कर समस्याओं का समाधान देने, राष्ट्रीय भावना प्रबल करने और देश के लिए कर्तव्यरत नायक-नायिकाओं द्वारा पाठकों के हृदय में राष्ट्रभक्ति का बीजारोपण एवं पल्लवन करने

का प्रयास किया गया है। कथाकार राजी सेठ कृत 'रुको, इंतजार हुसैन' की कहानी अखंड भारत की स्मृतियों को तरोताजा कर राष्ट्रीय भावना का स्वर मुखरित करती नजर आती है। विभाजन की त्रासदी भोगे व्यक्ति की दयनीय अवस्था होने पर भी देशप्रेम की भावना होना कहानी का केंद्रीय सूत्र है। वर्णनात्मक एवं प्लैशबैक शैली में लिखी यह कहानी निर्वासितों का देशप्रेम और विभाजन के परिणामों का संकेत देती है। यह अखंड भारत की स्मृतियाँ न भूलने वाले व्यक्ति का प्रतिनिधित्व कराती है। 'रुको, इंतजार हुसैन' कहानी में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना संबंधी पहलुओं का विवेचन इस तरह है -

मातृभूमि के प्रति लगाव -

किसी भी व्यक्ति को अपनी मातृभूमि प्रिय होती है। व्यक्ति को किसी भी कारणवश मातृभूमि से दूर जाना पीड़ादायक लगता है। अगर व्यक्ति को अपना गाँव या देश जबरदस्ती और डर के मारे भी छोड़ना पड़ता है, तो भी व्यक्ति अपने देश को भूलता नहीं है। उसे अपनी मातृभूमि से जुडी यादें बैचेन करती हैं। ऐसे व्यक्ति को मातृभूमि से संबंधित वस्तु- व्यक्ति ही नहीं तो स्मृतियाँ भी प्रिय लगती हैं। राष्ट्र प्रेम की यह भावना व्यक्ति का कोमलतम अंग बन जाता है। जैसे शरीर से कोई अंग निकालते वक्त दर्द होता है, उसी तरह व्यक्ति के जीवन से मातृभूमि से संबंधित प्रसंग हटाने से हृदय को ठेस पहुंचती है। मातृभूमि के प्रति होनेवाला प्रेम तब अधिक पीड़ा देता है जब किसी व्यक्ति को अन्याय सहते हुए मातृभूमि से दूर किया जाता है। प्रस्तुत 'रुको, इंतजार हुसैन' कहानी में मातृभूमि से जोर जबरदस्ती से दूर रहने वाले निर्वासित व्यक्ति की मनोदशा का चित्रण है। विवेच्य कहानी का नायक उनसठ साल के दादा हैं। दादा को पाकिस्तान स्थित लाहौर से जबरदस्ती घर छोड़कर भारत आना पडता है। देश छोड़ने का और अखंड भारत टूटने का दर्द सहनेवाले दादा विभाजन के समय हुआ हादसा भूलते नहीं। मातृभूमि छोड़ने को मजबूर दादा का अखंड भारत के प्रति प्रेम कम नहीं होता। अपना अतीत न भूले दादा अपने साथ दस किताबें लेकर आते हैं। दादा के पास देश विभाजन पर लिखी इंतजार हुसैन कृत 'बस्ती' शीर्षक की दसवीं किताब थी। दादा ने यह दस किताबें सँभालकर रखी थीं। नायक के घर में बच्चे हैं। बच्चों को रैक चाहिए, इसलिए पत्नी ने रैक खाली करने को कहा। दादा ने यह दस किताबें प्राण से प्रिय मानकर विरोध किया - 'कई बार कह चुका हूँ कि यह रैक यहीं रहेगा मेरे सिरहाने। ये किताबें भी यहीं ही रहेंगी। जो कोई इसे हटाएगा मेरे मरे का मुँह देखेगा।'[1] देश की मिट्टी, अपने लोग, घर-बार छोडकर आए दादा कम से कम देश विभाजन पर लिखी किताबें तो छोड़ना नहीं चाहते। मातृभूमि के प्रति लगाव व्यक्ति को किस मानसिक श्रेणी तक पहुंचाता है, इसका उत्तम उदाहरण नायक दादा की स्थिति है।

देश विभाजन की त्रासदी और मातृभूमि से दूर करने का दर्द -

भारत के इतिहास में अखंड भारत के टुकडे होने की घटना साधारण घटना नहीं है। इस घटना के परिणाम विभिन्न इकाइयों को भुगतने पड़े और पड़ रहे हैं। विभाजन

का परिणाम केवल देश के नक्शे में परिवर्तन तक सीमित नहीं रहता बल्कि दो देशों में रहने वाले लोगों के जीवन पर भी प्रभाव छोडता है। इसमें बिना वजह परिणाम भुगतने वाले निर्वासित परिवारों की हालात दयनीय होती नजर आती है। अपनी भूमि छोड़कर आए विस्थापित लोग अपने जीवन का भूतकाल भूलते नहीं। 'रुको, इंतजार हुसैन' कहानी के दादा विभाजन की घटना अपने जीवन से हटाना घर में रखी रैक हटाने जैसा आसान नहीं मानते। राजनीतिक दृष्टि से अखंड देश टूटने पर उस घटना से संबंधित लोग अपना दर्द मन में दबाकर रखते हैं। मातृभूमि से संबंधित स्मृति तरोताजा करने वाली चीजों-वस्तुओं को ही अपने जीवन का अभिन्न हिस्सा मानते हैं। कहानी के नायक दादा का किताबों को अमूल्य पूंजी मानकर जीना एक तरह से सब कुछ लुटकर भी राष्ट्र से जुड़े रहने की भावना आदर्शवत है। अपने जीवन में घटित घटना हृदय को कुरेदनेवाली है, यह समझनेवाले दादा के दर्द में भी देशप्रेम का निरंतर स्वर परिलक्षित होता है। कहानीकार द्वारा दादा की मानसिकता का किया गया वर्णन दृष्टव्य है- 'इन किताबों को उसके सिरहाने ही रहना है। किताबों में बंद इबारत में उसके जीवन की धपधप छिपी है। किसी दिन उसे जरूर वक्त मिलेगा। किसी दिन जरूर वह इन इबारतों में से गुजरेगा, अपना अतीत पढ़ेगा....किसी भी दिन।'[2] उपर्युक्त उद्धरण से अपनी मातृभूमि, घर तथा गाँव के प्रति होने वाला स्नेह और जन्मभूमि छूटने का दर्द स्पष्ट होता है। संग्रहित दस किताबों में देश-विभाजन के समय के इतिहास संबंधी सामग्री होगी, इस विचार से दादा के मन में किताबों के प्रति गहरा लगाव दिखाई देता है। कहानीकार दादा के माध्यम से किसी भी प्रकार की समस्याएँ झेलने की नौबत आने पर भी मातृभूमि से जुड़े रहने का संदेश देती है ।

स्वतंत्रता दिवस का महत्व एवं जश्न -

किसी भी देश और देश के नागरिकों की दृष्टि से अपने देश का स्वतंत्रता दिवस महत्वपूर्ण होता है। स्वतंत्रता दिवस राष्ट्रीय त्यौहार होता है। इस दिन व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत समस्याएं भूलकर अपने देश और देश के मानकों के प्रति श्रद्धाभाव प्रकट करता है। यह राष्ट्रीय भावना आम नागरिकों में होती है। विवेच्य कहानी के नायक का व्यवहार भी इस दृष्टि से प्रेरक है। देश-विभाजन से पीड़ित दादा अपनी व्यक्तिगत पीड़ा भूलकर देश की आजादी के जश्न में स्वाभाविक रूप से शामिल होते हैं। किसी भी प्रकार के लड़ाई-झगड़े देश तथा मानव के कल्याण के नहीं होते। कौम और धर्म के आधार पर हुआ अखंड भारत का विभाजन भी दोनों देशों के आम नागरिकों को त्रासद ही रहा है। नायक घर-बार नहीं किंतु किताब लाने के सुख में और उन किताबों में अपनी त्रासदी के अंश या कारण होने की आशा से जीवन जीता है। कहानीकार राजी सेठ संकेत करती हैं कि मनुष्य अपनी मातृभूमि का इतिहास या घटनाएँ जानने की लालसा रखता है- 'उसे लगता है, इन दस किताबों में उसके अतीत के गुम दर्दों का हिसाब बंद है।'[3] विभाजन का दर्द सहनेवाला कहानी का नायक टी. वी. के सामने बैठकर आजादी

की चालीसवीं वर्षगांठ के समय आयोजित आजादी का जश्न देखता रहता है। अंदर से स्मृतियों के घाव बेहिसाब सताते हैं किंतु- 'टीवी की स्क्रीन पर झंडा फहराने का क्षण आने पर वह अपने आपको एकाएक कुर्सी छोड़कर जमीन पर खडा होते पाता- सिर झुकाए, हाथ बाँधे। जय-जय.. जय हे... की ध्वनि के डूबने तक एकदम अचल-निश्चल। यह सब अचानक घटता है, तेज गति से उसके अनजाने।'[4] आजादी की कटु स्मृतियों में से एक देश-विभाजन है। इस त्रासदी में नायक का परिवार झुलसा। परिणामतः नायक को अपनी जिंदगी निरर्थक लगती है फिर भी नायक आजादी का जश्न, राष्ट्रगीत शान से सुनता है, राष्ट्रगीत का सम्मान करता है और स्वतंत्रता दिवस का राष्ट्रीय त्यौहार खुशी से मनाता है। खुद पर विपरीत परिस्थिति आने पर भी अपने राष्ट्र का सम्मान करना यह राष्ट्रीय भावना नई पीढी के लिए प्रेरक है। आज समाज में कई व्यक्ति अपने परिवार एवं स्वहित की आड़ में जरा-से कुछ कानून - नियम आते हैं तो त्रस्त होते नजर आते हैं। दादा का व्यवहार ऐसे स्वकेंद्रित व्यक्तियों के लिए दिशादर्शक है।

राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता और देशप्रेम -

कहानीकार ने फ़्लैशबैक शैली में भारत में निर्वासित के रूप में रहनेवाले व्यक्तियों का दर्द नायक दादा पात्र के द्वारा प्रस्तुत किया है। अखंड भारत के विभाजन के समय लाहौर छोडने को मजबूर हुए दादा की उम्र 19 साल की थी। उन्होंने देश छोड़ा पर स्मृतियाँ नहीं छोड़ीं। स्वतंत्रता की चालीसवीं वर्षगाँठ पर दादा को अपनी जन्मभूमि लाहौर और प्रेमिका निक्की की याद आती है। दादा दस किताबों में से इंतजार हुसैन की 'बस्ती' किताब पढ़ने के लिए उठाते हैं। दादा को नायक की स्थिति और अपनी स्थिति में अधिक अंतर नहीं लगता। किताब का नायक जाकिर विस्थापित है। वह नए देश में अपना पहला दिन टटोल रहा है। जो जमीन पहले अपने ही (अखंड भारत) देश की है, मात्र उसके लिए अब वह जमीन, देश, शहर नया है और वह अजनबी है। अखंड भारत के प्रति आसक्ति होने वाले व्यक्ति के जीवन में देश टूटने की अघटित घटना भ्रम निर्माण करती है। उसे यह समझ में नहीं आता कि नए देश के निर्माण पर वह हँसे या रोए। राष्ट्रप्रेम का परिणाम है कि उसे बँटवारे का दर्द सताता है। जाकिर जानता है कि बँटवारे की आँख में एक चीज थी कुर्बान जाने की तैयारी।

एकता की शक्ति अधिक होती है। दुर्भाग्य से एकता में बंधा आने पर मनुष्य का जीवन दुःखी, उदास एवं अंधेरे से भर जाता है। कहानीकार ने इंतजार हुसैन की 'बस्ती' कहानी के नायक का दर्द बयान कर राष्ट्रीय एकता को बाधा पहुँचने पर होनेवाले परिणामों की ओर संकेत किया है। विस्थापन के समय चलते चर्चे, गोलीबारी, कर्फ्यू के अंदेशे में नायक हताश है। यह नायक इनसे बेलाग अनछुआ नजर आता है तो दादा को लगता है ज्यों असल में देखा था, वह किताब में नहीं है। कहानी का नायक घूमता रहता है और किताब में अनारकली बाजार का चित्रण आता है। अपनी मातृभूमि का जिक्र आते ही दादा चाव से पढ़ते हैं- 'अनारकली बाजार' का नाम आते ही वह ठिठक गया।

उफ ! अब जाकर इंतजार हुसैन ने शहर की पहचान दी है। लेटकर पढ़ रहा था, उठ बैठा। यह, यह तो उसका अपना शहर है। लाहौर...लाहौर। थोड़ा रुको इंतजार हुसैन।... अब जरा रुको इंतजार हुसैन। साँस वापिस आने दो। यह उसका शहर है...सुना तुमने।'[5] अपनी मातृभूमि के संदर्भ में लिखा चाव से पढ़नेवाले दादा का चित्रण राष्ट्रीय प्रेम का आदर्शवत उदाहरण है। देश से संबंधित पढ़ने का मानवी स्वभाव और गंभीर परिणाम भोगने पर भी मिट्टी के प्रति लगाव द्दष्ट्य है- 'रुक-रुककर उन सतरों को दोबारा-तिबारा पढता गया। सरहद के इस पार बैठ। वह इस समय अपने उस शहर के चेहरे को पढ़ रहा था। दत्तचित होकर, गले में उचक-उचककर आने वाली भर्राहट को भूलकर।'[6]

इससे स्पष्ट है कि अतीत की कटु स्मृतियाँ मनुष्य को दुःखी बनाती हैं। अंग्रेजों से आजाद हुए भारत देश का काला दिन विभाजन रहा। इसमें बिना वजह आम लोगों का जीवन कुर्बान हुआ। दादा किताब पढ़ते हैं तो उन्हें इंतजार हुसैन का नायक परिचित लगता हैं। नायक पाकिस्तान से भारत में आता है तो अपने को आजाद और सुरक्षित महसूस करता है। सब कुछ छोड़कर लाहौर से बाहर लगाया वालटन कैंप का वर्णन पढ़ते-पढ़ते दादा को अपने अनुभव जगत का डी. ए. व्ही. कॉलेज का कँम्प याद आता है। दादा भारत में आकर उनसठ वर्ष हुए हैं फिर भी अखंड भारत में के लाहौर स्थित दिन भूले नहीं हैं।

हिंसा की निंदा और व्यक्तिगत सुख की कुर्बानी -

देश के आगे व्यक्तिगत सुख तथा इच्छाओं का महत्व नहीं होता। देशद्रोहियों द्वारा हिंसा का रास्ता अपनाकर व्यक्तिगत दुःख पहुँचने पर भी जीवन व्यवहार करते समय देश का विचार प्रथम करना कठिन होता है। यह विदित है कि भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय हिंसक घटनाएँ हुईं। भारत-पाकिस्तान और विस्थापन की स्थिति के संदर्भ में डॉ. पुष्पपाल सिंह जी के विचार महत्वपूर्ण लगते हैं- 'भारत और पाकिस्तान के रूप में 1947 ई. में दो राष्ट्रों का उदय विश्व इतिहास की बहुत बड़ी त्रासदियों में से एक हैं, जिसमें इतना बड़ा नरसंहार और इतनी बड़ी जनसंख्या का अपने घर और वतन से उजड़कर दूसरे देश में प्रत्यार्पण हुआ जिनके सामने सर पर छत के आसरे और खोज से लेकर रोजी-रोटी के जुगाड़ का संघर्ष, नए देश में आकर शरणार्थी बनकर रह जाने की अमानवीय स्थितियाँ थीं।'[7] कहानीकार ने इसका संकेत दादा की प्रेमिका निक्की पर हुए अन्याय का वर्णन कर इतिहास का काला पक्ष प्रस्तुत किया है। प्रेमिका का कत्ल होने के बावजूद भी दादा प्रतिशोध पर उतरते नहीं और न ही किसी को दोष देते हैं तथा देशप्रेम का मूल्य छोड़ते हैं। विवेच्य कहानी में लाहौर में संतनगर में रहनेवाले दादा के परिवार की दयनीय स्थिति का चित्रण है। दादा को अपने माता-पिता और परिवार की याद आती है। देश विभाजन की त्रासदी का वर्णन करनेवाली कहानीकार विभाजन का दर्द भोगे दादा के माध्यम से आम निरीह नागरिकों की दशा का वर्णन करती हैं। यह कहानी किसी व्यक्ति की स्व-वेदना ही नहीं है। कहानी का स्वर पड़ोस-प्रेम, देशप्रेम तथा

कुल मानवता का है। इस स्वर में हिंसक शक्तियों पर नाराजगी है। अमानवीय कृतियों के परिणाम के संकेत हैं। राष्ट्रीय भावना को कुचलनेवाली घटनाओं के बाद भी देशप्रेम की भावना में निरंतरता प्रेरक है।

संतनगर में दादा के पिताजी को खबर मिलती है कि विभाजन के नाम दंगा फसाद शुरू हुआ है। शरणार्थियों के लिए खोले कैंप में पहुंचकर ही जीवित रह सकते हैं। दादा के पिताजी अचानक अपनी पत्नी को घर छोडकर डी. ए. वी. कॉलेज के कैंप में जाने के लिए तैयार होने को कहते हैं। दादा (रोशन) मात्र अपने पास रहनेवाले चावला साहब की बेटी निक्की की चिंता में छत के दरवाजे खिडकियाँ बंद करने के बहाने छत पर जाते हैं। कहानीकार ने विभाजन के समय हुए अन्याय-अत्याचार का वर्णन निक्की के उदाहरण द्वारा दिया है। कट्टरतावादियों द्वारा किए गए अन्याय का वर्णन करते समय कहानीकार लिखती हैं- 'मर्दों को तो जान से ही मारते जा रहे हैं। बाहर घसीट-घसीटकर पेड़ों से बाँध रहे हैं। उनकी आँखों के ऐन सामने औरतों को उफ-उफ.....उसका दम घुटने लगा।'[8] निक्की के घर घुसे बलवाई ने रोशन को (दादा) रोका था। उस समय ही रोशन के पिताजी उसे घसीटते हुए लेकर गए थे। उस समय ही निक्की बलवाईयों की शिकार हुई थी, वह चीख रही थी । निक्की की याद में उनसठ साल के दादा खूब रोते हैं। दादा जानते हैं कि जिस अन्याय के लिए वे रो रहे थे, उसे आजादी की जंग का नाम दिया जाता हैं- 'जबकि तय तो यही हुआ था कि यह आजादी की जंग है। इसे लेकर कभी भी किसी भी बात पर रोया नहीं जाएगा।'[9] देशप्रेमी दादा अपने पर हुए आघात पर खुलेआम रो भी नहीं सकते। इससे स्पष्ट होता है कि देश में घटित घटनाओं के कारण व्यक्ति के जीवन में दुःख, यातना आती है तो उसे भूलकर आगे जाना पड़ता है। समाज ऐसी घटनाओं की ओर राजनीतिक दृष्टि से देखता है। आम व्यक्ति के जीवन पर असर डालने वाले घाव व्यक्ति को डांवाडोल करते हैं।

कथाकार राजी सेठ कृत 'रुको, इंतजार हुसैन' कहानी में अखंड देश के टुकड़े होने पर आम निरीह लोगों का जीवन किस हद तक पीड़ित होता है, इसका चित्रण है। लाहौर से भारत आए नायक दादा ने विभाजन के समय हुई हिंसा में अपना प्यार खोया। मात्र उनका देशप्रेम निरंतर रहता है। विवेच्य कहानी किसी भी प्रकार की समस्याएँ झेलने की नौबत आने पर भी मातृभूमि से जुडे रहने का संदेश देती है। नायक दादा की अपने राष्ट्र का सम्मान करने की राष्ट्रीय भावना नई पीढी के लिए प्रेरक है। दादा का व्यवहार स्वकेंद्रित व्यक्तियों के लिए दिशादर्शक है। कहानीकार विभाजन का दर्द भोगे दादा के माध्यम से आम नागरिकों की दशा का वर्णन करती हैं। इस स्वर में हिंसक शक्तियों पर नाराजगी और अमानवीय कृतियों के परिणाम के संकेत हैं। विवेच्य कहानी में मातृभूमि के प्रति लगाव, देश विभाजन की त्रासदी, मातृभूमि से टूटने का दर्द, स्वतंत्रता दिवस का महत्व एवं जश्न, राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता, देशप्रेम, हिंसा की निंदा और व्यक्तिगत सुख की कुर्बानी आदि जैसे राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के पहलुओं

का चित्रण मिलता है ।

संदर्भ :

1. राजी सेठ - रुको, इंतजार हुसैन, सस्ता साहित्य मंडल, न्यू दिल्ली, प्र. सं. 2012, पृ. 104
2. वही, पृ. 105
3. वही, पृ. 107
4. वही, पृ. 107
5. वही, पृ.110
6. वही, पृ.111
7. डॉ. पुष्पपाल सिंह, 21वीं शती का हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली - 51, प्र. सं. 2015, पृ. 95-96
8. राजी सेठ - रुको, इंतजार हुसैन, सस्ता साहित्य मंडल, न्यू दिल्ली प्र. सं. 2012, पृ.113
9. वही, पृ.114 +1

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग ,
छत्रपति शिवाजी कॉलेज,
सातारा (स्वायत्त)

'आना इस देश' उपन्यास में देशप्रेम की भावना

डॉ. दिलीपकुमार कसबे

'आना इस देश' कृष्णा अग्निहोत्री कृत उपन्यास के शीर्षक से ही पाठकों के मन में देश के लिए प्रेम-भावना स्पष्ट होती है। असल में उपन्यास में लेखिका कृष्णा अग्निहोत्री ने प्रेम कहानी के माध्यम से देशप्रेम-राष्ट्रप्रेम की भावना प्रकट की है ऐसा लगता है। सुरैया (पाकिस्तान) और अबीर (भारत) दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं। 1947 के पूर्व सुरैया की माँ और पिता भारत में रहते हैं किंतु विभाजन के समय न चाहकर भी सुरैया की माँ को अपने पति के साथ पेशावर-लाहौर होते हुए शरणार्थी कैम्प में रहना पड़ता है। उन्हें भारतीय नागरिक न समझकर मुसलमान करार दिया जाता है। भारत में तहजीब, रिवाज, संस्कृति अधिकतर भाषाओं का भी ख्याल रखा जाता है। राष्ट्रीय भावना के विकास में ये सब अहम होते हैं। सुरैया, अबीर, गीत, सुरैया की माँ तरन्नुम और दादी की बातों से, व्यवहार से भारत के प्रति प्रेम, अपनापन दिखाई देने से हर भारतीय के प्रति राष्ट्रीय भावना जाग्रत करने की बात ही स्पष्ट होती है।

21 वीं सदी के हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय भावना को लेकर 2017 में प्रकाशित कृष्णा अग्निहोत्री कृत 'आना इस देश' उपन्यास का कथानक, उपन्यास का शीर्षक सामने आता है तो निश्चित रूप से भारत के प्रति राष्ट्रप्रेम की भावना दृढ होना स्वाभाविक, सहज-सरल है। देश की आजादी के पूर्व धार्मिक कट्टरता, सांप्रदायिकता की बात बहुत कम थी किंतु भारत पाकिस्तान का विभाजन होने के बाद वह दृढ़ होती गयी। उपन्यास के प्रमुख पात्रों में सुरैया (मुस्लिम) और अबीर (हिन्दू) दोनों पात्रों के देश, धर्म अलग अलग हैं लेकिन पाकिस्तान में बसे अधिकतर लोगों के रिश्ते भारत में आज भी हैं। केवल अंग्रेजों और तत्कालीन नेताओं की वजह से विभाजन को स्वीकार करना पड़ा। जनता को बिना बताए किए गए विभाजन से भारत के प्रति अपनापन, प्रेम आज भी कम नहीं हुआ है। उनके रिश्ते के लोग भारत में हैं। जब तक लोग जिंदा हैं, उनकी जमीन-जायदाद भारत में हैं, तब तक उनके तन-मन में भारत की अच्छी शिष्टता, रिवाज, संस्कृति आदि की स्मृति से उन्हें भारत के प्रति प्रेमभाव रहेगा ही। सुरैया की माँ को भारत के प्रति लगाव है। जब सुरैया भारत आयी थी, उसके अम्मी का प्यार भरा स्पर्श और दुबई में व्यवसाय के वास्ते रहने वाली किंतु भारत की रहने वाली गीत की माँ के स्पर्श में एकता देखने को मिलती है। सुरैया की माँ कहती 'सुरी, चल जल्दी नास्ते में ताजा कबाब है।' यहाँ गीत की अम्मी कहती है, 'उठ सुरैया ताजी जलेबी और पोहा तैयार है।' वही अंदाज, वही प्यार, वही बरसाने की तमन्ना वहाँ भी है। हवा में भी यही भोलापन व फूलों की फुनगियों से लटक हिलना भी एक जैसा।'[1] अतः भारत में सबके प्रति प्रेम अपनापन है। यहाँ सब जाति, धर्म, पंथ, संप्रदाय के लोग घुलमिलकर रहते हैं। उत्सव, पर्व, व्रत-उपवास भी करते हैं। धार्मिक कट्टरता-विवाद नहीं, साम्प्रदायिक दंगे

नहीं, शायद सुरैया की माँ ने पाकिस्तान जाने पर कट्टरता विवाद देखे होंगे, वहाँ होते होंगे। उसने तो सुरैया के अब्बा में ही धार्मिक कट्टरता देखी थी। वह पसंद नहीं करती थी। याने अपनापन सहिष्णुता, एक दूसरे के प्रति कमी के दर्शन वहाँ होते हैं लेकिन सुरैया की माँ के पास भारत के प्रेम का सागर उमड़ता है।

सुरैया की माँ चाहती थी मजहब के साथ इंसानियत किंतु पिता नदीम की तरह सुरैया में धार्मिक कट्टरता का भाव न बढ़े, मानवता और सर्व धर्म समभाव हो। विरोधी भावना दूर रहे इसलिए तो वह बार बार भारत के उत्तर प्रदेश के रामपुर की याद दिलाती हुई कहती- 'तुम कभी न कभी रामपुर जाना और लखनऊ वगैरह देखना। वहाँ के कबाब, चाट, मुर्ग मुसल्लम खाओगी तो यहाँ लौटना ही भूल जाओगी। पान तो तरह-तरह के हैं, यहाँ तो मैं एक पान को टुकड़ा कर दिन भर में खतम करती हूँ। वहाँ तो एक ही बार में पूरा घुल जाता है।'[2] अतः भारत का खानपान, इन्सानियत लोगों में कशिश बढाता है। वह तो पाकिस्तान में रहते हुए भी अकेलापन महसूस करती थी। वहाँ ऐसा कुछ खास नहीं है, जिसे घूमने जाकर देखा जा सकता है। भारत का खानपान, मिठाई, पर्यटन स्थल सब अच्छा है। भारत की अच्छाइयों की बातों से उपन्यास की कथा से लखनौ का खानपान, कबाब चाट, मुर्गमुसल्लम, नाश्ता इन्हें सुनकर पाठकों के मन में भारत के प्रति दुगुना प्रेम बढ़ना स्वाभाविक है। वे गर्व महसूस करेंगे और उनके मन में देश के प्रांतों को लेकर राष्ट्रप्रेम निर्माण होता है। उस दृष्टि से भी उपन्यास का निर्माण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत से आए महमूद के पीछे- पीछे वह जाती है उनके आगरा से आने की बात से खुश होकर सुरैया कहती है- 'आप तो मुहब्बत के मुकाम से आ रहे हैं। मैं भी आगरा, ताजमहल, फतेपुर सीकरी देखना चाहती हूँ।'[3] जब शॉपिंग की बात आती है तो जो चीजें कराची में थी, वे सब यहाँ मिलने की बात महमूद करता है। जैसे 'यहाँ जो भी है, वह आगरा में भी मिलता है।'[4] अतः हमारे देश में सब कुछ है- प्रेम है, रमणीय स्थल हैं, इनसे ही राष्ट्रीयता का भाव, प्रेम देखने मिलता है।

भारत में मुसलमान रहते हैं लेकिन उनपर अन्याय अत्याचार या शोषण जैसी बात यहाँ नहीं है। वे खुलकर बड़े मजे में जी रहे हैं। विभाजन के समय सब मुस्लिम यहाँ से गए नहीं है। यहाँ उनकी खेती है, बिजनेस है, सब सुरक्षित जीवन जी रहे हैं। भारत का लोकतंत्र है। इसमें सब को आजादी है, खानपान, रीतिरिवाज, परम्पराओं का पालन, उत्सव-पर्व मनाने का हक है, वोट देने का पढ़ने-लिखने सभी प्रकार का हक है। पाकिस्तान के लोगों को लगता है 'भारत में मुसलमानों को नौकरी तक ठीक से नहीं मिलती। वे घबराए व खौफ में जीते हैं।' तब महमूद कहता है- 'मुतारमा, ये आप यहाँ की बात कर रही हैं। वहाँ मैं अच्छा खासा सरकारी इंजीनिअर हूँ। मेरे नाना वहाँ जस्टिस होकर रिटायर हुए हैं। छोटा भाई जुबेर वकालत में मशहूर है और बड़ी आपा डॉ. हैं। सब खुली हवा में साँस लेते हैं और अपनी इच्छानुसार जीते हैं। मेल मुलाकातों में कभी संप्रदाय अडंगे नहीं डालता। जो नफरत 1947 में जन्मी थी वो बस आग ठंडी

है।'[5] इससे साफ जाहिर होता है कि भारत में रहनेवालों पर अन्याय अत्याचार या शोषण जैसी स्थिति सौ प्रतिशत नहीं है लेकिन बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है, बड़ा समुदाय छोटे समुदायों को डरा सकता है। मगर यहाँ की कानून व्यवस्था से न्याय मिलने का अवसर रहता है। संविधान, न्याय व्यवस्था मजबूत है। अगर न्याय न मिलता तो राष्ट्रीयता की भावना खत्म हो सकती थी। मेहमूद बताता है 'न्यायालयीन तंत्र भरोसेमंद है, इसलिए सभी कुछ अस्त-व्यस्त नहीं। जनमत आंदोलन, सामूहिक बयानों ने हमारे विश्वास को व लोकतंत्र को जीवित रखा है। तुम्हें वहाँ बहुत प्यार-अपनापन मिलेगा।[6]

सुरैया के भारत आने पर उसका मन यहाँ लगता है। उसी में अबीर के प्यार भरे व्यवहार से उसके प्रति बढ़ता प्रेम भारत के प्रति भी आकर्षण बढ़ना सहज सरल है। नानी की भेंट पाकिस्तान में नहीं होती थी क्योंकि वे तो भारत में बसे थे। वह नाना-नानी से पूछती है 'आप सब क्यों नहीं पाकिस्तान बस जाते।' तो उन्होंने कहा था 'सरु! हम यहाँ खुश हैं। मेरा बेटा सिविल जज है, भतीजा इन्कम टैक्स ऑफिसर। हमें अपने भारत में सुकून चैन आजादी है।'[7] उनके इस कथन से स्पष्ट होता है कि भारत में लोगों को सुकून चैन मिलता है। यदि इसी तरह भारत में रहनेवाला हर एक खुश, प्रसन्नता-मोद भरे जीवनयापन कर रहा है तो उनके तन-मन में निश्चित रूप से राष्ट्रीयता के दर्शन होंगे ही। हिंदू और मुसलमान इन दो धर्मों के लोग प्रमुखतः भारत में रहते हैं। उनमें से मुसलमान, विभाजन के समय बड़ी संख्या में पाकिस्तान गए हैं लेकिन धर्म को मद्दे रखकर विभाजन होकर भी भारत में रहनेवालों को यहाँ किसी संकट या मुसीबत का सामना नहीं करना पड़ता। अतः किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं दीखता। भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय जो हिन्दू लोग सिंध से कच्छ में बसे थे, वे भी वहाँ से भागकर राजस्थान और गुजरात में भागकर आने लगे हैं। शरणार्थी की भाँति रहने का मतलब यह है कि यहाँ वे जितने महफूज हैं, उतने पाकिस्तान में नहीं। इसलिए उधर से इधर भाग आने का जिक्र भी लेखिका कृष्णा अग्निहोत्री ने किया है।

भारत के प्रति मुसलमानों में प्रेम है। भले ही वे पाकिस्तान में रहते हैं मगर उधर हिंदू नाम से जुड़े कितने ही स्थल हैं। वे नाम ज्यों के त्यों आज भी हैं। वहाँ उसमें उन्होंने किसी प्रकार का परिवर्तन किया हुआ दिखाई नहीं देता। अर्थात लोगों के मन में आज भी प्रेम है 'लाहौर में सुन्दरदास रोड, लक्ष्मी चौक, ग्वाल मंडी, फिरोजपुर रोड, जानकीदेवी अस्पताल, दयालसिंह कॉलेज, गंगाराम अस्पताल।'[8] यदि मुसलमानों में भारत के प्रति घृणा और तिरस्कार का भाव होता तो निश्चित ही उसमें वे परिवर्तन कर देते या दूसरे नाम दे देते। मगर वैसा भाव उनमें नहीं दीखता है। दोनों को भारत का अनेक जाति-पंथों के लोगों के साथ मिलजुलकर रहना विश्व के सामने भी एकता का सूचक चित्र है। भारत की एकता अखंडता को लेकर विश्व को आश्चर्य होता है। अबीर, सुरैया को बताता है कि 'आपको पता नहीं कि बिहार जिला भी जहाँ पटना है, वहाँ सिवान जिले के ठेपरा गाँव में हिंदू भी मुहर्रम मनाते हैं, ताजिया निकालते हैं। सिवान के जीरादोई से 12 कि.मी.

गाँव में सोमवार को हिंदू-मुस्लिम एक होकर मस्ती करते हैं। ये सब रोजा रखते हैं। मुहर्रम पर हिंदू औरतें रोती हैं, ईद मनाती हैं।'[9] इस तरह भारत में रहकर एक दूसरे के उत्सव पर्व मनाने की बात से दोनों में एकता नजर आती है। डॉ. गीत के पिता रामकृष्ण अवस्थी के सुरैया के ननिहाल में आने पर अम्मी 'उस दिन किचन व बर्तन धोकर अच्छे से अच्छा सब्जी का सालन बनाती और अब्बू व सब दस्तखान पर वैसे ही चटखारे लेकर खाते जैसे कबाब कीमा खाते थे। अंकल भी कभी रबड़ी, कचौडियाँ, कभी आंटी के हाथ का मेवा लड्डू, मठरियों की बरसात करते। अतः ऐसे कई उदाहरण हैं। एक दूसरे के बारे में उदारता का भाव भी है। कुछ शक्तियाँ, पार्टियाँ होती हैं, जो बहुसंख्यक के साथ रहकर अल्प संख्यक पर अत्याचार करती हैं किंतु भारत में सांस्कृतिक एकता के उदाहरण भी अच्छे माने जा सकते हैं।

भारत एक ऐसा देश है कि विविधता से भरपूर है। निवासियों से लेकर उनके रीतिरिवाज, परम्पराएँ सब अलग-अलग हैं। देश एक ही है पर भिन्न-भिन्न संस्कृतियों से यथेष्ट है, फिर भी उनमें एकता के दर्शन होते हैं। फिर साहित्यकार-कलाकार आदि की कलाओं से वे बँधे हुए हैं। यहाँ की भूमि में विविधता है। कहीं खड़े पर्वत बर्फीले हैं, कहीं रेत के टीले हैं फिर भी यहाँ सुजलाम् सुफलाम् के दर्शन होंगे। अंग्रेज आए व्यापार करते-करते लोगों को गुलाम बनाया किंतु लोगों के भीतर का राष्ट्रप्रेम वे नहीं ले जा सके। इसीलिए भारत को छोड़कर उन्हें जाना पड़ा। अतः हर भारतीय के भीतर देशप्रेम, राष्ट्रप्रेम जिंदा है ही। 1947 का विभाजन जनता के मन से नहीं तत्कालीन व्यवस्था और राजनीतिज्ञों की स्वार्थभावना आदि से हो गया था। यदि देश के प्रति प्रेम-अपनापन न होता तो धार्मिकता की वजह से लोगों को यहाँ का सब कुछ छोड़कर जाना पड़ता। सुरैया की माँ तरन्नुम को न चाहते हुए भी पाकिस्तान जाकर रहना पड़ा था किन्तु उसके मन में इस धरती के प्रति बेहद लगाव था। इसलिए वह कहती 'मुझे दफनाने के लिए भारत की जमीन ही होनी चाहिए।'[10] 'इसतरह उनकी इच्छा के अनुसार उनके बीमार पड़ने पर उचित दवा दारू हेतु उन्हें भारत लाया जाता है। अंत में उन्हें यही दफनाया जाता है। अतः स्पष्ट है अपने मूल देश के प्रति दूर विदेश में जाकर रहने वालों के मन में राष्ट्रप्रेम है। यहाँ के लोग, भूमि, खानपान सब के प्रति लोगों के मन में अपार श्रद्धा है। भारत की फिल्में लाहौर के सिनेमागृह में चलती हैं। तत्सम प्रधान हिंदी भी आसानी से लोग समझते हैं। भारत में जो कश्मीर है, वह पूरे विश्व को रममान करा देनेवाला स्थल है कुछ लोग इसे दसवीं दुनिया ही समझते हैं। अतः यहाँ के प्राकृतिक स्थलों में भी काफी सुंदरता है। इसलिए तो रूसी लोग छुटिटयाँ मनाने भारत के गोवा में आते हैं। सुरैया और अबीर के प्रेम की परिणति, सुरैया का भारत के प्रति आकर्षण बढना, सीमा पर उस पर अत्याचार होकर पाकिस्तान न पहुँचना जैसी घटनाएँ भी चिंतनीय हैं, सोचनीय हैं।

भारत का आपस में सबसे तन-मन लगाकर रहना, सीमावर्ती प्रदेश में केवल अपनी सीमाओं की सुरक्षा करते जाना, पडोस के देशों को डराना, भाईचारे का रिश्ता बनाए

रखना एकदूसरे के उत्सव-पर्व में शरीक होना, भिन्न धर्म के लोगों का सम्मान रखना, आदर करना, साथ ही यहाँ का गोवा, कश्मीर आदि स्थलों का विदेशियों को भारत की ओर आकर्षित करना भारतीयों के लिए बड़ी खुशी की बात है। इन्हें समृद्धशाली शहर मानना हमारे लिए गर्व की बात है। भारतवासियों की दृष्टि से विदेशियों का भारत आना, यहाँ के दर्शनीय स्थलों की यात्राएँ करना, कश्मीर जैसे भारत के स्वर्ग को देखकर उनका बार-बार आने से देश का ही सम्मान इसमें बढ़ता है।

इस तरह कहा जा सकता है कि 'आना इस देश' उपन्यास में लेखिका कृष्णा अग्निहोत्री ने सुरैया और अबीर की प्रेमकथा में 1947 के भारत - पाकिस्तान विभाजन के समय सुरैया के माता-पिता का पाकिस्तान जाकर रहना किंतु सुरैया की माँ का भारत के प्रति आकर्षण बना रहना, अंत में भारत की मिट्टी में दफनाने की इच्छा प्रकट करना, भारत में रहने की इच्छा प्रकट करने जैसी ही बात है। भारत का खानपान, लोगों का मिलजुलकर रहना, एक दूसरे के पर्वों को मनाना, भिन्न धर्म वालों की इज्जत करना, सम्मान करना, पाकिस्तान की अपेक्षा भारत में सुकून खुशी मिलना आदि से भी एक राष्ट्रप्रेम की भावना प्रकट होती है। इससे सभी भारतीयों को भारत के प्रति और भी आकर्षित करने जैसी बात है। यहाँ का रिवाज, अपनापन, धर्म अलग-अलग होकर भी अपनेपन की भावना रखना बड़े गौरव की बात है। राष्ट्रीयता का विश्व के लिए भी एक अच्छा उपदेश है, ऐसा मानना पडेगा।

निष्कर्ष :

1) भारतीय लोगों की अपनेपन की भावना
2) धार्मिक भिन्नता होकर भी एक दूसरे के उत्सव-पर्व में हिस्सा लेना
3) पाकिस्तान में रहकर भी भारत के प्रति आकर्षण
4) वर्तमान में भी भारत-पाकिस्तान में रहने वालों के रिश्ते कायम
5) भारतीय दर्शनीय स्थलों का आकर्षण
6) गोवा और कश्मीर के प्रति विदेशियों का आकर्षण
7) लेखक द्वारा देशप्रेम की भावना जगाना

संदर्भ :

1. आना इस देश - कृष्णा अग्निहोत्री, अमन प्रकाशन, 104 अ/80 रामबाग, कानपुर 208012 (उ.प्र.), पृ.सं. 11
2. वही - पृ.सं. 12, 3. वही - पृ.सं. 16, 4. वही - पृ.सं. 16, 5. वही- पृ.सं. 17, 6. वही - पृ.सं. 17, 7. वही - पृ.सं. 28, 8. वही - पृ.सं. 59, 9. वही - पृ.सं. 28, 10. वही - पृ.सं. 53

स.गा.म. कॉलेज, कराड
(स्वायत्त महाविद्यालय) महाराष्ट्र

प्रदीप सौरभ रचित 'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास में राष्ट्रीय भावना के राजनीतिकरण का चित्रण

डॉ. सचिन मदन जाधव

राष्ट्रीयता व्यापक संघ भावना है। आंतर्राष्ट्रीय सीमारेखा के अंदर एकत्रित रहने वाले लोग अपनी निजी पहचान को दर्शाते हुए भी भिन्न विशिष्ट पहचान वाले लोगों के साथ समान भाव से समग्रता की रक्षा करते हुए एक रूप होकर रहते हैं। अंततः यही राष्ट्रीय भावना है। किसी भी देश के लिए राष्ट्रीय भावना सर्वोपरि है। राष्ट्रीय भावना का तभी विकास हो पाता है, जब उस देश की छोटी से छोटी इकाई की भी रक्षा की जाए। उनमें सुरक्षा का भाव पैदा हो। उसकी असुरक्षितता देश के भीतर राष्ट्रीय भावना को कमजोर कर देती है। अगर हम बहुमत के आधार पर अल्पसंख्यकों के साथ उनकी निजी पहचान तथा भावनाओं के विरोध में उनको एक ही झंडे के नीचे लाने की कोशिश करते हैं, तो यह राष्ट्रीय भावना को तोड़ने का कारण बन सकती है। कभी-कभी राष्ट्रवाद के नाम पर समाज की मानसिकता का धार्मिक ध्रुवीकरण किया जाता है, जिससे लोगों को यह लगता है कि यह लड़ाई राष्ट्रहित की है। लेकिन अंततः यह राष्ट्रीय एकता की भावनाओं को तोड़ने में सहायक बनती हुई दिखाई देती है। 'मुन्नी मोबाईल' उपन्यास में जो स्थितियां राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने के नाम पर निर्माण की गई हैं, उसका लक्ष्य राजनीतिक लाभ के अतिरिक्त कुछ और दिखाई नहीं देता।

भारत की विविधता ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। वे सारी समस्याएँ मनुष्य निर्मित ही हैं। विविधता का गौरव गान करने वाले ही इस विविधता को अस्वीकृत करते हुए उसमें अपनी इच्छानुरूप एकरूपता लाना चाहते हैं। यह एकरूपता लाने की चाहत ही विविधता को नकारने का कारण बन जाती है। प्राकृतिक विविधता तो स्वीकृत कर भी ली जाती है परंतु सामाजिक विविधता सांप्रदायिकता को जन्म देती है। कैलाश मीना के अनुसार 'सांप्रदायिकता एक संकीर्ण मानसिक सोच है, जो अपने समूह को श्रेष्ठ मानती है और उसके हितों के लिए कोशिश करती है। यह धर्म, जाति, भाषा, स्वजातीय क्षेत्रीय में से किसी भी आधार पर हो सकती है परंतु एक निश्चित अर्थ में सांप्रदायिकता का आधार धर्म है।' 'मुन्नी मोबाईल' उपन्यास में पत्रकार आनंद भारती की गुजरात से जुड़ी यादों में भारतीय सांप्रदायिकता के ही दर्शन होते हैं। औपन्यासिक पात्र आनंद भारती जी की मानें तो गोधरा हत्याकांड और उसके उपरांत निर्मित दंगों के मूल कारणों में हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता की राजनीति ही मुख्य कारण है। 'इसी गोधरा ने देश की राजनीति में तीव्र ध्रुवीकरण किया है। वैसे ध्रुवीकरण की नींव तो 6 दिसंबर 1992 को ही पड़ गई थी। उस दिन बाबरी मस्जिद को भगवा ब्रिगेड़ ने ध्वस्त कर दिया था। हिंदू राजनीति करने वाली भारतीय जनता पार्टी के मुखिया लालकृष्ण अडवाणी से लेकर भगवा सेना की तेज तर्रार साध्वी उमा भारती, सभी इस कथित राष्ट्रीय कलंक को ध्वस्त

करने में शामिल थे।'

आनंद भारती की सोच के अनुसार भारतीय जनता पार्टी संघ द्वारा संचालित राजनीतिक दल है। यह राजनीतिक दल संघ के ही विचार को साधने के लिए काम करता है। संघ का मुस्लिम विरोधी रूप जगजाहिर है। वह कांग्रेस सरकार के विरोध में सभी हिंदुओं का ध्रुवीकरण करके सत्ता में अपनी पैठ बनाना चाहता है और इसीलिए उसके समर्थक लोगों को मुस्लिम विरोधी बनाकर स्वयं सत्ता में आना चाहते हैं- 'रथयात्रा के रथी हुए आडवाणी का करिश्मा चल निकल आया। बाद में रथयात्रा की परिणति बाबरी ध्वंस के साथ हुई। बाबरी तो ध्वंस हो चुकी थी। अब हिंदू ब्रिगेड के आगे सवाल था कि वहाँ रामलला का मंदिर कैसे बनाया जाए।'. असल में बाबरी तो एक बहाना था, भारतीय जनता पार्टी राम के कंधों पर चढ़कर देश की सत्ता पर काबिज होना चाहती थी।' गुजरात दंगों में जिस तरीके से मुस्लिमों को निशाना बनाया जा रहा था उसे पत्रकार के रूप में देखते हुए आनंद भारती इस नतीजे पर पहुँच चुके थे कि इन दंगों की मुख्य वजह वोटों का ध्रुवीकरण करके फिर से सत्ता में आना था। मुस्लिम विरोध इतना तीव्रतर हो गया था कि उसका वर्णन करते हुए प्रदीप सौरभ लिखते हैं, 'गुजरात में मुसलमान होना गाली बन गया था। मुसलमान पाकिस्तानी हो गए थे और हिंदू राजा हिंदुस्तानी। एक देश में दो देश। खास तरह की दाढी किसी की भी मौत का सबब बन सकती थी।' गुजरात में मुस्लिम के विरोध में हिंदुओं को भड़काया जा रहा था। राजनीतिक नेता भी खुलेआम सांप्रदायिकता की भाषा बोल रहे थे। 'इस बीच मोदी ने मुसलमानों को सीधा धमकाया। बोले- राहत शिविर बच्चे पैदा करने की जगह बन गए हैं। ये सब नहीं चलने दिया जाएगा। एक आदमी दर्जनों बच्चे पैदा करता है' 'एक का दो। दो का चार। चार का आठ XXX दो सौ छप्पन का पाँच सौ बारह।' इस प्रकार मुसलमानों के बहुपत्नीत्व तथा संतति नियमन के अभाव को दर्शाकर हिंदुओं को उकसाया जा रहा था। नरेंद्र मोहन सांप्रदायिकता को परिभाषित करते हुए ऐसी ही स्थितियों को दर्शाते हुए कहते हैं, 'अनुशासन तथा धर्म की रक्षा के नाम पर समाज को विभाजित किया जाता है, तो इससे अंततः सांप्रदायिक चेतना का ही जन्म होता है। सांप्रदायिकता ऐसे ही निर्णयों, व्यवस्थाओं और व्याख्याओं की देन है, जिन्हें स्वघोषित धर्मगुरुओं और उनके शिष्यों ने शाश्वत व सनातन मानकर समाज व मानवता पर थोपने की चेष्टा की है।'

आनंद भारती के मतानुसार गुजरात दंगों तथा तत्पश्चात भाजपा के नेता नरेंद्र मोदी और प्रवीण तोगड़िया साहब ने जिस ढंग से मुसलमानों के खिलाफ मोर्चा खोला, उसके केंद्र में हिंदू वोटों का ध्रुवीकरण करने तथा उसको सीढ़ी बनाकर सत्ता तक पहुँचना ही मुख्य मंशा रही। इसके लिए उन्होंने राष्ट्रवाद के ढकोसले का सहारा लिया। ऐसी स्थितियों पर भाष्य करते हुए बिपिन रावत लिखते हैं, 'लोकतंत्र में बहुसंख्यक सांप्रदायिकता किसी भी अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता की तुलना में ज्यादा और बड़ी ताकत है और यह सत्ता प्राप्त कर सकती है और अपने-आपको राष्ट्रवाद की नई संज्ञा देने की कोशिश करके

असली फासीवाद लागू कर सकती है।'

मुन्नी मोबाईल उपन्यास में भी बिपिन रावत का कथन सत्य मालूम होता हुआ दिखाई देता है, 'मोदी आग उगलते घूम रहे थे। उनकी आग को अक्षरधाम पर आतंकी हमले ने और धधका दिया। हमले के बाद मोदी ने गुजरात की अस्मिता के सवालों को और जोर से उठाया। पाकिस्तान को धमकी दी। मियाँ मुशर्रफ को ललकारा। इस तरह उन्होंने धर्म के साथ देशभक्ति का मसला भी अपने भाषण में भर दिया।' इस तरह मुन्नी मोबाईल उपन्यास में राजनीतिक हवा में तैरती सांप्रदायिकता को राष्ट्रीय राजनीति के कॅनवास पर उतारा है।

राजनीति और अपराध की साँठ-गाँठ ऐसी है जैसे लोहे की कुल्हाड़ी को बेंट मिल जाए और उसकी ताकत हजार गुना बढ़ जाए। निर्मल कुमार सिंह के मतानुसार 'राजनीति और अपराधीकरण का मेल खतरनाक साबित हो रहा है और इससे हमारे प्रजातंत्र के सामने गंभीर समस्या आ खड़ी हुई है।' उपन्यास के केंद्रीय पात्र आनंद भारती ने बहुत करीब से अनुभव किया कि अपराध और राजनीति जब एक ही पक्ष में हों तो जनता को उसकी कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। आनंद भारती के मतानुसार गुजरात के गोधरा हत्याकांड के पश्चात निर्माण हुए दंगों में वहाँ की सरकार का भी बराबरी का हिस्सा है। इसका विश्लेषण करते हुए लिखा है कि 'मोदी सरकार ने दंगों की स्क्रिप्ट लिख ली थी। पुलिस द्वारा दंगाईयों को खुली छूट देना तय हो चुका था। खून का बदला खून। दंगाई मुस्लिम बस्तियों में पुलिस के नेतृत्व में पहुचने लगे। हमले पर हमले लाशें जमीन पर बिछने लगीं। गुजरात की फिजा में लाशों की दुर्गंध तैरने लगी।' आनंद भारती ने जिस तरीके का मंजर गोधरा हत्याकांड के पश्चात दंगों में देखा, उससे वो इसी सोच पर पहुँचते नजर आते हैं कि ये दंगे सत्ता के गलियारे से निर्माण हुए हैं और सत्ता के गलियारे में बने रहने के लिए ही निर्माण हुए हैं। वोट की राजनीति के लिए ही विशिष्ट धर्म के लोगों को निशाने पर रखा गया ओर हिंदुओं का धार्मिक ध्रुवीकरण करके राजनीति का उपयोग अपराधीकरण के लिए किया गया। जब यह अपराधीकरण राज्य या राष्ट्रीय स्तर पर होता है तो दंगे निर्माण होते हैं। इसमें किसी एक या दो व्यक्तियों का नुकसान नहीं होता। पूरा समाज इसकी चपेट में आ जाता है। जिन सरकारों को सामाजिक दंगों की आग बुझानी चाहिए, वे ही सत्ता वापसी के लिए इसे अधिक फैलाने की बात करते हुए उपन्यास में नजर आते हैं- 'जिस दिन गोधरा कांड हुआ। उस दिन मोदी ने विश्व हिंदू परिषद और बजरंग दल के नेताओं से कहा कि जितने सेवक मरे हैं, उससे दस गुना लाशें चाहिए।' उपन्यास में नेताओं का अपराधियों के साथ-सीधे संबंध लोकतंत्र को तानाशाही की ओर ले जाता है। उपन्यास में कई स्थानों पर इसका निर्देश दिया गया है कि हिंदू-मुस्लिम दंगे पुलिस की निगरानी में करवाये गए।

छात्र राजनीति सिर्फ छात्रों के प्रश्नों तक सीमित होती हुई नजर नहीं आती। उसमें बड़े-बड़े राजनीतिक संगठन अपनी धाक जमाने की फिराक में नजर आते हैं। एक

प्रकार से यह गंदी सामाजिक राजनीति का ही संक्षिप्त रूप है और इस छात्र राजनीति का रूप इतना खराब और दर्दनाक हो गया है कि ये सब शिक्षा के मंदिरों में घटित होता है। इसका बड़ा अफसोस उपन्यास के केंद्रीय पात्र आनंद भारती को होता है। आज के विश्वविद्यालयों की इन स्थितियों पर भाष्य करते हुए वे कहते हैं कि, 'कभी इलाहाबाद विश्वविद्यालय छात्र संघ ने देश को बड़े नेता दिए थे। अब वह बड़े माफिया पैदा करने की संस्था बन रहा था। जातिवाद, क्षेत्रवाद जैसी बीमारी पात्र राजनीति में भी आ चुकी थी।' वर्तमान समय में विश्वविद्यालयों में संविधान को अभिप्रेत नागरिक पैदा होने की बजाय संविधानिक समता, स्वतंत्रता और बंधुता को सुरंग लगानेवाले राष्ट्र व समाज विरोधी तत्त्वों के पनपने का स्थान बनते जा रहे हैं।

एक पत्रकार की कलम से निर्माण हुआ 'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास राष्ट्रीय समस्याओं से अछूता हो ही नहीं सकता। प्रदीप सौरभ के प्रथम उपन्यास का जन्म ही एक बहुत बड़ी सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक घटना- गोधरा हत्याकांड के पश्चात हुआ है। इन घटनाओं को उपन्यास में रिपोर्ताज के रूप में प्रस्तुत किया है।

संदर्भ :

1. www.kailasheducation.com Dt- 6/1/2021
2. सौरभ प्रदीप, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, प्र. सं. 2011, पृ-11
3. वही, पृष्ठ २२, 4. वही, पृष्ठ ३०
5. सौरभ प्रदीप, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, प्र. सं. 2011, पृ-41
6. मोहन नरेंद्र, धर्म और सांप्रदायिकता, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, सं. 2006, पृ. 44
7. रावत बिपीन, सांप्रदायिकताः एक पहचान, अनुवाद-आलोक तोमर, अनामिका पब्लिशर्स और डिस्ट्रीब्युटर्स, नई दिल्ली, 110002, पृ. 37
8. सौरभ प्रदीप, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, प्र. सं. 2011, पृ.42
9. सिंह निर्मल कुमार, अपराध और भ्रष्टाचार की राजनीति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 29
10. सौरभ प्रदीप, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, प्र. सं. 2011, पृ. 29
11. सौरभ प्रदीप, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, प्र. सं. 2011, पृ. 43
12. सौरभ प्रदीप, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, प्र. सं. 2011, पृ.60

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
सद्गुरू गाडगे महाराज कॉलेज,
कराड

गायब होते पहाड़ की करुण गाथा 'पहाड़ चोर'

डॉ मधुकर लक्ष्मण डोंगरे

वर्तमान हिंदी कथा साहित्य विषय-वैविध्य से परिपूर्ण है। विशेषतः हिंदी उपन्यासों में नए-नए विमर्श तथा समस्याओं से संबंधित रचनाएँ निरंतर चर्चा में रही हैं। 21वीं सदी के तीसरे दशक तक हम विकास के उस दौर में पहुँच गए हैं जहाँ प्रकृति एवं पर्यावरण के साथ लगातार छेड़छाड़ हो रही है। हिन्दी उपन्यासकारों ने पर्यावरण संबंधी अनेक समस्याओं को अपनी रचनाओं में उठाया है और इन विषयों पर लगातार अपनी चिंताएँ प्रकट की हैं। इस संदर्भ में टिप्पणी कराते रवि यादव ने लिखा है कि ये उपन्यास प्रमुखतः पारिस्थितिकी संकट और स्थानीय लोगों की समस्याओं को लेकर भूमंडलीकरण के बाद उत्पन्न हुई समस्याओं का आदिवासी जीवन पर प्रभाव, खनन से उत्पन्न हुए विकिरण के खतरे, ग्लोबल वार्मिंग की समस्या, विस्थापन व अधिकारों का उल्लंघन, भूमि अधिग्रहण तथा विदेशी कंपनियों द्वारा शोषण जैसी समस्याओं पर केंद्रित हैं। ये उपन्यास जंगलों में रहने वाले लोगों की जीवन संस्कृति और पर्यावरण की समस्याओं से रूबरू कराते हैं। वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में अर्थव्यवस्था का काफी महत्व है। आर्थिक प्रगति के नाम पर तेजी से जंगलों में घुसती बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अत्यंत तबाही पैदा की है। यह तबाही विध्वंस बन गई है, जिसका प्रत्युत्तर विकास परियोजनाओं का विरोध, हिंसक प्रदर्शन और नक्सलवाद के रूप में देखने को मिलता है। झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा में खनन कंपनियों द्वारा मूल निवासियों के साथ व्यवहार और उनका विरोध इसके उदाहरण हैं।[1]

सन् 2005 में प्रकाशित सुभाष पंत का उपन्यास 'पहाड़ चोर' भी इसी परंपरा में लिखा गया एकमहत्वपूर्ण उपन्यास है। कुछ लोगों ने अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं तथा अपने आर्थिक कमाई के लिए नए-नए रास्ते अपनाए हैं। इस कार्य में वे प्रकृति और पर्यावरण का विनाश करने के लिए भी नहीं हिचकिचाए हैं। 'पहाड़ चोर' की मूल कथा इसी से जुड़ी है। इस उपन्यास में झण्डूखाल नामक गांव का वर्णन 1960 के दशक का है। तब आजादी मिलकर 10 साल हो गए थे लेकिन अभी तक झण्डूखाल में आजादी नहीं आई थी। फिर भी उनका जीवन सुखमय था। झण्डूखाल एक पहाड़ी इलाका था। इस पहाड़ में पशु पंछी आदि के लिए यह स्वर्ग था। उपन्यासकार सुभाष पंत के शब्दों में, 'झण्डूखाल जो चारों ओर पहाड़ियों से घिरा अंगूठीं में जड़े नग की तरह चमकता था और जिसके पहाड़ में तुन, सांधन, भिमल, विंडर, सुनधा, ककड़ाल, गुरियाल, जंगली खजूर और चीड़ के आसमान से होड़ लेते दरख़्तों के पैरों में मालू, बेर, करौंदे, तिलवाड़ा, अरंडी, सेमला, बांसा, हंसराज के झाड़ घुंघरू की तरह बंधे थे, जो हवा चलने पर संगीत सिरजते थे और बारिश के साथ नाचने लगते। यह अनहोनी उसी झंडू खाल में हुई जिसके मधुमक्खी के आकार वाले उत्तर पूर्वी पहाड़ से हर समय अविराम

जल की झालर टपकती रहती और वहाँ सूरज की किरणों में हजारों-हजारों इंद्रधनुष काँपते रहते।'[2] विकास के नाम पर समूचे विश्व को नष्ट करने वाले औद्योगिक सयंत्र एक दिन झण्डूखाल में प्रवेश करते हैं। एस. ओ. लाइमस्टोन कंपनी गाँव में नया रास्ता बनाने का करार लेकर आती है। झण्डूखाल गाँव से बाहर तक। वह यह कहते हैं कि इससे आप लोगों को रोजगार मिलेगा गाँव में पानी की व्यवस्था नल द्वारा हो जाएगी तथा बिजली और पक्का घर बनवाएँगे। लेकिन इसका कुछ विरोध अनुभवी बुजुर्ग रामपत ने कराते हैं लेकिन साबरा जैसे धूर्त लोगों के कारण रामपत के विरोध का स्वर लुप्त हो जाता है। साबरा कंपनी के स्वार्थ के जाल में फँस जाता है।

एस. ओ. लाइमस्टोन कंपनी झण्डूखाल में आते ही झण्डूखाल गाँव की एकता तोड़ती है। वह गाँव से पहाड़ तक डायनामाइट लेकर जाने के लिए गाँव से रास्ता बनाती है। गाँव के मध्य भाग से, जिससे हुआ यह कि झण्डूखाल के गाँव का जो एक शरीर था, अब वह दो टुकड़ों में बंट जाता है। रामपत को यह पहला परिवर्तन बिल्कुल पसंद नहीं है। वह साबरा से तथा अपने गाँववालों को समझाता हुआ कहता है, स्वयं सुभाष पंत जी के शब्दों में, 'कौन नी चाहता जिंदगी बदलना? सभी चाहते हैं। मैं तो इसकी बाट जोहते-जोहते बुड्ढा हो गिया। आँखें जाती रहीं मेरी पर येई चाहा कि बदलाव आए तो म्हारी जमीन के साथ आए। जमीन छीन कर नी।'[3]

हमारे समस्त आदिवासी भाइयों की यही तो माँग है कि विकास के लिए हम विरोध नहीं कर रहे हैं। विकास होना समयानुसार सच है लेकिन यह विकास हमारा जल, जंगल और जमीन छीनकर न हो। वर्तमान समय में केवल झण्डूखाल के रामपत की यह समस्या नहीं है। सभी आदिवासियों की यह समस्या है। आज ग्लोबलाइजेशन के नाम पर जंगलों तथा पहाड़ों को नष्ट किया जा रहा है। यह प्रकृति तथा समस्त मानव जाति के लिए हानिकारक है। जब इस धरती पर पेड़ नहीं बचेंगे तब ऑक्सीजन का निर्माण कैसे होगा? यह चिंतनीय है। आज दिल्ली और मुंबई जैसे बड़े-बड़े महानगरों में लोगों का दम घुटने लगा है। झण्डूखाल में हरा-भरा पहाड़, कल-कल करने वाली पंछियों की किलकारी अब धीरे-धीरे नष्ट होने के कगार पर थी। सुभाष पंत जी ने इसका वर्णन बड़ी सूक्ष्मता से किया है- 'ऊर्जा, प्रकाश, कोयला और राख की कहानी है पहाड़ की औरत। खदान ने झण्डूखाल की औरतों से उनका पहाड़ छीन लिया और घास की खोज में अब उन्हें दूर भटकना पड़ता। अपने पहाड़ के साथ तो उनका जन्म-जन्म का रिश्ता था। पहचान थी। सब मालूम था, कहां घास है, कहां लकड़ी है, और पानी तो उस पहाड़ के आत्मा से हर समय झरता रहता। भीड़ बखत में भी वहां उन्हें निराश नहीं करता। वे उसके एक-एक अंतरे-कोने ढलान चढ़ान पशु-पंछी हवा-पानी सब कुछ पहचानती थीं। वह पहाड़ उनसे छिन गया। अब उन्हें घास लकड़ी के लिए दूर-दूर भटकना पड़ता। आज भी परिया और रामकली की टोली बहुत दूर निकल गई विडालना नदी के पार के पूर्वी पहाड़ पर यह उनकी पहचान का पात्र नहीं था लेकिन यह खनन क्षेत्र से बहुत

दूर विस्फोट के आतंक से सुरक्षित दूर पर था। यहां सीटियों की चाकू की तरह चील की आवाज, चीखकर भरभराते पहाड़, उछलते चट्टानों के भय से मुक्त वे इतमिमान से अपना काम कर सकती थीं। पहचान नहीं थी बस, पर पहचान तो धीरे-धीरे बन ही जाएगी। घास और लकड़ी काटते, इकट्ठा करते सूरज पहाड़ से दो रस्सा ऊपर निकल आया। दोनों के बोझ तैयार हो गए, पिरिया पीछे छूट गई। उसका शरीर शिथिल पड़ रहा था। दरांती जवाब दे रही थी। आंखें भी मुंदी जा रही थीं, लेट जाने की इच्छा हो रही थी। लगा हाथ एक - एक मन के हो गए हैं, मानो टूट कर गिर जाएंगे।'[4]

पहाड़ नष्ट होने से यह दुखमय जीवन झण्डूखाल की औरतों को बिताना पड़ता था। अब झण्डूखाल गाँव की सुबह और रात डायनामाइट के धमाके से होती है। विकास तथा ग्लोबलाइजेशन के नाम पर चलने वाला इस विकास ने झण्डूखाल के लोगों को नई-नई बीमारियां भी दे दी थीं। खदान में काम करने वाला नत्थू खांसी से पीड़ित है। वह नशा भी करने लगता है। ऐसे ही चलते एक दिन उसकी अस्पताल में मौत हो जाती है। खदान में काम करने वाले अनेक लोगों को प्रदूषित धूल, वायु तथा डायनामाइट के धुए से अनेक बीमारियां हो चुकी थीं। डायनामाइट के धमाके से गोपाल का घर ध्वस्त हो जाता है। एक महीने से वह केवल कच्ची झोपड़ी बनाकर रहता है। जब उस कंपनी के मालिक एक दिन गांव में खदान पर आते हैं तब वह अपनी टूटी हुई झोपड़ी का मुआवजा मांगने के लिए जाता है। तब मालिक जो कहता है वह सब आदिवासियों को चीरनेवाला, उनका दिल तोड़ने वाला वाक्य है। सुभाष पंत जी ने इसका वर्णन बड़े मार्मिक ढंग से किया हुआ है, 'उन्होंने नक्शा फाइल में वापस रखकर अपनी निगाह उसके चेहरे पर टिकाई जो एकाएक इतनी पैनी हो गई थी कि उसके चेहरे को उस्तरे की तरह छील रही थी, फिर भी उन्होंने शुष्कता से कहा, हमारी साइट के आसपास झण्डूखाल नाम का कोई गाँव नहीं है और न वहां कोई आबादी है।'[5]

जब कंपनी का मालिक कहता है कि हमारे साइट पर कोई झण्डूखाल नामक गांव ही नहीं है तब गोपाल बड़ा धैर्य कराकर निर्भयता से कहता है, 'आपने म्हारा पहाड़ छीना हमने कुछ नी कहा। बिनती है कि म्हारा गांम मत छीनों साब। इसकी माटी के कन-कन में म्हारी सांसे बसी हैं। मुआवजा मत दो पर ऐसी कुलच्छनी बात तो मत कहो कि झण्डूखाल नाम का कोई गाम नी है।'[6]

गोपाल का उपर्युक्त कथन का बड़ा ही मार्मिक है। ये कंपनियां ऐसे ही हमारे धरती को ध्वस्त करने पर तुली हुई हैं। कंपनी के अधिकारी गोपाल को यह कहते हैं कि आप पहले यह साबित कर दो कि झण्डूखाल नामक गांव हमारे कंपनी के साइड के आस-पास है। इस प्रकार यह स्थिति निर्माण होती है। यह अत्यंत भयावह है।

अब झण्डूखाल गांव में कुछ नए-नए परिवर्तन होने लगे हैं। गांव के किसानों की खेती की उर्वरा शक्ति नष्ट होती जा रही थी। गांव का एक किसान सलेटी के खेत पहाड़ के नीचे ही थे लेकिन डायनामाइट के मलबे से खेती बांझ बन रही थी। सुभाष पंत जी

ने इसका बड़ा ही हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। पहाड़ के मलबे से उनके खेतों की उर्वरा शक्ति लगातार क्षीण होती जा रही थी। इस साल तो बुवाई पर जितना खर्च आया, वह चने की उगाही भी नहीं हुई। इस परिवर्तन में उसके खेत बांझ हो गए और घर की आत्मा को जंग लग गया क्या इसी परिवर्तन के लिए उसकी आत्मा में दीप जले थे।'[7]

उपन्यास के अंत में झण्डूखाल गांव में भयंकर तूफान और आंधी आती है। मौसम के प्रकोप के कारण जंगल तबाह हो गए थे। बहुत से पेड़ों की टहनियां टूटी हुई थीं। वे पेड़ उजड़े हुए सुहाग के कारण रोती हुई विधवाओं की तरह लग रहे थे। अब केवल विनाश ही सामने दिख रहा था। झण्डूखाल गांव के घर-घर की यही प्रार्थना थी कि, उनको जीवन देनेवाला यह पहाड़ बचे।

'हे भगवान! बखत से हमने अपना पहाड़ नी बचाया। जीवन देने वाला यह पहाड़ आज टूटकर बिखर रहा है और मौत का भय पैदा कर रहा है। हमने इसके साथ जो होने दिया, यह भी हमारे साथ आज वैसा ही कर रहा है। हम जब अपना पहाड़ बचाने को जागे, तब देर हो चुकी थी'..बहुत देर '.. हमारे पापों को क्षमा करना'.. सब कुछ छीन लेना, पर न झण्डूखाल को छीनना, न इसके पहाड़ को छीनना और न यह जीवन छीनना।'[8]

मैं अपनी बात 'पहाड़ चोर' उपन्यास के संदर्भ में वरिष्ठ कथाकार कमलेश्वर जी के भूमिका के साथ रखता हूं- 'अपने मौन में भी यह उपन्यास बोलता है और मुखर में भी। वह अपने रूप, रंग, त्वचा, स्पर्श और गंध से बोलता है और हजारों आवाजों में बोलता है, उपन्यास सह-अस्तित्व की धारणा की पैरवी करते हुए निरंतर बताता रहता है कि यह धरती सिर्फ मनुष्य की नहीं है। इस पर वृक्षों, पंछी और पशुओं का भी उतना ही अधिकार है। जितना मनुष्यों का है। यह आंचलिकता का अनायास वैश्वीकरण 'पहाड़ चोर' की सबसे बड़ी विशेषता है। उपन्यास यथार्थ से नीचे आत्मिक यथार्थ की महागाथा है, क्योंकि यह मोचियों के सोलह परिवार वाले झण्डूखाल की ही त्रासदी नहीं, मानव विकास के क्रम में तिरोहित हो गई कई सभ्यताओं की त्रासदी भी है।'[9]

संदर्भ :

1. प्रकृति पर्यावरण और हिंदी उपन्यास, रिसर्च आर्टिकल रवि यादव, मार्च 2020 पृष्ठ 65
2. पहाड़ चोर - सुभाष पंत- राजपाल प्रकाशन पृष्ठ संख्या 09
3. पहाड़ चोर - सुभाष पंत- राजपाल प्रकाशन पृष्ठ संख्या 33
4. पहाड़ चोर - सुभाष पंत- राजपाल प्रकाशन पृष्ठ संख्या 72
5. पहाड़ चोर - सुभाष पंत- राजपाल प्रकाशन पृष्ठ संख्या 130
6. पहाड़ चोर - सुभाष पंत- राजपाल प्रकाशन पृष्ठ संख्या 131
7. पहाड़ चोर - सुभाष पंत- राजपाल प्रकाशन पृष्ठ संख्या 202
8. पहाड़ चोर - सुभाष पंत- राजपाल प्रकाशन पृष्ठ संख्या 354
9. पहाड़ चोर - सुभाष पंत- राजपाल प्रकाशन पृष्ठ संख्या 08

जयवंतराव पवार कला वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय
टोकावडे- 421402

21 वीं सदी के हिंदी फिल्मी गीतों में राष्ट्रीय भावना

डॉ. युवराज माने

हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय भावना आदि काल से ही विशेषतः चारण कवियों में चली आ रही है। भक्ति काल का मूल उद्देश्य भक्ति भावना थी पर उसमें भी राष्ट्रीयता के स्वर की गुंज सुनाई देती है। रीतिकाल में श्रृंगारिकता का स्वर प्रमुखता से है पर श्रृंगार के साथ-साथ राष्ट्रभावना भी दिखाई देती है। इसमें प्रमुखता से कवि भूषण ने राजा छत्रसाल और छत्रपति शिवाजी महाराज जैसे राष्ट्र नायकों को अपने काव्य में अग्रस्थान दिया है। भूषण के साथ गोरेलाल, गुरु गोविंद सिंह आदि कवियों ने राष्ट्रीय भावना के गीत गाये हैं।

साहित्य, समाज और सिनेमा का रिश्ता अटूट है। भारत में सिनेमा की शुरुवात हिंदुस्तान सिनेमा द्वारा 'राजा हरिश्चंद्र' मूकपट से सन् 3 मई 1913 ई. में दादासाहेब फाळके जी ने की। बॉलीवुड में हर साल सैकड़ों फिल्में बनती हैं, जिनमें कॉमेडी, रोमांस, ड्रामा, एक्शन, थ्रिलर, देशभक्ति आदि के साथ-साथ वीर रस से ओतप्रोत राष्ट्रभक्ति, शौर्य, बलिदान, त्याग आदि पर फिल्में हैं। साहित्य के माध्यम से जिस प्रकार राष्ट्रीय चेतना जागरूक करने का प्रयास किया जाता है, उसी प्रकार फिल्म-जगत का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। देशवासियों में देशभक्ति की भावना साहित्य के माध्यम से जागृत होने के कारण अंग्रेज सरकार ने कई पुस्तकों को प्रकाशित होने नहीं दिया। कई नाटकों का रंगमंचन करने नहीं दिया। सन् 1876 ई. में लॉर्ड नार्थ ब्रुक ने मंच से राजद्रोह दृश्य खत्म करने के लिए प्रदर्शन अधिनियम लागू किया था। वही बात फिल्मों पर भी लागू होती थी। ब्रिटिश शासन ने पुलिसकर्मियों और सेंसर कार्यालयों के माध्यम से फिल्मों पर कड़ी नजर रखी। इसका उदाहरण है कि सन 1943 ई. की फिल्म 'किस्मत' के गीत 'आज हिमालय की चोटी - दूर रहो ए दुनिया वालो हिंदुस्तान हमारा है' के गीतकार कवि प्रदीप की गिरफ्तारी का आदेश मिला। राष्ट्रीय भावना पर आज तक अनेक फिल्में बनी हैं। शहीद(1948), समाधि(1950), पहला आदमी(1950), आनंद मठ(1952) झांसी की रानी (1953), राही(1953), मदर इंडिया(1957), हकीकत(1964), हमसाया(1968), प्रेमपुजारी(1970), ललकार(1972), हिंदुस्तान की कसम (1973), विजेता(1982), आक्रमण(1975), प्रहार(1991), बॉर्डर(1997), एलओसी कारगिल (2003), टैंगो चार्ली(2005), शौर्य(2008),द गाजी अटैक(2017), द लीजेंड ऑफ भगत सिंह (2002), 23 मार्च 1931 शहीद (2003) लगान (2003) चक दे इंडिया (2007) भाग मिल्खा भाग (2013) दंगल(2016) केसरी (2019), भुज : द प्राइड ऑफ इंडिया(2021) आदि। 21वीं सदी में भी ऐसी अनेकानेक फिल्में बनी हैं, जिनमें राष्ट्रीय भावना प्रमुखता से दिखाई देती है।

लगान 2001 में बनी इस फिल्म में किसान और अंग्रेजों के बीच एक क्रिकेट मैच खेला जाता है। मैच की शर्त यह थी कि किसान अगर मैच हार गए तो 2 गुना लगान देना पड़ेगा और अगर जीत गए तो लगान माफ होगा। फिल्म का नायक भुवन अपने साथियों की मदद से मैच जीतता है। यह मैच खेलना एक बहाना है असल में अंग्रेज सत्ता के विरुद्ध लड़ना प्रमुख उद्देश्य था।

मंगल पांडेः द राइजिंग आजादी की लड़ाई के प्रमुख अग्रदूत मंगल पांडे के जीवन को उजागर करने वाली यह फिल्में हैं।

गदर एक प्रेम कथा सन् 1947 ई.में हुई भारत पाकिस्तान विभाजन पर फिल्म आधारित है। साथ ही एक सिख युवक और मुस्लिम लड़की की प्रेम कथा दिखाई देती है। लक्ष्य 1999 में हुए कारगिल युद्ध पर आधारित यह फिल्म है। इस फिल्म में भारतीय जवानों का साहस और वीरता को बहुत सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। स्वदेश एक एन आर आई लड़के पर बनी फिल्म है जो भारत के बाहर रहने वाले भारतीयों के दिल में भारत किस प्रकार बसा है, इसका सुंदर उदाहरण है।

रंग दे बसंती यह फिल्म 5 नौजवानों पर चित्रित है, जिन्होंने नाटक में क्रांतिकारियों का किरदार निभाया था। जिससे प्रेरित होकर उन्होंने अपने मित्र की मृत्यु के लिए जिम्मेदार मंत्री की हत्या की।

उरी : द सर्जिकल स्ट्राइक पाकिस्तानी आतंकवादियों की कार्रवाई के प्रति भारत में सन 2016 ई में लाइन ऑफ कंट्रोल के पार जाकर पाकिस्तान में छिपे आतंकवादियों और उनके स्थलों पर हमला कर उनका खात्मा किया और सही सलामत वापस भारत लौटे। मणिकर्णिकाः झाँसी की रानी सन 1857 के विद्रोह की प्रमुख हस्ती झाँसी की रानी मणिकर्णिका लक्ष्मीबाई के जीवन पर यह फिल्म बनी है, जो ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लोहा लेते हुए कहती हैं, 'मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी'। इसमें भारत की बेटी का साहस दिखाई देता है।

द लीजेंड ऑफ भगतसिंह महान क्रांतिकारी भगत सिंह के जीवन को उजागर करने वाली या फिल्म भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव के बलिदान को दशार्ती है। उनके बलिदान से ही यह धरती आजाद हुई है। केसरी 12 सितंबर 1897 में 12000 अफगानी लुटेरों के साथ केवल 21 सिख सिपाही लड़ते हैं। एक अद्भुत युद्ध का चित्रण।

राजी यह फिल्म एक रॉ एजेंट के जीवन पर बनी सच्ची घटना पर आधारित है। साथ में राग देश, दंगल, चक दे इंडिया, भाग मिल्खा भाग, द गाजी अटैक 'जैसी अनेकानेक राष्ट्रीय भावना की फिल्में बनी हैं। सन् 2019 में प्रदर्शित हुई फिल्म केसरी में एक अतुलनीय युद्ध का चित्र दिखाई देता है। 12 सितंबर 1897 ई में हुआ यह युद्ध इतिहास के पन्नों में अमर हो चुका है। सारागढ़ी का युद्ध 36वीं सिख रेजीमेंट के 21 सिखों द्वारा सिपाही यीशु मसीह के नेतृत्व में 12000 अफगानियों से हुआ था। ये लड़ाई तो ग्रीक स्पार्टन और पर्सियन से भी अधिक गंभीर थी। यूनेस्को ने इसे विश्व की 8 महानतम

लड़ाई में शामिल किया है।

अंग्रेज सन् 1897ई. में भारत में अपना वर्चस्व बनाने के बाद भारत की सीमा अफगानिस्तान पर कब्जा करना चाहते थे। अफगानिस्तान के मीर ने अंग्रेजों का नेतृत्व स्वीकार किया था, पर अन्य कबीलों को अपना अस्तित्व खोना स्वीकार नहीं था। वे गुलबादशाह के नेतृत्व में गुलिस्तान और लॉकहार्ट के किले पर अपना कब्जा जमाना चाहते थे। इन दोनों किलों के बीच सारागढ़ी नाम की एक चौकी थी, जो दोनों किलों के बीच संचार का जरिया थी। 36वीं सिख रेजीमेंट में केवल 21 सिपाही थे, जिनका 12000 अफगानियों के सामने टिकना आसान नहीं था। अफगानी भी जानते थे और सिख भी। ईशर सिंह से कहते हैं- 'ये लड़ाई तो तुम जीत नहीं पाओगे।' ईशर सिंह कहता है- 'लड़ाई तो हमने तभी जीती थी जब हमने लड़ने का फैसला किया था। अब मरना बाकी है।' 'राष्ट्रीयता एक भाववृत्ति है, जिसके मूल में आत्मरक्षा और एकत्र रहने की वृत्ति काम करती है।'[1] (बाबु गुलाबराय 1961) ऐसे वीरता का वर्णन 'तेरी मिट्टी' गीत में हुआ है। जो मनोज मुंतिशर ने लिखा और बी पराग ने गाया है। मनोज मुंतिशर के बोल और बी पराग की आवाज शरीर पर रोंगटे खड़े कर देती है।

ईशर सिंह अफगानिस्तानियों से कहता है, 'आज मेरी पगड़ी भी केसरी, जो बहेगा वह लहू भी केसरी और मेरा जवाब भी केसरी।' केसरी रंग जो बलिदान का प्रतीक है, आसानी से प्राप्त नहीं होता। उसके लिए तलवारों पर सर और अंगारों पर जिस्म जलाना पड़ता है। तभी जाकर सर पर केसरी रंग सजाया जाता है। एक सिपाही जो दुश्मनों से लोहा लेते हुए लहू-लुहान हुआ है, उसे पता है उसके जीवन का अंत नजदीक है, फिर भी उसे अपने वतन की चिंता है। उसे अपने मरने का अफसोस नहीं। वतन के आन के लिए सौ दर्द भी सहता है। उसका वतन से यह इश्क कभी फीका ना पड़े, यही उसकी अंतिम अभिलाषा है। वह कहता है-

ए मेरी जमी अफसोस नहीं , जो तेरे लिए सौ दर्द सहे।
महफूज रहे तेरी आन सदा, चाहे जान मेरी रहे न रहे।
मेरी जमी मोहब्बत मेरी , मेरी नस्स मैं तेरा इश्क बहे।
फीका ना पड़े कभी रंग तेरा, जिस्मों से निकल के खून कहे' ।[2] (केसरी, 2019)

मिट्टी में मिलने के बाद भी सिपाही की कोई आरजू हो सकती है? यह सवाल सामान्य लोगों के लिए होगा पर सिपाही वतन की मिट्टी, नदिया का वह बहता पानी, लहराते खेत खलियानों में स्वयं को फिर से पाने की तमन्ना दिल में लिए वतन के लिए अपनी जान निछावर कर देता है-

'तेरी मिट्टी में मिल जावाँ, गुल बनके मैं खिल जावाँ,
इतनी सी है दिल की आरजू। तेरी नदियों में बह जावाँ,
तेरी खेतों में लहरावाँ, इतनी सी है दिल की आरजू।[3](केसरी, 2019)

जीवन के अंतिम क्षणों में सिपाही की आंखों के सामने क्या मंजर होगा? उसे पता

है वह लौट कर कभी वापस नहीं जाएगा। जिस गली में उसका बचपन बीता, जिस गाँव ने उसकी नटखट बाल लीला, जवानी का जोश, वतन के लिए कुर्बान होने का जज्बा देखा, उस गाँव में अब लौटकर कभी वापस नहीं जा सकता, पर इसका अफसोस उसे बिल्कुल नहीं है। वतन पर कुबार्नी का अवसर जो मिला है, उसे वह अपना नसीब मानता है-

'सरसों से भरे खलिहान मेरे,जहाँ झुमके भंगड़ा पा न सका।
आबाद रहे वह गाँव मेरा, जहाँ लौट के वापस जा ना सका।
ओ वतना वे मेरे वतना वे, तेरा मेरा प्यार निराला था।
कुर्बान हुआ तेरी अस्मत पे, मैं कितना नसीबो वाला था।'[4] (केसरी, 2019)

जो उसने अपनी पत्नी, माँ, बच्चों, दोस्तों से वादे किए थे, अब उसे कभी पूरा नहीं कर सकता। वतन के इश्क के लिए उसने कई वादे तोड़े हैं। अंतिम घड़ी में भी अपनी हीर के मुँह पर हँसी देखना चाहता है। जिस मुखड़े को देख उसके मन में वतन पर मिटने का जज्बा जगता था, उस मुखडे का रंग कभी फीका ना पड़े, यही उसकी चाह है। वह कहता है-

'ओ हीर मेरी तू हसती रहे, तेरी आँख घड़ी भर नम ना हो।
मैं मरता था जिस मुखड़े पे, उसका उजाला कम ना हो'[5] (केसरी, 2019)

हीर भी एक वीरांगना है। बलिदान में वह उससे कम नहीं। अपना सुहाग उसने वतन पर निछावर कर दिया है। उसे पता है, उसके रांझे का पहला इश्क वह स्वयं न होकर वतन है। उसके असली इश्क की हकदार धरती ही है और उसमें वह बाधा नहीं बनना चाहती। वह कहती है-

'ओ रांझना वे तेरी साँसों पे, थोड़ा सा वतन का भी हक था।
ना देख मुझे यूँ मुड़-मुड़ के, तेरा मेरा साथ यहीं तक था।
यह तेरी जमी, तेरे खून से ही, तो सजती संवरती है रांझे,
तेरे इश्क की मैं हकदार नहीं, तेरी हीर तो धरती है रांझे।'[6] (केसरी, 2019)

एक माँ का दुलारा, उसकी आंखों का तारा, जिसे वह चाँद कहती थी, उसके विदाई की घड़ी आ चुकी है। यह विदाई जीवन को छोड़ मृत्यु को अपना रही है। माँ की आँख नम होने लगी तो आँखों का तारा कहता है-

'ओ माई मेरी क्या फिक्र तुझे, क्यों आँख से दरिया बहता है।
तू कहती थी तेरा चाँद हूं मैं, और चाँद हमेशा रहता है।'[7] (केसरी, 2019)

केसरी फिल्म वीर सपूतों के बलिदान की कहानी है। केसरी की तरह 'भुज : द प्राइड ऑफ इंडिया' सन् 1971 ई. के भारत पाकिस्तान युद्ध की सत्य घटना पर आधारित है। बांग्लादेश को पाकिस्तान से आजाद करने के लिए भारतीय फौजियों को ईस्ट पाकिस्तान भेजा गया था। ईस्ट पाकिस्तान में जनरल टिक्का खान ने 30 लाख बेगुनाहों को मारा था। अपने ही लोगों का यह नरसंहार भारत देख न सका और उसे आजाद करने के लिए

भारतीय फौज बांग्लादेश भेजी गई। इससे क्रोधित होकर याकूब खान ने भारत के भुज पर हमला करने का आदेश दिया। भुज एयरवेज पर पाकिस्तान की वायुसेना ने हमला कर रनवे और एयरवेज को तोड़ दिया। उस वक्त कमांडिंग ऑफिसर थे विजय कर्णिक। रनवे दुरुस्ती का काम अगर नहीं हुआ, तो भुज पाकिस्तान के हाथ चला जाएगा, यह वे जानते थे। भुज के स्थानीय निवासियों को साथ लेकर रनवे का काम पूरा करना पड़ा। स्थानीय गुजराती शेरनी सुंदर बन ने साथियों के साथ मिलकर रात में ही रनवे बनाने का काम पूरा किया और पाकिस्तान के मंसूबे पर पानी फेर दिया। 'राष्ट्र के समक्ष व्यक्ति दल, प्रांत, जातियाँ, धर्म और संप्रदाय सब गौण हैं। इन सबकी रक्षा राष्ट्र की रक्षा है। इनमें संकीर्ण भावना पनपने लगती है, तो राष्ट्र का अस्तित्व संकट पर टिकता है। अतएव महत्वपूर्ण तत्त्व यह है कि ये सब एकजुट होकर राष्ट्र को समृद्ध और सदृढ बनाएँ।'[8] (डॉ.बाबुराम 2002)

गीतकार मनोज मुंतशिर ने देश के प्रति देशवासियों की भावनाओं को सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। देश की मिट्टी की धूल से बढ़कर कोई धन नहीं है। वे लिखते हैं-

'ओ देश मेरे तेरी शान पे सदके, कोई धन है क्या तेरी धूल से बढ़के।
तेरी धूप से रोशन तेरी हवा पे जिंदा, तू बाग है मेरा, मैं तेरा परिंदा'[9]
(भुज, 2021)

आगे एक दीवाने सिपाही की अर्जी को बताया गया है। दीवाने की अर्जी किसी सीरिया लैला को पाने की नहीं है। वह तो जब भी वतन पर मर मिटने की बात आए तो उसमें अपनी शहादत और अपना नाम शामिल हो, यही उसकी अभिलाषा है।

'है अरजी ये दीवाने की, जहाँ भोर सुहानी देखी।
एक रोज वही मेरी शाम हो,
कभी याद करे जो जमाना माटी पर मर मिट जाना,
जिकर में शामिल मेरा नाम हो।'[10] (भुज, 2021)

वतन पर शहादत का अधिकार केवल पुरुषों का ही है, ऐसा नहीं है। इस देश की बेटियाँ क्या बेटों से कम हैं। इसी फिल्म में चित्रित हिना रहमान एक मुस्लिम पात्र है। हीना अपने जीवन को त्याग कर भी अपने देश की सहायता करती है- ' राष्ट्रीयता जातीयता नहीं है। राष्ट्रीयता धर्मिक सिद्धांतों का दायरा नहीं। राष्ट्रीयता सामाजिक बंधनों का घेरा नहीं। राष्ट्रीयता का जन्म देश के स्वरूप से होता है। उसकी सीमाएँ देश की सीमाएँ हैं।'[11] (गणेश शंकर विद्यार्थी 1964) भुज पर अटैक की खबर हिना ने ही पाकिस्तान से दी थी। जब वह पकड़ी जाती है तब भी अपने देश के लिए जान देने के लिए तैयार रहती है। वह कहती है- 'बहे खून मेरा तो हिंदुस्तान के लिए अगर जाए मेरी जान तो हिंदुस्तान के लिए।' आगे वह कहती है 'या खुदा तेरी अदालत में मेरी एक जमानत रखना, मैं रहूं या ना रहूं मेरे हिंदुस्तान को सलामत रखना।'

भारत की बेटियों ने भी देश प्रेम में अपना योगदान दिया है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई,

गुंजन सक्सेना या कश्मीरी लड़की के किरदार में बनी राजी फिल्म इसका सुंदर उदाहरण है। गीतकार गुलजार ने वतन के प्रति अपनी भावनाओं को 'ऐ वतन वतन मेरे आबाद रहे तू' गीत द्वारा प्रस्तुत किया है। इस गीत की अंतिम कुछ पंक्तियों में वतन पर कुर्बान होने की बात कही है-

'तुझपे कोई गम की आँच , आने नहीं दूं।
कुर्बान मेरी जान तुझ पर, शाद रहे तू।'[12] (भुज, 2021)

उपरोक्त फिल्म गीतों के अलावा भी 21वीं सदी के फिल्मी गीतों में राष्ट्रीय भावना के अन्य गीत 'मैं लड़ जाना'- उरी : द सर्जिकल स्ट्राइक, 'सलाम इंडिया' - मैरी कॉम, 'लहरा दो'- 83' 'रंग दे बसंती चोला' यह गीत 'द लीजेंड ऑफ भगत सिंह', '23 मार्च 1931 शहीद' तथा इसके पूर्व 'शहीद' में भी है पर इन सब के बोल अलग अलग हैं और ऐसे कई गीत हैं जिनमें राष्ट्रीय भावना दिखाई देती है।

साहित्य या सिनेमा में राष्ट्रीय भावना दीर्घ काल से चली आ रही है। आधुनिक काल में भारतेंदु युग से नवजागरण होता रहा। फिल्मों पर भी साहित्य का प्रभाव दिखाई देने लगा। साहित्य की तरह फिल्मों का भी उद्देश्य भारतीय जनता को जगाना और भारत भूमि को आजाद कराना रहा। अनेकानेक साहित्य- कृतियों पर फिल्में बनीं, जिनमें कॉमेडी, रोमांस, ड्रामा, एक्शन, के साथ देशप्रेम और राष्ट्रीय भावना को जागृत करने का प्रयास किया गया। साहित्यिक कृति और फिल्मों में अंतर यह होता है कि फिल्मकार अपनी आवश्यकता के अनुसार साहित्यिक कृति के कथावस्तु में बदलाव करता है और यह आवश्यक भी है क्योंकि फिल्म मेकर का उद्देश मनोरंजन के साथ आर्थिक प्राप्ति करना भी है। पर उसका प्रमुख दायित्व यह भी रहना चाहिए कि आवश्यकता के बदलाव में कृति के मूल विषय वस्तु भाव, भावनाओं को कोई क्षति न पहुंचे। 21वीं सदी में कई ऐसी फिल्में बनी हैं जो सत्य घटना पर आधारित हैं और राष्ट्रीय भावना को उजागर करती हैं। फिल्मों ने पहले भी राष्ट्रीय भावना को जागृत करने का काम किया है और आगे भी करती रहेंगी।

संदर्भ :

1. बाबू गुलाबराय, राष्ट्रीयता, गयाप्रसाद एंड सन्स, आगरा प्रथम संस्करण 1961ई. पृ. क्र.1-2.
2. 'केसरी', फिल्म गीत, 2019 ई., 3.वही., 4.वही., 5.वही., 6. वही., 7. वही.
8. डॉ.बाबू राम, हिंदी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन (हिंदी निबंध साहित्य का राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से अध्ययन), वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002 ई.पृ. क्र. 281.
9. 'भुज : द प्राइड ऑफ इंडिया', फिल्म गीत, 2021 ई., 10.वही.
11. गणेश शंकर विद्यार्थी के श्रेष्ठ निबंध,(संपा.)राधाकृष्ण, आत्माराम एंड सन्स प्रथम संस्करण 1964 ई. पृ. क्र.13
12. भुज : द प्राइड ऑफ इंडिया, फिल्म गीत, 2021 ई.

हिंदी विभाग, छत्रपति शिवाजी कॉलेज, सातारा

'बाल सतसई' में राष्ट्रीय भावना

डॉ. लिपारे अजित विठ्ठल

बाल साहित्य के दैदीप्यमान नक्षत्र और ज्ञानात्मक साहित्य के जन्मदाता डॉ. परशुराम शुक्ल जी ने अपनी रचना 'बाल सतसई' के 'बच्चे और राष्ट्र' अध्याय के माध्यम से बच्चों के मन में राष्ट्रीयता, देशप्रेम, राष्ट्रभक्ति आदि भावनाएँ निर्माण कने की कोशिश की है। बच्चे जो इस देश के भविष्य हैं, उनके मन में इन भावनाओं को बचपन में ही विकसित किया जाए तो भारत का भविष्य निश्चित रूप से उज्वल होगा। वर्तमान युग में मनुष्य में स्वार्थांधता, राजनेताओं में सत्तालोलुपता, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि बुराइयाँ कूट-कूट कर भरी हुई हैं। राष्ट्र के रक्षक कहे जानेवाले भक्षक बन गए हैं। परशुराम शुक्ल जी ने ऐसे लोगों के मन में राष्ट्रीयता की भावना निर्मित करने का भी प्रयास किया है। बच्चों के मन में अगर राष्ट्रभक्ति निर्माण होगी तभी वे समाज में पनप रही बुरी बातों का विरोध करेंगे।

मानव सामाजिक प्राणी है। समाज से परे रहकर वह अपना जीवन यापन नहीं कर सकता। उसे जन्म से मृत्यु तक बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था इन चार अवस्थाओं से गुजरना पडता है। जिसमें बाल्यावस्था उसके जीवन की सबसे महत्वपूर्ण अवस्था है। मानव के व्यक्तित्व का अधिकतर विकास इसी अवस्था में होता है। खेती में अच्छी फसल के लिए किसान बीज को महत्वपूर्ण मानता है, उसी प्रकार भारत के भविष्य को उज्वल बनाने में बालकों के व्यक्तित्व को अच्छे संस्कारों से संस्कारित करना आवश्यक है। बच्चों के व्यक्तित्व को संवारने में शिक्षा अहम् भूमिका निभाती है। बालकों को शिक्षा-दीक्षा देने हेतु देश में शांति और सुरक्षा का वातावरण होना जरूरी है। देश में शांति और सुरक्षा बानाए रखने के लिए सुशासन, अनुशासन और राष्ट्रप्रेम या देशभक्ति की भावना होना महत्वपूर्ण है, किंतु दुर्भाग्य से आजादी के पश्चात राष्ट्रप्रेम की भावना का लोप हो गया है। स्वार्थांधता, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, सांप्रदायिकता, सत्तालोलुपता का चारों ओर बोलबाला हो गया है। जनता के रक्षक कहे जानेवाले नेता भक्षक बन गये हैं। उनमें स्वहित की भावना इतनी प्रबल हो गई है कि उसके सामने देश-हित, राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रीयता की भावना के लिए स्थान ही नहीं है। अतः क्षीण होती जा रही राष्ट्रीयता की भावना को नेताओं के साथ मानव के मन में जागृत करने का सशक्त माध्यम साहित्य है।

बाल्यावस्था मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। इस अवस्था में अगर हम बालकों के मन में राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करेंगे तो देश के उज्वल भविष्य की कामना हम जरूर कर सकते हैं। इस दृष्टिकोण से कतिपय साहित्यकारों ने अपने बाल साहित्य के माध्यम से इसमें सफलता प्राप्त की है। इन साहित्यकारों में हरिकृष्ण देवसरे, डॉ. जयजयराम आनंद, रामनिवास मानव, कृष्णवल्लभ पौराणिक आदि के

साथ डॉ. परशुराम शुक्ल का स्थान शीर्षस्थ है। वे बाल साहित्य के सुपरिचित हस्ताक्षर माने जाते हैं। ज्ञानात्मक साहित्य के जन्मदाता के रूप में उन्होंने अपनी अलग पहचान बनाई है। अपने साहित्य के माध्यम से उन्होंने बालकों के मन में देशप्रेम, देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने का सफल प्रयास किया है। अपनी 'बापू' कविता के माध्यम से उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा के तत्वों का महत्व विशद किया है-

'अंग्रेजी निर्मम शासन से, तुमने हमें बचाया।
सत्य, अहिंसा और धर्म का हमको पाठ पढ़ाया॥'[1]

'बाल सतसई' में राष्ट्रीय भावना -

नमन प्रकाशन, नई दिल्ली से सन् 2013 में प्रकाशित यह रचना दोहा छंद में लिखी गई है, जिसमें सात सौ दोहे पैंतीस अध्यायों में विभाजित हैं। इन अध्यायों में 'बच्चे और राष्ट्र' इस अध्याय के माध्यम से उन्होंने बच्चों के मन में राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने की कोशिश की है। स्वतंत्रता आंदोलन की समाप्ति तथा देश के आजाद होने के पश्चात भारतवासियों में देशभक्ति की भावना लुप्त हो गयी है। राष्ट्रीयता के स्थान पर स्वहित की भावना हावी हो गयी है, जिसके कारण देश पतन के कगार पर खडा है। शुक्ल जी का ऐसा मानना है कि बचपन में ही अगर बच्चों में देशभक्ति या राष्ट्रीयता की भावना निर्माण की जाय तो आगे चलकर यह भावना प्रबल बन जाएगी। उन्हें आवश्यकता है शिक्षा और ज्ञान देने की। तब इन बच्चों को देशभक्ति, राष्ट्रीयता, देशप्रेम का महत्व समझ में आ जाएगा। वे एक स्थान पर लिखते हैं-

'बचपन से ही दीजिए, देशभक्ति का ज्ञान।
देशभक्त बच्चे अगर, होगा देश महान॥'[2]

बच्चे अनुकरण प्रिय होते हैं। वे हमेशा अपने से बड़ों का अनुकरण करते हैं और उनके जैसा व्यवहार करने लगते हैं। उनका आचरण भी बड़ों के जैसा हो जाता है। यदि बच्चों के माता-पिता या समाज के लोगों में देशप्रेम की भावना होगी तभी बच्चों में भी वह अनायास आ जाऐगी। लेकिन जब इसका अभाव होता है, देशप्रेम से अधिक ये लोग स्वहित और स्वार्थ को महत्व देने लगते हैं, तब उसका गलत प्रभाव बच्चों पर पड़ जाता है। वे भी उनके जैसा गलत व्यवहार करने लगते हैं। अतः सभी देशवासियों के मन में देशभक्ति की भावना होनी चाहिए।

'देशप्रेम की भावना का, जब होय अभाव।
बच्चों पर पड़ने लगें, सारे बुरे प्रभाव॥'[3]

पाश्चात्य संस्कृति से आज सभी लोग प्रभावित है। वर्तमान में अधिकतर लोग विदेशी रहन-सहन, खान-पान, सभ्यता का अनुकरण करते हैं। भारतीय संस्कृति को वे भूल से गऐ हैं। अपने देश का गुणगान करने के बजाय वे अमेरिका, रूस, चीन का गुणगान कर रहे हैं। वहाँ के लोगों की प्रशंसा करते हैं और अपने देशवासियों को पिछड़ा और

असभ्य मानते हैं। अतः आवश्यकता है उन देशों के समान हमारे देश का भी गुणगान करने की। अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम दिखाने की तभी हमारे मन में राष्ट्रीयता की भावना विकसित होगी और हमारा देश महान होगा-

'रूस, चीन सा यदि करें, भारत का गुणगान।
बच्चों का विश्वास यह, होगा देश महान॥'[4]

दुनिया का हर एक व्यक्ति अपने जीवन में किसी न किसी को अपना आदर्श मानता है। उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होता है। उस व्यक्ति का अनुकरण कर उसके जैसा बनने की कोशिश करता है। आज के इस कलयुग में आवश्यकता है कि इन बच्चों के सामने आदर्श चरित्र वाले व्यक्तियों के उदाहरण रखे जाने की, जिनसे प्रेरणा लेकर ये बच्चे भी अपने अंदर वैसे ही गुण विकसित कर सकें। भारत के इतिहास में ऐसे बहुत सारे व्यक्ति हुए हैं, जिनमें राष्ट्रिपता महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचंद्र बोस आदि का स्थान शीर्षस्थ है। इन व्यक्तियों में राष्ट्रप्रेम की भावना इतनी तीव्र थी कि उसके सामने वे अपने तन-मन का होश भी खो बैठते थे। वे देशप्रेम के दीवाने थे। राष्ट्रीयता की भावना उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। बच्चों के सामने अगर इनके चरित्र को रखा जाय तो बच्चों में भी राष्ट्रीयता की भावना या अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम निर्माण हो जाएगा। इन महान व्यक्तियों ने अपने देश के लिए क्या-क्या किया है, यह जानकर इन बच्चों में भी अपने राष्ट्र के प्रति कुछ करने की मंशा जाग उठेगी।

बच्चों के आदर्श हैं, बापू, नेहरू, बोस।
देशप्रेम सम्मुख जिन्हें, रहा न कुछ भी होश॥[5]

वर्तमान समय में लोगों के मन से राष्ट्रीयता की भावना कम होती-सी नजर आ रही है। इस राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने के बजाय मानव अपना समय अन्य बातों में बरबाद कर रहा है। आज चारों ओर धर्म को लेकर, जाँति-पाँति को लेकर झगड़े होते हुए हमें दिखाई दे रहे हैं। लोगों को ऐसे झगड़े करने में मजा आ रहा है, जिसके माध्यम से वे खुद को श्रेष्ठ साबित करने की कोशिश कर रहे हैं लेकिन इन सब बातों का प्रभाव बच्चों के मनःपटल पर हो रहा है। बच्चों का मन कोमल होता है। खेलते वक्त वे ये नहीं देखते कि वह उस धर्म का है या उस जाति का है। उनके लिए सभी समान होते हैं किंतु ऐसा ही झगड़ों का वातावरण हमेशा रहा तो बच्चों के मन में भी बचपन से ही एकता की भावना के स्थान पर भेदभाव की भावना निर्माण होगी जो उज्वल राष्ट्र के भविष्य के लिए हानिकारक साबित हो सकती है। परिणामवश उनके मन में राष्ट्रीयता की भावना पैदा नहीं हो सकती। विदेशों में चले जाने के पश्चात मनुष्य की पहचान नागरिकता से होती है। जाँच-पड़ताल करते वक्त न तो उसकी जाति के बारें में कोई अधिकारी जानना चाहता है और न ही उसके धर्म के बारें में उससे कोई पूछता है। वहाँ तो केवल आप किस देश के मूल निवासी हैं, इसके बारें में जाना जाता है। अतः हम किसी धर्म या जाति से संबंधित हैं, इस पर ध्यान देने के बजाय हम भारतवासी हैं, यह सोच अपनानी

चाहिए। ऐसी सोच से बच्चे भी प्रभावित हो जाएँगे और बड़े गर्व से कहेंगे-

'बच्चें कहते शान से, हिंदू मुस्लिम दोय।
जो भी भारत में रहे, भारतवासी होय॥'[6]

इन पंक्तियों के माध्यम से परशुराम शुक्ल जी यही सूचित करना चाहते हैं कि बच्चों में भेदभाव की भावना के स्थान पर राष्ट्रीयता की भावना का स्वर फूँक दिया जाए तो वे भी बड़े शान से कहेंगे कि वे न तो हिंदू हैं और न ही मुसलमान। वे भारत के निवासी हैं अर्थात् भारतवासी हैं। देश में रहनेवाले बच्चे चाहे वे हिंदू परिवार के हों या मुस्लिम परिवार के, भलिभाँति समझ सकते हैं कि वे पहले भारतवासी हैं।

बालकों के मन में राष्ट्रभक्ति या राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने के अनेकानेक कारणों में एक कारण है राष्ट्रभाषा। प्रत्येक देश की प्रतिष्ठा का प्रतीक उस राष्ट्र की राष्ट्रभाषा होती है। दुनिया के समस्त देशों की अपनी-अपनी राष्ट्रभाषा है। हर एक देश का नागरिक अपनी राष्ट्रभाषा के प्रति गर्व महसूस करता है। वो कहीं पर भी चले जाने के पश्चात अपनी राष्ट्रभाषा के कारण पहचाना जाता है। भारत विश्व का एकमात्र ऐसा अभागा देश है जिनकी कोई राष्ट्रभाषा नहीं है। वह आज भी अंग्रेजी का गुलाम है। आज भी हम अंग्रेजी की गुलामी से बाहर नहीं आए हैं। हमारे नेता लोग बाहर चले जाने के पश्चात अंग्रेजी में बात करना गर्व की बात समझते हैं। इस स्थिति से आज के बच्चे आहत हैं। वे बहुत दुःखी हैं और दृढता पूर्वक ऐसा कहते हैं कि जो लोग इस स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं, वे शर्म से डूब मरें। राष्ट्रभाषा के बिना हमें बोलना आते हुए भी हम गूँगे हो गए हैं।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि डॉ. परशुराम शुक्ल जी ने 'बाल सतसई' में अपने दोहों के माध्यम से बच्चों के मन में राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रीयता की भावना निर्माण करने का सफल प्रयास किया है। वे ऐसा सोचते हैं कि बच्चों के मन में बचपन से ही राष्ट्रीयता के स्वर झंकृत कर दे तो भारत देश का भविष्य अवश्य उज्वल होगा।

संदर्भ :

1. शुक्ल परशुराम- तिरंगा (बापू) जनवाणी प्रकाशन, प्रा. लि. दिल्ली, सं.2009, पृ.37
2. शुक्ल परशुराम- बाल सतसई, 'बच्चे और राष्ट्र', नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.2013, पृ. 89
3. वहीं- पृ. 90
4. वहीं- पृ. 90
5. वहीं- पृ. 89
6. वहीं- पृ. 90

सद्गुरु गाडगे महाराज कॉलेज, कराड

21 वीं सदी के हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय भावना

प्रा. कोळी सोमनाथ तातोबा

मनुष्य जीवन में मनोरंजन के विभिन्न साधन मौजूद हैं, जिनमें दूरदर्शन, आकाशवाणी, टेपरेकॉर्डर, रेडिओ प्रमुख हैं। इन सभी साधनों के अतिरिक्त सिनेमा दृक-श्रव्य माध्यम का सशक्त साधन है। सिनेमा साहित्य की तरह लोगों का मनोरंजन करने के साथ-साथ कई संदेश देने का काम भी करता है। वर्तमान समय के सिनेमाओं के विषयों में भी बदलाव आ गया है। इनमें-वर्तमान राजनीति, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार, बदलते सामाजिक मूल्य, नैतिक मूल्यों में गिरावट और राष्ट्रीयता का बोलबाला आदि विषयों को आधार बनाकर सिनेमा का निर्माण होता रहा है। आज भी राष्ट्रीयता वाली फिल्मों का निर्माण बड़ी मात्रा में हो रहा है। राष्ट्रीयता सभी लोगों की भावनाओं से जुड़ा विषय है। इस बात को ध्यान में रखकर सिनेमा का निर्माण किया जा रहा है।

भारतीय सिनेमा का श्रीगणेश दादासाहेब फालके ने किया था। पहला सिनेमा 3 मई, 1913 को प्रदर्शित 'राजा हरिश्चंद्र को माना जाता है। यह सिनेमा पर्दे पर मौन रूप में प्रदर्शित किया गया था। उसके बाद वर्ष 1931 में 'आलमआरा' सिनेमा को आवाज के साथ प्रदर्शित किया गया। इस सिनेमा का निर्माण आर्देशीर ईरानी ने किया था। इसके बाद सिनेमा जगत में बहुत बडी क्रांति हो गयी।

शुरू के समय के सिनेमा में स्वतंत्रता-पूर्व भारत के दर्शन होते हैं, जिसमें पौराणिक, ऐतिहासिक विषयों को आधार बनाकर सिनेमा का निर्माण होता था। जैसे- दलितोद्धार, वेश्या जीवन, सतीप्रथा, शिक्षा व्यवस्था, देशभक्ति जैसे विषयों को आधार बनाकर सिनेमाओं का निर्माण किया है। इस संदर्भ में बाबू गुलाबराय कहते हैं, 'साधारणतया राष्ट्रीयता एक उच्च भाव है, जो राष्ट्र की रक्षा और उन्नति के लिए आवश्यक है। राष्ट्रीय भावना उत्तरोत्तर बढ़ाई जा सकती है, और इसे बढ़ाने की आवश्यकता भी है।'[1] स्पष्ट है कि हर व्यक्ति के लिए राष्ट्रीयता सर्वोपरि है।

हिंदी सिनेमा का विकास सही अर्थों में 1950 के बाद हुआ है। इस समय के सिनेमा में आदर्श मूल्यों के साथ समानता, नैतिकता, प्रेम, भाईचारा, सहजीवन, जातिवाद, गरीबी और विषमता को केंद्र में रखकर सिनेमाओं का निर्माण किया गया। इसके द्वारा लोगों को वास्तविकता से अवगत कराया गया। मनोहर श्याम जोशी सिनेमा के संदर्भ में कहते हैं, 'जहाँ रंगमंच के मुकाबले फिल्म में ये तमाम सुविधाएँ थीं, वहीं शुरू में उतनी ही बड़ी एक असुविधा भी थी कि चित्र के साथ ध्वनि अंकित नहीं की जा सकती थी। गोया सिनेमा गूंगा था। इस असुविधा ने एक नई भाषा को जन्म दिया जिसमें तस्वीरें खुद ही बोलती थीं।'[2] स्पष्ट है, समय के साथ-साथ सिनेमा विकसित होता गया।

वर्ष 1980 के बाद वास्तविकता को आधार बनाकर फिल्मों का निर्माण होता गया। इस संदर्भ में प्रा.शकुंतला वाघ कहती हैं, '1980 के दशक में यथार्थवादी कथानकों पर

फिल्में बनीं। इस काल में देह प्रदर्शन और भड़कीले कथानक पर फिल्में बनती रहीं। 1990 से वर्तमान काल तक फिमों का एक नया दौर शुरू हुआ। हिंदी फिल्मों में सेक्स और मारधाड़ की प्रधानता दिखाई देती है।'[3] स्पष्ट है आज के सिनेमाओं में यह बातें सच्चाई के साथ दीख रही हैं।

भारत देश में सिनेमा के शौकीन लोग ज्यादा हैं। इसी कारण अलग-अलग राज्यों की सिनेमा इंडस्ट्री लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने वाले सिनेमा का निर्माण करने में लगी हुई है। इस संदर्भ में यह कथन महत्त्वपूर्ण है, '21वीं सदी में भारतीय सिनेमा, संयुक्त राज्य अमेरिका का सिनेमा हॉलीवुड तथा चीनी फिल्म उद्योग के साथ एक वैश्विक उद्योग बन गया। 2013 में भारत वार्षिक फिल्म निर्माण में पहले स्थान था।'[4] स्पष्ट है भारत में सभी राज्यों में सिनेमा का निर्माण होता गया है।

'लगान' सिनेमा 'मदर इंडिया' और 'सलाम बॉम्बे' के बाद बॉलीवुड का ऑस्कर के लिए नॉमिनेट किया गया सिनेमा था। इस सिनेमा में अँग्रेजों द्वारा भारतीय लोगों पर किए गए अत्याचार को दिखाया गया है। 'मंगल पांडेय : द राइजिंग' सिनेमा में मंगल पांडेय द्वारा अँग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की बात उठायी गयी है। अंत में मंगल पांडेय को फाँसी की सजा दे दी गई थी। 'लक्ष्य' सिनेमा द्वारा वर्ष 1999 के कारगिल युद्ध को दर्शाया गया है। यह सिनेमा पंजाबी वीरों की कहानी है, जिसमें वीरता और साहस को दर्शाया गया है। 'स्वदेस' सिनेमा अनिवासी भारतीय लोगों की देशभक्ति का चित्रण करती है। 'रंग दे बसंती' में पाँच युवाओं द्वारा भ्रष्टाचारी रक्षा मंत्री की हत्या की जाती है। 'उरी' : द सर्जिकल स्ट्राईक' सिनेमा में सीमा पार पाकिस्तान में जाकर आतंकवादियों को मारने की घटना है। 'रानी मणिकर्णिका : झाँसी की रानी' सिनेमा में भारतीय वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ किए गए युद्ध को दर्शाया है। 'राग देश' सिनेमा में आजाद हिंद फौज के अधिकारियों द्वारा लाल किले पर चल रहे मुकादमे पर आधारित है। 'केसरी' सिनेमा में हवालदार केसरी अपने 21 साथियों के साथ सारागढ़ी की लड़ाई 10,000 अफगानों के विरुद्ध करता है। 'चक दे इंडिया' सिनेमा में भारत के अलग होने के बाद नस्लीय और धार्मिकता को व्यक्त किया है। '1971' सिनेमा में भारत-पाक युद्ध के समय छह सैनिकों द्वारा पाकिस्तानी जेल से भागने की घटना है। 'द गाजी अटैक' सिनेमा में भारत और पाकिस्तान के बीच समुद्र में 18 दिनों तक खेले गए युद्ध का चित्रण है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से पता चलता है कि 21वीं सदी में राष्ट्रीयता को लेकर अनेक सिनेमाओं का निर्माण किया गया है। राष्ट्रीयता वाले सिनेमा दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करने में कामयाब हुए हैं। समाज के सभी लोग ऐसा सिनेमा देखने को प्राथमिकता देते हैं। इससे लोगों के मन में राष्ट्रीयता जगाने में सिनेमा का योगदान सराहनीय है।

संदर्भ :
1. बाबू गुलाबराय, राष्ट्रीयता, किताबघर प्रकाशन, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1996, पृ. सं. 12
2. मनोहर श्याम जोशी, पटकथा लेखनः एक परिचय, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, आवृत्ति 2014, पृ. सं. 11
3. संपा. डॉ.सुनील बापू बनसोडे, साहित्य, समाज और हिंदी सिनेमा, (आलेख- प्रा. शकुंतला वाघ - भारतीय सिनेमा की दिशा और दशा, शुभम पब्लिकेशन, कानपुर, प्रथम संस्करण -2015, पृ. सं. 17
4. hi.m.wikipedia.org

सहा. प्राध्यापक, हिंदी विभाग
छत्रपति शिवाजी कॉलेज, सातारा

21 वीं सदीः किन्नर समुदाय के सिनेमा में राष्ट्रीय भावना

डॉ. महिपती जगन्नाथ शिवदास

दर्शकों के मन को प्रभावित करने वाली फिल्में उन्हें अधिकतर भाती हैं। संभवतः मारपीट, दंगा, हिंसक प्रवृत्तियाँ, खून, अत्याचार, अन्याय जैसी बातें सामान्य दर्शकों को पसंद नहीं होतीं। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में सिनेमा और धारावाहिकों के बारे में विचार किया तो पता चलता है कि पौराणिक धारावाहिक हर इतवार के दिन सुबह 9 से 10 बजे तक प्रसारित होते। तब सड़कें सुनसान रहतीं, पूरा कारोबार न के बराबर रहता। जब हम 21 वीं शती के फिल्मों में राष्ट्रीय भावना के बारे में विचार करते हैं तो हमारे सामने कई फिल्में आती हैं। देश में बनने वाली फिल्मों में विविध प्रांतों के रीति-रिवाज दिखाई देते हैं। सामाजिक समरसता और समता का विकास करने में सिनेमा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साहित्य और सिनेमा समाज के हर एक वर्ग को प्रतिष्ठावान बनाने में सबसे आगे रहा है। समाज और राष्ट्र की गरिमा अधिकतर सिनेमा से ही स्पष्ट होती है।

सिनेमा क्षेत्र के भीष्माचार्य दादासाहब फालके के जमाने में सिनेमा की निर्मिति में बहुत सी कठिनाइयाँ आती रहीं। समाज सुधार का एक जीता-जागता माध्यम अगर हम सिनेमा को कहते हैं तो गलत नहीं होगा। यहाँ सिनेमा और किन्नर के बारें में विचार किया गया है। 'किन्नर' शब्द के बारे में वेद, पुराण, महाभारत, रामायण, मध्यकाल और आधुनिक काल में संदर्भ मिलते हैं। इन्हें 'हिजड़ा', मौसी, पवैया जोगता, जोगता, उभयलिंगी, तृतीयपंथी, युनक, मौगा, खोजक खुसरा, जनखा, अनरावनी, बृहन्नला, छक्का, मेहला, नपुंसकलिंग, थर्ड जेंडर जैसे नामों से जाना जाता है। हिंदी साहित्य में किन्नर जीवन इस शोधालेख में डॉ. कल्पना गवली लिखती हैं कि, 'हिजड़ा उर्दू भाषा का शब्द है, जो अरबी के 'हिज्र' शब्द से लिया गया है। इसका अर्थ अपने कुनबे को छोड़ना है। यानी घर-परिवार, समाज से अलग होना, अलग रहना है।'[1] 'हिजड़ा' शब्द को हिजिरा, हिजदा, हिजादा, हिजारा और हिजराह शब्द के रूप में माना जाता है। उर्दू में 'ख्वाजासरा' शब्द हिजड़ा का समानार्थी है। दूसरे अन्य शब्द 'खसुआ' और 'खुसरा' है। अंग्रेजी भाषा में हर्मा फ्रोटाईट से जोड दिया जाता है। बंगाली भाषा में हिजड़ा, हिजफा हिजरी से संबोधित किया जाता है। तेलगु में नपुंसुकडू, खोजा अथवा मादा इस अर्थ से जाना जाता है। तमिलनाडु में अली, अरावनी जैसे शब्दों से जाना जाता। पंजाबी में खुसरा और जंखा तो सिंधी भाषा में 'खदरा' कहा जाता है। गुजराती भाषा में 'पवैया' तो मराठी भाषा में 'हिजड़ा' नामों से जाना जाता है। हिजड़ों के बारे में स्पष्ट रूप से कहा जाता है कि जिनके जननांग न तो स्पष्ट रूप से स्त्री के होते हैं न पुरुष के। किन्नर चित्रण के बारें में महेंद्र भीष्म, नीरजा माधव, अनुसूया त्यागी, प्रदीप सौरभ, निर्मला भुराडिया,

चित्रा मुदगल, लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, भगवंत अनमोल, सुभाष अखिल इत्यादि लेखकों ने अपनी लेखनी के द्वारा इस समुदाय को न्याय देने का प्रशंसनीय कार्य किया है।

पौराणिक धर्म ग्रंथों का अध्ययन करने के बाद उनमें ऐसे कई विषय मिलते हैं। उन्हीं विषयों में से एक है- उत्तर भारत में अर्धनारी की संकल्पना। यह संकल्पना हिजड़ों से अलग नहीं है। अर्धनारी स्वरूप भगवान शिव का रूप माता पार्वती में विलोपित होने के बाद सामने आया है। पुराणकाल या रामायण काल में जो समर्पण और त्याग इन्होंने राम के प्रति दिखाया, उसी का प्रतिफल है कि आज भी वे कुछ धार्मिक स्थलों में दिखाई देते हैं। वनवास जाते समय उन्हें विदा करने के लिए अयोध्यावासी उनके पीछे-पीछे आए थे। राम ने स्त्रियों और पुरुषों को वापस अयोध्या जाने का आदेश दिया था। उस समय तृतीयपंथी लोग भी थे जिन्हें राम ने कोई आदेश नहीं दिया अतः वे चित्रकूट पर्वत पर ही चौदह साल तक रहे। जब राम वापस आए तो पता चला कि उन्हें वापस जाने का आदेश न होने पर वे वहीं रुके रहे। यह उनकी राम के प्रति निष्ठा थी। राम उन्हें आशीष देते हैं कि आपको पवित्र कार्य पर याद किया जायेगा।

जहाँ तक फिल्मों का सवाल है तो बांग्लादेश में सन् 2012 में बनी फिल्म 'कामन जेण्डर' में हिजड़ों के जीवन संघर्षों को दर्शाया गया। भारतीय सिनेमा में हिजड़ों की दशा और उनके भयानक संघर्ष को सर्वप्रथम प्रयुक्त किया गया बीसवीं सदी में बनी फिल्म 'कुँवार बाप' में। इसमें एक गीत और नृत्य में हिजड़े के पात्र को शामिल किया गया। अमर अकबर एन्थेनी में भी हिजड़े को 'तैयब अली प्यार का दुश्मन' गीत में दिखाया गया है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में मणिरत्नम दिग्दर्शित एक भावुक हिजडे को दिखाया गया है। 'सिनेमा और साहित्य में हिजडेः एक समीक्षा' इस आलेख में डॉ. चन्देश्वर यादव लिखते हैं कि, 'बाम्बे यह वही फिल्म है, जिसका कुछ विशेष धर्मावलम्बियों ने प्रदर्शित होने पर विरोध जताया था। सन् 1997 में प्रदर्शित हुई फिल्म 'तमन्ना' में अभिनेता परेश रावल ने 'टिक्कू' नामक पात्र को निभाया जो कि एक युवा अनाथ हिजड़े पर केंद्रित है।'[2] दीपा मेहता द्वारा बनायी गयी फिल्म 'जल' जो अधिक विवादित रही, इसमें रघुवीर यादव ने 'गुलाबी' नामक किरदार निभाया। सन् 2004 में गुरिंदर चड्ढा निर्मित 'ब्राइड एण्ड प्रीजयूडिश' फिल्म में हिजड़ों की दासता को चित्रित किया गया है। सन् 2000 में बनी 'अप्पू' फिल्म निर्माण की गई जिसका निर्देशन वसंत ने किया। इसमें हिजड़ों को दिखाया गया है। यह फिल्म बॉलीवुड की फिल्म 'सड़क' का रीमेक है। सन् 2005 में चर्चित फिल्म 'शबनम मौसी' जो राजनीति में बाधित शबनम मौसी पर केंद्रित है, इसमें आशुतोष राणा ने अपने उत्कृष्ट अभिनय से चरित्र को जीवंत कर दिया है। इसका निर्देशन योगेश भारद्वाज द्वारा किया गया है। सन् 2009 में बनी मराठी फिल्म 'जोगवा' जो हिजड़ों पर आधारित है। हिजड़ा शब्द पुकारना यह गालियों के समान माना जाता है। अनिल कपूर की एक दिन के सी.एम. किरदार वाली 'नायक' फिल्म में अभिनेता के सहायक भूमिका कैमरामन में नजर आएँ जॉनी लीवर 'हिजड़े'

शब्द का प्रयोग करते हैं। इस शब्द को निरंतर पुकारने पर इन्हें पीटा जाता है। तमिल भाषा में निर्मित 'इप्पाडिक्कू रोज' यह किन्नरों की पीड़ाओं को स्पष्ट करने वाला चर्चित शो है। यह विजया टी.वी. पर प्रदर्शित किया जाता है। श्याम बेनेगल निर्मित सन् 2008 में बनी फिल्म 'वेलकम टू सज्जनपुर' भी किन्नरों के जनजीवन से संबंधित है। सन् 2020 में अक्षयकुमार अभिनीत 'लक्ष्मी' फिल्म का निर्माण किया गया। इस प्रकार विविध तृतीय लिंगी फिल्मों के द्वारा किन्नरों का रहना, खाना, गुरू, धार्मिक तीज-त्यौहार, आर्थिक पीड़ा, सामाजिक दशा स्पष्ट होती है।

सन् 2012 में प्रदर्शित संतोष स्वपर्णिका निर्देशित मलयालम भाषा की फिल्म 'अर्धनारी' में किन्नरों की पीड़ा और दशा को दिखाया गया है। डॉ. चन्देश्वर यादव ने लिखा है 'सन् 2003 में इन्डस टी.वी. द्वारा बनायी गयी 'मुसद' जो अंग्रेजी में 'युनेकस मदर' नामक शीर्षक से प्रसारित हुई, इसमें देश के ख्यातकीर्त अभिनेताओं ने हिजड़ों की भूमिका की है। कामरान कुरेशी द्वारा निर्देशित साइमा नामक हिजड़े के आस-पास की कथा केंद्रित है।'[3] महाराष्ट्र राज्य की सांस्कृतिक विरासत तमाशा है। इस तमाशा को अधिक बलवान बनाने का काम पठ्ठे बापूराव नामक शाहीर ने किया है जो अभिजात वर्ग के व्यक्ति थे। 'तमाशा' इस रंगमंचीय प्रयोग को अधिक सम्मान पठ्ठे बापूराव जी के कारण प्राप्त हुआ है। इसमें काम करने वाले कलाकार स्थानीय होते हैं। सन् 2012 में नटरंग नामक मराठी फिल्म निर्मित हुई। झी टॉकिज निर्मित 'नटरंग' फिल्म मराठी रचनाकार आनंद यादव के उपन्यास पर आधारित है। इसमें अतुल कुलकर्णी ने मुख्य भूमिका निभाई है। इस चरित्र के द्वारा तृतीय पंथियों को न्याय देने का काम किया गया है। अतुल कुलकर्णी का चरित्र मध्यान्ह तक एक पहलवान का है और मध्यान्ह के बाद तमाशा में नृत्य करने वाले एक हिजडेनुमा स्त्री पात्र का है। तमाशा में मुख्य स्त्री पात्र का सहायक जिसे 'नाच्या' कहा जाता है।

ट्रांसजेंडर पर बनी हुई फिल्म 'शबनम मौसी' का निर्माण सन् 2005 में हुआ। इस फिल्म में थर्ड जेंडर को मतदान करने का अधिकार प्राप्त होता है। और कुछेक साल में तृतीय पंथी को एम.एल.ए. के लिए चुना जाता है। यह बहुत बडी उपलब्धि है। तृतीय पंथी से एम.एल.ए. बनने तक का प्रसंग कथानक में चित्रित है। फिल्म के कथानक किरदार को आशुतोष राणा ने जीवंत कर दिखाया है। इस बदलाव से समाज में एक नई आशा की किरण दिखाई देती है। हिजडों के लिए कई मार्ग खोल दिए गए हैं। सिनेमा के द्वारा हिजडों की परेशानी, हीनता भले ही देर से लोगों के समाने आई लेकिन यह बात प्रशंसनीय है। कोई न कोई तो थर्ड जेंडर की व्यथा वेदना के पीछे सोच रहा है। किन्नर विमर्श कल आज और कल में आकृति आखिल अपने आलेख में लिखती हैं, 'सन् 2011 में आयी फिल्म 'क्वीन्स डेस्टिनी ऑफ डांस' इस बात का प्रमाण है कि केवल इस वर्ग की समस्याओं को ही केंद्र में नहीं रखा जा रहा। बल्कि उनके जीवन जीने के ढंग, उनकी इच्छाओं, उनके सपने को भी फिल्म में चित्रित किया जा रहा है।'[3] निश्चित

ही तृतीय पंथियों की पीड़ाओं को परिवर्तित किये जाने के लिए समय जरूर लगेगा। इस समुदाय को देश की मुख्यधारा में लाने के लिए सिनेमा के साथ-साथ समाज के बुद्धिजीवी सुधारकों को भी समय-समय पर तृतीयपंथियों से संबंधित मुद्दों को उठाने का काम करना चाहिए, तब परिवर्तन अवश्य होगा इसमें संदेह नहीं।

संक्षेप में सिनेमा जैसे समाज-माध्यम द्वारा तृतीयपंथियों का जीवन, आर्थिक स्थिति, गुरु के बारें में महत्व, धार्मिक मान्यता, खान-पान आदि बातें स्पष्ट होती हैं। आज उनके लिए कुछ सुविधाएँ मुहैया कराई जा रही हैं किंतु वह पर्याप्त नहीं है। इस समुदाय के लोगों को सार्वजनिक रूप से स्वतंत्र स्वच्छतागृह, आरोग्यसेवा, नौकरी में संधियाँ मिलने पर ही ये समाज की मुख्य धारा में आ सकते हैं। उनके प्रति समाज का देखने का दृष्टिकोण सामाजिक समरसता भरा रहने पर यह समुदाय स्वाभिमान के साथ रह सकता है।

संदर्भ :

1. डॉ. कल्पना गवली- किन्नर होने का एहसास और परिवार से विस्थापन की गाथाः मैं पायल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.143
2. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, रवि कुमार गौड- भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीय लिंगी विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 2016, पृ.128
3. वहीं पृ. 128

सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग
सद्गुरू गाडगे महाराज कॉलेज, कराड

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श एवं विस्थापन

ममता शत्रुघ्न माली - शोधार्थी

आदिवासी समुदाय का अर्थ है, वह समाज जो आदिमयुग से अपने मूल प्रदेश अथवा क्षेत्र में वहाँ की मौलिक स्थिति एवं परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित कर निवास करने वाले लोग जिन्हें मूलवासी, वनवासी, आदिमजन, जंगल-पहाड़ में रहने वाला आदि नामों से संबोधित किया जाता है।'[1] वर्तमान संदर्भ में 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में निवास करने वाले, विशिष्ट भाषा बोलनेवाले, विशिष्ट जीवन पद्धति से जीवनयापन करनेवाले, धार्मिक परपराओं को मानने और उन पर प्रगाढ़ आस्था रखने वाले, सदियों से जंगलों, कन्दराओं और पहाड़ों में जीवनयापन करने वाले, सांस्कृतिक मूल्यों को सँजोकर रखने वाले मानव-समूह के रूप में परिलक्षित किया जाता है।[2] डॉ. विवेकी राय के अनुसार - 'पिछड़े, अंचलों, पहाड़ों, वनों के निवासियों को आदिम - आदिवासी माना जाता है।'[3]

समकालीन हिन्दी साहित्य में आदिवासियों के संबंध में लिखे गए उपन्यासों की एक लंबी परंपरा है जिनमें आदिवासी जनजीवन के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक संदर्भों के साथ ही उनके जीवन की सबसे बड़ी समस्या व चुनौती - विस्थापन की त्रासदी को उजागर करने का प्रयास किया गया है। आज भी आदिवासियों के जीवन में बहुत अधिक सुधार व विकास परिलक्षित नहीं होता है। आज भी आदिवासियों का दोहन सामाजिक, आर्थिक, मानसिक व शारीरिक स्तर पर किया जा रहा है। प्रश्न यह उठता है कि, क्या आदिवासी समाज विकास नहीं चाहता है? क्या आदिवासी समाज शिक्षा की दरकार नहीं रखता है? क्या आदिवासी समाज को भी सुसंपन्न जीवन जीने का अधिकार नहीं है? उपर्युक्त सभी प्रश्नों का संक्षिप्त रूप में उत्तर 'हाँ' ही है और हो सकता है। आदिवासी समाज भी विकास, शिक्षा, सुसंपन्न और मूलभूत आवश्यकताओं से परिपूर्ण जीवन जीने की उत्कट अभिलाषा रखता है किन्तु अपनी जड़, जमीन और जंगल से विलग होकर नहीं। विडम्बना यह है कि इन्हीं तीनों से उसका जीवन आक्रांत बना हुआ है। अभी भी हमारे शासनतंत्र, व्यापारियों, पूँजीपतियों, साहुकारों, महाजनों, जमींदारों द्वारा आदिवासी समुदाय के भोलेपन का लाभ उठाकर उनका शोषण किया जा रहा है। उनकी जमीन हड़पकर उन्हें विस्थापित किया जा रहा है। हिन्दी कथा साहित्य में 'आदिवासी विमर्श' पर गौर करें तो आदिवासी जीवन की शुरुवात शोषण और शोषण के विभिन्न भयावह रूपों से प्रारम्भ होकर आदिवासियों के विस्थापन पर आकर दम तोड़ती प्रतीत होती है, जहाँ एक तरह से आदिवासी का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। यह शोषण आदिवासियों के जीवन में कई रूपों में उजागर होता है और साहित्य में विमर्श का रूप अख़्तियार करता है।

आदिवासी शोषण की अंतहीन पीड़ा :

विकसित महासत्ता बनाने की आकांक्षा रखने वाले इस देश में अभिशप्त जीवन जीने वाले आदिवासी के विडंबनापूर्ण जीवन का विमर्श हिन्दी कथाकारों ने बड़ी उत्कटता से यथार्थ के धरातल पर उकेरा है। इसी क्रम में संजीव के कथा साहित्य पर गौर करें तो पाते हैं कि उनका रचना संसार विस्तृत होने के साथ ही संवेदनशील, सत्य घटनाओं पर आधारित व समाज के उच्च वर्ग की व्यवहार नीतियों पर कुठाराघात करता प्रतीत होता है। संजीव के उपन्यास 'सावधान ! नीचे आग है' - में चंदनपुर गाँव के कोयला खदान में काम करने वाले मजदूरों की समस्याओं, शोषण और अत्याचार का चित्रण किया गया है। 'धार' उपन्यास में संथाल आदिवासी जनजाति का चित्रण किया गया है। 'पाँव तले की दूब' में निम्न जाति के लोगों पर होने वाले अन्याय, अत्याचार तथा उनके शोषण का यथार्थ चित्रण किया गया है।

पूँजीपतियों द्वारा अत्याचार व शोषण :

संजीव के उपन्यास 'सावधान! नीचे आग है' - में वर्णित चंदनपुर के कोयला खदानों में काम करने वाले मजदूरों के प्रति खदान मालिक की असंवेदनशीलता तब उजागर होती है जब कोयला खदानों से कोयला निकालते समय होने वाली संभावित दुर्घटना के बारे में खदान मालिक को पूर्व सूचना देने के बावजूद खदान मालिक उसे नजरअंदाज कर मजदूरों को काम करने की ताकीद करता है लेकिन कोयला खदान में काम करते समय बोअर होल से पानी निकल जाता है और मजदूर अपनी जान बचाकर भागने लगते हैं। खदान में बढ़ते पानी का जोर और अपने सामने आ रही मौत को देखकर आदिवासी मजदूर सोमारू कहता है- 'स्सालों, हम बोलते रह गए कि काम नहीं करेंगे इत्ता पानी निकल रहा है, मगर साले ने गुल्ली की ठँसनी दिलवा ही दी और चमचे पाठक राम? क्या मिला तुमको चमचागीरी करके.....?'[4] इस घटना में आदिवासी मजदूरों की जीवनलीला समाप्त हो गई और रह गई खदान मालिकों की अमानवीयता।

संजीव के अन्य उपन्यास 'धार' में भी पूँजीपतियों की अमानवीयता का एक ऐसा ही घिनौना रूप उभरकर आता है जब पूँजीपति महेंद्रबाबू आदिवासियों की जमीन पर तेजाब का कारखाना शुरू करवाते हैं। यह तेजाब आदिवासियों की जिंदगी और उनकी आजीविका याने खेती पर किस तरह से बरपा करता है, यह तथ्य उपन्यास की नायिका मैना के माध्यम से उजागर होता है - 'खेत-खतार, पेड़, रुख, कुआँ, तालाब, हम और हमारा बाल बच्चा तक आज तेजाब में गल रहा है, भूख में जल रहा है।'[5] तेजाब से जमीन और खेती नष्ट कर दी गई और शुरू हुआ आदिवासियों के शोषण का सिलसिला। आजीविका और भरण-पोषण का जरिया खेती नष्ट होने से आदिवासी अपनी ही जमीन से विस्थापित हो कारखानों में काम करने की मजबूरी में मजदूर बन गया और इस तरह से उसका शारीरिक शोषण शुरू हो गया। तेजाब के कारखाने में काम करने वाला मजदूर

अपना दर्द बयां कर कहता है - 'चार चार महीना तक तनखाह रोक के रखा, पूरा बाँसगड़ा में जहर घोल दिया, सबको लंगड़ा लूला, अपाहिज और रोगी बना दिया।'[6]

वीरेंद्र जैन के उपन्यास 'पार' में बुंदेलखंड अंचल के आदिवासी समाज का चित्रण एवं उनके जीवन की व्यथा कथा का संसार चित्रित हुआ है। 'पार' उपन्यास में पूँजीपतियों, साहूकारों, महाजनों द्वारा आदिवासी समाज पर अन्याय और अत्याचार द्वारा उनका शोषण किया जाता है इस तथ्य का उदघाटन उपन्यास में आए इस वाक्य से होता है - 'हीरा साव कभी कोई चीज नहीं खरीदते। उनकी बाखर के आगे राउतनों को ठहरने की मनाही है। वे जमीनें खरीदते-बेचते हैं बस्स।'[7] उपन्यास का पात्र हीरा साव आदिवासियों की जमीन खरीदने और बेचने का व्यापार करता है। इतना ही नहीं उनकी जमीन खरीद उन्हें उससे बेघर और खदेड़कर आदिवासियों को फंसाकर उनका लैंगिक अत्याचार कर शोषण भी किया जाता है- 'वहाँ सरकारी कागज में तुम्हारा नाम-धाम दर्ज होगा। सरकार के आदमी तुमरे लिंग की, पेशाब की जांच-पड़ताल करके तुमरी मर्दानगी नापेंगे। उसी के मुताबिक तुमरे लिए काम तजबीजेंगे।'[8] मर्दानगी जताने के नाम पर आदिवासियों को किस तरह ठगा गया यह भी उपन्यास में स्पष्ट हुआ है - 'शहर से लौटे पीछे एक भी जन वह न रहा जो खेरे से गया था। मर्दानगी जताने गया था कि मर्दानगी गँवाने, कूत नहीं पड़ता।'[9]

आर्थिक शोषण और जीविकोपार्जन के लिए संघर्ष :

आदिवासी समाज की विभिन्न जातियाँ प्राचीन समय से ही जंगलों और पहाड़ों के बीच अपना जीवनयापन करने के साथ ही जंगलों पर ही अपनी आजीविका के लिए भी पूर्णतया निर्भर रहती आई हैं। परिणामस्वरूप बहुत अधिक हुनरमंद और निश्चित कामकाज के अनुभव के अभाव में बहुतया आर्थिक दृष्टि से दयनीय और जीविकोपार्जन के लिए संघर्षरत नजर आते हैं। अपने पेट की आग बुझाने के एवज में दूसरों के शिकार का निवाला बन जाते हैं। 'धार' उपन्यास के संथाल आदिवासी भुखमरी में अपना जीवन व्यतीत करने हेतु मजबूर हो जाते हैं। इनके अभावग्रस्त जीवन को उपन्यास की नायिका मैना इस प्रकार से व्यक्त करती है - 'धन्न मनाऊँ रेल कम्पनी का कि बछड़ा बकरा कट जाता और हमको भोज खाने को मिल जाता। धन्न मनाऊँ रेलवई पुलिस का हमको सिलतोड़ी करता, हमरा बहिन बेटी माँ के साथ रंडीबाजी करता कि दू चार पैसा भेंटा जाता, धन्न मनाऊँ सरदार निहालसिंह का कि हमरा चोरी हजम करके टरक से रेलवई कारखाना का कूडा हियाँ फेंकता कि हम लोहा-पितल बीन-वान के उनको बेंच के पेट चलता।'[10]

संजीव के उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में थारू आदिवासी बिसराम की जीविकोपार्जन हेतु दुर्दशा इन पंक्तियों में परिलक्षित होती है - 'जंगलों में बेंत है। हाथ में हुनर है, झूंडी, खाँची तो बना ही सकता है वह लेकिन उसे लाने कौन देगा? बेंत का ठेकेदार एक जल्लाद.....कहाँ से ले आए घूस-पाती के लिए।'[11] किसी को उसकी

मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित कर किस तरह से शोषण किया जा सकता है उसका मार्मिक और ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत हुआ है।

आदिवासी स्त्री शोषण :

आदिवासी समाज के सभी तरह के शोषण से भी ऊपर यदि कोई शोषण है तो वह है आदिवासी महिलाओं, और लड़कियों का बाहरी व्यक्तियों द्वारा किया जाने वाला शारीरिक शोषण, जो अक्सर बलात्कार की शक्ल में होता है। आदिवासी साहित्य में स्त्री शोषण अपने यथार्थ रूप में प्रस्तुत हुआ है। राकेश वत्स द्वारा रचित उपन्यास 'जंगल के आस पास' आदिवासियो के जीवन पर केन्द्रित है। इस उपन्यास में सोन नदी के किनारे फैले जंगल और पहाड़ियों में बसे दमकड़ी अंचल के पिछड़े और शोषित आदिवासियों के अभिशप्त जीवन और नारी-शोषण को दशार्या गया है। पूँजीपति, ओझा, पुलिस और बाह्य शक्तियाँ मिलकर नारी के साथ अमानुष व्यवहार करती है। रायसाहब के बेटे के डर से बहू-बेटियाँ चैन से सोती नहीं। रायसाहब के गुंडे इन पर दिन-दहाड़े बलात्कार करते हैं। आदमखोर की समस्या को दूर करने के लिए सरकार द्वारा नियुक्त शिकारी रोबर्ट स्वयं आदमखोर जैसा व्यवहार करता है। शराब पीकर वह आधी रात को वितवा के घर का दरवाजा तोड़कर अंदर घुसकर उसकी मासूम बेटी गोमा पर बलात्कार करता है। आतंकित आदिवासी विरोध नहीं करते। इसीलिए किसना की बेटी संतो दिन दहाड़े उसका शिकार बनती है। रायसाहब के खेत और बगीचे में तो बंधक आदिवासी महिलाओं के साथ ऐसे अमानुष व्यवहार हमेशा किया जाता है।

'पार' उपन्यास में भी औरतों की खरीद-फरोख्त के खुलेआम कानूनी खेल को उजागर किया गया है। जमींदार, अफसर, बड़े कारोबारी औरतें खरीदते हैं और दलाल लोग इन औरतों को उठाकर, फुसलाकर शहर ले आते हैं और बेचने का व्यवसाय धड़ल्ले से करते हैं। इस प्रकार के व्यवसाय को किस तरह से कानूनी शह मिली है यह स्पष्ट किया गया है - 'औरत को कचहरी में किसी एक आदमी के साथ पेश किया जाता है उस औरत की ओर से कहलवाया जाता है कि वह इस आदमी के साथ अपना घर बसाना चाहती है। अपनी मर्जी से। किसी की जोर जबर्दस्ती से नहीं। औरत का प्रतिज्ञा पत्र तैयार होता है सरकारी कागज पर। तब वह औरत उस आदमी के साथ खुले आम रहने लगती है। कुछ समय बाद उसकी कीमत चुकाने वाला ग्राहक मिल जाता है, तब औरत को दो दलों के साथ पेश किया जाता है। औरत की ओर से कहलवाया जाता है कि अब मैं इसके नहीं, इसके साथ रहना चाहती हूँ। तब नया प्रतिज्ञा पत्र बनता है। खरीद-फरोख्त को कानूनी जामा पहनाने के लिए।'[12]

'कब तक पुकारूं', 'विकल्प', 'जंगल के फूल', 'अल्मा कबूतरी' आदि उपन्यासों में आदिवासी स्त्री जीवन का सच्चा और दयनीय चित्र प्रस्तुत हुआ है।

आदिवासी जीवन में शोषण और विस्थापन :

आदिवासियों का जीवन शोषण का पर्याय बनकर रह गया है। आदिवासियों का हर

स्तर पर शोषण किया जा रहा है। विकास के नाम पर उन्हें दिन में तारे दिखाकर उन्हें ही उनकी जमीन से बेघर कर विस्थापन के लिए मजबूर किया जा रहा है। कई बार आदिवासियों का विस्थापन जबरन किया जाता है तो कई बार उन्हें इतना मजबूर कर इतना अधिक शोषण किया जाता है कि अपनी और अपनों की जान बचाने के एवज में पूरा का पूरा समुदाय ही विस्थापन के मार्ग की ओर निकल पड़ता है। आज आदिवासियों के जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना और कठिनाई है 'विस्थापन'।

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में लेखक रणेन्द्र जी ने विस्थापन के अलग-अलग कारण स्पष्ट किए हैं- किसानों की जमीन हथियाना, खदान के दलालों द्वारा जमीन की खरीद-फरोख्त करना, खदान काम के चलते विस्थापन, स्कूल निर्माण के चलते असुर जनजाति का विस्थापन, अभयारण्य निर्माण के चलते विस्थापन। रणेन्द्र लिखते हैं - 'हमारे पूर्वजों ने जंगलों की रक्षा करने की ठानी तो उन्हें राक्षस कहा गया। खेती के फैलाव के लिए जंगलों के काटने-जलाने का विरोध किया तो दैत्य कहलाए। उन पर आक्रमण हुआ और लगातार खदेड़ा गया।.....लेकिन बीसवीं सदी की हार हमारी असुर जाति की अपने पूरे इतिहास में सबसे बड़ी हार थी। इस बार कथा कहानीवाले सिंगबोंगा ने नहीं, टाटा जैसी कंपनियों ने हमारा नाश किया। उनकी फैक्टरियों में बना लोहा, कुदाल, खुरपी, गैंता, खंती सुदूर हाटों तक पहुँच गए। हमारे गलाए लोहे के ओजारों की पूछ खत्म हो गई। लोहा गलाने का हजारों-हजार साल का हमारा हुनर धीरे-धीरे खत्म हो गया। राजधानी की झुग्गी झोपड़ियों में बिना चेहरेवाले इंसान होकर हम नहीं जीना चाहते।'[13]

'पाँव तले की दूब' उपन्यास में औद्योगिकीकरण के चलते आदिवासियों के विकास के नाम पर उन्हें छला जा रहा है, इससे आदिवासियों का विकास तो दूर उनका शोषण ही होता है - 'पर अन्याय देखो, आदिवासियों को जिनकी जमीन पर ये कारखाने लग रहे हैं, उन्हें टोटली डिप्राइव किया जा रहा है। इस संपत्ति में उनकी भागीदारी तो खत्म की ही जा रही है, उन्हें जमीन के पेट में...।'[14]

'पार' उपन्यास में बेतवा के विशाल बाँध परियोजना के विरोध में विस्थापितों की लड़ाई का स्वर प्रस्फुटित हुआ है - 'हमारा आग्रह है कि बाँध बनते ही आप अपने घरों से निकाल जाएँ। घरों से निकल जाना ही आपके लिए बेहतर होगा। नहीं तो हम पानी छोड़ देंगे और आपको डुबो देंगे।'[15] यही स्थिति प्रत्येक आदिवासी समुदाय की है।

अंततः यह कहना उचित होगा कि समकालीन आदिवासी हिन्दी उपन्यासों में आदिवासियों के जीवन संघर्ष और शोषण को प्रधानता मिली है। आदिवासियों की अपनी अलग पहचान है, अपना अस्तित्व है किन्तु आज यही अलग और अनोखी पहचान शोषण और विस्थापन के गर्त में समाकर अपना अस्तित्व खोती जा रहा है। आदिवासियों से यह प्रकृति है और प्रकृति से यह समस्त संसार का अस्तित्व है। इसीलिए आदिवासियों को बचाने से हम अपना अस्तित्व बचा सकेंगे।

संदर्भ :

1. डॉ. बन्ने पंडित, हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श, प्रथम संस्करण 2014, अमन प्रकाशन, कानपुर, आमुख से उद्धृत
2. वही, पृ. 13
3. वही, पृ. 13
4. संजीव, सावधान! नीचे आग है, 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 167
5. संजीव, धार, प्रथम संस्करण 1990, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 56
6. पूर्वोक्त, पृ. 60
7. जैन वीरेंद्र, पार, 1994, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 53
8. पूर्वोक्त, पृ. 69-70
9. पूर्वोक्त, पृ. 77
10. संजीव, धार, प्रथम संस्करण 1990, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 56
11. संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है, 2000, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 23
12. जैन वीरेंद्र, पार, 1994, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 64
13. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव के देवता, पृ. 83-84
14. संजीव, पाँव तले की दूब, 1995, प्रवीण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 17
15. डॉ. बन्ने पंडित, हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श, प्रथम संस्करण 2014, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 155

हिन्दी शोध केंद्र विद्याप्रसारक मण्डल द्वारा संचालित
जोशी - बेडेकर स्वायत्त महाविद्यालय, ठाणे - 400601

'इक्कीसवीं सदी के उपन्यास साहित्य में राष्ट्रीय भावना
('शहर में कर्फ्यू' और 'मुन्नी मोबाईल' उपन्यास के संदर्भ में)'

डॉ. गणेश दुंदा गभाले

इक्कीसवीं सदी के उपन्यास साहित्य में वर्तमानकालीन विभिन्न गतिविधियों तथा समस्याओं को दशार्ने का काम बडी प्रबलता से किया गया है। आज धार्मिकता एवं सांप्रदायिकता ने भयानक रूप ले लिया है। धर्म के ठेकेदार अपने धर्म को श्रेष्ठ और अन्य धर्मों को निम्न स्तर का समझने की भावना मनुष्य के मन में डाल रहे हैं, जिससे सांप्रदायिकता विकृत रूप धारण कर रही है। धर्मांध लोग, स्वार्थी नेता तथा समाज के कुछ विकृत लोग समाज में सांप्रदायिकता का बीज बोने का कार्य करते हैं। सत्ता के लालच में तथा सत्ता को हमेशा के लिए बरकरार रखने की ईर्ष्या में धर्म का सहारा लेने वाले स्वार्थी नेता जाने-अनजाने सांप्रदायिकता को फैलाते हैं, जिससे कई बार दंगे-फसाद होते हैं। इक्कीसवीं सदी के उपन्यास साहित्य में कई लेखकों ने सांप्रदायिकता के स्वार्थी रूप का चित्रण करते हुए समाज को देशभक्ति की प्रेरणा देने और उनमें राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने की कोशिश की है।

राष्ट्र एवं राष्ट्रीय महत्व के विषय सदैव ही साहित्य में स्थान पाते रहे हैं। उपन्यास हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक सशक्त और लोकप्रिय विधा है। इन उपन्यासों में विषय की विविधता है। राष्ट्रीय भावना को लेकर भी अनेक नये उपन्यास 21वीं सदी में लिखे गए हैं। इन उपन्यासों का मूल स्वर राष्ट्रभक्ति के साथ-साथ प्रगतिशील जन चेतना भी है। इसीलिए राष्ट्रीयता के अतिरिक्त अन्य सामाजिक समस्याएं एवं विभीषिकाएँ विभिन्न रूपों में इन उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई हैं। वर्तमान स्वार्थी एवं सांप्रदायिक राजनीति के गंदे परिवेश के कारण सांप्रदायिक दंगों ने दुबारा सोचने के लिए मजबूर किया है। सांप्रदायिकता भारत की आज प्रमुख समस्याओं में से एक है। सांप्रदायिक दंगों के कारण भारत में कई बार जान तथा संपत्ति की हानि हो चुकी है। धार्मिक तथा सामाजिक तनाव बढे हैं। स्वतंत्रता के पश्चात हुए दंगे और कश्मीरी पंडितों की हत्या, राम जन्मभूमि को लेकर विद्रोह, बाबरी मस्जिद पर हड़िमला एवं गोधरा हत्याकांड आदि इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। सांप्रदायिक दंगों की यही चिंता 'शहर में कर्फ़्यू' और 'मुन्नी मोबाइल' में साफ दिखाई देती है

विभूतिनारायण राय जी ने 'शहर में कर्फ्यू' में दंगों का यथार्थ बखूबी दशार्या है- 'कस लाला, दंगे में बहुत लोग मरे का....अरे चाची शहर में लहाश ही लहाश हैं। दुई टरक में लहाश जाते तो हम खुद देखा....पुलिस वाले जमुना में बहाने ले जा रहे थे, मुस्सलेमार छुरा-चाकू चमकाये घूम रहे हैं। हिंदुन बेचारों का तो कोई रखवाला नहीं हैं।'[1] दंगे हमेशा जन मानस को प्रताड़ित करते हैं। तत्कालीन स्थिति को देखकर साहित्यकार का मानना है कि भारतवर्ष में साम्प्रदायिक दंगों को लेकर दो मत हैं। हिन्दू

और मुसलमान अपने-अपने पूर्वाग्रह के अनुसार ही कार्य करते हैं। हिन्दू दंगों के संबंध में यह मानकर चलता है कि दंगे मुसलमान शुरू करते हैं। मुसलमान स्वभाव से क्रूर हिंसक और धर्मोन्मादी होते हैं। इसके एकदम विपरीत हिन्दू धर्मभीरु उदार और सहिष्णु स्वभाववाले होते हैं। लेखक का मानना है कि इस मत से पूर्वाग्रह फैल रहा है। दंगों के दौरान दंगाइयों के साथ आम जवानों को भी पकडकर जेल में सड़ाते हैं। उपन्यासकार दंगों की वास्तविकता अपने उपन्यास में दशार्ते हैं। जैसे- 'जय हिंद पंडित जी, हम तो बेकार डर रहे थे, कौन देवी लाला जय हिंद, जय हिंद । कहो भाई कहाँ छिपें?'[2]

प्रस्तुत उपन्यास में लोगों द्वारा दिये जानेवाले 'जय हिंद' के नारे से भारतवर्ष के प्रति राष्ट्रप्रेम दिखाई देता है। देखा जाय तो भारत-विभाजन के पश्चात सांप्रदायिकता लगभग समाप्त हो चुकी थी। हिंदू और मुस्लिम दोनों आवाम सुकून की जिंदगी गुजर बसर कर रहे थे, परंतु पिछले कई सालों में गंदे राजनीतिक फैसलों से हुए सांप्रदायिकता दंगों ने दुबारा सोचने के लिए मजबूर किया है। चुनाव के दौरान निर्माण की गयी स्थिति का उद्धरण द्रष्टव्य है- 'यूसुफ तुम संघर्ष करो, हम तुम्हारे साथ हैं।.. अभी-अभी चुनाव खतम हुआ था और नारा लड़कों की जुबान पर चढ़ा हुआ था।'[3] दंगे किसी के भी फायदे के नहीं होते। नेतागण जन समुदाय को गुमराह करके अपनी झोली भरते है।

कर्फ्यू का दर्द महसूस कर लेखक अपनी आंतरिक पीड़ा को व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि 'कर्फ्यू किसी भी जाति या धर्म की लड़की को जीवन के सबसे कोमल अनुभव से वंचित कर सकता है और उसे जानवरों के स्तर पर उतार अनुभूति की ऐसी खौफनाक सुरंग में ढकेल सकता है, जहाँ एक बार प्रवेश करने के बाद पूरा जीवन दुःस्वप्नों की भूल भुलैया में तब्दील हो जाए।'[4] कर्फ्यू नरक यातना के समान होता है, जिसमें जनमानस के सुहाने सपने चूर-चूर हो जाते हैं। वे आजीवन इस पीड़ा से उबर नहीं पाते।

इसी तरह प्रदीप सौरभ जी ने 'मुन्नी मोबाईल' उपन्यास में अनूठे अंदाज में राजनीतिक भ्रांतियों को उजागर कर उग्र पूँजीवादी समाज के यथार्थ को दिखाया है। इसमें गोधरा हत्याकांड तथा उसके पश्चात हुए धार्मिक तथा सांप्रदायिक दंगों का जीवंत चित्रण किया गया है। गोधरा हत्याकांड इतिहास में काले दिन के रूप में याद किया जा सकता है। यह हत्याकांड याद आने पर मन सुन्न हो जाता है। इस संदर्भ में उपन्यासकार कहते हैं ह्लइस अग्निकांड से पहले गोधरा में ऐसा कुछ नहीं था कि उसे देश के लोग जानें। इसी गोधरा ने देश की राजनीति में तीव्र ध्रुवीकरण किया। वैसे ध्रुवीकरण की नींव तो 6 दिसंबर 1992 को ही पड़ गई थी। उस दिन बाबरी मस्जिद को भगवा ब्रिगेड ने ध्वस्त कर दिया था।ह्लऽ यह हत्याकांड आगे चलकर नासूर का रूप ले रहा है, और बार-बार विद्रोह के रूप में देश को खोखला बना रहा है। लोगों में दंगे के पश्चात काफी दहशत फैल चुकी थी। लेखक ने गोधरा हत्याकांड के पश्चात हुई राजनीतिक उथल-पुथल का जिक्र किया है, और हत्याकांड से जुड़ी मानवीय संवेदना को प्रस्तुत किया है।

जब हिंदू बिग्रेड के कार्यकताओं ने गोधरा हत्याकांड के विरोध में गुजरात बंद का आवाहन किया, तब गुजरात में हिंदू-मुस्लिम लोगों के झगड़े शुरू हो गए। दोनों एक दूसरे की जान के दुश्मन बन चुके थे। महिलाएँ बड़े-बूढ़े, बच्चे अत्याचार का शिकार बन गए। कई लोगों को जिंदा जलाया गया। कई परिवारों को भूखे-प्यासे रहना पड़ा। लोगों के अपने खुद के कारोबार बंद हो गए। लेखक का कहना है- 'गुजरात दंगों के दौरान कहीं भी इंसानियत के पक्ष में पहल नहीं हुई, ऐसा भी नहीं था। हिन्दू बिग्रेड के आतंक के बावजूद भी भय से बहुत सारे हिन्दुओं ने राहत में जुटी संस्थाओं और लोगों की मदद की। सघन बस्तियों में साथ-साथ रहने वाले लोगों ने मुसलमानों पर हमला करने आये लोगों का खदेडा भी तलवारों के आगे अपने सीने गड़ा दिये। कई हिन्दूओं ने अपने घरों में मुसलमान साथियों को पनाह दे कर उनकी जिंदगी बचाई। जवान मुस्लिम लड़कियों के अनाथ होने पर बहुत सारे हिन्दू मुस्लिम जवान सामने आये। उन्होंने उनके साथ शादी की पेशकश ही नहीं की, बल्कि निकाह भी किया।'[6] प्रस्तुत उपन्यास के अंतर्गत लेखक ने गोधरा हत्याकांड के पश्चात गुजरात में हुई भयानक स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। एक ओर लेखक ने गोधरा हत्याकांड के पश्चात हुए सांप्रदायिक दंगों के तहत उसकी भयावहता को दिखाया है, तो दूसरी ओर एकता एवं सद्भावना को भी व्यक्त किया है, जिससे मानवता का परिचय मिलता है। एक ओर लोग एक-दूसरे की जान पर उतर आए तो दूसरी ओर वे जिंदगी सँवारने का प्रयास करते हुए नजर आते हैं। प्रदीप सौरभ जी ने गोधरा हत्याकांड की समस्या को मानवीय संवेदना के साथ जोड़ा है तथा राष्ट्रीय एकता एवं सांप्रदायिक सद्भाव का विवेचन किया है।

अतः कह सकते हैं कि 'शहर में कर्फ्यू' और 'मुन्नी मोबाईल' उपन्यास की कथा राष्ट्रीयता एवं सांप्रदायिक सदभावना से ओतप्रोत है। इन उपन्यासों में साम्प्रदायिकता के नाम पर धार्मिक, सामाजिक, जातिगत एवं अलगाववादी प्रवृत्तियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। उपन्यासकारों ने कर्फ़्यू ग्रस्त शहरों की स्थिति के माध्यम से संपूर्ण भारतवर्ष की भावनाओं का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण किया है। स्वतंत्रता से लेकर इक्कीसवीं सदी में भी व्यापक राष्ट्रवादी स्वर इन उपन्यासों में मिलता है। समकालीन परिस्थितियों पर यदि नजर डाली जाए तो हिंदी उपन्यासों में राष्ट्रवादी स्वर की और भी जरूरत महसूस की जा रही है। आज समस्त मानव जाति में राष्ट्रीय भावना निर्माण करना आवश्यकता बन गई है।

संदर्भ :

1. शहर में कर्फ्यू (उपन्यास) (इंटरनेट)- विभुतिनारायण राय, अध्याय 3 पृष्ठ- 2
2. वही, पृष्ठ- 3, 3. वही, पृष्ठ- 4, 4. वही, अध्याय 1 पृष्ठ- 5
5. मुन्नी मोबाइल- प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन,संस्करण 2, 2011 पृष्ठ- 21
6. वही, पृष्ठ- 36

आर्ट्स अँड कॉमर्स कॉलेज, नागठाणे, ता.जि. सातारा.

आगामी अंक

प्रेमरंजन अनिमेष की रचनाओं पर केन्द्रित

अप्रैल - जून 2023

जीवन के ९० वसंत पूरे करने के उपलक्ष्य में

देवेश ठाकुर की सन २००० के बाद की रचनाओं पर केंद्रित अंक

जुलाई - सितंबर 2023

Reg. No. MAHHIN / 2008 / 26222

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की अर्द्ध वार्षिक-अव्यावसायिक पत्रिका)
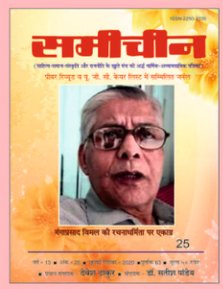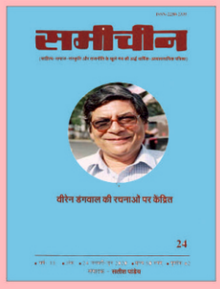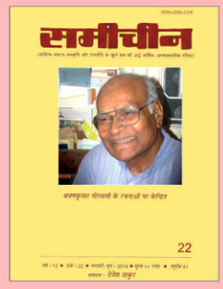
कुछ महत्वपूर्ण विशेषांक